Praacheen Evam Madhyakaaleen kavya

DHIN402

LOVELY
PROFESSIONAL
UNIVERSITY

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य

Copyright © 2012 Laxmi Publications (P) Ltd.
All rights reserved

Produced & Printed by
LAXMI PUBLICATIONS (P) LTD.
113, Golden House, Daryaganj,
New Delhi-110002
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यक्रम

(SYLLABUS)

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य

उद्देश्य

- छात्रों में काव्य के प्रति रुचि पैदा करना।
- छात्रों को प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य की प्रवृत्तियों से अवगत कराना।
- छात्रों को विभिन्न प्राचीन एवं मध्यकालीन कवियों की काव्य–शैली से परिचित कराना।

Sr. No.	Content
1	कबीरदास की काव्यगत विशेषताएं,-केवल साखी भाग की सप्रसग व्याख्या। कबीर की भाषा शैली।
2	कबीर की भक्ति-भावना। कबीर वाणी की तात्विक समीक्षा।
3	सूरदास की काव्यगत विशेषताएं। सूरदास की भक्ति-भावना। सूरसागर का सार (गोकुल लीला)।
4	सूरसागर के प्रमुख पद्यांशो की सप्रसग व्याख्या (गोकुल लीला)। सूरसागर की तात्विक समीक्ष ,शिल्प विधान।
5	तुलसीदास की लेखन कुशलता एव काव्यात्मक योगदान। रामचरितमानस-उत्तरकाण्ड दोहा सप्रसग व्याख्या। तुलसीदास की भक्ति-भावना।
6	जायसी की लेखन कुशलता। पद्मावत का साराश। पद्मावत -सिंहलद्वीप वर्णन,खण्ड सार प्रमुख पद्यांशो की सप्रसग व्याख्या।
7	पद्मावत नागमती वियोग खण्ड सार प्रमुख पद्यांशो की सप्रसग व्याख्या। पद्मावत -बादलयुद्ध खण्ड सार प्रमुख पद्यांशो की सप्रसग व्याख्या।
8	भ्रमरगीत -प्रथम तीस पदो की सप्रसग व्याख्या। भ्रमरगीत की भाषा-शैली। भ्रमरगीत का अलकार विधान। भ्रमरगीत की तात्विक समीक्षा।

9	मीरा मुक्तावली :पद सख्या २१से७० तक की सप्रसग व्याख्या। मीरा की भक्ति-भावना। मीरा मुक्तावली का शिल्प-विधान। मीरा मुक्तावली का भावपक्ष एव कलापक्ष। मीरा मुक्तावली - भाषाशैली।
10	घनानद की लेखन कुशलता एव काव्यात्मक योगदान। घनानद कवित्त-प्रथम ५० पदो की सप्रसग व्याख्या। घनानद कवित्त का सार,घनानद कवित्त मे भक्ति-भावना। घनानद कवित्त की

विषय-सूची

इकाई (Units)	(CONTENTS)	पृष्ठ संख्या (Page No.)
1.	कबीरदास की काव्यगत विशेषताएँ	1
2.	कबीर की भाषा–शैली	27
3.	कबीर की भक्ति–भावना	33
4.	कबीरवाणी की तात्विक समीक्षा	38
5.	सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ	42
6.	सूरदास की भक्ति–भावना	49
7.	सूरसागर का सार (गोकुल लीला)	53
8.	सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या (गोकुल लीला)	70
9.	सूरसागर की तात्विक समीक्षा एवं शिल्प विधान	88
10.	तुलसीदास का काव्यात्मक योगदान	95
11.	रामचरितमानस उत्तरकाण्ड दोहा–सप्रसंग व्याख्या	99
12.	तुलसीदास की भक्ति–भावना	140
13.	जायसी की लेखन कुशलता	145
14.	पद्मावत : कथासार अथवा सारांश	151
15.	सिंहलद्वीप–वर्णन खण्ड : व्याख्या भाग	160
16.	पद्मावत–नागमती वियोग खंड : व्याख्या भाग	182
17.	पद्मावत–गोरा–बादल युद्ध खंड : व्याख्या भाग	201
18.	भ्रमरगीत–सप्रसंग व्याख्या	224
19.	भ्रमरगीत की भाषा–शैली	247
20.	भ्रमरगीत का अलंकार विधान	250
21.	भ्रमरगीत की तात्विक समीक्षा	255
22.	मीरा मुक्तावली (व्याख्या भाग)	263
23.	मीरा की भक्ति–भावना	296
24.	मीरा मुक्तावली का शिल्प विधान	299
25.	मीरा मुक्तावली : भाव पक्ष एवं कला पक्ष	304
26.	मीरा मुक्तावली : भाषा–शैली	309
27.	घनानंद की लेखन कुशलता	313
28.	घनानंद कवित्त–व्याख्या भाग (प्रथम 50 पदों की व्याख्या)	332
29.	घनानंद की भक्ति–भावना	362
30.	घनानंद कवित्त की भाषा–शैली	368

नोट

इकाई 1

कबीरदास की काव्यगत विशेषताएँ

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
1.1 कबीर की काव्यगत विशेषताएँ
1.1.1 वर्ण्य-विषय
1.1.2 रस-योजना
1.1.3 भावानुभूति
1.1.4 व्यंग्यपरकता
1.1.5 भाषा
1.1.6 छन्द-अलंकार
1.1.7 काव्य-रूप
1.2 कबीर वाणीः साखी
1.2.1 व्याख्या
1.3 सारांश (Summary)
1.4 शब्दकोश (Keywords)
1.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
1.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- कबीरदास की काव्यगत विशेषताओं को समझने में।
- कबीर की भाषा को समझने में।
- साखी में वर्णित कबीर के विचारों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

कबीरदास का जन्म सन् 1398 में काशी में हुआ था। ऐसा माना जाता है कि कबीर को एक ब्राह्मणी ने जन्म दिया था। किन्तु लोकलाज से बचने के लिए लहरतारा नामक तालाब के किनारे रख दिया। नीरू और नीमा नामक मुस्लिम दम्पति ने उनका पालन-पोषण किया। उन्होंने रामानंद नाम के गुरु से निर्गुण भक्ति की दीक्षा प्राप्त की थी। उनका विश्वास था कि सच्चे प्रेम और ज्ञान से ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। कबीर की सभी रचनाएँ कबीर-ग्रंथावली में संकलित हैं। बीजक, रमैनी और सबद नाम से उनके तीन काव्य-संग्रह हैं। सिख धर्म के गुरुग्रंथसाहब में भी उनकी वाणी को स्थान मिला है।

1.1 कबीर की काव्यगत विशेषताएँ

'मसि कागद छुओ नहिं, कलम गह्यो नहिं हाथ' की स्वीकारोक्ति को कहने वाले कबीर ने न तो काव्यशास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया था और न वह इसके समर्थक थे। उन्होंने तो भाव-विभोर होकर जो कुछ कह दिया, वही

नोट

'काव्य' बन गया। यही कारण है कि उनके काव्य में सायास विशेषताएँ नहीं हैं, किन्तु फिर भी काव्य-कला विषयक कुछ ऐसे तत्व अवश्य हैं जिन्होंने उसको 'विशिष्ट' की श्रेणी में ला बिठाया है। यहाँ कबीर की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन किया जा रहा है।

1.1.1 वर्ण्य-विषय

कबीर संत थे, पर्यटक थे और उससे भी अधिक आत्मानुभवी थे। जीवन के विविध क्षेत्रों को उन्होंने आँख खोलकर देखा, भोगा और परखा था। यही कारण है कि उनके यहाँ सब-कुछ देखा-परखा और भोगा हुआ है। 'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता हूँ आँखिन देखी' का दावा करने वाले कबीर के काव्य की समस्त वर्ण्य सामग्री इसी बात की साक्षी है। कबीर-काव्य के वर्ण्य-विषय को तीन वर्गों में रख सकते हैं—(अ) सामाजिक-धार्मिक स्थितियों और उनके विविध पक्षों का चित्रण जिसमें साम्प्रदायिकता, लोकाचार, वर्ण भेद, कुरीतियां, बाह्याचार आदि विरोधी उक्तियाँ आ जाती हैं; (ब) रहस्यपरक अनुभूतियाँ जिसमें ब्रह्म, माया, भक्ति, दर्शन, जीव आदि से सम्बन्धित काव्यांश आते हैं; तथा (स) फुटकर उपदेशपरक यथा गुरु-महिमा, आचरण, आत्मनिग्रह, पवित्रता, इन्द्रिय-निग्रह, जीवन की क्षणभंगुरता तथा चेतावनी आदि। इन सबकी सबसे बड़ी विशेषता है—सहज-स्वाभाविक सत्यता। परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर साहित्य की परख की। प्रस्तावना में ठीक ही कहा है, 'कबीर-साहित्य उन रंगबिरंगे पुष्पों में नहीं जो सजे-सजाये उद्यानों की क्यारियों में किसी क्रमविशेष के अनुसार उगाए जाते हैं और जिनकी छटा तथा सौन्दर्य का अधिकांश मालियों के कला-नैपुण्य पर भी आश्रित रहा करता है। यह तो एक वन्य कुसुम है जो अपने स्थल पर अपने आप उगा है और जिसका विकास केवल प्राकृतिक नियमों पर ही निर्भर रहा।'

1.1.2 रस-योजना

काव्य की आत्मा रस है। कबीर का सर्वाधिक प्रिय रस है—शांत (निर्वेद)। भक्तिपरक सभी पद और साखियां मूलतः इसी से युक्त हैं। इसके लिए कवि ने विविध युक्तियों को अपनाया है तथा जीवन की क्षणभंगुरता का सच्चा चित्रण, कुरूप यथार्थ के प्रति मानव-मन को सजग करना तथा अकारण भय को उद्‌भूत करना। उदाहरणस्वरूप निम्न काव्यांश देखिये—

(i) **झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन-मोद।**
खलक चबैना काल का, कुछ मुंह में कुछ गोद ॥

(ii) **नर नारी सब नरक हैं, जब लग देह सकाम।**
कहै कबीर ते राम के, जे सुमिरै निहिकाम ॥

(iii) **माली आवत देखि कै, कलियाँ करैं पुकार।**
फूलि फूलि चुन लईं, काल्हि हमारी बार ॥

शांत के अतिरिक्त कबीर-काव्य के प्रमुख रस हैं—शृंगार और अद्‌भुत। शृंगार के अन्तर्गत दाम्पत्य रूपकों के माध्यम से कबीर ने आत्मा-परमात्मा का रसमय चित्रण किया है। इसमें भी संयोग-वियोग और इनकी विविध स्थितियों को ग्रहण किया गया है। संयोग के दर्शन 'निहकर्मी पतिव्रता को अंग', 'पीव पीहाणन को अंग' और 'हेत प्रीती सनेह को अंग' में तथा वियोग के दर्शन 'विरह को अंग' तथा 'सती को अंग' में किये जा सकते हैं। उलटबाँसियां (विपर्यय) अद्‌भुत रस की साक्षी हैं। विविध स्थानों पर आई व्यंग्योक्तियों में हास्य रस भी पूर्ण भाव-सबलता के साथ छलकता मिलता है। निम्न उदाहरण भी हमारे इसी मत की पुष्टि करते हैं—

शृंगार रसः

(i) **संयोग— दुलहनिं गावहु मंगलाचार।**
हम घरि आये हो राजा राम भरतार ॥

नोट

तन रत करि मैं मन रति करि पंचतत्त बराती।
रामदेव मोरे पाहुन आये, मैं जोबन मदमाती ॥

(ii) **वियोग— यह तन जालौं मसि करूँ लिखौं राम का नाउं।**
लेखणि करूँ करंक, लिखि लिखि राम पठाउं ॥

अद्‌भुत रस— एक अचंभा देखा रे भाई,
ठाड़ा सिंह चरावै गाई
पहले पूत पीछे भई माई,
चेला के गुरु लागै पाइ ॥
जल की मछली तरवर व्याई,
पकड़ि बिलाई मुर्गा खाई ॥
बैलहि डारि गूंनि घर आई
कूत्ता कूं लै गई बिलाई ॥

हास्य रस— वेद पुरान पढ़त अस पांडे, खर चंदन जैसे भारा।
राम नाम तत समझत नाहीं, अंति पड़े सुख छारा ॥

कहीं-कहीं, विशेषतः उपदेश और सिद्धान्त प्रतिपादन वाले स्थलों पर कबीर का काव्य नीरस भी हो गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'कबीर' के उपसंहार में लिखा है—''कबीर ने कहीं काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलकते हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है। फलतः काव्यत्व-रसत्व उनके पदों में फोकट का माल है, बाई प्रोडक्ट है, वह कोलतार और सीरे की भाँति और चीजों को बनाते-बनाते अपने आप बन गया है।''

1.1.3 भावानुभूति

कबीर का समस्त काव्य सहज-स्वाभाविक है। उन्होंने जिस चीज को जैसा अनुभव किया, उसको वैसे ही अभिव्यक्त कर दिया है। यहाँ तक कि डॉ. सतनाम सिंह शर्मा (कबीर एक विवेचन) के शब्दानुसार, ''गहन सत्यों को, जिस रूप में भी सम्भव हुआ, उन्होंने प्रकट कर दिया। अभिव्यक्ति के लिये उन्हें न तो अलंकार शास्त्र के ज्ञान की आवश्यकता हुई और न किसी काव्य-रीति के पालन की। जो सहज में बन सका, उसी को उन्होंने अपनाया।'' उनकी यह सहज-स्वाभाविकता सबसे अधिक उनके ''भक्ति-पदों'' में मुखर हुई है। अनुभूति की यह सद्यता इनके पदों को पूर्णतया काव्यत्व से ओत-प्रोत कर देती है। निम्न उदाहरण हमारे इसी मत की पुष्टि करता है—

राम भगति अनियाले तीर।
जेहि लागै सौ जानै पीर।

तथा

हम घरि आये हो राजा राम भरतार।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. 'तू कहता है ..... लेखि, मैं कहता हूँ आँखिन देखी।' ..... की पंक्तियाँ हैं।
2. कबीर का सर्वाधिक प्रिय रस ..... है।
3. 'कबीर वाणी के डिक्टेटर थे'—कथन ..... का है।

नोट

1.1.4 व्यंग्यपरकता

शास्त्रीय दृष्टि से, ''व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठों में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो।'' कबीर ऐसे व्यंग्यकार हैं। धर्म और समाज तथा इन दोनों के नेता ठेकेदार ही अधिकांशतः कबीर की व्यंग्योक्तियों के शिकार बने हैं। इस प्रकार जाति-पाँति, पूजा-पाठ, तीर्थाटन, जप-तप, मन्दिर-मस्जिद, पण्डित-शेख और मुल्ला तथा शाक्त आदि नाना विषयों को कबीर ने व्यंग्यपूर्ण, प्रायः कटु व्यंग्यपूर्ण, बना दिया है। उनके वैयक्तिक जीवन के कष्टों, अद्‌भुत फक्कड़ व्यक्तित्व और समकालीन धार्मिक सामाजिक परिस्थितियों आदि ने भी इस व्यंग्य-भाव को सान पर चढ़ाया है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी (कबीर) ने ठीक ही कहा है—''सच पूछा जाये तो आज तक हिन्दी में ऐसा जबर्दस्त व्यंग्य-लेखक पैदा ही नहीं हुआ। उनकी साफ चोट करने वाली भाषा, बिना कहे भी सब कुछ कह देने वाली शैली और अत्यन्त सादी किन्तु अत्यन्त तेज प्रकाशन-भंगी अनन्य-साधारण है,...पढ़ते साफ मालूम होता है कि कहने वाला अपनी ओर से एकदम निश्चिन्त है। अगर वह अपनी ओर से इतना निश्चिन्त न होता तो इस तरह का करारा व्यंग्य नहीं कर सकता।'' कुछ उदाहरणों से यह बात और भी अधिक पुष्ट हो जाती है—

(i) **मूँड मुँडाये हरि मिलैं तो सब कोई मुँडाय।**
बार-बार के मूंडते, भेड़ न बैकुंठ जाय ॥

(ii) **साधु भया तो क्या भया, माला फेरि चारि।**
बाहरी ढोला हींगला, भीतरि भरी अंगारि ॥

(iii) **सेख सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाई।**
जाकी दिल साबत नहीं, ताको कहा खुदाई ॥

टास्क कबीर की व्यंग्यपरकता पर अपना मत प्रकट कीजिए।

1.1.5 भाषा

कबीर-काव्य की भाषा पर विद्वानों के विविध और परस्पर विरोधी मत हैं। स्वयं कवि ने उसको 'पूर्वी' कहा है जिसमें बनारस, मिर्जापुर और गोरखपुर आदि में प्रचलित शब्दावली प्रधान है। इनके अतिरिक्त उसमें ब्रज, अवधी, बुन्देलखण्डी, पंजाबी, राजस्थानी, अपभ्रंश, यहाँ तक कि अरबी-फारसी के शब्द भी बहुतायत से हैं। व्याकरण-दोष तो उसमें भरपूर मात्रा में हैं। इसी से, इनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी', 'पंचमेल खिचड़ी', 'मिश्रित', और 'गँवारू' तक कहा गया है। ध्यान से देखें तो यह भाषा ''लोकभाषा' है। तत्कालीन लोकभाषाएँ परस्पर संगुंफित थीं। दूसरे कबीर का विस्तृत पर्यटन, विस्तृत दृष्टिकोण एवं शास्त्रीय नियमों की अवहेलना तथा कबीर शिष्यों का विविधभाषी होना आदि कई कारणों ने भी इसको ''विचित्र'' बना दिया है। श्री यज्ञदत्त शर्मा (कबीर साहित्य और सिद्धांत) के शब्दों में—''कबीर जैसे स्वतंत्र प्रकृति के कवि के लिए प्रधानता भावना की थी।'' इस दृष्टि से डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ('कबीर') के अनुसार, ''भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा कहलवा दिया है—बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कबीर के सामने कुछ लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को ना कर सके और अकथनीय कहानी का रूप देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों में पायी जाती है।'

कबीर की यह भाषा अनगढ़, अपरिष्कृत और सादी है। सरलता इसका विशिष्ट गुण है। भावाभिव्यक्ति में यह पूर्णतया सक्षम है। वह जीवन्त और झकझोर देने वाली होने के साथ पूर्णतया भावानुकूल भी है। डॉ. पारसनाथ तिवारी

('कबीर-वाणी') का यह कथन अक्षरशः सत्य है—''कबीर की भाषा को देखकर उस ग्रामीण नायिका (उसे वचनविदग्धा, रूपगर्विता, प्रगल्भा, क्या-क्या कहा जाए?) का स्मरण हो जाता है जो निहायत सादगी और आत्मविश्वास के साथ कहती है...''गांव में पैदा हुई, गाँव में ही रहती हूँ। जानती भी नहीं कि नगर कहाँ होता है। इतना अवश्य है कि नागरिकाओं के पति आकर यहां की खाक छान जाया करते हैं। वैसे कहने को जो भी हूँ, सो हूँ।''

नोट

नोट्स कबीर की भाषा के शब्द ही नहीं, शब्द-शक्ति भी शक्तिशाली है। इनमें भी व्यंजना पक्ष तो अत्यधिक सबल और उत्कृष्ट है।

डॉ. पारसनाथ तिवारी ने ठीक ही कहा है, ''तीनों शब्द-शक्तियों का एक ऐसा संश्लिष्ट रूप मिलता है जिसमें नीचे की स्थिति अविभाज्य-सी रहती है। भावाभिव्यक्ति की प्रौढ़ता की यह सबसे बढ़ी परख है और कबीर का काव्य इस कसौटी पर कसने से बारह आना सोना सिद्ध होता है।'' सारांश में डॉ. रामरतन भटनागर के शब्दों में कह सकते हैं, ''इसी बहते नीर लोकभाषा को कबीर ने अपना आदर्श माना है। इसी से इसमें पिंगल की शुद्धता नहीं, संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग नहीं, विदेशी शब्दों को तद्भव रूप में ही स्वीकार किया गया है। यहाँ तक कि भाषा के सर्वनामों और क्रियापदों की शुद्धता की ओर भी आग्रह नहीं है। ये बातें तो गौण हैं, प्रधान बात है कि भाषा उस ऊँचे धरातल पर उठ सके जिस पर कवि को अपना संदेश देना है। कबीर की भाषा की विशेषता है—उसकी समास-शक्ति और समाहार-शक्ति। वह बलवान् की भाषा है। ..... कबीर की फक्कड़ भाषा, ऊबड़-खाबड़ और गँवारू भाषा उनकी अपनी चीज है। इसका अनसँवारापन ही इसका सहज आकर्षण है।''

1.1.6 छन्द-अलंकार

कबीर ने प्रायः सधुक्कड़ी छन्दों का प्रयोग किया है जिनमें प्रमुख हैं—सबद, साखी, दोहा, रमैनी। साथ ही पदों में कहरवा, हिंडोला, बसन्त, चौंतीसी, विप्रमतीसी, बेलि और चाँचर आदि छन्द भी यहाँ उपलब्ध हैं। विशेषता यह है कि सभी छन्द-स्वच्छन्द और पिंगलशास्त्र के नियमों से स्वतन्त्र हैं। मात्राओं के बंधन को कवि ने सही स्वीकारा किन्तु लय और संगीत का ध्यान रखा है। श्री यज्ञदत्त शर्मा ने ठीक ही कहा है, ''छन्द की बंदिशें उनके भावों के प्रसार और विचारों के प्रकाशन में प्रतिबन्ध बन जायें, यह वह सहन नहीं कर सकते थे।''

क्या आप जानते हैं कबीर के प्रिय अलंकार हैं—रूपक, उपमा और प्रतीप, जिनमें से अधिकांश मौलिक हैं। स्थान-स्थान पर उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, विभावना, लोकोक्ति, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त और काव्यलिंग आदि अलंकार भी मिलते हैं।

1.1.7 काव्य-रूप

कबीर का समस्त काव्य मुक्तक-रूप में हैं। प्रधान है—दोहा, साखी, पद अथवा गीत तथा रमैनी-चौपाई। कबीर अपने दोहों को ''साखी'' और पदों को ''सबद'' कहते हैं। रमैनी के कई भेद इनके यहाँ पर हैं—सतपदी अष्टपदी, द्विपदी और बारहपदी आदि। प्रतीक, उलटबाँसी, अन्योक्ति और समासोक्ति आदि न जाने कितनी अन्य शैलियां भी इन्होंने सफलतापूर्वक प्रयुक्त की हैं। एक मुसलमान विद्वान् श्री एम.ए. गनी तो कबीर की ''हमन हैं इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या'' के आधार पर उनको गजलकार और इस रचना को उर्दू की पहली गजल मानते हैं (हिस्ट्री आफ द परशियन लैंग्वेज एट मुगल कोर्ट)।

नोट

निष्कर्ष

इस प्रकार, हम निश्चिन्त हैं कि अशिक्षित होते हुए भी कबीर कवि थे, बेशक उनका काव्यत्व ''बाई प्रोडक्ट'' हो अथवा ''अपने आप बन गया हो''। उनकी काव्य-कला के दोनों पक्ष पूर्णतया सबल हैं। श्री यज्ञदत्त शर्मा के शब्दों में, ''.....एक ताजगी है, बासीपन नहीं, यह इसकी महान् विशेषता है। उसमें जो कुछ भी कहा गया है उसमें नयापन है, पुरानी बातों का रगड़ना उसने नहीं सीखा।'' सारांश में कह सकते हैं कि इस महाकवि ने अपनी काव्य-कला को महान् बनाया तो इसकी महान् काव्य-कला ने इसको ही महाकवि बना दिया।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

4. निम्न में कबीर की भाषा को क्या नहीं कहा जाता?
   (अ) पंचमेल खिचड़ी (ब) सधुक्कड़ी (स) गँवारू (द) अलंकारनिष्ठ
5. कबीर के दोहों को 'साखी,' कहा जाता है, जबकि पदों को ..... जाता है।
   (अ) रस (ब) सबद (स) छन्द (द) इनमें से कोई नहीं
6. किस मुसलमान विद्वान ने कबीर की रचना—'हम हैं इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या' को उर्दू की पहली गजल माना है?
   (अ) फैज़ अहमद (ब) मियां मकसूद
   (स) एम.ए. गनी (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

1.2 कबीर वाणीः साखी

राम नाम कै पटंतरै, देबे कौं कछु नांहिं।
क्या लै गुर संतोखिए, हौंस रही मन मांहिं ॥1॥
सतगुर सवां न कोइ सगा, सोधी सई न दाति।
हरि जी सवां न कोइ हितू, हरिजन सई न जाति ॥2॥
चौंसठि दीवा जोई करि, चौदह चंदा मांहि।
तिहिं धरि किसकौ चांदिनौं, जिहिं घरि सतगुर नांहि ॥3॥
सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघारिया, अनंत दिखावनहार ॥4॥
सतगुर कै सदकै किया, दिल अपनीं का सांच।
कलिजुग हमसौं लड़ि पड़ा, मुहकम मेरा बांच ॥5॥
सतगुर हमसौं रीझि करि, कहा एक परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ॥6॥
चकई बिछुरी रैंनि की, आई मिलै परभाति।
जे नर बिछुरे राम सौं, ते दिन मिले न राति ॥7॥
बिरहा बिरहा मति कहौ, बिरहा है सुलतान।
जिहिं घट बिरह न संचरै, सो घट सदा मसांन ॥8॥
सब रग तांति रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुनि सकै, कै सांई कै चित्त ॥9॥

नोट

परबति परबति मैं फिरा, नैंन गंवाया रोई
सो बूटी पाऊं नहीं, जातैं जीवन होई ॥10॥
अंखड़ियां झांई परी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियां छाला परा, राम पुकारि पुकारि ॥11॥
नैंनां नीझर लाइया, रहट बहैं निस घाम।
पपिहा ज्यौं पिउ पिउ करौं, कब रे मिलहुगे राम ॥12॥
सोई आंसू साजना, सोई लोग बिड़ाहं।
जौ लोइन लोही चुवै, तो जानौं हेतु हियाहं ॥13॥
कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि।
एक दिन सोवन होइगा, लांबे गोड़ पसारि ॥14॥
तूं तूं करता तूं भया, मुझमैं रही न हूं।
वारी तेरे नाउं परि, जित देखौं तित तूं ॥15॥
कबीर चंदन कै बिड़ै, बेधे ढाक पलास।
आपु सरीखे करि लिए, जे होते उन पास ॥16॥
मेरे संगी दोइ जनां, एक बैस्नौं एक राम।
वो है दाता मुकुति का, वो सुमिरावै नाम ॥17॥
राम बियोगी बिकल तन, इन्ह दुखवौ मति कोइ।
छूवत ही मरि जाइंगे, तालाबेली होइ ॥18॥
भगत हजारी कापड़ा तामैं मल न समाइ।
साकत काली कामरी, भावै तहां बिछाइ ॥19॥
अैसा कोई ना मिलै, जासौं रहिए लागि।
सब जग जग जरता देखिया, अपनीं अपनीं आगि ॥20॥
सारा सूरा बहु मिलैं, घायल मिलै न कोइ।
घाइल कौं घायल मिलै, तौ राम भगति दिढ़ होई ॥21॥
हम घर जाला आपना, लिए मुराड़ा हाथि।
अब घर जालौं तास का, जो चलै हमारै साथि ॥22॥
मेरा मुझमैं कछु नहीं, जो कछु है सो तेरा।
तेरा तुझकौं सौंपता, क्या लागै मेरा ॥23॥
जद का माई जनमिया, कदे न पाया सुख।
डारी डारी मैं फिरौं पातैं पातैं दुख ॥24॥
कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढ़े बन मांहिं।
ऐसे घटि घटि राम हैं, दुनिया देखै नांहिं ॥25॥
ज्यौं नैननि मैं पूतरी, त्यौं खालिक घट मांहि।
मूरिख लोग न जांनहीं, बाहरि ढूंढ़न जांहिं ॥26॥
जाकै मुंह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास तैं पातरा, ऐसा तत्त अनूप ॥27॥
भारी कहूं तौ बहु डरूं, हरुवा कहूं तौ झूठ।
मैं क्या जांनू राम कौं, नैंनां कबहुं न दीठ ॥28॥
दीठा है तौ कस कहूं, कहें न कोई पतिआई।

नोट

हरि जैसा तैसा रहै, तूं हरखि हरखि गुन गाइ ॥29॥
नां कछु किया न करहिंगे, ना करनैं जोग सरीर।
जो कछु किया सु हरि किया, भया कबीर कबीर ॥30॥
हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
बूंद समानीं समुंद मैं, सो कत हेरी जाइ ॥31॥
सांई मैं तुझ बाबिरा, कौड़ी हू न लहाउं।
जौं सिर ऊपरि तुम धनीं, तौ लाखौं मोल कराउं ॥32॥
कबीर जांचन जाइ था, आगैं मिला अजंच।
लै चाला घर आपनैं, भारी पाया संच ॥33॥
सुरति समानीं निरति मैं, अजपा मांहैं जाप।
लेख समांना अलेख मैं, यौं आपा मांहैं आप ॥34॥
सूर समानां चांद मैं, दुहूं किया घर एक।
मन का चेता तब भया, कछु पूरबला लेख ॥35॥
तन भीतर मांनिया, बाहरि कतहुं न जाइ।
ज्वाला तैं फिरि जल भयातैं, बुझी बलंती लाइ ॥36॥
कबीर सबद सरीर मैं, बिनु गुन बाजै तांति।
बाहरि भीतरि रमि रहा, तातैं छूटि भरांति ॥37॥
गंग जमुन के अंतरै, सहज सुन्नि लौं घाट।
तहां कबीरा मठ रचा, मुनिजन जोवैं बाट ॥38॥
कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास।
समंदहिं तिनका बरि गिनैं, एक स्वाति बूंद की आस ॥39॥
दोजग तौ हम अंगिया, यह डर नांहीं मुज्झ।
भिस्त न मेरै चाहिए, बाझ पियारै तुज्झ ॥40॥
सबै रसाइन मैं किया, हरि रस सम नहिं कोइ।
रंचक घट मैं संचरै, तौ सब तन कंचन होइ ॥41॥
सतगंठी कोपीन दै, साधु न मांनैं संक।
राम अमलि माता रहै, गिनैं इंद्र कौं रंक ॥42॥
हरि रस पीया जांनिए, जे उतरै नांहिं खुमारि।
मैमंता घूमत फिरै, नांही तन की सारि ॥43॥
अब तौ अैसी होइ परी, मन का भावतु कीन।
मरनैं तै क्या डरपनां, जब हाथि सिंधौंरा लीन ॥44॥
कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नांहि।
सीस उतारै हाथ सौं, तब पैसे धर मांहिं ॥45॥
प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिहिं रुचै, सीस देइ लै जाइ ॥46॥
जेते तारे रैंनि कै, तेते बैरी मुज्झ।
धड़ सूली सिर कांगुरै, तऊ न बिसरौं तुज्झ ॥47॥
काल सिरहानैं है खड़ा जागि पियारे मिंत।
राम सनेही बाहिरा, तूं क्यौं सोवै निचिंत ॥48॥

नोट

कबीर नौबति आपनीं, दिन दस लेहु बजाइ।
यह पुर पट्टन यहु गली, बहुरि न देखहु आइ ॥49॥
कबीर धूरि सकेलि कै, पुड़िया बंधी एह।
दिवस चारि का पेखनां, अंति खेत की खेह ॥50॥
मानुख जनम दुलंभ है, होइ न बारंबार।
पाका फल जो गिरि परा, बहुरि न लागै डार ॥51॥
जिंहिं जेवरी जग बंधिया, तूं जनि बंधै कबीर।
जैहहि जाटा लौंन ज्यौं, सोनां सवां सरीर ॥52॥
कबीर सभ जग हंढिया, मादलु कंध चढ़ाइ।
कोई काहू का नहीं, सब देखी ठोंकि बजाइ ॥53॥
कबीर गरब न कीजिअै, काल गहे कर केस।
ना जांनौं कहं मारिहै, कै घरिं कै परदेस ॥54॥
राखनहारै बाहिरा, चिड़िअैं खाया खेत।
आधा परधा ऊबरै, चेति सकै तौ चेति। ॥55॥
कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरै लालि।
दिवस चारि का पेखनां, बिनसि जाइगा काल्हि ॥56॥
कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गये सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चले बजावनहार ॥57॥
बारी बारी आपनीं, चले पियारे मीत।
तेरी बारी जीयरा, नेरी आवै नीत ॥58॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जाति।
देखत ही छिपि जाइंगे, ज्यौं तारे परिभाति ॥59॥
रोवनहारे भी मुए, मुए जलावनहार।
हा हा करते ते मुए, कासौ करौं पुकार ॥60॥
जिनि हम जाए ते मुए, हम भी चालनहार।
हमरै पाछैं पूंगरा, तिन भी बांधा भार ॥61॥
कबीर यहु जग कछु नहीं, खिन खारा खिन मीठ।
काल्हि अलहजा मैड़ियां, आजु मसानां दीठ ॥62॥
मरता मरता जग मुवा, मुवै न जानां कोइ।
दास कबीरा यौं मुवा, ज्यौं बहुरि न मरना होई ॥63॥
जीवन तै मरिबौ भलौ, जौ मरि जांनैं कोई
मरनैं पहिलै जो मरै, तौ कलि अजरावर होई ॥64॥
कबीर हरदी पीयरी, चूनां ऊजल भाइ।
राम सनेही यूं मिले, दोनउं बरन गंवाइ ॥65॥
हिंदू मूआ राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, जो दुहं के निकटि न जाइ ॥66॥
कबीर हद के जीव सौं, हित करि मुखां न बोलि।
जे राचे बेहद सौं, तिनसौं अंतर खोलि ॥67॥
खूब खान है खीचरी, जे टुक बाहै लौंन।

नोट

हेरा रोटी कारनैं, गला कटावै कौंन ॥68॥
सेख सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाइ।
जाकी दिल साबित नहीं, ताकौं कहा खुदाइ ॥69॥
कासी काठैं धर करै, पीवै निरमल नीर।
मुकुति नहीं हरि नाउं बिनु, यौं कहै दास कबीर ॥70॥
कबीर तस्टा टोकनीं, लिया फिरै सुभाइ।
राम नाम चीन्हैं नहीं, पीतल ही कै चाइ ॥71॥
आपनपौ न सराहिऐ, और न कहिऐ रंक।
ना जानौं किस बिरिख तलि, कूड़ा होई करंक ॥72॥
मारी मरौं कुसंग की, केरा कांठैं बेरि।
वा हालै वा चीरिऐ, साकत संग निबेरि ॥73॥
मूरखि संग न कीजिऐ, लोहा जल न तिराइ।
कदली सीप भुवंग मुख, एक बूंद तिहुं भाइ ॥74॥
सांई सेती सांच चलि, औरां सौं सुध भाइ।
भावै लांबे केस करि, भावै घुरड़ि मुड़ाइ ॥75॥
साधु भया तौ क्या भया, माला मेली चारि।
बाहरि ढोला हींगला, भीतरी भरी भंगारि ॥76॥
कैसों कहा बिगारिया, जे मूड़ै सौ बार।
मन कौं काहे न मूड़िए, जामैं बिखै बिकार ॥77॥
कर पकरें अगुरी गिनैं, मन धावै चहु ओर।
जाहि फिरायां हरि मिलै, सौ भया काठ की ठौर ॥78॥
माला फेरें कछु नहीं, काती मन कै साथि।
जब लगि हरि प्रगटै नहीं, तब लगि पतड़ा हाथि ॥79॥
हम भी पाहन पूजते होते रन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई, डारा सिर तैं बोझ ॥80॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जांनि।
दसवां द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछांनि ॥81॥
राम राम सब कोइ कहै, कहिबे बहुत बिचार।
सोई राम सती कहै, कोई कौतिगहार ॥82॥
पानी केरा पूतरा, राखा पवन संचारि।
नाना बांनीं बोलिया, जोति धरी करतारि ॥83॥
हरि मोतिन की माल है, पौई कांचै धागि।
जतन करौ झंटा घनां, टूटैगी कहुं लागि ॥84॥
पानीं हू तें पातरा, धूवां हू तैं झीन।
पवना बेगि उतावला, सो दोस्त कबीरै कीन ॥85॥
मेरे मन मैं परि गई, अैसी एक दरार।
फाटा फटिक पखांन ज्यौं, मिला न दूजी बार ॥86॥
मन कै मतै न चालिए, छांड़ि जीव की बांनि।
ताकूं केरा तार ज्यौं, उलटि अपूठा आंनि ॥87॥

नोट

कबीर भली मधूकरी, भांति भांति कौं नाज।
दावा किसही का नहीं, बिन बिल्लाइत बड़ राज ॥88॥
गावन ही मैं रोज है, रोवन ही मैं राग।
इक बैरागी ग्रिह करै, एक ग्रिही बैराग ॥89॥
कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुस्तक देहु बहाइ।
बावन अक्खिर सोधि कै, ररै ममैं चित लाइ ॥90॥
सहजैं सहजैं सब गए, सुत बित कांमिनि काम।
एकमेक होइ मिलि रहा, दास कबीरा राम ॥91॥

1.2.1 व्याख्या

साखी

राम नाम [जिसे गुरु ने दिया] की बराबरी में मेरे पास देने को कुछ नहीं है। क्या लेकर (अर्थात् किस दक्षिणा के बल पर) गुरु को तुष्ट किया जाय, यह साध मन में बनी ही रही अर्थात् पूरी न हुई ।1।

पटंतरै—सं. पट्ट + तल > हि. पटंतर = बराबरी में, उपमा में। तुल. क. प्रं. प्रयाग साखी 4-11, 2ः तासु पटंतर नां तुलै, हरिजन की पनिहारि तथा तुलसी, बाल. 247-4 जौ पटतरिअ तीय सम सीया। हौंस < अं हवश् = चाह, साध, लालसा, हौसला, अरमान। तुलं दादू, साखी 2-118, 2ः हौंस रही यह जीव मैं, पछितावा मन माहिं।

सद्गुरु के समान दूसरा कोई सगा नहीं, ज्ञान या चित्तशुद्धि के समान दूसरा कोई दान नहीं, प्रभु के समान दूसरा कोई हितैषी नहीं और हरिजन के समान दूसरी कोई जाति नहीं ।2।

सवां— सं समान > हिं सवांन > सवां (जैसे : 'जहान' से 'जहाँ')। अन्य टीकाकारों ने अगले 'न' के साथ मिलाकर इसका अर्थ 'सवांन' के रूप में और 'को' का अर्थ कौन के रूप में किया है, किन्तु पूरी साखी की वाक्य-रचना को दृष्टि में रखते हुए इन्हें पृथक् रखना युक्तिसंगत लगता है। आगे इसका स्त्रीलिंग रूप 'सईं' मिलने से इस धारणा को और भी अधिक पुष्टि मिल जाती है। को-यहाँ 'कोई' (= कोई) का संक्षिप्त रूप ज्ञात होता है, कौन के अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुआ है। सोधी = सुधि अथवा ज्ञान—जैसे 'भूल' से 'भोल' (क. ग्रं. साखी 1-18), 'छूत' से 'छोत' (क. ग्रं. साखी 9-5) 'सूझ' से 'सोझी'—उदाहरणतया गुरुग्रन्थ साहब पृ. 275-4 : तिस दास कउ सभ सोधी परै (गुरु अजुंनदेव) पृ. 303-7 : बिनु सतगुरु सोधी न पवै (वही)। 'सोधी' को अधिकांश टीकाकारों ने सं. 'शोधी' ले व्युत्पन्न मानकर इसका शोधक या साधु अर्थ किया है, किन्तु यह भ्रमात्मक ज्ञात होता है। वस्तुतः यह 'सुधि' या ज्ञान का बोधक है जो निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट है—स्वामी रामचरण, अणभै वाणी, साखी 3-96 : सुमरण से सोधा भई भास्यौ सार असार। दादू, साखी; 1-118-1 सोधी नहीं सरीर की, औंरों को उपदेस; 1-119-1 : सोधी नहीं सरीर की, कहैं अगम की आत; 13-89-1। सूना घट सोधी नहीं, पंडित ब्रह्मा पूत; तथा 12-126-2ः सोधी नहीं सरीर की, तासनि का समझाइ (सोधी नहीं = समझ या ज्ञान नहीं)। सं. शुद्धि (चितशुद्धि) से भी इसकी व्युत्पत्ति मानी जा सकती है, लेकिन 'सुधि' से इसकी व्युत्पत्ति मानना अधिक निरापद ज्ञात होता है। सई 'सवां' का स्त्री. रूप। दाति—सं. 'दत्त' (= दिया हुआ) > दत्ति > दाति = दी जाने वाली वस्तु, दान या देन। दे. पाइअ. दत्ति = एक बार में जितना दान दिया जाय वह, अविच्छिन्न रूप से जितनी भिक्षा दी जाय वह । तुल. गुरुग्रंथसाहब, पृ. 73-18ः दाति करहु मेरे दातारा (अर्जुनदेव); वही, पृ. 150-6 (नीचे से) : लहै भराति होवै जिसु दाति (नानक), वही, पृ. 443-4ः नानक दाति दया करि देवै राम नामि निसतारी (रामदास); वही, पृ. 50-4-3 : सरबे जाचिक तूं प्रभु दाता दाति करै अपने वीचार (नानक) तथा जायसी, पदमावत, 386-4 : दत्त सत्त एइ दूनौ भाई (दत्त = दिया हुआ)। सन्त-साहित्य में 'दाति' से ही बना हुआ 'दाती, (= 'दाति' करने वाला या दाता) शब्द मिलता है। उदाहरणतया दे. गुरुग्रन्थसाहब, पृ. 83-14 : दाती साहब संदीआ किया चल्ले तिसु नाल (नानक), जेवड़ साहिबु तेवड़ दाती दे दे करै रजाई (वही)। 'दाति' शब्द का प्रयोग राधास्वामी सत्संग में अब तक इसी अर्थ में होता है।

'सोधी' तथा 'दात्ति' सन्त-साहित्य के विशिष्ट शब्द हैं जिनके अर्थ से पूर्णतया अवगत न होने के कारण कबीर के लिपिकारों तथा टीकाकारों को प्रायः इनके सम्बन्ध में भ्रम हुआ है। दाति का अर्थ अन्य टीकाकारों ने दाता (= सं. दातृ) किया है।

नोट

चौंसठ दीपक जला कर चौदहों चाँद भी अटा ले (उद्भासित कर ले) किन्तु जिसके घर में सद्गुरु नहीं उसके घर किसका प्रकाश हो? ।3।

चौंसठि दीवा—चौंसठ कलाएँ जिनका उल्लेख कामशास्त्र के ग्रन्थों में है, देखें—वात्स्यायनकृत कामसूत्र। जोइ < सं. ज्योति = ज्योतित करना या जलाना। चौदह चंदा—दूज से लेकर पूर्णिमा तक चाँदनी के चौदह दिन होते हैं। इसी कारण इस्लाम मत में चौदह कलाओं वाले चाँद की कल्पना है तुल. जायसी, पदमावत 338-2 : पदुमावति भै पूनिवँ कला, चौदह चाँद उए सिंघला। कबीर का यह प्रयोग इस्लामी परम्परानुसार है किन्तु आध्यात्मिक पक्ष में चौदह चंदा का तात्पर्य चौदह विद्याओं से है जिनका मनुस्मृति में इस प्रकार उल्लेख है—

अङ्गानि वेदाश्च चत्त्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रपुराणं च विद्याह्येतांश्चतुर्दशः ॥

अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्यौतिष, ऋक्, साम, यजुः अथर्व, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण—ये चौदह विद्याएँ हैं। मांहि < सं. मा धातु = अटाना या पूरित करना। 'मांहि' यहाँ क्रि. वि. नहीं है, प्रत्युत क्रिया है। घर =घट या अन्तःकरण। चांदिनौ < सं. चन्द्रिका < चाँदनी, रोशनी। तात्पर्य यह है कि कोई चौंसठ कलाओं तथा चौदह विद्याओं में पारंगत भले ही हो जाय, किन्तु यदि उसे गुरु का ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ तो उसके हृदय का अज्ञानांधकार दूर नहीं हो सकता। गुरु-ज्ञान के अभाव में पुस्तकीय विद्या को व्यर्थ बताया गया है।

सद्गुरु की महिमा अनन्त है, और उन्होंने मेरे प्रति अनन्त उपकार किये। उन्होंने मेरे अनन्त नेत्र खोल दिये अर्थात् मेरे नेत्रों में ज्ञान की अनन्त ज्योति प्रदान की जिससे मैं अनन्त प्रभु के दर्शन कर सकता हूँ। ।4।

उपगार < सं. उपकार (अघोष अल्पप्राण का सघोष अल्पप्राण में परिवर्तन)। उघारिया < सं. उद्घाटितः > प्रा. उघ्घाड़िय > हिं. उघारिया तुल. मानस, बाल. 1-5, 7—

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिब्य दृष्टि हियं होती ॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ॥

अपने सच्चे दिल को सद्गुरु के प्रति सदका (निछावर) किया तो कलियुग हमसे लड़ पड़ा कि मेरा (कलि का) ही वचन पक्का है। अर्थात् मेरा सद्गुरु की शरण में जाना कलियुग को अच्छा न लगा, यह सोचकर कि अब उसके माया-जाल का मेरे ऊपर कोई प्रभाव न पड़ेगा।5।

सदकै < अ. सदक़ा = निछावर तुल. गुरु अर्जुनदेव, गुरुग्रन्थ साहब पृ. 81.20 कथनु न जाइ अकथु सुआमी सदिकै जाइ नानकु वारिआ अथवा दादू पद 319-4,4: सदिकै करौं संसार सब जग वारनैं। दिल अपनीं का सांच = अपनी साँच दिल का। कबीर ने कहीं-कहीं विशेषण को विशेष्य के पश्चात् रखा है जो उनकी भाषा की एक विशिष्टता है। उन्होंने 'दिल' का प्रयोग भी सर्वत्र स्त्रीलिंग में किया है—कदाचित् रूह या आत्मा (दोनों स्त्री.) का समानार्थी होने के कारण। मुहकम (अ.) = हढ़, पक्का, मुस्तैद; तुल. क. ग्रं. पद 25-4: जौ गढ़पति मुहकम होई; तो लूटि सकै नहिं कोई। बांच-वचन, बात, कथन।

सद्गुरु ने रीझ कर मुझे एक ऐसा प्रसंग सुनाया कि प्रेम का बादल बरस गया जिससे सारा अंग तरबतर हो गया।6।

रात की बिछुड़ी चकई सबेरे चकवा से आ मिलती है, किन्तु जो राम से विमुख हैं वे न दिन में मिलते हैं, न रात में अर्थात् उनके दुःख का अन्त कभी न होगा।7।

'बिरहा' 'बिरहा' (तिरस्कार की भावना से) मत कहो, विरह शाहंशाह है! जिस घट में विरह नहीं उत्पन्न होता वह सदैव श्मशान तुल्य है।8।

शरीर रबाब है और सभी नसें रबाब की ताँत के समान हैं, विरह उसे नित्य बजाया करता है। किन्तु उसकी ध्वनि कोई और नहीं सुन सकता—या तो स्वामी सुनता है या विरही का चित्त।9।

रबाब (अ.)—सारंगी की तरह का एक बाजा जो भारी रागों के बजाने में काम आता है। पोपली ने 'म्युजिक आफ़ इण्डिया' में इसे भारतीय वीणा का विकसित रूप माना है और तानसेन को इसका आविष्कारक बताया है।

नोट

उनकी पहली बात तो ठीक जँचती है, किन्तु दूसरी बात कबीर द्वारा इस बाजे के उल्लेख से ग़लत सिद्ध हो जाती हैं—क्योंकि कबीर तानसेन के पूर्ववर्ती हैं। श्रुत-सागर (16वीं शताब्दी वि.) ने तत्त्वार्थाधिगम सूत्र वृत्ति 24 की टीका में (पृ. 197) लिखा हैः ''दुर्दुरो जङ्घावादिव्र विशेषः रबाब इति देश्याम्'' अर्थात् 'दर्दुर' जाँघ पर रख कर बजाया जाने वाला एक बाजा है जिसे देशी भाषा में 'रबाब' कहते हैं (जे. ओ. आई. 4-4, पृ. 268)। रबाब भारत से ईरान, अरब होते हुए स्पेन गया और यूरोप में 'रेबेक' नाम से प्रचलित हुआ और फिर 'वायलन' के रूप में परिवर्तित हुआ (देखें डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, पद्मावत 5-7-3 की व्याख्या)।

मैं परबत-परबत घूम आया और रोते-रोते नेत्रों की ज्योति गँवा दी, लेकिन वह संजीवनी बूटी नहीं मिली जिससे जीवनी प्राप्त होती है। (बूटी यहाँ परमात्मा या प्रिय का प्रतीक है)।10।

रास्ता देखते-देखते तो आँखों में झांई पड़ गई (नेत्रों की ज्योति मंद पड़ गई) और राम-राम पुकारते-पुकारते जीभ में छाले पड़ गए।11।

नेत्रों से अश्रु निर्झर बह चला है और रात-दिन रहट जैसा चल रहा है। पपीहे के समान पी-पी रट रही हूँ—हे मेरे राम, तुम कब मिलोगे? ।12।

रहट—कुएँ से पानी निकालने का एक यंत्र जिसमें अनेक बाल्टियों की माला पड़ी रहती है और बैल या ऊँट द्वारा चर्खी घुमाने पर बाल्टियों से निरन्तर पानी गिरता जाता है—गिरने का सिलसिला टूटता नहीं।

वही आँसू सज्जनों के, वही दुर्जनों के। नेत्रों से जब लोहू चुए, तब समझो कि हृदय में सच्चा प्रेम है ।13।

बिड़ांहि—सं. विट (= विदूषक, लम्पट) = प्रा. विड = हिं. 'बिड़' का बहु. व.। जे लोइन लोही चुवै—ग्रामीण बोली में 'रकत के आँसू रोना' मुहावरा है।

कबीर कहता है, सो-सो कर क्या करेगा? जाग कर मुरारि को क्यों नहीं जपता? एक दिन मृत्यु के समय तो लम्बे पैर पसार कर सोना ही होगा। तात्पर्य कि जागरूक होकर नाम-स्मरण में लगा रहना चाहिए ।14। गोड़ (देशज) < प्रा. गोड्ड = पैर।

तू तू करते तू ही तू हो गया—मुझमें मेरापन कुछ भी नहीं रह गया।

मैंने अपने आपको तेरे नाम पर निछावर कर दिया, अब तो जहाँ देखती हूँ वहाँ तू ही तू है।15।

प्रेम-योग अथवा भक्ति-योग की यह चरमावस्था है जो योगी को समाधि में मिलती है। सूरदास की गोपी में भी जब 'पूरन नेह' प्रकट होता है तो वह दही सिर पर लिए 'ले दही' की जगह 'ले गोपाल' की टेर लगाती है। जायसी का रतनसेन जब विरह की चरमावस्था में पहुँचता है तो संसार की प्रत्येक वस्तु में पद्मावती को ही देखता है। तुलसी के राम भी सीता से वियुक्त होने पर मृगियों के नेत्रों में सीता के ही नेत्र देखते हैं, हंसिनी में सीता की ही गति पाते हैं। संदेसा भी भेजते हैं तो यह कि—

तत्त्व प्रीति कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
सो मन बसत सदा तुम पाहीं।
जानु प्रीति रस एतनेहि मांहीं ॥

कबीर कहता है कि चंदन के बिरवे के पास ढाक-पलाश भी उसकी सुंगध से बेध उठे। उसने उन सब को आप सरीखा कर लिया जो उसके पास थे।16।

अन्योक्ति के आधार पर साधु जनों का प्रभाव दुष्ट जनों पर दिखलाया गया है, तुल. मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कंकोल निम्ब कुटजा अपि चन्दना स्युः।

बिड़ै—सं. विटप > प्रा. विडव, विडअ > हि. बिड़ा, जिसका अधिकरण रूप 'बिड़ै' = वृक्ष पर या वृक्ष के निकट। बेधे > सं. विध् = विद्ध हुए, सुगंधि से आपूरित हुए या बास उठे। सभा की क. ग्रं. में 'वैठ्या' अशुद्ध पाठ होने के कारण कई टीकाकारों को इसके अर्थ के सम्बन्ध में भ्रम हो गया है।

ढाक-पलाश—अन्योक्ति के आधार पर निकृष्ट लोग। 'ढाक' और 'पलाश' यद्यपि समानार्थी हैं, किन्तु उसका प्रयोग यहाँ युग्म के रूप में है, जैसे 'पेड़-रूख'। सरीखे—सं. सदृश > हिं. सरिस, सरिखा या सरीखा = समान।

नोट

मेरे साथी दो जन हैं—एक तो वैष्णव और दूसरा स्वयं राम। वह (राम) तो मुक्ति देने वाला है और वह (वैष्णव) नाम का स्मरण कराता है। (जिससे मुक्ति प्राप्त होती है)।17।

वैष्णव साधु को कबीर ने राम का प्रतिरूप माना है, तुल. क. ग्रं. साखी 4-39—

साकत बांम्हन मति मिलै, बैस्नौं मिलै चंडाल।
अंकमाल दे भेटिए, मानौं मिले गोपाल ॥

राम नाम जिन्होंने जान लिया उनका शरीर क्षीण होता है, नेत्रों में नींद नहीं आती और शरीर पर मांस नहीं चढ़ता अर्थात् राम के भक्त नाशवान शरीर के पालन-पोषण की चिंता नहीं करते।18।

जांमैं > सं. जन्म = उत्पन्न होता है।

राम के वियोगी वेदना से विकल तन होते हैं, उन्हें कोई दुखाओ (छेड़ो) मत, नहीं तो छूते ही बिचारे तड़फड़ा कर मर जाएँगे।19।

बिकल तन = जिनके शरीर में व्याकुलता भरी हो। तालाबेली > प्रा. तल्लोविल्लि (देशज) = तड़फड़ाहट, घबड़ाहट; तुल. सोमप्रभसूरि (13वीं शताब्दी वि. के एक जैन कवि) कृत 'कुमारपाल-प्रतिबोध': थोड़इ जल जिमि मच्छलिय तल्लोविल्लि करंत तथा दादू-वाणी सा. 3-48 : तालाबेली प्यास बिन, क्यों रस पीया जाइ।

लालों की कोठरी नहीं होती अर्थात् लाल कोठरी भर नहीं होते; हंसों की पाँत नहीं होती; सिंहों के झुण्ड नहीं होते, साधु भी जत्था बाँध कर नहीं चलते ।20।

तात्पर्य यह है कि हंस और शेर विरल होते हैं, इसी प्रकार साधु भी विरल ही होते हैं— जमात बाँध कर चलने वाले साधु सच्चे साधु नहीं होते, वे केवल उदम्भरि होते हैं। तुलनीय—

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।

साधवो न हि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने।

ओबरी > सं. अपवरिका > प्रा. उव्वरिय = भीतरी कक्ष या कोठरी; तुल. पद्मावत 336-5 : ओबरि जूड़ि तहाँ सोवनारा। यद्यपि कबीर के प्रयोग से यह परिलक्षित नहीं होता, किन्तु आजकलं जनपदीय बोली में 'ओबरी' प्रायः उस एकांत कोठरी को कहते हैं जहाँ पति-पत्नी मिलते हैं—इसीलिए व्यंग्य में कहा जाता है, 'कहाँ 'ओबरी' में छिपे हुए हो?' लेंहड़ा (देश.) पशुओं का झुंड। जमाति < अ. जमाअत = समूह, जत्था।

भक्त (वैष्णव) हजारिया कपड़ा है, उसमें मैल नहीं समाती (क्योंकि उसे यत्नपूर्वक धारण किया जाता है, मैल में नहीं बिछाया जाता)। इसके विपरीत शाक्त काली काम्बली है—जहाँ चाहो, बिछा लो।21।

हजारी (फा.)—उत्कृष्ट कोटि के सूत या उससे बने वस्त्र के लिए 'हजारी' या 'हजारिया' विशेषण प्रयुक्त होता था। तुल. बखनावाणी, पद 76-1: काति बहुरिया सूत हजारी; तकुला को बल काढ्यौ गुरु सतधारी। सूत की बारीकी परख कर उसे नंबर के अनुसार विभिन्न श्रेणियों में रखा जाता था। जो सूत जितना ही पतला होता था, उसका नम्बर उतना ही अधिक होता था। इस प्रकार हजारिया सूत अत्यधिक महीन होता था (जैसे ढाके की मलमल का) और उसे बड़ी हिफ़ाजत से रखा जाता था। इसी प्रकार कबीर के अनुसार वैष्णव भक्त भी विशुद्ध आचरण का होता है, शाक्त के समान वासना से पंकिल नहीं होता।

ऐसा कोई नहीं मिलता जिसका आश्रय ग्रहण किया जाए, क्योंकि मैंने सारे संसार को (संसार के प्रत्येक व्यक्ति को) अपनी-अपनी आग में जलते देखा अर्थात् अपनी-अपनी विपत्ति भोगते देखा।22।

सारक और सूरमा तो बहुत मिलते हैं, घायल कोई नहीं मिलता। घायल को अगर घायल मिल जाय तो राम भक्ति दृढ़ हो जाए। तात्पर्य यह है कि डींग मारने वाले उपदेशक तो बहुत मिलते हैं, किन्तु सच्ची अनुभूति वाला भुक्तभोगी साधक बहुत मुश्किल से मिलता है।23।

सारा < सं. सारक = प्रहार करने वाला, तुल. क. गं. साखी 14-4-1 : सारा बहुत पुकारिया, पीर पुकारै और।

सूरा < सं. शूर = वीर, बहादुर। 'सारा सूरा' युग्म के रूप में प्रचलित है—जैसे 'शूर वीर'।

मशाल हाथ में लेकर मैंने अपना घर जला दिया, अब उसका घर जलाऊँगा जो मेरे साथ चलेगा। अर्थात् आदर्श भक्त को परिग्रह (दौलत जोड़ने) की भावना का परित्याग करना पड़ता है।24।

नोट

मुराड़ा (देशज?) = मशाल, लुकाठा।

मुझमें मेरा (अपना) कुछ नहीं है, जो कुछ है सो तेरा ही है; तेरा तुझको सौंपने में मेरा क्या लगेगा? पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना ही इस साखी का मूल स्वर है।25।

जब से माता ने जन्म दिया, कभी सुख न पाया। मैं डाल-डाल फिरता हूँ तो दुःख पात-पात फिरता है।26।

जद < सं. यदा = जब। जनमिया < सं. जन्म = जनमाया, पैदा किया। कदे < सं. कदा = कभी। डारी डारी मैं फिरौं...आदि—'तू डाल-डाल तो मैं पात-पात' यह लोकोक्ति है, इसी का प्रयोग कबीर ने किंचित् अंतर से किया है। तात्पर्य यह है कि जहाँ आदमी बाद में पहुँचता है, दुःख पहले से मौजूद रहता है, इस प्रकार जीवन में दुःख अधिक व्यापक है; तुल. तिरती है समीर सागर पर अस्थिर सुख पर दुःख की छाया (निराला, बादल राग)।

मृग के नाभि-कुंडल में कस्तूरी रहती है, किन्तु वह उसे वन में ढूँढ़ता है। इसी प्रकार घट-घट में राम है, लेकिन दुनिया मृग के समान अज्ञानवश उसे नहीं देख पाती।27।

कस्तूरी (सं.)—सुगंधित द्रव्य जो ठंडे पहाड़ों पर रहने वाले विशेष प्रकार के हिरन की नाभि से निकलता है। आईने-अकबरी के अनुसार मेद नामक जंतु के सूखे नाभों को कूट कर पानी में औटाया जाता था। जो तेल ऊपर आ जाता था। वही 'मेद' या 'मीद' कहलाता था (आईन 30, पृ. 8 ब्लाशमैनकृत अनुवाद)। मेद और कस्तूरी अभिन्न है। कुंडलि < सं. कुंडल (= आर्वत, चक्कर) = नाभि-कुंडल में; नाभी के गोल आवर्त में, तुल. पद-मावत 1171: नाभी कुंडर मलै समीरू; समुद भँवर जस भँवै गँभीरू।

जैसे नेत्रों में पुतली (तिल) होती है वैसे ही सृष्टिकर्ता राम भी सभी जीवों में समाया है। मूर्ख लोग इस बात को समझते नहीं जिससे उसको बाहर तीर्थों या मूर्तियों में ढूंढ़ने जाते हैं।28।

पूतरी—सं. पुत्तलिका > प्रा. पुत्तलिया = आँख के बीच का काला भाग जो दृष्टि शक्ति का केन्द्र होता है, (तुल. मानस, अयोध्या. तोहि करउँ चख पूतरि आली)। राम भी इसी प्रकार केन्द्रीय प्राणशक्ति बनकर घट-घट में समाया हुआ है। खालिक (अ.) = सृष्टि का रचयिता, ईश्वर।

जिसके मुख और मस्तक नहीं है, जो रूपवान अथवा कुरूप कुछ भी नहीं है, जो पुष्प की गंध से भी पतला (सूक्ष्म) है—ऐसा अनुपम तत्त्व वह है।29।

माथा = मस्तक। पुहुप = सं. पुष्प।

उसे भारी कहता हूँ तो बहुत डरता हूँ (आतंकित हो जाता हूँ), हलका कहता हूँ तो झूठा कथन है (क्योंकि हलका कहने में लघुत्व की व्यंजना होती है)। मैं क्या जानूं राम को—कभी नेत्रों से तो उसे देखा नहीं (क्योंकि उसका कोई स्थूल रूप नहीं है)।30।

हरुवा = हलका। दीठ < सं. दृष्ट = देखा।

अगर देखा है तो उसे कहूँ कैसे (उसका वर्णन कैसे करूँ), कहने पर कोई प्रतीति नहीं करेगा। हरि जैसा है वैसा रहे, तू मस्त होकर केवल उसका गुणगान कर।31।

पतिआइ < सं. प्रत्यय = विश्वास करना।

न मैंने कुछ किया, न करूँगा, न कुछ करने योग्य मेरा शरीर ही है। जो कुछ किया, परमात्मा ने किया जिससे कबीर (जो क्षुद्र जुलाहा था) कबीर (महान्) हो गया। अथवा जो कुछ किया परमात्मा ने किया, लोग नाहक कहने लगे—'कबीर ने किया', 'कबीर ने किया'।32।

कबीर (अ.) = महान्। भया कबीर-कबीर—इसके दो अर्थ हो सकते हैं: (1) कबीर महान् हो गया, (2) 'कबीर कबीर' शोर हो गया अर्थात् लोग 'कबीर-कबीर' या 'कबीर ने किया', 'कबीर ने किया' ऐसा कहने लगे।

हे सखी, ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कबीर खुद खो गया। बूँद (जीवात्मा) समुद्र (परमात्मा) में समा गयी है—उसे कैसे ढूँढ़ा जा सकता है?।33।

कबीर जीवात्मा तथा परमात्मा में अंशांशी भाव मानते अवश्य हैं किन्तु भक्ति की चरमावस्था में वे आत्मा का परमात्मा में पूर्ण तादात्म्य मानते हैं। फिर उसका 'अहं' इद्म' में विलीन हो जाता है और दोनों की विभाजक रेखा समाप्त हो जाती है जैसे बूँद समुद्र में मिल जाए तो ढूँढ़ने से कुछ पता नहीं लगता कि इसमें बूँद कहाँ है? रामानुजाचार्य और तुलसी की 'भेद-भक्ति' से यह स्पष्ट ही भिन्न विचारधारा है।

नोट

ऐ स्वामी, मैं तेरे बिना कौड़ी भी नहीं पा सकता; लेकिन यदि सिर पर तुम्हारे जैसा धनी हो तो मैं अपना लाखों मोल कराऊँ।34।

बाहिरा < सं. बाह्य = बाहर, बिना।

कबीर याचना करने या मांगने जा रहा था कि सामने अयाच्य कर देने वाला मिल गया। वह उसे अपने घर ले चला जहाँ उसने भारी निधि पा ली अथवा जहाँ भारी तत्त्व का परिचय प्राप्त हुआ।35।

अचंज < अजच्च < सं. अयाच्य = अयाची बना देने वाला, पूर्ण-काम। ग्रामीण बोली में अब भी 'अजाच्च कर देना' कहते हैं—अर्थात् इतना अधिक दे देना कि फिर किसी से माँगने की आवश्यकता न रहे। ('अजच्च' का अजंच' रूप मध्यकालीन देखन-प्रणाली में द्वित्त्व के लिए अनुस्वार देने की परम्परा के परिणामस्वरूप है)। संच < सं. संचय् = संचित धनराशि, निधि, खजाना। 'पाइअसद्दमहण्णवो' में अपभ्रंश के 'संच' शब्द को सं. 'संचय्' से ही व्युत्पन्न मानकर उसका 'परिचय' अर्थ दिया है (दे. पृ. 835)। इसके अतिरिक्त 'संच' को 'सच्च' = सुख) मानकर भी अर्थ किया जा सकता है, जैसा कि अधिकांश टीकाकारों ने यहाँ किया है। किन्तु यहाँ याचना का प्रसंग है, अतः पहला, अर्थ ही सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

चित्तवृत्ति तल्लीनता में समा गई, जाप अजपा में समा गया, लेख्य अथवा साकार अलेख्य अथवा निराकार में समा गया, इसी प्रकार आत्मा या मन अपने में ही समा गया।36।

सुरति < सं. श्रुति = श्रवण वृत्ति, चित्तवृत्ति। निरति = निरत अथवा तल्लीन होने का भाव। 'सुरति जब इतनी पूर्ण हो जाती है कि...परमात्मा के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध...तदात्म रूप से हो जाता है, वह अवस्था निरति कहलाती है, (डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, योग-प्रवाह, पृ. 32)। अजपा = सं. अ + जप = माला, सुमिरनी अथवा जिह्वा आदि की सहायता से किए हुए स्थूल जप का उल्टा अर्थात् सूक्ष्म जप। नाथ योगियों तथा संतों ने प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ 'सोऽहं' 'सोऽहं' का सूक्ष्म जाप सहज रूप में होता हुआ माना है जिसको 'अजपा गायत्री' या 'अजपा जाप' कहते हैं। एक स्वस्थ व्यक्ति औसतन 21,600 साँसें चौबीस घंटे में लेता है, अतः प्रत्येक साँस के साथ यदि सुमिरण में मन लगाया जाय तो उतनी ही अजपा गायत्री का जाप होता है। तात्पर्य यह है कि संतों ने काठ या धातु के मनकों को माला जपने की अपेक्षा ऐसी सूक्ष्म माला जपने पर अधिक बल दिया है जो साँस की हो और साँस टूटने के साथ ही टूटे—इस प्रकार की तल्लीनता नामस्मरण में हो। जाप > सं. जप-स्थूल जप जो माना या जीभ हिलाकर किया जाता है। लेख < सं. लेख्य (= लिखने योग्य या देखने योग्य) = साकार, स्थूल। अलेख = उपर्युक्त 'लेख' का विलोमार्थी—सूक्ष्म, निराकार।

स्थूल से सूक्ष्म साधना की ओर अग्रसर होते हुए अंततोगत्वा सहज स्थिति की प्राप्ति का निर्देश इस साखी में भी है।

सूर्य (पिंगला) चन्द्र (इड़ा) में समा गया और दोनों को एक घर में (सुषुम्णा में) मिलाया, तब मन का अभीष्ट पूरा हो गया—ऐसा कुछ पूर्व जन्म का भाग्य जुड़ा।37।

सूर, चांद—क्रमशः पिंगला तथा इड़ा नाड़ी के बोधक हैं। इड़ा-पिंगला दोनों को सुषुम्णा से मिलाने का तात्पर्य संतों की पारिभाषिक शब्दावली में मन की द्वन्द्वातीत अवस्था प्राप्त करना है—यही सन्तों की मनःसाधना का चरम लक्ष्य है; इसीलिए कबीर कहते हैं मन का चेता या सोचा हुआ पूरा हो गया। पूरबला लेख = पूर्व जन्म का भाग्य देख; संचित कर्मों का फल।

शरीर के भीतर की अनुभूतियों से ही मन मान गया (मन सन्तुष्ट हो गया), अब बाहर कहीं नहीं जाता, जलती हुई अग्नि बुझ गई और ज्वाला शीतल जल में परिवर्तित हो गई।38।

मन के आत्माभिमुखी होने पर समरसता आ गई जिससे जीवन की सारी विषमताएँ दूर हो गईं—जो वस्तुएँ दाहक थीं, वे शीतल सुखद हो गई। तुल. पद 18-3 : 'तन महिं होती कोटि उपाधि, उलटि भई सुख सहज समाधि' को व्याख्या। बलंती < सं. ज्वलन्ती = जलती हुई। लाई < सं. अलात = अग्नि।

कबीर कहता है कि शरीर में बिना रस्सी (ताँत) के ही तन्त्री का शब्द (अनाहत नाद) बज रहा है। बाहर भीतर वही शब्द व्याप्त हो रहा है, इससे सारी भ्रांति दूर हो गयी।39।

गुन < सं. गुण = रस्सी, तार। तांति < सं. तन्त्री, वीणा। भरांति = सं. भांति।

नोट

गंगा-यमुना (इड़ा-पिंगला) के बीच में (सुषुम्णा पर) सहज शून्य का घाट है, वहाँ कबीर ने मठ रचा है जिसमें प्रवेश पाने के लिए मुनिजन टक-टकी लगाए रास्ता देखा करते हैं अर्थात् यह स्थिति मुनियों को भी दुर्लभ है।40। सहज दशा का वर्णन इस साखी में भी है।

कबीर कहता है, समुद्र की सीप 'प्यास-प्यास' रटती है किन्तु स्वाति की एक बूँद की आशा में विस्तीर्ण समुद्र को तिनका बराबर समझती है। (एकांत निष्ठां पर बल दिया गया है)।41।

बरि < फा. अव्यय 'बर' (= ऊपर, सामने; मुकाबले या बराबरी में तुल. बर आना मुकाबले में सामने ठहराना) = बराबर

जायसी ने 'बर' शब्द का इसी अर्थ में अनेक बार प्रयोग किया है, दे. पद्मावत—

142-5 : तेइँ यह समुद्र बुंद बर देखा।

157-1 : कोई चमकि बौजु बर जाहीं।

इसी प्रकार तुल. 168-4 (जुग बर), 251-8 तथा 356-2 (तिनु-बर) तथा दादू-वाणी सा. 13-144 (कौड़ी बर)।

दोजख (नर्क) तो मैंने अंगीकार कर लिया, उसका डर मुझे बिलकुल नहीं है, क्योंकि ऐ प्यारे! तेरे बिना मुझे बिहिश्त (स्वर्ग) भी नहीं चाहिए।42।

दोजग < फा. दोजख = नरक (मुसलमानी धर्म के अनुसार)। अंगिया = अंगीकार किया। भिस्ति < फा. बिहिश्त = स्वर्ग (मुसल.) बाझ—सं. वर्ज्ज > प्रा. बज्ज > हि. बाज, बाझ = बिना (दे. पद 40-5)। मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने (सगुणियों तथा निर्गुणियों ने समान रूप से) प्रेम भक्ति के सम्मुख मुक्ति को भी ठुकराया है, तुल. तुलसी : अरथ न धरण न काम रुचि गति न चाहौं निरबान।

मैंने सभी रसायन (कीमियागीरी) करके देख लिया, हरि रस के समान कोई रसायन नहीं, जो यदि रंचमात्र भी शरीर में प्रविष्ट हो जाए तो सर्वाङ्ग सोने का हो जाय।43।

प्राचीन काल में विशिष्ट रासायनिक द्रव्यों से निकृष्ट धातुओं को सोना बनाने की जनश्रुतियाँ प्रचलित थीं—विशेषतया बौद्ध तथा नाथ सिद्धों के सम्बन्ध में कीमियागीरी की अनेक दन्त कथाएँ प्रचलित थीं। कबीर का तात्पर्य है कि सबसे बड़ी रसायन विद्या या कीमियागीरी हरिभक्ति है।

सात गाँठों वाली जीर्ण कौपीन (लँगीती) लगा कर भी अथवा कौपीन में सात-सात गाठें लगाकर भी साधु किसी से भय नहीं मानता। यह राम नाम के नशे में उन्मत्त रहता है और अपने सामने इंद्र को भी रंक समझता है।44।

कोपीन < सं. कौपीन—साधु-संन्यासियों के पहनने की लँगोटी या चीर। संक < शंका = डर, भय। अमलि < अ. अमल = नशे में। माता < सं. मत्त = मस्त, उन्मत्त।

हरि रस या भक्ति मदिरा को पान किया हुआ तब समझना चाहिए जब कि उसकी खुमार कभी न उतरे। पीने वाला मैमंत होकर घूमता फिरे और उसे शरीर की भी सार-सँभाल या सुध-बुध न रह जाए—ऐसा उस नशे में धुत्त रहे।45।

खुमारि < अ. खुमार = नशा अथवा नशा उतरने के समय की थकावट या शिथिलता। मैंमंत < सं मदमत्त = नशे में धुत्त (ग्रामीण बोली में 'मैंमत' शब्द खूब प्रचलित है)। सारि < सं. सारय् = देख-रेख, सँभल। तुलसी ने 'सार सँभाल' का युग्म रूप में प्रयोग किया है, तुल. मानस, अयोध्या. 79-6 सब के सार सँभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाई।

अब तो ऐसी आ पड़ी कि जो मनोवांछित था, कर लिया। जब हाथ में सिंदूरपात्र ले लिया (सती होने को उद्यत हुई) तो मरने से क्या डरना? ।46।

भावतु = अभीष्ट। हाथि = हाथ में। सिंघौरा = सिन्दूर का डिब्बा जिसे सती सहगमन करते समय हाथ में ले लेती थी, क्योंकि वह उसके सुहाग का चिन्ह होता था। कबीर ने तत्कालीन समाज से दो आदर्श-सती और सूरमा के—भक्तों के लिए चुने हैं। यहाँ उनका तात्पर्य है कि जब भक्ति मार्ग अपना लिया तब उसमें निष्ठा रखते हुए जो कठिनाइयाँ आवें उनका सामना करना चाहिए।

कबीर कहता है कि यह घर प्रेम का है, खाला का घर नहीं जिसमें जब जी चाहा, चले आए। अपने हाथ से अपना सिर उतार ले तभी कोई इस घर में प्रवेश करे।

नोट

खाला < अं. खालः = चकला चलाने वाली मौसी।

प्रेम न बाग़ में पैदा होता है और न हाट में बिकता है। राजा या प्रजा किसको रुचे अपना सिर दे और इसे ले जाए।48।

रात्रि के (में) जितने सितारे होते हैं उतने मेरे बैरी हो जाएं, धड़ सूली पर और सिर कंगूरे पर टाँग दिया जाए तब भी मैं तुझे भुला नहीं सकता।49।

सूली < सं. शूल = लोहे आदि का नुकीला उपकरण जिस पर बिठा कर या लटकाकर प्राचीनकाल में अपराधियों को प्राणदण्ड दिया जाता था। कंगुरै < फा. कुंगरा किले का कौसीस या बुर्ज। बिसरौं < सं. वि+स्मृ = विस्मरण करूँ, भूलूँ।

काल सिरहाने खड़ा है। प्यारे मिल, अब तू जाग! राम के स्नेह बिना तू क्यों निश्चिन्त सो रहा है?150।

बाहिरा < सं. बाह्य = बिना। तुल. साखी 34; सांई मैं तुझ बाहिरा साखी 57 : राखनहारै बाहिरा चिड़िअैं खाया खेत।

कबीर कहता है, दस दिन अपनी नौबत बजा लो। यह पुर-पट्टन और यह गली फिर आकर नहीं देखोगे ।55।

सांसारिक विभूतियों की भंगुरता का जीवंत चित्रण है। नौबत (फा.) = वैभव अथवा मंगल सूचक वाद्य; तुल. पद 100-1 चारि दिन अपनी नौबत चले बजाइ। पुर पट्टन = शहर-नगर, तुल. पद वही पंक्ति 5ः वहि सुत वहि बित वहि पुर पटट्न बहुरि न देखै आइ।

कबीर कहता है कि धूल समेट कर यह शरीर रूपी पुड़िया बाँधी गई है। चार दिन का खिलवाड़ है—अन्त में मिट्टी की मिट्टी (अर्थात् जैसे मिट्टी थी वैसे ही फिर मिट्टी हो जायगी।52।

पुड़िया < सं. पुटिका = कागज का संपुट। पेखनां < सं. प्रेक्षण = दृश्य, तमाशा, तुल. मानस, अयोध्या. जग पेखन तुम देखन हारे।

मनुष्य जन्म दुर्लभ है, बारम्बार नहीं होता—पका फल जो गिर पड़ता है तो फिर डाल में नहीं लगता है (अतः जो वस्तु इतनी क्षणिक और दुर्लभ है उसका सदुपयोग करना चाहिए—यह मुख्य मंतव्य है)।53।

दुलंभ < सं. दुर्लभ।

जिस रस्सी में संसार बँधा है उसमें, ऐ कबीर, तुम मत बँधो, अन्यथा तुम्हारा सोने जैसा शरीर आटे में नमक नमक की तरह बिला जाएगा।80।

जेवरी < सं. जीवा + डी = रस्सी (जनपदीय बोली में अत्यधिक प्रयुक्त)।

जैहहि = जाएगा, विनष्ट हो जाएगा, बिला जाएगा। सवां = समान।

कबीर ने मृदंग काँधे पर चढ़ाकर (डुग्गी पीटकर) सारी दुनिया में घूम कर ढूँढ़ लिया और ठोंक बजाकर देख लिया कि कोई किसी का नहीं है।55।

हंढ़िया < सं. हिण्ड् = भ्रमण कर लिया; ढूँढ़ लिया (प्रमाणिक कोश, पृ. 1393), तुल. सरहपादः एकली सबरी ए बन हिण्डइ कर्ण कुंडल बज्रधारी (राहुल सांकृत्यायन, दोहाकोश, भूमिका, पृ. 25 पर उद्धृत जो कदाचित् शबरपाद का है)। मादलु < सं. मर्दल = मृदंग (दे. पद 6-2 में 'मंदरिया' की टिप्पणी)। मादलु कंध चढ़ाइ—तात्पर्य यह है कि डुग्गी पीट-पीट कर पूछ लिया कि 'है कोई किसी का?' डुग्गी पीटने में ढोल या मृदंग काँधे पर या गले में बाँध लिया जाता है। ठोंकि बजाइ (मुहा.—भलीभाँति निरख परख कर)।

कबीर कहता है कि गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि काल तुम्हारे केश पकड़े हुए है—वह तुम्हारे घर में या परदेश में न जाने कहाँ मार दे।56।

रखवाले के बिना (साधना अथवा भक्ति बिना) चिड़ियों ने खेत खा लिया (विषय विकारों से शरीर जर्जर हो गया); अब भी चेत सके तो चेत जिससे आधा-चौथाई तो बच जाय। विषयासक्त सांसारिक व्यक्तियों के लिए यह चेतावनी है)।57।

बाहिरा <सं. बाह्य = बिना, विहीन। चिड़िअैं = चिड़ियों ने (अवधी कर्ता कारक का रूप, यथा 'राजैं कहा' = राजा ने कहा)। आधा परधा = सं. अर्द्ध प्रार्द्ध = आधा-चौथाई।

नोट

कबीर कहता हैः लाख (लाक्षा) का भवन जो हीरों और लालों से जड़ा हुआ है, चार दिनों का खेल है—वह कल को ही अर्थात् थोड़े ही समय में विनष्ट हो जाएगा (क्योंकि लाक्षा तनिक भी आँच से पिघल जाएगी। इसी प्रकार मानव शरीर, जिसका अनेक प्रकाश से सजाव शृंगार किया जाता है, थोड़े ही समय में विनष्ट हो जाएगा)।58।

हीरै लालि = हीरों और लालों से। पेखनां < सं. प्रेक्षण = तमाशा, खेल; तुल. मानसः जगु पेखन तुम्ह देखनहारे। काल्हि < सं. कल्य = कल ('दिवस चारि' अथवा 'काल्हि' इनका यहाँ केवल लाक्षणिक अर्थ है, अभिधात्मक अर्थ लेने पर तो पहले वार और फिर केवल एक दिन के उल्लेख की संगति नहीं बैठेगी)।

जैसे जुलाहा कपड़े का थान बुनता है तो उसका दूसरा छोर निकट आता जाता है, वही हिसाब मृत्यु का भी है—अगर तू बचाव के लिए भाग सके तो भाग।56।

कपड़ा बुनते समय जितने सूत बाने के भरे जाते हैं उतना ही उसका अन्तिम छोर नजदीक आता जाता है, उसी प्रकार जितनी साँसें भरी जाती हैं, जीवन की उतनी ही घड़ियां कम होती हैं और अन्तिम समय निकट आता जाता है। इसलिए कबीर की चेतावनी यह है कि प्राणी को कुछ ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे मृत्यु का भय दूर हो और अमरता की भावना आये।

कोरी = हिन्दू जुलाहा। डॉ. ब्रिग्स ने 'दी चमार्स' नामक अपनी पुस्तक में जटिया, (जटुवा), जैसवार, चामर, दोहर, कुरील, पुरबिया, अहरवार, ढुसिया, चमकटिया आदि के साथ कोरी चमारों की उपजाति का विवरण दिया है। उनके अनुसार गोरखपुर और लखनऊ डिवीजन में विशेष रूप से कोरी चमारों की आबादी है। तत्कालीन जनगणना के अनुसार उन्होंने अकेले बस्ती जिले में कोरियों की संख्या 50,000 दी है। उनके मुख्य व्यवसायों में जूता बनाने, खेती करने और कपड़ा बुनने का उल्लेख उन्होंने किया है। पंजाब में कोरी को चमार जुलाहा भी कहते हैं और मिर्जापुर में उसे 'मार कोरी' कहा जाता है—दे. पृ. 15। रेजा (फा.) = कपड़े का थान। नेरा < प्रां निअड़ < सं. निकट = नजदीक। मीच < प्रा. मिच्चु < सं. मृत्यु = मौत।

मृत्यु के उपरान्त शरीर की दशा का चित्रण रूपक के आधार पर करते हुए कबीर कहते हैं कि अब बाजा नहीं बजता, क्योंकि इसके सब तार टूट गये हैं (अर्थात् शरीर निष्प्राण होने के कारण गतिहीन हो जाता है)। बाजा बिचारा क्या करे जब बजाने वाले ही चले गये (अर्थात् जब प्राण ही चला गया जो गति प्रदान करता था तो शरीर बिचारा क्या करे?) ।60।

जंत्र < सं. यन्त्र = बाजा।

चलती हुई चक्की देखकर कबीर यह सोचकर रो पड़ा कि दो पाटों के बीच में आकर कोई समूचा नहीं निकला। व्यंजना यह कि जिस प्रकार चक्की के दो जाँतों में पड़ कर अन्न पिस जाता है या विनष्ट हो जाता है, उसी प्रकार धरती और आसमान के बीच आकर, जो चक्की के दो विशाल पाटों के समान हैं, सब पिस जाते हैं या विनष्ट हो जाते हैं।61।

पाटन (सं.) = पत्थर, धातु या लकड़ी का सपाट टुकड़ा; चक्की का पाटा। सालिम < अ. सालम = समूचा; दृढ़।

अपनी-अपनी बारी पर सभी प्यारे मित्र चले गये (स्वर्ग सिधार गये)। प्राण, अब तेरी बारी भी नित्य प्रति निकट आती जा रही है। तात्पर्य यह कि सभी मृत्यु की छाया में हैं—यह सोचकर सत्कार्य में लग जाना चाहिए।62।

नेरी = निकट। नीत = नित्य।

पानी का बुलबुला जैसा क्षणिक होता है वैसी ही मनुष्य की भी नश्वर जाति है। देखते-देखते वे विलीन हो जायँगे—जैसे प्रभात के समय सारे छिप पाते हैं।63।

परभाति = प्रभात वेला में।

(किसी की मृत्यु के अनन्तर) रोने वाले भी मर गये, जिन्होंने दूसरों के शव को जलाया वे भी मर गये, जो हाय-हाय करके दूसरों का प्रबोधन करते या सहानुभूति प्रकट करते थे वे भी मर गये, तो अब किससे पुकार लगाऊँ (ऐसा कौन बचा?)।

व्यंजना यह है कि किसी के मरने पर जो रोते हैं या उसे जलाते हैं या ढांढ़स बँधाते हैं उनके बारे में थोड़ी देर के लिए सोचा जा सकता है कि वे अपेक्षाकृत अधिक स्थायी हैं, किन्तु बारी-बारी उनके साथ भी वही सब घटित होता है। इस प्रकार ऐसा कोई नहीं बचता जिससे सहायता के लिए गुहार लगाई जा सके।64।

नोट

जिन्होंने हमें पैदा किया, वे मर गये, हम भी चलने को उद्यत हैं। हमारे पीछे जो बच्चे हैं उन्होंने भी भार बाँध लिया (अर्थात् जाने की तैयारी कर ली है)।65।

जिनि = जिनने (कर्ता) या जिनके द्वारा (कारण)। जाए < सं. जा = पैदा किया (कर्तृवाच्य)। चालनहार = चलने वाले, चलने की तैयारी किये हुए। पूंगरा < सं. पौगंड (= पाँच से दस वर्ष की अवस्था का बालक) बालक, बच्चा। बाँधा भार-भार बाँधना (मुहा.) सामान समेट कर यात्रा के लिए तैयार हो जाना। यह यात्रा अन्तिम है, यह तो प्रसंग से सुस्पष्ट ही है।

रहट की माला टूट गयी और केवड़ा (केतक) सूखने लगे। जो पानी की मशीन जानता था वह सींचने वाला अब चला गया। अर्थात् प्राण का धागा टूट जाने पर शरीर के सब अंग जड़ हो जाते हैं, क्योंकि शक्ति का संचार करने वाली आत्मा ही जब उनका साथ छोड़ देती है तो उनमें जीवन कहाँ से आवे?।66।

कबीर ने यहाँ केवल अप्रस्तुत विधान द्वारा प्रस्तुत की व्यंजना की है अतः अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है। साथ ही सारे प्रतीक कृषक जीवन के बहुपरिचित उपकरणों से लिये गये हैं, यह उसकी अतिरिक्त विशेषता है।

केवड़ा—सं. केत < प्रा. केव + 'ड़ा' प्रत्यय = केतक जिसके पुष्प अपनी सुगन्धि के लिए प्रसिद्ध हैं। अरहट—सं. अरघट्ट < प्रा. अरहट्ट = सिंचाई का एक यंत्र जिसमें बाल्टियों की माला होती है। माल (सं.) = माला, शृंखला, यहाँ बाल्टियों की माला से तात्पर्य है; आध्यात्मिक पक्ष में साँस या प्राण का धागा। कल = यंत्र (शरीर का प्रतीक)। सींचनहार = सींचने वाला अर्थात् आत्मा।

माली (काल) को आते हुए देखकर कलियाँ (जीवात्माएँ) पुकार लगाने लगीं कि फूली-फूली तो चुन ली गई (यौवन प्राप्त लोग तो चल बसे), कल हमारी भी बारी आने वाली है (बस खिलने भर की देर है!)। संसार की नश्वरता का इसमें हृदयस्पर्शी चित्रण होने के कारण कबीर की अत्यधिक प्रसिद्ध साखियों में से यह एक है।67।

कबीर कहता है, यह संसार कुछ नहीं है अर्थात् इसका कुछ निश्चयात्मक रूप नहीं—क्षण में ही खारा लगता है, क्षण में ही मीठा। कल महलों में जो आलीजाह (महामन्य) था वही आज श्मशान में दीख पड़ा ।68।

खिन < सं. क्षण। खिन खारा खिन मीठ (मुहा.) = कभी बुरा, कभी अच्छा। अलहजा < अ. आलीजाह =बहुत बड़े रुत्बे वाला, महामान्य। मैंड़ियां = महलों में। मसांनां = श्मशान में। दीठ < सं. इष्ट = दीख पड़ा।

कबीर कहता है, जब ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया तब मन शीतल हो गया और जिस अग्नि (त्रिताप) में संसार जलता है वह मेरे लिए जल के समान शीतल हो गई।69।

गिआंन < सं. ज्ञान। बैसंदर < सं. वैश्वानर = अग्नि। तुल. पदमा-वत 364-7 : छप्पन कोटि बसंदर बरा। उदिक < सं. उदक = जल।

राम रूपी बहुमूल्य मणि पा कर ऐ कबीर! गाँठ मत खोलो अर्थात् गाँठ में बाँध कर ही रखो, क्योंकि न वह नगर है जिसके नागरिक इसे खरीदें, न इसके सच्चे पारखी हैं न इसके सच्चे ग्राहक हैं, न इसका मूल्य ही उनके पास है।70।

पदारथु < सं. पदार्थ = बहुमूल्य मणि, तुल. पदमावत 36-4: रतन पदारथ मानक मोती, 213-4: पदिक पदारथ कर हुँति खोवा। इसकी बहुमूल्यता तथा अलभ्यता के ही कारण जायसी ने पद्मावती को 'पदारथ' कहा है, तुल. 633-9 : रतन जात है आगे लिए पदारथ हाथ। पट्टन (सं.) = नगर (तुलनीय सं. पत्तन = नगर)। पारिखू = पारखी < सं. परीक्षिन् (?)।

मरते-मरते संसार मर गया, फिर भी सचमुच का मरना किसी ने न जाना। कबीरदास ऐसा मरा जिससे कि बार-बार न मरना पड़े।

यहाँ कबीर ने आध्यात्मिक तथा सांसारिक मृत्यु का अंतर बताया है। आध्यात्मिक मरण का तात्पर्य है जीवन्मृत होना या मन को सहजावस्था या उन्मनावस्था में पहुँचाना। ऐसी मौत मरना जो सीख ले वह जरामरण के भाव से मुक्त हो जाता है।71।

नोट

कबीर कहता है, जब मन निर्मल हो गया जैसा कि गंगाजल होता है, तब भगवान 'कबीर' 'कबीर' कहते हुए मेरे पीछे घूमने लगा। अथार्त् हृदय शुद्ध होने पर केवल परमात्मा की प्राप्ति ही नहीं होती प्रत्युत भक्त की सारी चिंता परमात्मा अपने ऊपर ओढ़ लेता है—उसी अद्वैतावस्था का वर्णन यहाँ कबीर ने अपने विशिष्ट फक्कड़ाना लहजे में किया है।72।

जीवन से मरना अच्छा है, अगर कोई मरना जान ले। भौतिक मृत्यु के पूर्व ही जो आध्यात्मिक मृत्यु मर जाए अर्थात् जीवन्मृत हो जाय तो वह कलियुग में अजर-अमर हो जाता है।

अजरावर < सं. अजरामर = जरामरण से मुक्त।

कबीर कहता है कि हल्दी पीली होती है और चूना उज्ज्वल भाव (उज्ज्वल रंग का) होता है, किन्तु राम के स्नेह के लाल रंग में ऐसे मिल गये कि दोनों रंग विलीन हो गये।74।

हल्दी और चूना दो विरोधी मतों के प्रतीक हैं, किन्तु दोनों को मिला देने पर लाल रंग पैदा होता है जिसमें दोनों वर्तमान रहते हुए भी एक ही रंग के दिखलाई पड़ते हैं। साहित्य में लाल रंग प्रेम का माना गया है, अतः इस साखी का 'सनेही' शब्द विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। व्यंजना यह है कि राम भक्त न इस पक्ष का होता है और न उस पक्ष का, बल्कि मध्यमार्गी होता है जिसमें दोनों पक्ष अपनी विभाजक रेखाएँ मिटा कर समाविष्ट रहते हैं। अन्य व्यंजना यह है कि जिस प्रकार लाल रंग ही पीले और सफेद को समाहित रखता है, उसी प्रकार प्रेम ही दो विरोधी मतों को मिला सकता है।

भाइ < सं. भाव = स्वभाव, रंग।

हिन्दू राम-राम कहकर मर गया (विनष्ट हो गया) और मुसलमान 'खुदा' 'खुदा' कहकर। कबीर कहता है, जिंदादिल वह है जो दोनों के पास न फटके। कबीर का तात्पर्य यहाँ दुराग्रही हिन्दुओं तथा मुसलमानों से है—ऐसे हिन्दुओं से जो केवल राम को परमात्मा मानकर खुदा का विरोध करते हैं या ऐसे मुसलमानों से जो केवल खुदा को मानकर राम का विरोध करते हैं।75।

कबीर कहता है, हद वाले लोगों से (सङ्कीर्ण या सीमित विचार के लोगों से) तनिक भी स्नेहपूर्ण बात मुख से मत बोलो, किन्तु जो निस्सीम में अनुरक्त हों उनके सम्मुख निष्कपट रूप से अपना हृदय खोल कर रख दो।76।

हद के जीव = सीमित सा सङ्कीर्ण विचारों के लोग। मुख्यतया मूर्ति पूजकों अथवा वाह्याचारप्रधान विचारधारा के लोगों से तात्पर्य है। हित = स्नेह। मुखां = मुख से। न बोलि = मत बोलो। राचे < सं. रंजयू = अनुरक्त होना, रङ्ग में रँगना, लीन होना। बेहद = निस्सीमता, निराकार ब्रह्म, व्यापक विचार। अन्तर = हृदय।

खिचड़ी बढ़िया खाना है—अगर उसमें थोड़ा सा नमक डाल दें! गोश्त और रोटी के लिए कौन दूसरे का गला कटावे?।77।

खान = खाना, भोजन। खीचड़ी < सं. कृसर = दाल-चावल मिला कर पकाया हुआ भोजन जो साधारण कोटि का व्यंजन माना जाता है। टुक = थोड़ा। बाहै = डाले, मिलावे। हेरा = हिं. अहेरा < प्रा. आहेड < सं. आखेट = शिकार, गोश्त, मांस। तात्पर्य यह है कि सादे से सादे भोजन से क्षुधा शांत करनी चाहिए, क्योंकि स्वाद तथा वासना की तुष्टि में हिंसा तथा अनधिकार चेष्टा अपरिहार्य हो जाती हैं।

शेख सन्तोष के बिना हज करने काबे क्यों जाता है? जिसका दिल दुरुस्त नहीं, उसको खुदा कहाँ मिलेगा?।78।

सेख < अ. शेख = मुसलमानों के चार वर्गों में से सर्वश्रेष्ठ वर्ग (शेष तीनों सैयद, मुगल, पठान हैं)। जिस प्रकार हिन्दू वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं, मुसलमानों में धर्माचार्य को भी शेख कहा जाता है। यहाँ उसे कर्ता तथा सम्बोधन दोनों रूपों में मानकर अर्थ किया जा सकता है। सबूरी < अ. सब्र = संतोष, धैर्य। बाहिरा < सं. बाह्य = बिना; तुल. साखी 34 : सांई मैं तुझ बाहिरा = तथा सा. 57 : राखनहारै बाहिरा, चिड़िअैं खाया खेत। हज (अ) = मक्के की तीर्थयात्रा। काबै < अ. काबा = काबे को; काबा मक्के का पवित्र स्थान है जिसकी परिक्रमा के लिए मुसलमान लोग हज करने जाते हैं। दिल—कबीर ने 'दिल का प्रयोग सर्वत्र स्त्रीलिंग रूप में किया है, तुल. साखी 5: दिल अपनी का सांच। साबित (अ.) = पूरा, अखण्डित, दृढ़, दुरुस्त।

नोट

काशी के निकट ही घर बनावे और गंगा का निर्मल जल पिया करे, लेकिन हरि के नामस्मरण बिना मुक्ति नहीं मिलेगी—ऐसा कबीरदास कहता है। तात्पर्य यह है कि केवल काशी-वास से मुक्ति नहीं मिलती, जैसा लोगों का विश्वास है। मुक्ति मिलती है परमात्मा के नाम में श्रद्धा रखने से।79।

काठै सं. कण्ठ = निकट, पास में; तुल. साखी 82: केरा काठैं बेरि।

कबीर कहता है कि ब्राह्मण सहज भाव से तष्टा और टोकनी लिए फिरा करता है—इस प्रकार पीतल ही के चाव में व राम नाम का महत्त्व जान नहीं पाता।80।

तस्टा < फा. तश्त (लघुवाचक 'तश्तरी' = ताँबे या पीतल की छोटी तश्तरी जिसमें ठाकुर जी की मूर्ति को स्नान कराते हैं)। टोकनीं—देशज 'टोक्कण' (= दारू नापने का बर्तन—दे. पाइअ. पृ. 396) = पीतल या ताँबे का एक गोल छोटा पात्र जिसमें ठाकुर जी की मूर्ति रखते हैं। टोकनी से मूर्ति निकाल कर तष्टा में उसे स्नान कराते हैं। लीयां फिरै सुभाइ—'सुभाइ' (= स्वभावतः) लिए फिरता है अर्थात् वह अपनी आदत से लाचार है जिससे तष्टा-टोकनी उसके अभिन्न अंग बन गये हैं—उनके बिना उसे चैन नहीं मिलता! पीतल < सं. पित्तल = तांबे और जस्ते के मिश्रण से बनी धातुः यहाँ तात्पर्य है पीतल की तष्टा-टोकनी से। चाइ = चाव, अभिलाषा, उमंग (तष्टा-टोकनी को ही माँजने-धोने में ब्राह्मण की रुचि अधिक रहती है)।

अपनी सराहना नहीं करनी चाहिए और दूसरों को दरिद्र या हीन नहीं कहना चाहिए—क्या पता कि तुम्हारा अस्थिपंजर किस पेड़ के नीचे कूड़ा बने।81।

रंक (सं.) = दरिद्र। करंक (सं.) = हड्डी, अस्थिपंजर। मरने के बाद कुछ लोग दफना दिये जाते हैं। हिन्दुओं में भी बहुतों का दाहकर्म नहीं हो पाता और मध्ययुग में तो लोगों का जीवन और भी अनिश्चित रहता था। कोई युद्धस्थल में मरता तो कोई सार्थ के साथ यात्रा करते समय जंगलों में। हड्डी जल कर राख भी हो जाती है तो क्या पता कि कहाँ बहकर लगे। अतः यहाँ 'कूड़ा होइ करंक' का लाक्षणिक अर्थ ही लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि भौतिक अथवा शारीरिक सुखोपभोग की डींग नहीं मारनी चाहिए और किसी को गरीब समझकर उसका उपहास नहीं करना चाहिए।

मैं कुसंग की मारी मर रही हूँ—जैसे केले के पास बेर हो जाय। वह हवा के झोंके में आनन्द से हिलता है और वह चीरती है। अतः बेर जैसे कँटीले शाक्त के संग से बचो या शाक्त का संग बचाओ।82।

केरा < सं. कदली = केला। काठैं < सं. कण्ठ = निकट, पास, तुल. साखी 89: कासी काठैं घर करै। हालै = हीलता है। साकत < सं. शाक्त। निबेरि < सं. निवारय् = बचाओ; निवारण करो।

मूर्ख का साथ नहीं करना चाहिए, क्योंकि लोहा कभी जल पर तैर नहीं सकता (वह डूब जाता है—इसी प्रकार मूर्ख भी ले डूबता है)। केला, सीपी और सर्प के मुख में पड़कर एक ही स्वाति नक्षत्र की बूँद तीन प्रकार की हो जाती है (संगति के ही प्रभाव से)।83।

तिराइ < सं. तृ = तैरता है। भुवंग < सं. भुजंग = सर्प।

भाइ < सं. भाव = स्थिति, रंग, प्रकार, तुल. पद 1-4 : एक भाइ दीसैं सब नारी, तथा साखी 74: चूना ऊजल भाइ। एक बूंद तिहूं भाइ—प्रसिद्धि है कि स्वाति नक्षत्र की वर्षा की बूँद केले में पड़कर कपूर, सीपी में पड़कर मोती और सर्प के मुख में पड़कर विष हो जाती है। इसी प्रकार एक ही व्यक्ति पृथक्-पृथक् संगति के प्रभाव से पृथक्-पृथक् रूप में ढल सकता है। स्वाति बूंद के सम्बन्ध में और भी अनेक प्रसिद्धियाँ हैं—जैसे बाँस में पड़कर बंसलोचन बन जाना आदि।

स्वामी (परमात्मा) के साथ सच्चाई का आचरण करो और दूसरों से शुद्ध भाव या सिधाई का—फिर चाहे बाल लम्बे कर लो (जटा बढ़ा लो) चाहे उसे सफाचट मुड़ा लो अथवा चाहे उसे मुड़ा कर विचारण करो। तात्पर्य यह है कि बाहरी वेशभूषा चाहे जैसी हो, उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, यदि मन शुद्ध हो।84।

सेती = से। सुधभाइ—शुद्ध + भाव = सिधाई या सूधापन।

भावै = चाहे। घुरड़ि < सं. घूर्ण = घूमो, चक्कर लगाओ।

इस अर्थ के अनुसार 'मुड़ाइ' को पूर्वकालिक क्रिया का रूप मानना पड़ेगा। (मुड़ाइ = मुड़ाकर)। 'धुरड़ि' पूर्वकालिक का अर्थ 'घररकर या घिसकर' (अर्थात् सफाचट) भी किया जा सकता है, किन्तु यह अर्थ लेने पर 'मुड़ाइ' को आज्ञासूचक क्रिया रूप मानना पड़ेगा (मुड़ाइ = मुड़ाओ, मुंडन कराओ)।

नोट

साधु हो गया और चार मालाएँ गले में डाल लीं तो उससे क्या हुआ? बाहर-बाहर तो ईंगुर रँग कर लाल चमकदार कर दिया और अंदर भंगार भरा है अर्थात् बाहरी वेशभूषा तो आकर्षक बना ली, किन्तु अन्दर मन में वासनाओं का कचड़ा भरा है।85।

मेली = डाल ली, पहन ली। चारि = चार पर्त या चार अदद (माला)। ढोला = हिं. डौरना (डौल देना, रूप देना, रंगना) = रंगा या पोता हुआ। हिंगला < सं. हिंगुल = ईंगुर, सिंगरफ (सिंदूर की तरह का लाल चूर्ण)। भंगार < सं. भ्रष्ट + अंगार < जले हुए कोयले की राख, कचड़ा। 'आइने अकबरी' में सुनारी के विशिष्ट शब्द के रूप में इसकी व्याख्या दी हुई है जिसके अनुसार चार सेर ताँबा और डेढ़ सेर सीसा मिलाकर गला देने से 'रुई' बनती थी जिसे यहाँ के लोग (भारतीय) अपनी भाषा में 'भंगार' कहते थे। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में यह विशिष्ट अर्थ उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। बोलचाल में भी यह शब्द इस अर्थ में कहीं प्रचलित नहीं है। सामान्यतया यह राख या कूड़ा-करकट का ही समानार्थी है।

केशों ने क्या बिगाड़ा है जो उन्हें सौ बार मूड़ता है? मन को ही क्यों नहीं मूड़ते या शुद्ध करते, जिसमें विषय-विकार भरे हैं? ।86।

माला हाथ में पकड़कर उँगली से उसकी गुरिया गिना करता है, किन्तु मन चारों ओर दौड़ता रहता है। जिसको फेरने से हरि मिलता है वह मन काठ की स्थिति में (काष्ठवत् जड़) हो गया।87।

माला फेरने से कुछ नहीं होता—अगर मन के साथ (मन में) कतरनी है। जब तक हरि का साक्षात्कार नहीं होता तभी तक हाथ में यह सब लता पत्तर रहता है।88।

काती < प्रा. कत्तिआ < सं. कर्त्रिका = कतरनी, कैंची। पतड़ा—सं. पत्र < प्रा. पत्त + 'डा' प्रत्यय = खर-पतवार, व्यर्थ का जंजाल, लता पत्तर।

हम भी मूर्ति पूजते और जंगल की नीलगाय होते (नाना तीर्थों में भटकते फिरते), लेकिन गनीमत हुई कि सद्गुरु की कृपा हुई और हमने सिर का बोझा दूर फेंक दिया।89।

पाहन < सं. पाषाण = पत्थर अर्थात् मूर्ति। रन < सं.

अरण्य = जंगल, तुल. पद्मावत 104-8 : बरुनि बान अस ओपहिं, बेधे रन बन ढंख, तथा अवधी मुहावरा : रन न बिहार (= न अरण्य न बिहार या बस्ती)। रोझ < सं. ऋष्य = नीलगाय।

जंगली नीलगाय बहुत तेज दौड़ती है। अनेक तीर्थों में भ्रमण करने वालों को 'रन के रोझ' कहकर कबीर ने यहाँ उन पर व्यंग्योक्ति का प्रहार किया है।

मन को मथुरा, दिल को द्वारका और काया को काशी समझो। दसवाँ द्वार 'ब्रह्मरंध्र' देवालय है, उसमें प्रकाशमान ज्योति (ब्रह्म-ज्योति) को पहचानो।90।

देहुरा—सं. देवकुल < प्रा. देउल, देहुड़ > हिं. देहुरा = देवालय, मंदिर। सिद्धों, नाथयोगियों तथा संतों की यह समान रूप से मान्यता है कि जो ब्रह्मांड में है, वही पिंड में भी है (यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे; अथवाः ब्रह्मंडे सो पिंडे जांनि, मांन सरोबरि करि असनांन—कबीर)। इसलिए शरीर को देवालय के समान माना गया है।

राम-राम सब कोई कहता है, लेकिन कहने में बहुत विचार-वैभिन्न है (कोई किसी भाव से कहता है, कोई किसी अन्य भाव से)। वही राम साधु कहता है, वही कौतुक करने वाला या देखने वाला भी— किन्तु दोनों के कहने में भाव का अन्तर है।91। सती = सत्याचरण वाला; साधु।

मानव शरीर पानी का पुतला है जिसमें पवन (प्राण) का संचार कर दिया गया, किन्तु इस क्षणिक पानी के बुलबुले में भी रचयिता ने ऐसी ज्योति स्थापित कर दी है जिससे यह नाना वाणियों का वक्ता हो गया है।92।

हरि मोतियों की माला के समान है जो कच्चे धागे में पिरोई गयी हो, इसलिए यत्न करो (यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करो), अन्यथा अनेक झाड़ हैं—कहीं किसी में लग कर वह टूट जाएगी।93।

तात्पर्य यह है कि परमात्मा का रहस्य प्रयत्नपूर्वक गोपनीय है—

गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः।

पोई < प्रा. पोइअ < सं. प्रोत = पिरोई हुई।

नोट

पानी से भी पतला, धुएँ से भी झीना, वेग में पवन से भी अधिक उतावला या त्वरापूर्ण—ऐसे मन को कबीर ने दोस्त बनाया है।94।

मेरे मन में विरक्ति की ऐसी एक दरार पड़ गई कि फूटे हुए स्फटिक पत्थर की भाँति वह फिर न जुड़ सका अथवा वह स्फटिक पत्थर की भाँति ऐसा फटा कि फिर न जुड़ सका।95।

संसार से मन ऐसा फटा कि फिर उसमें न मिल सका—इस भार को बड़ी ही सादी किन्तु प्रभावपूर्ण भाषा में कबीर ने इस साखी में प्रस्तुत किया है।

फटिक पखांन < सं. स्फटिक पाषाण = शीशे की तरह का पारदर्शी एक सफेद पत्थर। फाटा फटिक पखांन ज्यों—'फाटा' यहाँ विशेषण तथा क्रिया दोनों रूपों में ग्रहण किया जा सकता है; इसलिए व्याख्या में दोनों अर्थ दिये गये हैं जो समान रूप से ग्राह्य प्रतीत होते हैं।

मन की रुचि पर नहीं चलना चाहिए—अपने जी की यह आदत छोड़ दें। तकुवे के तार (सूत) की तरह उसे वापस पलट कर ला। तात्पर्य यह है कि मन की वृत्तियों को, जो स्वभाव से बहिर्गामिनी होती है, बाहर भागने से रोककर अन्दर ही केन्द्रित करना चाहिए अर्थात् आत्मचिन्तन में लगाना चाहिए।96।

मतै = मत पर, मन की लहर पर। चालिए = चलना चाहिए, आचरण करना चाहिए। जीव = जी, चित्त। बांनि = आदत, स्वभाव। ताकू = सं. तर्कु + चर्खे में लोहे का वह डंडा जिस पर सूत कातकर लपेटा जाता है, तकुवा। केरा = का (अथवा का सम्बन्ध कारक का परसर्ग) तार (सं.) = तंतु, तागा (सूत के लिए जुलाहों में 'तार' शब्द ही अधिक प्रचलित है)। अपूठा = उलटा, वापस; तुल. दादू-वाणी, साखी 7-20 : सुरति अपूठी फेरि करि, आतम माहैं आंणि। आंनि = आनो, लाओ।

कबीर कहता है, भली है मधुकरी जिसमें भाँति-भाँति के अन्न खाने को मिलते हैं। इसमें किसी का दावा नहीं, यह बिना विलायत का बड़ा राज है।97।

मधूकरी < सं. मधुरी = सीझे (पके) हुए भोजन की भिक्षा। दावा (अ.) = स्वत्त्व, हक; यह कथन कि अमुक पर मेरा भी अधिकार है। बिल्लाइत < अ. विलायत = विदेश, उपनिवेश, दूर का सूबा। कोई राज्य बड़ा तब होता है जब उसमें उपनिवेश (विलायत) हों। भिक्षाटन ऐसे राज्य के समान है जिसमें विदेश-उपनिवेश जाने का कोई टंटा-बखेड़ा नहीं। किसी एक घर से माँग लेने पर पूरा भोजन मिल गया, फिर तो वही सुख जो विदेशों पर प्रभुत्व रखने वाले राजा को मिलता है। तुल. गोरखबानी, सबदी 102: जोगी सो जो मन जोगवै, बिन बिल्लाइत राज भोगवै। इससे ज्ञात होता है कि मध्ययुग में 'बिन बिल्लाइत राज' ऐसी लोकोक्ति ही प्रचलित हो गई थी।

गाने ही में रोना छिपा है और रोने ही में गाना; इसी प्रकार कोई वैरागी घर बना लेता है (गृहस्थी जोड़ता है), कोई गृहस्थ वैराग रमा लेता है।98।

गावन < सं. गायन = गान। रोज < प्रा. रुज्ज < सं. रुद् = रोना; तुल. पद्मावत 247-2: बरजा पितैं हँसी और रोजू। विशेष—गृहस्थ और वैरागी में जो सूक्ष्म अन्तर है उसको स्पष्ट करने के लिए कबीर ने बड़ा ही सूक्ष्म दृष्टांत चुना है। गेरुआ वस्त्र पहन लेने से और जंगल में बसने से ही कोई बैरागी नहीं हो जाता, यदि वासनाएँ उसका साथ नहीं छोड़तीं। दूसरी ओर एक गृही भी वीतराग हो सकता है जैसे जनक थे। अर्थात् गृही और वैरागी की सच्ची परिभाषा उनके मन के विश्लेषण पर आधारित है—ठीक वैसे ही जैसे गाने में रोना छिपा रह सकता है और रोने में गाना।

कबीर कहता है, पढ़ना दूर करो और पुस्तक फेंक दो। वर्णमाला के बावन अक्षरों को शोध कर रकार और मकार में चित लगाओ (जिनसे 'राम' बनता है—शेष सारी पढ़ाई व्यर्थ है!)।99।

रैरे ममैं—ररंकार तथा ममंकार, 'र' और 'म'। तुल. मानस, बाल. दो. 20--

एक छत्रु एक मुकुट मनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥

शनैः शनैः सब चले गये—सुत गया, वित्त गया, कामिनी गई और काम गया; अर्थात् सभी वासनाएँ समाप्त हो गईं—अब तो कबीरदास राम में 'एकमेक' होकर मिल रहा है।

नोट

तात्पर्य यह है कि जैसी तीव्र आसक्ति सांसारिक एषणाओं में थी, शनैः शनैः उनसे विमुख होने पर वैसी ही तीव्र आसक्ति राम में हुई जिससे चिंत्य और चिंतक में एकरूपता हो गयी।100।

विष्णु पुराण में कहा गया है—

या प्रीतिरविवेकानां विपयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥
युवतीनां यथा यूनि यूनाञ्च युवतीष्वपि।
मनोऽभिरमन्ते तद्वन्मनो मे रमतां त्वयि ॥

अर्थात् जिस प्रकार अविवेकी जनों की प्रीति विषयों में होती है उसी प्रकार की आसक्तिपूर्ण किन्तु अनपायिनी भक्ति तुम्हारा स्मरण करते हुए मेरे हृदय में हो। जैसे युवतियों की प्रीति युवकों में और युवकों की युवतियों में होती है वैसे ही तुझमें रमण करते हुए मेरा मन अनुरक्त हो। तुल. राम-चरित्र मानस का अन्तिम दोहा—

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहिं राम ॥

कबीर और तुलसी दोनों ने सहज आसक्ति पर जो बल दिया है वह विशेष रूप से चिन्तन करने योग्य है। भक्ति का वस्तुतः यही रहस्य है। मानस का यह अन्तिम दोहा है, जिससे इस सिद्धान्त के प्रति तुलसी की निष्ठा स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। कबीर का भी भक्तिमार्ग ऐसा ही है जिसमें सारी सांसारिक वासनाएँ धीरे-धीरे राम के लिए स्थान छोड़-छोड़ कर विलीन होती जाती हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएं—

7. चौंसठ कलाएं जिनका उल्लेख कामशास्त्र में है, की रचना कबीदास ने की है।
8. सद्गुरु के समान दूसरा कोई सगा नहीं एवं ज्ञान या चित्त शुद्धि के समान दूसरा कोई दान नहीं, ऐसा कबीर मानते थे।
9. कबीर कहते हैं यह संसार कुछ नहीं अर्थात् इसका कुछ निश्चयात्मक रूप नहीं—क्षण में ही खारा लगता है, क्षण में ही मीठा।

1.3 सारांश (Summary)

कबीरदास का जन्म सन् 1398 में काशी में हुआ था। ऐसा माना जाता है कबीर को एक ब्राह्मणी ने जन्म दिया था किन्तु लोकलाज से बचने के लिए लहरतारा नामक तालाब के किनारे रख दिया।

कबीर-काव्य के वर्ण्य-विषय को तीन वर्गों में रख सकते हैं

कबीर का समस्त काव्य सहज-स्वाभाविक है। उन्होंने जिस चीज को जैसा अनुभव किया, उसको वैसे ही अभिव्यक्त कर दिया है।

कबीर-काव्य की भाषा पर विद्वानों के विविध और परस्पर विरोधी मत हैं। स्वयं कवि ने उसको ''पूर्वी'' कहा है जिसमें बनारस, मिर्जापुर और गोरखपुर आदि में प्रचलित शब्दावली प्रधान है।

कबीर ने प्रायः सधुक्कड़ी छन्दों का प्रयोग किया है जिनमें प्रमुख हैं—सबद, साखी, दोहा, रमैनी।

1.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **रबाबः** सारंगी की तरह का एक बाजा, जो भारी रागों को बजाने के काम आता है।
2. **कस्तूरीः** सुगन्धित द्रव्य जो ठंडे पहाड़ों पर रहने वाले विशेष प्रकार के हिरन की नाभि से निकलता है।

नोट

1.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कबीरदास की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

2. मेरा मुझ में कछु नहीं, जो कछु है सो तेरा।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे मेरा।
उपरोक्त पंक्तियों का काव्य-सौंदर्य लिखिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. कागद, कबीर
2. शांत
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. (द)
5. (ब)
6. (स)
7. असत्य
8. सत्य
9. सत्य

1.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. कबीरवाणी–*तिवारी पारसनाथ, अनीता प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।*
2. कबीर (जीवन और दर्शन)–*चंडक राम निवास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।*
3. कबीर-एक अनुशीलन–*वर्मा रामकुमार, साहित्य भवन, इलाहाबाद।*
4. कबीरवाणी-ज्ञानामृत–*आचार्य रामानुज सरस्वती, मनोज पब्लिकेशन, दिल्ली।*

नोट

इकाई 2

कबीर की भाषा-शैली

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
2.1 कबीर की भाषा-शैली
2.1.1 कबीर की भाषा और उसका वैविध्य
2.1.2 कबीर की शैली और उसका वैविध्य
2.2 सारांश (Summary)
2.3 शब्दकोश (Keywords)
2.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
2.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- कबीर की भाषा-शैली को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

कबीरदास ने अपनी रचनाओं में पंजाबी, राजस्थानी, बघेली, ब्रजभाषा, खड़ीबोली, भोजपुरी, अरबी, फारसी, सिन्धी, गुजराती, बाँग्ला तथा मैथिली आदि अनेकानेक बोलियों तथा भाषाओं का प्रयोग किया है। इतनी भाषाओं के एक-समान प्रयोग करने के कारण कबीर की भाषा का अध्ययन करने में एक सबसे बड़ी समस्या समीक्षकों के सामने यह आ खड़ी होती है कि उनकी भाषा का अध्ययन किस विशेष बोली अथवा भाषा को आधार मानकर किया जाए और उनकी बोली को क्या नाम दिया जाए? इस समस्या को स्वयं ही सुलझाते हुए समीक्षकों ने उनकी भाषा को एक विशिष्ट नाम दिया–'सधुक्कड़ी अन्नकूट'। विद्वानों ने सधुक्कड़ी अन्नकूट को साधुओं की भाषा कहा है, जिसमें लिंग, वचन और कारक आदि का कोई बन्धन नहीं होता। इसमें विभिन्न बोलियों के शब्द, पद-विन्यास आदि ज्यों-के-त्यों अनगढ़ रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। इसका एक मुख्य कारण यह होता है कि ये साधुगण कहीं एक स्थान पर स्थायी रूप से नहीं रहते, वरन् विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों का भ्रमण करते रहते हैं, जिस कारण उन भाषाओं के शब्द और पद-विन्यास स्वाभाविक रूप से उनकी भाषा में आ जाते हैं।

2.1 कबीर की भाषा-शैली

कबीर की बहुआयामी भाषा को सधुक्कड़ी के अतिरिक्त कोई अन्य नाम दे पाना वास्तव में दुष्कर है। कविता करना क्योंकि कबीर का उद्देश्य न था; अतः उन्होंने उसकी भाषा पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। जो मुँह में आया, वही उनकी भाषा और कविता बन गया। वे अपनी आत्मा की प्रेरणा के अनुसार कार्य करते थे। उनकी वाणी को सुगठित भाषा की आवश्यकता न होकर भावों की आवश्यकता थी। कबीर के पदों में लगभग आधा दर्जन भाषाओं के शब्द उपलब्ध होते हैं।

नोट

2.1.1 कबीर की भाषा और उसका वैविध्य

कबीर की भाषा में विभिन्न भाषाओं का सम्मिश्रण है। परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर के काव्य से विभिन्न भाषाओं के निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किए हैं—

अवधी– ''जब तूं तस तोहि कोई न जान।''
''तैसें नाचत मैं दुख पावा।''
भोजपुरी— नाँ हम जीवत मुख न ले माँही
× × ×
दाँत गैल मोर पान खात, केस गैल मोर गंग नहात।
ब्रजभाषा— अपनापौ आपुन ही बिसरतौ
× × ×
लोट्यों भौमि बहुत पछितानौं, लालचि लोगौ करत कनीं।
खड़ीबोली– करण किया करम का नाम
यह मन चंचल चोर है, यह मन सुद्ध ठगार।
पंजाबी– लूण बिलग्गा पाँणियां पांणि लूँण बिलग्ग।
राजस्थानी– क्या जाणों उस पीव कूँ, कैसे रहसी रंग
× × ×
बीछड़िया मिलियौं नहीं, ज्यौं काँचली भुवंग।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर की भाषा में विभिन्न भाषाओं का सम्मिश्रण है कबीर ने भाषा की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। भाषा में जो कुछ सौन्दर्य है, उनकी तीव्र अनुभूति के कारण हैं। विभिन्न आलोचकों ने कबीर की भाषा का मूल्यांकन विभिन्न प्रकार से किया है। किसी ने उसकी भाषा को ब्रज, किसी ने अवधी और किसी ने पंजाबी बताया है। उदाहरणार्थ कुछ आलोचकों के मत यहाँ प्रस्तुत हैं–

डॉ. श्यामसुन्दरदास–''कबीर ग्रन्थावली की भाषा पंचमेल खिचड़ी है।''

डॉ. बाबूराम सक्सेना–''कबीर अवधी के प्रथम संत कवि हैं।''

डॉ. सिद्धनाथ तिवारी–''हम जब उनकी आँखन देखी बातों से आगे बढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि कबीर भाषा का सरल पथ छोड़कर रूखड़े मार्ग पर यात्रा कर रहे हैं।''

डॉ. रामकुमार वर्मा–''कबीर ग्रन्थावली की भाषा में पंजाबीपन अधिक है।''

रेवरेन्ड अहमदशाह–''कबीर बीजक की भाषा बनारस, मिर्जापुर तथा गोरखपुर के आस-पास की बोली है।''

डॉ. उदयनारायण तिवारी–''कबीर की मूल वाणी का बहुत कुछ अंश उनकी मातृ-भाषा बनारसी बोली में ही लिखा गया था, किन्तु उनके पदों का पछाँह की साहित्यिक भाषाओं में रूपान्तर कर दिया गया है।''

डॉ. त्रिगुणायत ने कबीर की भाषा में विभिन्न भाषाओं के सम्मिश्रण के सम्बन्ध में लिखा है, ''कबीर ने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया है। उनकी बोलियों में हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण तो मिलता ही है, साथ-ही-साथ खड़ीबोली, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी, मारवाड़ी आदि उप-भाषाओं का भी प्रचुर प्रयोग किया है।''

पूर्वी भाषा–कतिपय विद्वानों ने कबीर की भाषा को पूर्वी भाषा बताया है। कबीर की भाषा को पूर्वी भाषा मानने वालों का आधार सम्भवतः कबीर बीजक की निम्नलिखित साखी है–

बोली हमरी पूरब की, हमें लखै नहीं कोय।
हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय ॥

परन्तु वास्तव में कबीर की भाषा पूर्वी नहीं है। कबीर की भाषा में ब्रज, पंजाबी और राजस्थानी के बहुत अधिक शब्द मिलते हैं। परशुराम चतुर्वेदी ने उपर्युक्त साखी का आध्यात्मिक अर्थ लगाया है। 'कबीर साहित्य की

नोट

परख' में उन्होंने इस साखी का अर्थ दिया है–''हमारा कथन मौलिक दशा से सम्बन्ध रखता है, जिस कारण हमें कोई समझ नहीं पाता। हमारी बात वही समझेगा, जिसे उसका अनुभव हो चुका है।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा है। वास्तव में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह मत अन्य मतों की अपेक्षा कहीं अधिक संगत प्रतीत होता है।

भाषा की विविधरूपता के कारण–कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, वे तन्मय होकर जो कुछ गाते थे, उनके शिष्य उनको लिपिबद्ध कर लिया करते थे। उन शिष्यों को भाषा से मोह न रहकर केवल भाव से मोह रहा होगा। शिष्यों ने अपने प्रदेश की भाषा के अनुसार उसको लिपिबद्ध कर लिया होगा। इस प्रकार अपने-अपने प्रदेश की भाषानुसार उन पदों में परिवर्तन कर लिया होगा। विभिन्न प्रदेशों के शिष्य उनके पास आया करते थे। अतः इस प्रकार भाषा में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। कबीर के पूर्ववर्ती सन्तों ने भी अपने काव्य में अनेक भाषाओं का प्रयोग किया था।

भाषा में विभिन्न भाषाओं के शब्दों के प्रयोग का एक कारण यह भी है कि सन्त कबीर देशाटन किया करते थे। जिस प्रदेश में वह जाते थे, उसी प्रदेश की भाषा के शब्द उनके काव्य में स्थान पा जाते थे; क्योंकि श्रोताओं को समझाने के लिए वे उस प्रदेश-विशेष की भाषा के प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग करते थे। इस प्रकार कबीर के काव्य में भाषाई विविधता है।

कबीर की भाषा की प्रमुख विशेषताएँ–(1) कबीर की भाषा सीधी-सादी और सरल है। कबीर की उलटबाँसियाँ और पारिभाषिक शब्दों वाले पद अवश्य क्लिष्ट हैं। उन पदों को छोड़कर कबीर का समस्त साहित्य साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति की समझ में सरलता से आ जाता है। इस कारण कबीर की साखियों का इतना अधिक प्रचार है।

(2) उनका अधिकांश काव्य गेय है।

(3) कबीर की भाषा विषयानुकूल बदलती रहती है। जब वे मुसलमान सूफियों के सम्बन्ध में कुछ कहते हैं, तो उसमें अरबी और फारसी के शब्दों का अत्यधिक प्रयोग करते हैं; यथा–

मियाँ तुम्हसौ बोल्यां वाणी नहीं आवै।
हम मसकीन खुदाई बन्दे, तुम्हारा जसमन भावै ॥
अल्लाह अबील दीन का साहिब, जारे नहीं फुरमाया।
मुरसिद पीर तुम्हारे है को, कहा थै आया ॥

इसी प्रकार जब वे हिन्दुओं के साधु-सन्तों के सम्बन्ध में कुछ टिप्पणी करते हैं तो वे हिन्दी के तद्भव शब्दों का प्रयोग करते हैं; यथा–

निरवैरी निहकामता, साँई सेती नेह।
विषिया सूँ न्यारा रहै, सन्तनि का अंग एह ॥

(4) कबीर ने व्याकरण के नियमों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है **डॉ. सिद्धनाथ तिवारी** ने लिखा है–''जब हम उनकी आँखिन देखी बातों से आगे बढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि कबीर भाषा का सरल पथ छोड़कर रूखड़े मार्ग पर यात्रा कर रहे हैं।''

(5) कबीर की भाषा की प्रशंसा करते हुए कबीर साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–

''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा में कहलवा दिया है–बन गया है तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कबीर के सामने कुछ लचर-सी नजर आती है। उसमें मानो हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को न कर सके, और अकथ कहनी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों की भाषा में पाई जाती है।''

टास्क कबीर की भाषा 'सधुक्कड़ी' है। इसके कारणों पर प्रकाश डालिए।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. 'कबीर अवधी के प्रथम संत कवि थे'–यह कथन ..... का है।
2. कबीर ..... नहीं थे।
3. 'कबीर ग्रंथावली की भाषा ..... है' कथन डा. श्याम सुन्दर दास का है।

2.1.2 कबीर की शैली और उसका वैविध्य

कबीर की शैली भी भाषा की भाँति अनिश्चित-सी है। शैली में विविधरूपता है। कबीर का समस्त काव्य मुक्तक शैली में रचा गया है। कबीर के काव्य में गेय पदों की प्रधानता है। कबीर भक्त पहले हैं और कवि बाद में। अतः वे मस्त होकर तन्मयता के साथ गाते हैं तो उनको किसी बात का ध्यान ही नहीं रहता है। उनकी रचनाओं में हमें निम्नलिखित प्रमुख शैलियों के दर्शन होते हैं–

(क) खण्डनात्मक शैली–कबीर की शैली के ऊपर उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। जब कबीर पण्डित, मुल्ला, वामपन्थी और अवधूतों को फटकारते हैं तो उनकी शैली बड़ी सबल और सशक्त हो जाती है। कबीर ने प्राचीन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का कड़ा विरोध किया। इस प्रकार के वर्णन में शैली का तीखापन द्रष्टव्य है। इस प्रकार की शैली मर्म पर सीधी चोट करती है। उस शैली को खण्डनात्मक शैली कहते हैं।

(ख) उपदेशात्मक शैली–हिन्दू-मुसलमानों को उपदेश देते समय वे अपने विचारों को अत्यन्त सरल और सीधे-सादे ढंग से व्यक्त करते थे, ताकि श्रोतागण उसको सरलता से समझ सकें। वे हिन्दुओं को उपदेश देते समय शुद्ध हिन्दी के और मुसलमानों को उपदेश देते समय फारसी शब्दों का प्रयोग करते थे। कबीर की यह उपदेशात्मक शैली सीधी-सीधी तथा सरल है।

(ग) अनुभूति-व्यंजक शैली–कबीर की तीसरे प्रकार की शैली अनुभूति-व्यंजक है। यह कबीर की साहित्यिक शैली है। यह शैली गीतिकाव्य के समस्त लक्षणों से परिपूर्ण है। इसमें अनुभूति की अतुल गहराई है। इस शैली में माधुर्य गुण सर्वथा दृष्टिगोचर होता है।

इस शैली के सम्बन्ध में 'कबीर काव्य कौस्तुभ' में एक स्थान पर लिखा है, ''इस शैली में सन्त की कोमलता, व्यंजना की प्रौढ़ता, साधन की कातरता, स्वानुभूति का सफल अंकन तथा अलंकारों एवं प्रतीकों का मार्मिक प्रयोग है, जो उनके काव्य को अलौकिक बना देता है।''

नोट्स कबीर ने प्राचीन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का कड़ा विरोध किया।

भाषा की शब्द-शक्ति–कबीर ने अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना तीनों प्रकार की शब्द-शक्तियों का प्रयोग अपने काव्य में किया है। कबीर के लाक्षणिक प्रयोग देखते ही बनते हैं–

काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट।
पाहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी वाट ॥

उलटबाँसियों और प्रतीकों के प्रयोग में शैली अस्पष्ट होते हुए भी चमत्कारपूर्ण है।

अलंकार–कबीरदास अलंकारों के पण्डित नहीं थे। उन्होंने अपनी वाणी को कभी-भी सजाने, सँवारने का प्रयत्न नहीं किया। उनकी काव्य-प्रतिभा के कारण स्वभावतः ही उसमें रमणीयता आ गई है। कबीर की विशेषता अपने रूपकों के लिए प्रसिद्ध है। कबीर के रूपक मौलिकता लिए हुए हैं–

नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारिकै, पिय को लिया रिझाय ॥

नोट

क्या आप जानते हैं उपमा अलंकार का प्रयोग भी सन्त कबीर ने पर्याप्त मात्रा में किया है। उपमाओं के उपमान भी परम्परागत न होकर मौलिक हैं।

कबीर के रूपकों के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' में लिखा है–''उन्होंने हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद के कुछ सांकेतिक शब्दों (चन्द, सूर, नाद, बिन्दु, अमृत, पौधा, चुवा आदि) को लेकर अद्‌भुत रूपक बाँधे हैं, जो सामान्य जनता की बुद्धि पर पूरा आतंक जमाते हैं।''

सन्त कबीर ने उलटबाँसियों में मुख्यतया विरोधालंकार-विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति असंगति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त कबीर के काव्य में उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, दृष्टान्त आदि अलंकारों की भी कमी नहीं है। कबीर ने अन्योक्तियों का प्रयोग भी बड़े सुन्दर ढंग से किया है; यथा–

''काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी।

तेरे ही नाल सरोवर पानी ॥''

इस प्रकार कबीर के काव्य में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

छन्द-विधान–कबीर का समस्त काव्य मुक्तक रचना है। कबीर के काव्य में गेय पदों की प्रधानता है। कबीर ने अनेक छन्दों का प्रयोग किया है, परन्तु उनमें साखी, सबद और रमैनी प्रमुख हैं। कबीर ने साखियों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। साखी दोहों से मिलती-जुलती है। साखी का अर्थ है–साक्ष्य का साक्षात् अनुभव। साखी का प्रयोग कबीर से पहले भी होता आ रहा था। कबीर ने स्वयं कहा है 'पद गाए मन हरसिया, साषी कह्या आनन्द।' साखी और दोहे के अन्तर को स्पष्ट करते हुए पं. परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है–''साखियों की रचना प्रायः दोहा नामक छन्द से ही की गई पाई जाती है, किन्तु कबीर साहब की सभी साखियाँ केवल इसी रूप में नहीं दिखतीं। इसमें न केवल सोरठे मिलते हैं, अपितु इनमें दोहा, चौपाई, हरिपद तथा छप्पय जैसे छन्दों के भी उदाहरण मिल जाते हैं।'' इसके अतिरिक्त कबीर ने चैती, कहरवा, चाँचर, हिंडोला, बसन्त होली आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

कबीर का महत्त्व–साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। कबीर एक असाधारण व्यक्तित्व लेकर जनता के समक्ष आए। कबीर युगद्रष्टा और क्रान्तिद्रष्टा महात्मा थे। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखा है–''हिन्दी-साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई कवि उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वन्द्वी जानता है–तुलसीदास।'' कबीर स्वतन्त्र प्रवृत्ति के कलाकार थे। वे सन्त पहले थे और कवि बाद में। सन्त कबीर अपनी आत्मा के अनुचर थे। उन्होंने अपने सिद्धान्तों को जनभाषा में ही लोगों तक पहुँचाया। कबीर के समय तक भाषा कोई स्थायी रूप ग्रहण नहीं कर सकी थी। उसमें निखार आ रहा था। निर्गुण धारा के साहित्य में काव्य सिद्धान्तों का पालन करने वाली प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। कबीर ने सर्वप्रथम भाषा को साहित्यकला का जामा पहनाया। बाद में वही भाषा परिष्कृत और परिमार्जित होकर साहित्य का माध्यम बन गई। कबीर धार्मिक आडम्बर और मिथ्या अन्धविश्वासों का कड़ा विरोध करके अपने सन्त मत के सिद्धान्तों को जन-भाषा में ही जनता के सामने लाए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. कबीर का समस्त काव्य किस शैली में रचा गया है?

   (अ) मुक्तक (ब) बंध (स) न (अ) और न (ब) (द) इनमें से कोई नहीं

5. कबीर ने कितनी शब्द-शक्तियों का प्रयोग किया है?

   (अ) एक (ब) दो (स) तीन (द) इनमें से कोई नहीं

नोट

6. 'साखी' का क्या अर्थ?

(अ) साक्ष्य का साक्षात् अनुभव (ब) असत्य का साक्षात् अनुभव
(स) मित्र का साथ (द) इनमें से कोई नहीं

2.2 सारांश (Summary)

कबीर ने अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना तीनों प्रकार की शब्द-शक्तियों का प्रयोग अपने काव्य में किया है।

कबीर का समस्त काव्य मुक्तक रचना है। कबीर के काव्य में गेय पदों की प्रधानता है। कबीर ने अनेक छन्दों का प्रयोग किया है, परन्तु उनमें साखी, सबद और रमैनी प्रमुख हैं।

कबीर एक असाधारण व्यक्तित्व लेकर जनता के समक्ष आए। कबीर युगद्रष्टा और क्रान्तिद्रष्टा महात्मा थे।

2.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **प्रेक्षण:** दृश्य, तमाशा
2. **दोजख:** नरक

2.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'कबीर का अपनी भाषा पर अधिकार था' क्या आप इस बात से सहमत हैं।
2. कबीर की भाषा में शब्द-शक्तियों का प्रयोग कहां तक उचित है, स्पष्ट कीजिए।
3. कबीर की भाषा-शैली पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. डा. बाबूराम सक्सेना 2. पढ़े-लिखे 3. पंचमेल 4. (अ)
5. (स) 6. (अ)

2.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. कबीरवाणी–*तिवारी पारसनाथ, अनीता प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।*
2. कबीर (जीवन और दर्शन)–*चंडक राम निवास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।*
3. कबीर-एक अनुशीलन–*वर्मा रामकुमार, साहित्य भवन, इलाहाबाद।*
4. कबीरवाणी-ज्ञानामृत–*आचार्य रामानुज सरस्वती, मनोज पब्लिकेशन, दिल्ली।*

नोट

इकाई 3

कबीर की भक्ति-भावना

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
3.1 कबीर की भक्ति-भावना
3.1.1 कबीर की भक्ति का स्वरूप
3.2 सारांश (Summary)
3.3 शब्दकोश (Keywords)
3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- कबीर की भक्ति-भावना का मर्म समझने में।
- कबीर की भक्ति के स्वरूप को जानने में।
- कबीर के नाम स्मरण के महत्त्व को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सन्त कबीर को यदि प्रेम था तो केवल परमात्मा से। सांसारिकता को तो उन्होंने केवल अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए बोझे की तरह ढोया। यद्यपि वे इस सांसारिकता को त्यागकर शुद्ध वैराग्यवादी जीवन व्यतीत कर सकते थे, किन्तु तब शायद उन पर जीवन से पलायन कर जाने की मुहर लग जाती और शायद तब लोग उनकी बातों को उतनी गम्भीरता से न लेते। उन्होंने जो कहा, वैसा अपने जीवन में स्वयं करके दिखाया। उनकी भक्ति भावना ही उनके प्रेम का आधार थी। कबीर निर्गुण भक्ति में आस्था रखते थे।

3.1 कबीर की भक्ति-भावना

कबीर का जन्म भले ही लहरतारा के कमल-पुष्प पर न हुआ हो, किन्तु उन्होंने अपनी जीवन शैली और विचारधारा से यह सिद्ध करके दिखा दिया कि जैसे कमल-पत्र जल में रहते हुए भी जल से अलग रहता है, यानि उस पर जल ठहर नहीं पाता है, वैसे ही सांसारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए सांसारिकता से अलग रहा जा सकता है और उन्होंने वैसा कर दिखाया। संसार में व्यक्ति को सबसे अधिक प्रेम अपनी सन्तान से होता है और उसमें भी पुत्र से, किन्तु कबीर में वह पुत्र-प्रेम कहीं दृष्टिगत नहीं होता। उन्होंने स्वयं इस सन्दर्भ में लिखा है–बूड़ा वंश कबीर का उपज्यो पूत कमाल।

3.1.1 कबीर की भक्ति का स्वरूप

कबीर की भक्ति ही उनके प्रेम का आधार था। जहाँ कहीं भी उन्होंने सांसारिक प्रेम की बात कही है, वहाँ भी उनकी रहस्यवादी प्रवृत्ति अलौकिक प्रेम अर्थात् भक्ति का ही द्योतन कराती है। भारतीय भक्तिधारा में वैष्णव भक्ति के दो रूप मिलते हैं–सगुण और निर्गुण। कबीर निर्गुण भक्तिधारा के अनुयायी थे। उनकी भक्ति का स्वरूप निम्नलिखित है–

नोट

टास्क कबीर और तुलसी की भक्ति में अंतर स्पष्ट कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. कबीर को ..... से प्रेम था।
2. कमल-पत्र जल में रहते हुए भी ..... से अलग रहता है।
3. भारतीय भक्ति में वैष्णव भक्ति के ..... रूप मिलते हैं।

(1) निराकार ब्रह्म की उपासना–कबीर ईश्वर के निर्गुण एवं निराकार रूप के प्रति भक्ति-भाव रखते थे। उनकी भक्ति-भावना उस ईश्वर के प्रति थी, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्राणतत्व होकर भी निर्गुण, निराकार एवं सर्वव्यापी है। यह सम्पूर्ण सृष्टि उसी से उत्पन्न होती है और उसी में समाहित हो जाती है–

पाणीरी ही तैं हिम भया, हिम है गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ ॥

(2) एक ही परमात्मा–कबीर की भक्ति उस परमात्मा के प्रति है, जो समस्त सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। वह प्राणिमात्र का परमात्मा है; किसी जाति, धर्म या समुदाय में अपना भिन्न अस्तित्व रखनेवाला परमात्मा नहीं। उन्होंने हिन्दुओं के बहुदेववाद का विरोध किया है तो इस्लाम धर्म के उस एकेश्वरवाद का भी विरोध किया है, जो खुदा को सातवें आसमान पर बन्दे से अलग बैठा बताता है–

मुसलमान का एक खुदाई।
कबीर का स्वामी रह्या रमाई ॥

कबीर का परमात्मा इस दृष्टि से वैदिक 'पुरुषसूक्त' (ऋग्वेद का एक सर्ग) के परमात्मा से समानता रखता है। उसकी समानता उपनिषदों के परब्रह्म, ऋग्वेद के परम-पुरुष के परमात्मा एवं आचार्य शंकर के अद्वैत ब्रह्म से की जा सकती है।

(3) कबीर-भक्ति में प्रेम का माधुर्य–कबीरदास ने अपनी साखियों एवं पदों में यत्र-तत्र प्रेम का महत्त्व बताते हुए उसके स्वरूप पर प्रकाश डाला है, किन्तु यहाँ स्मरणीय है कि कबीर के प्रेम का यह भाव किसी मनुष्य के प्रति नहीं है, वरन् उस परम-तत्व के प्रति है, जिससे जीव अपनी अज्ञानता के कारण दूर है। ज्ञान प्राप्त करने के बाद कबीर की आत्मा उसी परमात्मारूपी प्रियतम से मिलने के लिए किसी विरहातुर नारी की तरह व्याकुल है–

बहुत दिनन की जोबती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूँ, मन नाहीं विश्राम॥

कबीर की भक्ति में प्रेम के माधुर्य का पुट है। इस माधुर्य भाव में प्रेमाकुल विरह की अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि उनकी भक्ति पर सूफी विचारधारा का प्रभाव है, तथापि इसकी मधुरता में शृंगार रस की प्रधानता है। इस विरहातुर प्रेम-भाव की अधिकता किसी प्रेमिका की भाँति प्रियतम पर स्वयं के अस्तित्व को मिटा देने की सीमा तक है–

यहु तन जालौं मसि करूँ, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि ॥

कबीर के प्रेम का यह स्वरूप ईश्वर के प्रति उत्कृष्ट प्रेम-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत है। वे परमात्मा की प्राप्ति हेतु प्रेमाकुल हैं और उसकी प्राप्ति के मार्ग की विकटता को समझते हुए भी प्रेम की वेदी पर स्वयं को बलिदान कर देना चाहते हैं। वे कहते हैं कि प्रेम का मार्ग अति विकट है। इसमें मनुष्य को अपने अहंकार अथवा अपने अस्तित्व के प्रति अभिमान को त्यागना होता है, तभी वह अपने प्रियतम के हृदयरूपी घर में प्रवेश पा सकता है–

नोट

कबिरा यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैठे घर माहिं ॥

(4) नाम-स्मरण का महत्त्व–कबीर की भक्ति में नाम-स्मरण का अत्यधिक महत्त्व माना गया है। वे नाम के स्मरण को ही परमात्मा की प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन मानते हैं, किन्तु नाम-स्मरण हेतु वे किसी भी प्रकार के बाहरी आडम्बरों के प्रबल विरोधी हैं। कबीर मुँह से ईश्वर के नाम को जपने या माला फेरने की आलोचना करते हैं। उनके अनुसार नाम का स्मरण मन से होना चाहिए–

माला तो कर मैं फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो दस दिसि फिरै, सो तो सुमिरन नाहिं ॥

प्रभु-नाम के स्मरण का महत्त्व बताते हुए कबीर कहते हैं–

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ मैं रही न हूँ।
बारी फेरि बलि गई, जित देखौं तित तूँ।

(5) गुरु की महत्ता–कबीर की भक्ति में गुरु का महत्त्व ईश्वर से भी श्रेष्ठ है। उनकी भक्ति गुरु की ही देन है। इसीलिए वे भक्ति-मार्ग का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु की सेवा करना आवश्यक मानते हैं–

''गुरु सेवा ते भक्ति कमाई।''

(6) मध्यम मार्ग–कबीर सांसारिकता को त्यागकर जंगल में निवास करने या शरीर को कष्ट देकर ईश्वर की भक्ति करने के समर्थक नहीं थे। वे मध्यममार्गी भक्ति को महत्त्व देते थे, जिसे प्रत्येक मनुष्य सद्गुरु से ज्ञान प्राप्त कर, मन से प्रभु-नाम का स्मरण करके और बिना किसी आडम्बर के, सरल भक्ति भाव से अपना सकता है।

(7) जीव और ब्रह्म की एकता–कबीर जीव को ब्रह्म का ही रूप मानते थे, अर्थात् उनकी दृष्टि में जीव उस परमात्मा का ही अंग है अथवा प्रत्येक जीव के रूप में परमात्मा ही विद्यमान है, तभी तो वे कहते हैं–

घट-घट है अविनासी, सुनहुँ तकी तुम शेख।

नोट्स कबीर का निर्गुण परमात्मा अद्वैतवादी दर्शन (जीव और ब्रह्म अद्वैत अर्थात् दो नहीं हैं) का ही परमात्मा है।

(8) जीव का आत्म-समर्पण भाव–सगुण एवं निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति में परमात्मा की प्राप्ति के लिए स्वयं के अहंकार का त्याग एवं आत्मसमर्पण को आवश्यक माना गया है। कबीर भी उस परमात्मा की प्राप्ति के लिए अपना सारा अहंकार त्यागकर उस परमात्मा में ही एकाकार हो जाने पर बल देते हैं–

लाली मेरे लाल की, जित देखहुँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥

क्या आप जानते हैं कबीर उस परमात्मा की प्राप्ति के लिए अपना सारा अहंकार त्यागकर उस परमात्मा में ही एकाकार हो जाने पर बल देते हैं।

(9) निर्मल भाव–कबीर भक्ति के लिए हृदय की निर्मलता को ही महत्त्वपूर्ण मानते हैं, बाह्याडम्बरों को नहीं। वे इसके लिए किसी जाति-पाँति या ऊँच-नीच को महत्त्व नहीं देते। वे स्पष्ट कहते हैं कि भगवद्भक्ति के लिए किसी जाति-विशेष की आवश्यकता नहीं है–

जाति पाँति पूछे नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।

नोट

यदि हृदय निर्मल नहीं, तो परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती–

माला तो कर मैं फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दस दिसि फिरै, सो तो सुमिरन नाहिं ॥

(10) माया का प्रपंच–भक्ति के मार्ग में माया ही सबसे बड़ी बाधा है। कबीर ने माया के जिस स्वरूप की व्याख्या की है, वह विशिष्टाद्वैत है। यह माया परब्रह्म की एक ऐसी रहस्यमयी शक्ति है, जो विश्वमोहिनी के रूप में प्रकट होकर सम्पूर्ण जीवों को फँसाए रहती है। वह ऐसी ठगिनी है, जो सदैव त्रिगुणी फाँस हाथ में लिए रहती है। इससे बचने की कोई लाख चेष्टा करे, यह उसका पीछा नहीं छोड़ती–

मीठी-मीठी माया तजि न जाई।
अग्यानी पुरुष को भोलि-भोलि खाई ॥

(11) प्रणय-भाव–कबीर की भक्ति की एक महती विशेषता यह है कि वह अधिकांश स्थानों पर प्रेमी-प्रेमिका के भाव में व्यक्त होती है। सूफियों के प्रभाव से प्रभावित उनकी इस भक्ति-भावना का एक चित्र यहाँ द्रष्टव्य है–

भीजै चुनरिया प्रेम-रस बूँदन।
आरती साज के चली है सुहागिन, प्रिय अपने को ढूँढन ॥

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त कबीर की भक्ति में अपने इष्टदेव के अनुकूल गुणों के ग्रहण करने का संकल्प, प्रतिकूल गुणों का त्याग, ईश्वर द्वारा रक्षा का विश्वास एवं परमात्मा के प्रति दीनता का भाव आदि विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। यहाँ यह स्मरण रखना समीचीन होगा कि कबीर के राम निराकार परमात्मा ही हैं। राम के प्रति कबीर की भक्ति को देखकर उसे सगुण परमात्मा की भक्ति नहीं समझना चाहिए। राम का अर्थ कुछ विद्वान् उनके गुरु रामानन्द से लेते हैं, कुछ दशरथ पुत्र राम से, किन्तु यह दोनों ही अर्थ उचित नहीं हैं। वस्तुतः राम के नाम से कबीर ने निर्गुण निराकर ब्रह्म को ही सम्बोधित किया है। इस विषय में डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना के विचारों को भी यहाँ उद्धृत करना युक्तियुक्त होगा। वे लिखते हैं–''कबीर एक ऐसी भक्तिधारा को प्रवाहित करना चाहते थे, जिसे सभी वर्ण या सभी धर्म के व्यक्ति बिना किसी हिचकिचाहट के अपना सकें। उस समय हिन्दू एवं मुसलमानों में पारस्परिक वैमनस्य एवं ईर्ष्या-द्वेष अत्यधिक बढ़ रहे थे। अतः कबीर ने अपनी निर्गुण भक्ति का आश्रय लेकर दोनों जातियों की कटुता एवं वैमनस्यता की भावना को दूर करके एक ऐसी भक्ति का प्रचार किया, जिसमें राम और रहीम, कृष्ण और करीम, महादेव और मुहम्मद की एकरूपता स्थापित करके एक ईश्वर की उपासना पर जोर दिया गया था।'' वास्तव में कबीरदास अपनी निर्गुण भक्ति-भावना के द्वारा हिन्दू-मुस्लमानों के वैमनस्य को दूर करने में काफी हद तक सफल हुए। यही कारण है कि बहुत बड़ी संख्या में दोनों धर्मों के लोग उनके अनुयायी हो गए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. कबीर की भक्ति किस परमात्मा के प्रति है?
   (अ) जो समस्त सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है (ब) जो समस्त सृष्टि के कण-कण में व्याप्त नहीं है।
   (स) न (अ) और न (ब) (द) उपरोक्त में कोई नहीं
5. कबीर किसके समर्थक नहीं थे?
   (अ) जो शरीर को कष्ट देकर ईश्वर की भक्ति करते हैं
   (ब) जो भोजन कर भक्ति करते हैं।
   (स) न (अ) और न (ब) (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
6. भक्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है?
   (अ) प्रेम (ब) घृणा
   (स) माया (द) इनमें से कोई नहीं

नोट

3.2 सारांश (Summary)

सन्त कबीर को यदि प्रेम था तो केवल परमात्मा से। सांसारिकता को तो उन्होंने केवल अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए बोझे की तरह ढोया।

जहाँ कहीं भी उन्होंने सांसारिक प्रेम की बात कही है, वहाँ भी उनकी रहस्यवादी प्रवृत्ति अलौकिक प्रेम अर्थात् भक्ति का ही द्योतन कराती है।

कबीर-भक्ति में प्रेम का माधुर्य–कबीरदास ने अपनी साखियों एवं पदों में यत्र-तत्र प्रेम का महत्त्व बताते हुए उसके स्वरूप पर प्रकाश डाला है।

कबीर सांसारिकता को त्यागकर जंगल में निवास करने या शरीर को कष्ट देकर ईश्वर की भक्ति करने के समर्थक नहीं थे।

राम का अर्थ कुछ विद्वान् उनके गुरु रामानन्द से लेते हैं, कुछ दशरथ पुत्र राम से, किन्तु यह दोनों ही अर्थ उचित नहीं हैं। वस्तुतः राम के नाम से कबीर ने निर्गुण निराकार ब्रह्म को ही संबोधित किया है।

3.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **सुबरनः** सोना
2. **जीमः** भोजन करना
3. **प्रतिकूलः** विपरीत, उल्टा

3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कबीर की भक्ति के विभिन्न स्वरूपों को समझाइए।
2. 'कबीर ने अपनी भक्ति में बाह्य आडम्बरों का विरोध किया है' क्या आप इस बात से सहमत हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. 'कबीर हिन्दू और मुसलमानों को एक साथ लेकर चलते हैं। वे प्रेम पर बल देते हैं'–
   उपरोक्त कथन पर अपने मत प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. परमात्मा
2. जल
3. दो
4. (अ)
5. (अ)
6. (स)

3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. कबीरवाणी–*तिवारी पारसनाथ, अनीता प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।*
2. कबीर (जीवन और दर्शन)–*चंडक राम निवास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।*
3. कबीर-एक अनुशीलन–*वर्मा रामकुमार, साहित्य भवन, इलाहाबाद।*
4. कबीरवाणी-ज्ञानामृत–*आचार्य रामानुज सरस्वती, मनोज पब्लिकेशन, दिल्ली।*

नोट

इकाई 4

कबीरवाणी की तात्विक समीक्षा

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
4.1 कबीरवाणी की तात्विक समीक्षा
4.2 सारांश (Summary)
4.3 शब्दकोश (Keywords)
4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे–

- कबीरवाणी के तत्त्वों को जानने में।
- कबीरवाणी की पाठ-समस्या को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मध्यकाल के हिन्दी कवियों की रचनाओं के प्रमाणिक पाठ की समस्या बहुत उलझी हुई है और कबीर जैसे फक्कड़ संत के सम्बन्ध में, जो 'पुस्तक देहु बहाइ' का उपदेश देते रहे, यह समस्या और भी उग्र रूप धारण कर लेती है। कबीर पर शोधकार्य करते समय विभिन्न हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियों में कुल मिलाकर लगभग सोलह सौ पद, साढ़े चार हजार साखियाँ और एक सौ चौंतीस रमैनियाँ मिली हैं। पदों, साखियों तथा रमैनियों के अतिरिक्त भी सौ रचनाएँ, भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के रूप में, ऐसी और प्राप्त होती हैं जिन्हें कबीरकृत कहा जाता है। अगर और खोज की जाए तो इनकी संख्या में वृद्धि ही होती जाएगी। कबीरपंथियों का तो विश्वास है कि सद्गुरु कबीर की वाणी अनंत है, उसकी संख्या का अनुमान वनस्पति-समुदाय के पत्तों और गंगा के बालुका-कणों से लगाया जा सकता है–

जेते पत्र बनस्पती, औ गंगा की रैन।
पंडित बिचारा क्या कहै, कबीर कही मुख बैन ॥

–बीजक, साखी 261।

4.1 कबीरवाणी की तात्विक समीक्षा

ऐसा अंश जो समस्त प्रतियों में समान रूप से मिलता हो, सुगमता से प्रामाणिक माना जा सकता है, किन्तु कबीर के सम्बन्ध में यह स्थिति कुछ विलक्षण है। एक भी पद ऐसा नहीं है जो सभी प्रतियों में समान रूप से मिलता हो, साखी केवल एक है जो सभी प्रतियों में मिलती है और रमैनी भी ऐसी कोई नहीं जो सभी प्रतियों में मिलती हो। प्रति भी ऐसी कोई नहीं मिलती जो कबीर के जीवन-काल की हो अथवा जिसकी परंपरा ही इतनी प्राचीन हो कि उसे निरापद रूप से कबीर के जीवन-काल का माना जा सके। पाठ-विकृतियाँ भी सभी प्रतियों में मिलती हैं। इस स्थिति में दावे के साथ यह कहना कठिन है कि कबीर की रचना कितनी और किस रूप में प्रमाणिक है। उनके कंठ से जो कुछ निकला वह वायु में विलीन हो गया; उसे न तो किसी यंत्र में बाँधा गया और न ही तुरन्त लिपिबद्ध किया गया।

नोट

यदि कोई ऐसा वैज्ञानिक आविष्कार हो जाए जिसके द्वारा शताब्दियों पूर्व किसी व्यक्ति के मुख से निकले हुए शब्द पुनः यथावत् उपस्थित किए जा सकें तभी पूर्ण निश्चय के साथ कबीर की वाणी का प्रमाणिकतम रूप स्थिर किया जा सकता है। उसके अभाव में दूसरा निरापद मार्ग है पाठ-सम्पादन के मान्य सिद्धान्तों के आधार पर समस्त उपलब्ध सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन कर उनका पारस्परिक सम्बन्ध स्थिर करना और तब उसकी सहायता से ऐसा पाठ निर्धारित करना जिसे यत्किंचित् मतवैभिन्य होते हुए भी सभी पूर्ववर्ती पाठों से प्राचीनतर अथवा दूसरे शब्दों में प्राचीनतम तथा प्रमाणिकतम माना जा सके। काल के स्थूल आवरण को भेदकर आलोच्य रचना के शताब्दियों पूर्व रूप तक पहुँचने का यही एक निरापद मार्ग है। संयोगवश यह प्रक्रिया मन की उस उल्टी साधना से मिलती है जिसका उपदेश सन्तों ने दिया और जिसे उन्होंने अपनी करनी में भी उतारा। कबीर का कथन है–

मन कै मतै न चालिए, छांड़ि जीव की बांनि।
ताकू केरा तार ज्यौं, उलटि अपूठा आंनि ॥ –क. ग्रं., साखी 29-23।

यही सिद्धान्त पाठ-निर्धारण में भी सहायक होता है। उपलब्ध प्रतियों के वर्तमान साक्ष्यों को आँख मूँदकर मान लेने की 'बानि' अच्छी नहीं होती, बल्कि 'अपूठा' (उल्टा) चलकर उनके पूर्व रूप की खोज करने में ही उनकी सहायता लेनी चाहिए।

कबीर-वाणी की विषम पाठ-समस्या को सुलझाने के लिए जो प्रक्रिया अपनायी गयी है उसे पाठ-सम्पादन की पारिभाषिक शब्दावली में कहा जा सकता है कि पहले विभिन्न प्रतियों का परीक्षण और फिर उनका पारस्परिक पाठ-मिलान कर अत्यन्त सतर्कतापूर्वक निर्धारित समस्त 'निश्चेष्ट' तथा 'सचेष्ट' पाठ-विकृतियों की सहायता से उनका पाठ-सम्बन्ध निर्धारित किया गया है और तदनंतर केवल उन्हीं रचनाओं को कबीरकृत स्वीकृत किया गया है जो किन्हीं भी दो या अधिक ऐसी प्रतियों में मिलती हैं जिनमें किसी प्रकार का संकीर्ण-सम्बन्ध' नहीं है, अर्थात् जिनमें पाठ सम्बन्धी ऐसी विकृतियाँ (जानबूझकर अथवा अनजान में की हुई) समान रूप से नहीं पाई जातीं जिनका आविर्भाव कवि के मूल पाठ का परवर्ती सिद्ध होता हो और इसी आधार पर उन रचनाओं का पाठ भी निर्धारित किया गया है।

क्या आप जानते हैं कबीर की प्रमाणिक रचना के रूप में दो सौ पद या शबद, बीस रमैनियाँ, एक चौंतीसी रमैनी तथा साढ़े सात सौ के लगभग साखियाँ प्राप्त होती हैं।

इस प्रकार उपलब्ध सामग्री में से कबीर की प्रमाणिक रचना के रूप में दो सौ पद या शब्द, बीस रमैनियाँ, एक चौंतीसी रमैनी तथा साढ़े सात सौ के लगभग साखियाँ प्राप्त होती हैं।

यहां प्रस्तुत कबीरवाणी का पाठ इतःपूर्व सभी संस्करणों से अधिक विश्वसनीय है–यह बात दो-चार स्थूल उदाहरणों से अधिक स्पष्ट हो सकेगी। कबीर का एक पद 'कबीर-ग्रंथावली' में इस प्रकार है–

मेरी मेरी करता जनम गयौ।
जनम गयौ परि हरि न कह्यौ ॥ टेक ॥
बारह बरस बालपन खोयौ बीस बरस कछु तप न कियौ।
तीस बरस तैं राम न सुमिरयौ फिरि पछिताना विरिध भयौ ॥
सूखे सरवरि पालि बंधावै लुनें खेति हठि बारि करै।
अयौ चोर तुरंगहिं लै गयौ मोहड़ी राहत मुग्ध फिरै ॥2॥
सीस चरन कर कंपन लागे नैंन नीरु असराल बहै।
जिभ्या बचन सूध नहिं निकसै तब सुक्रित की बात कहै ॥3॥ इत्यादि।

नोट

निरंजनी सम्प्रदाय की पोथी में उपुर्यक्त पद की पाँचवीं पंक्ति के 'सरवरि' (= सरोवर में) के स्थान पर 'तरवरि' (= पेड़ पर) पाठ मिलता है और 'गुरुग्रंथसाहब' में जो कबीर-वाणी का अत्यधिक श्रेष्ठ पाठ प्रदान करता है और अब तक की प्राप्त प्रतियों में कालक्रम की दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन है, 'हठि बारि करै' के स्थान पर 'हथवारि करै' पाठ मिलता है। पालि (सं.) तालाब के चारों ओर के ऊँचे कगार को कहते हैं, तुल. जायसी, पदमावत 60-6: 'पालि जाइ सब ठाढ़ी भई।' इस प्रसंग में निरंजनी सम्पद्राय के 'तरवरि' पाठ की भ्रांति स्पष्ट है। गुरुग्रंथसाहब के 'हथवारि' पाठ का भी यहाँ कोई प्रसंग-सम्मत अर्थ नहीं निकलता। इसके विपरीत 'हठि बारि करै' जो अन्य प्रतियों का पाठ है, का अर्थ है– हठात् रोक लगाता है; और यही इस प्रसंग में उपयुक्त प्रतीत होता है। इसी प्रकार छठवीं तथा सातवीं पंक्तियों में तुरंगहिं, मोहड़ी, नैन, तथा असराल के स्थान पर गुरुग्रंथ-साहब में क्रमशः तुरंतह, मेरी, नैनी और असार पाठ मिलते हैं जो भ्रमात्मक हैं। 'तुरंतह' पाठ ग्रहण करने से वाक्य में कर्म का लोप हो जाता है, 'मेरी' पाठ ग्रहण करने से 'मेरी राखत' निरर्थक हो जाता है; 'नैनी' स्पष्ट ही पंजाबी प्रभाव के कारण है और 'असराल' (= निरंतर) के स्थान पर असार' लिपिभ्रम के कारण हो गया है जिससे अर्थ का अपकर्ष होता है।

नोट्स पालि (सं.) तालाब के चारों ओर के ऊँचे कगार को कहते हैं।

उपर्युक्त पाठ-विकृतियों के कारणों की खोज करने से उनका इतिहास भी स्पष्टतया दृष्टिगोचर होने लगता है। इनमें से अधिकांश विकृतियाँ ऐसी हैं जो यह संकेत करती हैं कि जिस प्रति पर इन पाठों को प्रस्तुत करने वाली प्रतियाँ आधारित हैं वह कदाचित् फारसी लिपि में थी। इस सम्भावना का सबसे सटीक उदाहरण उपर्युक्त पाठांतरों में गुरुग्रंथसाहब का 'हथवारि' पाठ है। पहले उर्दू में 'ते' के ऊपर एक पड़ी लकीर खींचकर 'टे' बनाते थे। यदि यह लकीर जल्दी में भूल से छूट जाए तो 'ठ' का सरलता से 'थ' हो जाता है। 'हठि बारि' से 'हथवारि' बन जाने का और कोई दूसरा समाधान हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार अन्य पाठांतरों की विकृतियों के कारण भी संतोषजनक रूप से ढूँढ़े जा सकते हैं।

इस प्रकार अनेक शाखाओं की प्रतियों के आधार पर कार्य करने वाले सम्पादक के सम्मुख पर्याप्त सामग्री तथा साधन उपलब्ध होने के कारण अनेक पाठ-पाठांतर अपना-अपना इतिहास स्वयं बताते हुए उपस्थित हो जाते हैं और किंचित् विवेक से कार्य करने पर उनमें से उपयुक्त पाठ पुनर्निर्मित कर लेना बहुत कठिन कार्य नहीं होता, जबकि किसी एक शाखा या प्रति के पाठ पर आधारित रहने से उद्भट विद्वान् सम्पादक की दृष्टि भी सीमित रह जाने के लिए विवश हो जाती है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्राचीन कृतियों के सम्पादक के सम्मुख सम्पादनशास्त्र की सूक्ष्म तथा जटिल प्रक्रिया की समस्याएँ रहती ही हैं, साथ ही पाठों का निर्णय करने में भी इतने प्रकार के विकल्प आते हैं कि उनके सम्बन्ध में तनिक भी असावधानी से कार्य करने पर मार्गच्युत हो जाने का भय लगा रहता है। इसीलिए कुछ भ्रांतियों का रह जाना असंभव नहीं है।

टास्क कबीरवाणी की तात्विक विशेषता पर अपने मत प्रस्तुत कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. सभी प्रतियों में ..... मिलती है।
2. बारह बरस ..... खोया बीस बरस कछु तप न कियो।
3. ..... बिचारा क्या कहै, कबीर कही मुख बैन।

नोट

4.2 सारांश (Summary)

यदि कोई ऐसा वैज्ञानिक आविष्कार हो जाए जिसके द्वारा शताब्दियों पूर्व किसी व्यक्ति के मुख से निकले हुए शब्द पुनः यथावत् उपस्थित किए जा सकें तभी पूर्ण निश्चय के साथ कबीर की वाणी का प्रमाणिकतम रूप स्थिर किया जा सकता है।

कबीरवाणी की विषम पाठ-समस्या को सुलझाने के लिए जो प्रक्रिया अपनायी गयी है उसे पाठ-सम्पादन की पारिभाषिक शब्दावली में कहा जा सकता है कि पहले विभिन्न प्रतियों का परीक्षण और फिर उनका पारस्परिक पाठ-मिलान कर अत्यन्त सतर्कतापूर्वक निर्धारित समस्त 'निश्चेष्ट' तथा 'सचेष्ट' पाठ-विकृतियों की सहायता से उनका पाठ-सम्बन्ध निर्धारित किया गया है

4.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **सुगमता–** आसानी से
2. **कंठ–** गला

4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कबीरवाणी की तात्विक समीक्षा कीजिए।
2. कबीरवाणी में मौजूद मूल तत्वों को समझाइए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. साखी 2. बालपन 3. पंडित

4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. कबीरवाणी–*तिवारी पारसनाथ, अनीता प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।*
2. कबीर (जीवन और दर्शन)–*चंडक राम निवास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।*
3. कबीर-एक अनुशीलन–*वर्मा रामकुमार, साहित्य भवन, इलाहाबाद।*
4. कबीरवाणी-ज्ञानामृत–*आचार्य रामानुज सरस्वती, मनोज पब्लिकेशन, दिल्ली।*

नोट

इकाई 5

सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
5.1 सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ
5.1.1 भाव-पक्ष
5.1.2 कला-पक्ष
5.2 सारांश (Summary)
5.3 शब्दकोश (Keywords)
5.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
5.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे

- सूरदास की काव्यगत विशेषताओं को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

कृष्ण भक्त कवि सूरदास का जन्म 1478 ई. में दिल्ली-मथुरा रोड पर स्थित 'सीही' नामक गांव में हुआ था। इन्हें जन्मांध बताया जाता है, परन्तु कृष्ण-लीलाओं और प्रकृति-वर्णन की सजीवता उनके जन्मांध होने पर प्रश्नचिह्न लगाती है। 'सूरसागर' नामक रचना इनकी कीर्ति का आधार है। इनके द्वारा रची गई अन्य रचनाओं में 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी' प्रमुख हैं। 'सूरसागर' का भ्रमरगीत प्रसंग उल्लेखनीय है।

5.1 सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

सूरदास शृंगार, वात्सल्य एवं शांत रस के अद्वितीय कवि हैं। इनकी रचनाएं सजीवता का परिचय देती हैं। सूरदास अष्टछाप के कवि कहलाते हैं। समीक्षा की दृष्टि से सूरदास के काव्य में कई विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं–

5.1.1 भाव-पक्ष

भाव-पक्ष का सम्बन्ध अनुभूति पक्ष से है। कवि जो कुछ अनुभव करता है, संवेदनशील हृदय में जैसा धारण करता है, उसकी भावमयी अभिव्यक्ति भाव-पक्ष के अन्तर्गत की जाती है। भावुकता साहित्यकार का सबसे बड़ा गुण है। सूर का भाव-पक्ष अत्यन्त सरस और सबल है। सूर काव्य के भाव-पक्ष की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) **शृंगार-वर्णन**–सूरदास ने 'सूरसागर' में राधा, कृष्ण और गोपियों के अनेक संयोगकालीन चित्र प्रस्तुत किए हैं। सूर ने राधा-कृष्ण के प्रारम्भिक परिचय का आकर्षक वर्णन किया है। कृष्ण, राधा से पूछते हैं–

बूझत स्याम कौन तू गोरी?
कहाँ रहति काकी है बेटी? देखी नहीं कबहूँ ब्रज-खोरी ॥

नोट

इसके पश्चात् दोनों का सम्बन्ध घनिष्ठ हो जाता है। फिर तो किसी की परवाह न करके दोनों एक साथ घूमते हैं। गोपियाँ भी उनकी विविध-लीलाओं और क्रीड़ाओं में हिस्सा लेती हैं।

संयोग के साथ वियोग के भी अनेक चित्र मिलते हैं। कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। गोपियाँ, राधा, यशोदा, गोप एवं ब्रज के सभी जड़-चेतन, पशु-पक्षी उनके विरह में व्याकुल हो उठते हैं। यहाँ तक कि संयोगकालीन सभी सुखप्रद वस्तुएँ गोपियों को कष्ट देने वाली हो जाती हैं। वे कहती हैं–

"बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं।"
तब वे लता लागति अति सीतल,
अब भईं बिषम ज्वाला का पुंजैं॥

(ii) **वात्सल्य-चित्रण**–सूर ने कृष्ण की बाल-लीलाओं और क्रीड़ाओं का व्यापक एवं विस्तृत चित्रण किया है। माता यशोदा द्वारा कृष्ण को पालने में झुलाने, कृष्ण के घुटनों के बल चलने, किलकारी मारने, नाचने, गाएँ चराने जाने, माखन चुराने आदि के मनोहारी दृश्य 'सूरसागर' में प्रस्तुत किए गए हैं। हाथ में माखन लिए कृष्ण का यह चित्र देखिए–

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुवनि चलत रेनु तन मण्डित, मुख दधि लेप किए॥

माखन चोरी करने पर कृष्ण पकड़े जाते हैं; किन्तु वे बड़ी चतुराई से अपनी सफाई देते हैं–

मैया मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परै, ये सखा सबै मिली, मेरे मुख लपटायौ॥

(iii) **भक्ति-भावना**–सूर की भक्ति-भावना पुष्टिमार्ग से प्रभावित है, जिसमें भगवद्कृपा को सर्वोपरि माना गया है। इसके अतिरिक्ति सूर में दास्य-भाव, सख्य-भाव, माधुर्य-भाव, प्रेम-भाव और नवधा भक्ति के दर्शन भी होते हैं। सूर की भक्ति मुख्य रूप से सखा-भाव की है। सूर ने बड़ी चतुराई से काम लिया है। वे कृष्ण से अपने उद्धार की याचना करते हुए कहते हैं–

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज।
महा पतित, कबहूँ नहिं आयौ, नैकु तिहारे काज॥

(iv) **दार्शनिकता**–सूर के दार्शनिक विचार वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन न करते हुए उन्होंने सगुण भक्ति का प्रतिपादन किया है; क्योंकि निर्गुण ब्रह्म का कोई रूप, गुण और जाति नहीं है, अतः चंचल मन बिना किसी आधार के इधर-उधर भटकता रहता है–

रूप-रेख गुन जाति जुगती बिनु, निरालम्ब मन चक्रित धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातै, सूर सगुन लीला पद गावै॥

ब्रह्म के अतिरिक्त सूर ने जीव, जगत् और माया आदि पर भी विचार किया है। सूर ने ब्रह्म और जीवन को एक माना है तथा जीव को गोपाल का अंश भी बताया है; परन्तु जीव माया के कारण अपने स्वरूप को भूल जाता है। वे कहते हैं–

आपुनपौ आपुन ही बिसरयौ।
जैसे स्वान काँच मन्दिर में, भ्रमि-भ्रमि भूँकि मर्‌यौ॥

सूर ने माया का वर्णन गाय के रूप में किया है और प्रभु से प्रार्थना की है कि मायारूपी गाय से उसकी रक्षा करें–

माधौ नेकु हटकौ गाई।
भ्रमत निसि-बासर अपथ-पथ, अगह गहिं नहिं जाइ॥

वे जानते हैं कि जिस पर दीनानाथ श्रीकृष्ण कृपा कर दें, उसके समान कुलीन और सुन्दर कोई नहीं हो सकता–

जापर दीनानाथ ढरै।
सोई कुलीन, बड़ौ सुन्दर सोइ, जिहिं पर कृपा करै॥

नोट

इसीलिए वे अपने मन के इधर-उधर भटकने पर उसे फटकारते हैं कि हे मेरे धूर्त मन, गोविन्द के बिना इस संसार में तुझे सुख नहीं मिल सकता–

रे सठ, बिन गोबिंद सुख नाहीं।

तेरौ दुःख दूरि करिबे कौं रिधि-सिधि फिरि-फिरि जाँहीं ॥

संसार को क्षणभंगुर और मिथ्या मानते हुए सूर ने प्रभु से प्रार्थना की है–

''सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करो नन्दलाल।''

(v) **प्रकृति-चित्रण**–कृष्ण की लीलाओं का चित्रण करते समय सूर ने प्रकृति के विविध रूप प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने प्रकृति का उद्दीपन रूप में सर्वाधिक चित्रण किया है। वियोग काल में प्रकृति उद्दीपन का कार्य करती है। श्रीकृष्ण के विरह में प्रकृति गोपियों के विरह को और अधिक उद्दीप्त करती प्रतीत होती है–

कोऊ माई बरजो री या चंदहि।

अति ही क्रोध करत है हम पर,

कुमुदिनी कुल अनन्दहि ॥

प्रकृति का रोमांचक, आलम्बन, अलंकार और पृष्ठभूमि रूप भी सूर-काव्य में मिलता है।

(vi) **भावुकता एवं वाग्वैदग्ध्यता**–सूर में उच्चकोटि की भावुकता एवं वाग्वैदग्ध्यता के दर्शन होते हैं। 'भ्रमरगीत' प्रसंग इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। उद्धव द्वारा योग, ज्ञान और निर्गुण का सन्देश दिए जाने पर गोपियाँ कभी खीझ, कभी उपालम्भ, कभी व्यंग्य और कभी उपहास का आश्रय लेकर श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनन्य-प्रेम का परिचय देती हैं और अपने वाग्वैदग्ध्य से उद्धव को परास्त कर देती हैं। उद्धव पर व्यंग्य करती हुई वे कहती हैं–

बिलग जनि मानौ ऊधौ कारे।

वह मथुरा काजर की ओबरि, जे आवैं ते कारे ॥

(vii) **अलौकिकता एवं मौलिकता**–राधा-कृष्ण व गोपी-कृष्ण के प्रेम में सूर ने प्रेम की अलौकिकता के दर्शन कराए हैं। विषय-वस्तु में यद्यपि सूर ने 'श्रीमद्भागवत्' के दशम स्कन्ध को ही आधार बनाया है; परन्तु विषय-वस्तु में सर्वत्र मौलिकता विद्यमान है। उन्होंने कृष्ण को बहुत कम स्थलों पर अलौकिक प्रदर्शित किया है, अन्यथा वे सर्वत्र मानवीय रूप में ही चित्रित किए गए हैं। राधा की कल्पना और गोपियों के प्रेम की अनन्यता में भी कवि की मौलिकता दृष्टिगत होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. सूरदास ने ..... में राधा-कृष्ण और गोपियों के अनेक संयोगकालीन चित्र प्रस्तुत किये हैं।
2. सूरदास ने संसार को ..... और मिथ्या माना है।
3. राधा-कृष्ण व गोपी-कृष्ण के प्रेम में सूर ने प्रेम की ..... के दर्शन कराए हैं।

5.1.2 कला-पक्ष

कला-पक्ष का अभिप्राय अभिव्यक्ति पक्ष से होता है। कवि ने जो कुछ अनुभव किया; उसे उसने कितने सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया, यह कला-पक्ष का विषय है। साधारणतः कला-पक्ष में निम्नलिखित बातों पर विचार किया जा सकता है–

(i) भाषा (ii) चित्रमयता, (iii) अलंकार-योजना, (iv) छन्द, (v) शब्द-शक्तियाँ, (vi) गुण, (vii) मुहावरे और लोकोक्तियाँ।

नोट

(i) **भाषा**–काव्य में भाषा का स्थान महत्त्वपूर्ण है। सूर ने अपने इष्टदेव कृष्ण की विहार-भूमि ब्रज की भाषा को ही अपने काव्य की भाषा बनाया है। सूर की भाषा में कोमलकान्त पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, धाराप्रवाह, सजीवता, सप्राणता आदि मुख्य विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। सूर ने अपनी भाषा को विविध प्रकार के शब्दों द्वारा समृद्ध किया है। सूर की विशेषता यह है कि उन्होंने विदेशी शब्दों को भी देशी भाषा के रस में सिक्त कर, उन्हें काव्य-सौष्ठव बढ़ाने की क्षमता देकर प्रयुक्त किया है। नीचे विविध प्रकार के शब्दों के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं–

तत्सम शब्द–खगपति, अभिराम, पन्नग, मुकुलित, सायक, सत्वर, त्राहि-त्राहि, वसुधा, पिनाक, करम, दम्पती, निरालम्ब, भगिनी, नारिकेल, प्रतीत, कलेवर, कलत्र, चिबुक, जलज, परिवेश आदि।

तद्भव शब्द–अनुभवत, कोखि, काठ, आखर, औसर, मोक्त, लिलार, तिप, जदपि, कोरा, जीभ, जलज, धरनी, खम्ब, भौन, बीता, मसान, मूसे आदि।

ग्रामीण शब्द–टकटोरत, डहकावै, डाटे, ढोरत, धुकधुकी, मूड़, करतूति, ढूकि आदि।

अनुकरणात्मक शब्द–अनुकरणात्मक शब्दों की विशेषता यह है कि उनकी ध्वनि ही अर्थ को बहुत-कुछ व्यक्त कर देती हैं। उदाहरणतः,

किलकिलात, टनटनात, अर्‌र्‌रात, घहरानि, भहरात आदि।

विदेशी शब्द–सूर के काल में फारसी राजभाषा थी। अतः सूर ने फारसी शब्द अपनाने में हिचक नहीं की। सूरकाव्य में प्रयुक्त अरबी, फारसी के कुछ शब्द इस प्रकार हैं–

फारसी–आवाज, आब, चुगली, दरबार, दाग।

अरबी–अगल, आखिर, आदमी, अरज, गरीब।

(ii) **चित्रमयता**–सूर की भाषा की एक विशेषता उसकी चित्रात्मकता है। वे जिस बात या घटना का वर्णन करते हैं, उसका एक चित्र-सा खड़ा कर देते हैं। सूर के काव्य में विविध प्रकार के चित्र मिलते हैं, जैसे रूप-चित्र, भाव-चित्र, स्वभाव-चित्र, संश्लिष्ट चित्र; यथा–

खेलत मैं को काकौ गुसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस हीं कत करत रिसैयाँ॥
जाति-पाँति हमतें बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।।

नोट्स सूर की भाषा में कोमलकान्त पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, धाराप्रवाह, सजीवता, सप्राणता आदि मुख्य विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

(iii) **अलंकार-योजना**–सूरसागर में सभी अलंकारों के उदाहरण मिल जाते हैं। जहाँ एक ओर सूर सरल भाषा में भाव व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं, वहीं दूसरी ओर भाषागत चमत्कार लाने के लिए अप्रस्तुत योजना का भी सफलतापूर्वक निर्वाह कर लेते हैं। सूर ने सांगरूपक का सबसे अधिक प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त सूरदास ने निम्नलिखित अलंकारों का भी प्रयोग किया है–

विरोधाभास, यथासंख्य, विभावना, अन्योक्ति, समासोक्ति, प्रतीप, सन्देह, प्रतिवस्तूपमा, वक्रोक्ति, भ्रान्तिमान्, श्लेष, अनुप्रास, व्यतिरेक, परिकर, पर्यायोक्ति, परिसंख्या, उत्प्रेक्षा और उपमा आदि।

कुछ अलंकारों के उदाहरण देखे जा सकते हैं–

रूपक–

हमारे हरि हारिल की लकड़ी।

उपमा एवं उत्प्रेक्षा–

कदली दल सी पीठि मनोहर, सो जनु उलटि दई

नोट

रूपकातिशयोक्ति–

अद्‌भुत एक अनुपम बाग।
जुगल कमल पर गजबर क्रीड़ति, तापर सिंह करत अनुराग ॥

अतिशयोक्ति–

सीतलचन्द अगिनि सम लागत, कहिए धीर कौन विधि धरिबौ।

अन्योक्ति

मधुकर पीतवदन केहि हेंत।
जनु अन्तर मुख पांडु रोग भयौ, जुबतिन जो दुःख देत ॥

(iv) **छन्द**–सूर के काव्य में छन्द-वैविध्य है। सूर के काव्य में पिंगलशास्त्रीय छन्दों की अपेक्षा संगीतशास्त्रीय राग-रागनियाँ ही अधिक हैं। उन्होंने जितनी राग-रागनियों का प्रयोग किया है उनमें से बहुत-सी राग-रागनियों का तो अभी तक नामकरण भी नहीं हो पाया है। सूर ने 'पद' का अधिक प्रयोग किया है।

(v) **शब्द-शक्तियाँ**–सूर ने तीनों प्रकार की शब्द-शक्तियों–अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का सफल प्रयोग किया है। सूर का काव्य लक्षणा शक्ति के लिए बहुत प्रसिद्ध है। कहावतों के प्रयोग में लक्षणा शक्ति का सौन्दर्य सबसे अधिक निखरता है। लक्षणा शक्ति के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं–

(1) दाख छाड़ि के कटुक निबौरी को अपने मुख खैहै।

(2) **मधुबन तुम क्यौं रहत हरे**
सूर के काव्य में व्यंजना शक्ति के भी पर्याप्त स्थल हैं; जैसे–

(1) **बिलगि जनि मानौ ऊधौ कारे।**
वह मथुरा काजर की ओबरि, जे आवैं ते कारे।।

(2) **प्रकृति जोइ जोके अंग परी।**
स्वान-पूँछ कोटिक जा लागै सूधि न काहु करी।।

(3) **नन्द ब्रज लीजै ठोकि बजाइ।**

क्या आप जानते हैं कहावतों के प्रयोग से लक्षणा शक्ति का सौन्दर्य सबसे अधिक निखरता है।

(vi) **गुण**–काव्य के प्रमुख गुण तीन माने गए हैं–माधुर्य, ओज और प्रसाद। 'साहित्य-लहरी' और 'सूरसागर' के दृष्टकूट पदों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र सूर-काव्य में माधुर्य गुण का बाहुल्य है। ओजगुण अपेक्षाकृत कम ही है; यथा–

(1) किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत।
मनिमय कनक नन्द के आँगन, मुख प्रतिबिम्ब पकरिबे धावत।।

(2) साँवरेहि बरजति क्यौ जु नहीं।
कहा करौं दिन प्रति की बातैं, नाहिंन परतिं सही।।

(vii) **मुहावरे और लोकोक्तियाँ**–सूरकाव्य में प्रयुक्त लोकोक्तियाँ व मुहावरे भाषा की रूढ़ता के माध्यम न होकर सशक्त अभिव्यंजना के प्रसाधन हैं। उनसे सूर के भाषा-समृद्धि, उनके सामाजिक अनुभव व सामाजिक पर्यवेक्षण का ज्ञान होता है। सूर ने लोकोक्तियों और मुहावरों का बड़ा सफल प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं–

मुहावरे–(1)..... बकती कहा बाँसुरी कहि-कहि।

(2) .....आँख धूरि की दीन्हीं।

नोट

(3) .....जिय उमगत।

(4) .....तारे गिनत।

लोकोक्ति–(1) जाहि लगै सोई पै जानै।

(2) अपने स्वारथ के सब कोऊ।

(3) कथा कहत मासी के आगे, जानत नानी नानन।

(4) जाके हाथ पेड़ फल ताको।

इस प्रकार भाव और कला पक्ष दोनों दृष्टियों से सूर का काव्य समृद्ध है। शृंगार और वात्सल्य के तो वे सम्राट हैं। भक्ति, दर्शन, वाग्वैदग्ध्य और प्रकृति-चित्रण में भी वे अनूठे हैं। भाषा के सैद्धान्तिक (शब्द-भण्डार व मुहावरे) और व्यावहारिक (गुण, शब्द-शक्ति) पक्षों की दृष्टि से भी उनका काव्य सफल है।

उनकी प्रशंसा करते हुए आलोचकों ने यहाँ तक कह दिया है–

तत्त्व-तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी।

बची खुची कबिरा कही, और कही सो जूठी ॥

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. किन रसों के प्रयोग के लिए सूरदास को सम्राट माना जाता है?

   (अ) शृंगार और वात्सल्य (ब) शांत और शृंगार (स) करुण और वात्सल्य (द) इनमें से कोई नहीं

5. सूर ने अपने काव्यों में लोकोक्तियों और ..... का सफल प्रयोग किया है?

   (अ) मुहावरे (ब) अलंकार (स) छन्द (द) इनमें से कोई नहीं

6. सूरदास के काल में किस भाषा को 'राजभाषा' का दर्जा प्राप्त था?

   (अ) अंग्रेजी (ब) उर्दू (स) फारसी (द) हिन्दी

5.2 सारांश (Summary)

सूर ने कृष्ण की बाल-लीलाओं और क्रीड़ाओं का व्यापक एवं विस्तृत चित्रण किया है। सूर की भक्ति-भावना पुष्टिमार्ग से प्रभावित है, जिसमें भगवद् कृपा को सर्वोपरि माना गया है। सूर में उच्चकोटि की भावुकता एवं वाग्वैदग्ध्यता के दर्शन होते हैं। 'भ्रमरगीत' प्रसंग इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। सूर के काल में फारसी राजभाषा थी। सूर के काव्य में तत्सम, तद्भव ग्रामीण व विदेशी शब्दों की प्रचुरता है।

5.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **लोकोक्ति–** कम शब्दों में व्यापक अर्थ देने वाली तथा आम जनता में लोकप्रिय उक्ति।
2. **उर–** हृदय

5.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सूरदास के काव्य में मौजूद कला पक्ष का वर्णन कीजिए।

नोट

2. 'सूरदास के काव्य में भाव-पक्ष और कला-पक्ष का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है।' उदाहरण देकर समझाइए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. सूरसागर 2. क्षणभंगुर 3. अलौकिकता 4. (अ)
5. (अ) 6. (स)

5.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सूरसागर–*सूरदास कृत।*
2. सूर की काव्य कला–*गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।*
3. सूरदास के पद–*गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।*

नोट

इकाई 6

सूरदास की भक्ति-भावना

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
6.1 सूरदास की भक्ति-भावना
6.2 सारांश (Summary)
6.3 शब्दकोश (Keywords)
6.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
6.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सूरदास की कृष्ण भक्ति को जानने में।
- सूरदास द्वारा किए गए कृष्ण एवं राधा के प्रेम के वर्णन को समझने में।
- सूरदास द्वारा किए गए कृष्ण एवं गोपियों के प्रेम भाव के चित्रण को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भक्त प्रवर सूरदास भक्तिकाल की सगुणधारा के कृष्ण भक्त कवि हैं। वे वल्लभाचार्य के शिष्य थे तथा अष्टछाप के कवियों में सर्वप्रमुख थे। भक्ति के क्षेत्र में वल्लभाचार्य का साधना मार्ग 'पुष्टि मार्ग' के नाम से जाना जाता है। वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने से पहले सूरदास एक 'सन्त' थे जो सभी उपासना पद्धतियों, भक्ति प्रणालियों को समान भाव से देखते थे। उनके प्रारम्भिक पद विनय, आन्तरिक साधना, गुरु का महत्त्व, आदि से सम्बन्धित हैं, किन्तु पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने के उपरान्त जो पद उन्होंने रचे वे प्रेमलक्षणा भक्ति से सम्बन्धित हैं।

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में दशम अध्याय के अन्तर्गत 'पुष्टि' को परिभाषित करते हुए कहा गया है–'पोषणं तदनुग्रह' अर्थात् ईश्वर का अनुग्रह (कृपा) ही पोषण है। भगवत्कृपा से ही भक्त के हृदय में भगवान के प्रति प्रेमलक्षणा भक्ति जाग्रत होती है। पुष्टि मार्ग में तीन प्रकार के जीव माने गए हैं–

1. पुष्टि जीव–जो भगवान के अनुग्रह पर विश्वास करते हैं और उनकी 'नित्यलीला' में प्रवेश पाते हैं।

2. मर्यादा जीव–जो वेद विहित मार्ग का अनुसरण कर स्वर्ग प्राप्त करते हैं।

3. प्रवाह जीव–जो संसार के प्रवाह में पड़कर सांसारिक सुखों में लीन रहते हैं। इन तीनों में पुष्टि जीव ही सर्वोपरि है। ईश्वर पर पूर्णतः निर्भर जीव ही उसके अनुग्रह का अधिकारी बनता है और अन्त में 'नित्यलीला' में सम्मिलित होता है। गोपियों की प्रेम भक्ति को पुष्टिमार्गी भक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण माना गया है।

6.1 सूरदास की भक्ति-भावना

महात्मा सूरदास ने अपना सर्वस्व कृष्ण के चरणों में अर्पित कर पुष्टि मार्ग को अपनाया था। भगवान श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं और दिव्य गुण सम्पन्न पुरुषोत्तम हैं। वे कृष्ण स्वयं प्रेममय हैं। उन्होंने प्रेम के वशीभूत होकर ही ब्रह्म में

नोट

अवतार लिया है। सूर ने प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भक्त की विकलता, अभिलाषा एवं विवशता का सुन्दर चित्रण किया है।

सूरदास की भक्ति 'सख्य भाव' की है जिसमें भगवान के साथ भक्त का 'सखा भाव' रहता है। सूरदास ने पुष्टिमार्गीय सेवा भाव को अपनाते हुए भक्ति के तीनों रूप-गुरु सेवा, सन्त सेवा तथा प्रभु सेवा–को अपनी भक्ति भावना में स्थान दिया है। पुष्टिमार्ग में नित्य सेवा विधि एवं वार्षिकोत्सव सेवा विधि का विशेष महत्त्व है। सूर ने प्रातःकाल से लेकर शयनपर्यन्त भगवान की सेवा विधि का वर्णन अपने काव्य में किया तथा वार्षिकोत्सव सेवा विधि के अन्तर्गत उन्होंने विभिन्न अवतारों का पूरा-पूरा वर्णन किया है।

पुष्टिमार्ग में तीन आसक्तियां बताई गई हैं–1. स्वरूपासक्ति, 2. लीलासक्ति, 3. भावासक्ति। सूरदास ने लीलासक्ति को अपनाते हुए भगवान कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का गान अपने पदों में किया है। सूरदास के गुरु वल्लभाचार्य जी ने उन्हें कृष्ण के लीला पदों का गान करने का ही निर्देश दिया था इसीलिए सूर ने भक्ति विभोर होकर गोकुल से लेकर मथुरा तक की समस्त कृष्णलीलाओं को अपने पदों का विषय बनाया है।

सूरदास ने सख्य भाव की भक्ति को अपनाते हुए भी कृष्ण के प्रति नन्द-यशोदा के वात्सल्य भाव का तथा राधा एवं गोपियों के दाम्पत्य एवं माधुर्य भाव की सुन्दर व्यंजना की है। गोपी लीला के अन्तर्गत कृष्ण एवं गोपियों के जिस प्रेम का चित्रण सूरदास ने किया है उसमें उनकी भक्ति-भावना पराकाष्ठा पर पहुंची दिखाई पड़ती है।

सूर की भक्ति पद्धति का मेरुदण्ड पुष्टिमार्ग ही है। भगवान का अनुग्रह ही भक्त का कल्याण करके उसे इस लोक से मुक्त करने में सफल होता हैः

जापर दीनानाथ ढरै।

सोइ कुलीन बड़ौ सुन्दर सोइ जा पर कृपा करै।

सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु नेक ढरै ॥

नारद भक्ति सूत्र में आसक्तियों के एकादश रूप बताए गए हैं जिनमें से सूर का मन सख्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति, रूपासक्ति, कान्तासक्ति और तन्मयासक्ति में अधिक रमा है। कृष्ण गोपियों के हृदय में ऐसे गड़ गए हैं कि अब वे किसी तरह निकलते ही नहीं, गोपियों की इसी 'तन्मयासक्ति' का वर्णन इस पद में है':

उर में माखन चोर गड़े।

अब कैसेहूं निकसत नहिं ऊधौ तिरछै हैजु अड़े ॥

नोट्स भक्ति के दार्शनिक स्वरूप को ध्यान में रखते हुए सूरदास ने वल्लभाचार्य के 'शुद्धाद्वैतवाद' की मान्यताओं को ग्रहण किया है।

'विरहासक्ति' को भ्रमरगीत के पदों में देखा जा सकता है। भक्ति के दार्शनिक स्वरूप को ध्यान रखते हुए सूरदास ने वल्लभाचार्य के 'शुद्धाद्वैतवाद' की मान्यताओं को ग्रहण किया है। जीव को ब्रह्म का अंश मानते हुए वे उन दोनों का अद्वैत सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। जीव की दुरावस्था माया के कारण होती है। यदि माया का प्रपंच न हो तो जीव शुद्ध एवं अविकारी है। माया के कारण ही जीव जगत के प्रपंच में फंसता है, इसीलिए सूर कृष्ण से जो मायापति हैं, इस माया का निवारण करने का अनुरोध करते हैंः

माधवजी नेकु हटकौ गाय।

वल्लभाचार्य ने जगत और संसार दोनों को पृथक्-पृथक् स्वीकार करते हुए जगत को सत्य और संसार को असत्य माना है। जगत ईश्वर की इच्छा से निर्मित ईश्वर के सत् अंश का विस्तार है जबकि संसार अविद्या के कारण

नोट

उत्पन्न होता है और नश्वर है। कामिनी, कंचन, शरीर, भौतिक पदार्थ, वैभव ये सभी संसार है जबकि सृष्टि का अनादि प्रवाह जगत है। जगत ब्रह्म की शक्ति है जबकि संसार जीव की अविद्या का परिणाम है।

क्या आप जानते हैं कामिनी, कंचन, शरीर, भौतिक पदार्थ, वैभव आदि सब संसार है जबकि सृष्टि का अनादि प्रवाह जगत है।

सूर ने 'सायुज्य मुक्ति' को महत्त्व दिया है जिसमें जीव ईश्वर के साथ एकीभाव को प्राप्त हो जाता है। सूरदास वस्तुतः भक्त कवि हैं अतः उनके पदों में दार्शनिक नीरसता के स्थान पर माधुर्य भाव से परिपूर्ण भक्ति की सरसता ही अधिक दिखाई पड़ती है। सूरदास की भक्ति रागानुगा भक्ति है जिसमें 'कर्मकाण्ड' का स्थान नहीं है। उनकी भक्ति भावना में सिद्धान्त पक्ष की अपेक्षा माधुर्य भाव की प्रबलता है इसीलिए वह भक्तों को अधिक प्रिय है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. सूरदास की भक्ति ..... की है।
2. सूरदास के गुरु ..... ने उन्हें कृष्ण के लीला पदों का गान करने का निर्देश दिया था।
3. पुष्टि मार्ग में तीन ..... बताई गई हैं।

6.2 सारांश (Summary)

वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने से पहले सूरदास एक 'सन्त' थे जो सभी उपासना पद्धतियों, भक्ति प्रणालियों को समान भाव से देखते थे।

सूरदास की भक्ति 'सख्य भाव' की है जिसमें भगवान के साथ भक्त का 'सखा भाव' रहता है। सूरदास ने पुष्टिमार्गीय सेवा भाव को अपनाते हुए भक्ति के तीनों रूप-गुरु सेवा, सन्त सेवा तथा प्रभु सेवा–को अपनी भक्ति भावना में स्थान दिया है।

सूरदास ने सख्य भाव की भक्ति को अपनाते हुए भी कृष्ण के प्रति नन्द-यशोदा के वात्सल्य भाव का तथा राधा एवं गोपियों के दाम्पत्य एवं माधुर्य भाव की सुन्दर व्यंजना की है।

6.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **वल्लभाचार्य**–महाकवि सूरदास के गुरु।
2. **पुष्टिमार्ग**–जिसे ईश्वर के अनुग्रह का पोषण प्राप्त हो, ईश्वर प्राप्ति का मार्ग।

6.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सूरदास भक्ति की किस धारा के कवि थे?
2. पुष्टिमार्ग में कितने प्रकार के जीव माने गए हैं? उल्लेख कीजिए।
3. पुष्टिमार्ग की आसक्तियों का वर्णन कीजिए।

नोट

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. सख्य भाव 2. वल्लभाचार्य 3. आसक्तियाँ

6.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सूरसागर–*सूरदास कृत।*
2. सूर की काव्य कला–*गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।*
3. सूरदास के पद–*गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।*

नोट

इकाई 7

सूरसागर का सार (गोकुल लीला)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
7.1 सूरसागर का सार (गोकुल लीला)
7.1.1 शृंगार-पदः संयोग शृंगार
7.2 सारांश (Summary)
7.3 शब्दकोश (Keywords)
7.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
7.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' की व्याख्या समझने में।
- कृष्ण-यशोदा के वात्सल्य भाव को समझने में।
- श्रीकृष्ण की बाल-छवि को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सूरदास का वात्सल्य वर्णन हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है। श्रीकृष्ण के बाल सौंदर्य की झांकी के साथ-साथ बाल मनोविज्ञान का जैसा चित्रण सूरकाव्य में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। बालक की चेष्टाएं, माता के हृदय की आशंकाएं, पुत्र के प्रति वात्सल्य भाव, बाल-वृत्तियों का निरूपण आदि का मनोहारी चित्रण सूरदास ने किया है। सूरदास ने 'गोकुल लीला' में बाल कृष्ण की लीलाओं का चित्ताकर्षक एवं मनोहारी चित्र अंकित करने में जैसी सफलता प्राप्त की है, वैसी किसी को नहीं मिल सकी है। कृष्ण कहीं घुटनों के बल चल रहे हैं, तो कहीं मुख पर दधि का लेप किए दौड़ रहे हैं। कहीं अपने प्रतिबिंब को पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं, तो कहीं किलकारी भर रहे हैं। एक चित्र देखिएः

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरून चलत रेनु तन मण्डित मुख दधि लेप किए।

7.1 सूरसागर का सार (गोकुल लीला)

गोकुल लीला

सोभा-सिंधु न अंत रही री।
नंद-भवन भरि पूरि उमँगि चलि, ब्रज की बीथिनि फिरति बही री ॥
देखी जाइ आजु गोकुल मैं, घर-घर बेचति फिरति रही री।
कहँ लगि कहौं बनाइ बहुत बिधि, कहत न मुख सहसहु निबही री ॥

नोट

जसुमति-उदर-अगाध उदधि तैं, उपजनि ऐसी सबनि कही री।
सूरस्याम प्रभु इन्द्र-नीलमनि, ब्रज-बनिता उर लाइ गही री ॥

शब्दार्थ–सिंधु = सागर। पूरि = पूरी तरह से। बीथिनि = गलियों। विधि = प्रकार। उदर = कोख। उदधि = सागर। बनिता = स्त्रियों ने। लाइ = लगाकर। गही = ग्रहण करना।

प्रसंग–कंस कारावास में देवकी की कोख से उत्पन्न होने के तुरन्त बाद ही नवजात कृष्ण वृन्दावन में यशोदा के यहाँ आ गये थे। वृन्दावन में कृष्ण को यशोदा के गर्भ से उत्पन्न कहा–बताया गया। इसी नवजात कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का बखान करते हुए कोई ब्रज-गोपी अपनी सखी से कहती है–

व्याख्या–अरी सखी! उस (नवजात कृष्ण के रूप में सौन्दर्य की) शोभा रूपी समुद्र का कोई अन्त नहीं है (वह तो अथाह और असीम है)। वह तो (एक अगाध-असीम नदी की भाँति नन्द के भवन से पूरी तरह से भरे, उमड़ते हुए ब्रज की गलियों में प्रवाहित होने लगा है (अर्थात् नन्द के भवन में ही नहीं वरन् सारे ब्रज की गली-गली में बाल-कृष्ण के रूप-सौन्दर्य की चर्चाएँ होने लगी हैं)। (यह बात मैं कल्पना से या केवल सुनकर ही नहीं बता रही हूँ वरन्) मैंने स्वयं गोकुल जाकर इसको देखा है जबकि मैं घर-घर दही बेचती घूम रही थी (अतएव किसी एक स्थान पर ही नहीं वरन् घर-घर में ही इसकी चर्चा स्वयं सुनी-देखी है)। बहुत प्रकार से प्रयत्न करने पर भी मैं इस (रूप-सागर) का वर्णन कहाँ तक करूँ? इसका पूरा वर्णन तो हजार मुख वाले शेषनाग से भी नहीं हो सकता। सबने यही बताया है कि यशोदा के गर्भ रूपी अगाध सागर से इसका जन्म हुआ है और सूर के प्रभु नवजात कृष्ण नीलवर्णीय इन्द्रमणि के समान हैं जिसको ब्रज की स्त्रियों ने हृदय से लगाकर (सावधानीपूर्वक) रखा हुआ है।

विशेष–1. यहाँ पर कवि ने नवजात शिशु (कृष्ण) के सौन्दर्य का अतिशयोक्तिपरक किन्तु मनोरम अंकन किया है। 2. अलंकार–(क) रूपक–सोभा....बही री। जसुमति.....उदधि, पभु.....नीलमनि। (ख) अतिशयोक्ति–सोभ. ....रही, कहँ.....निबहि री। (ग) अनुप्रास–ब्रज की बीथिनी, ब्रज-बनिता। (घ) पुनरुक्ति–घर-घर। 3. 'री' लोकप्रचलित सम्बोधन से पद में स्वाभाविकता आ गयी है। 4. भावसाम्य–

(क) वेग चलौं तो चलौं उत को, कवि तोष कहै, ब्रजराज दुलारे।
वे नद चाहत सिंधु भए पुनि सिंधु तो हुए जलाहल सारे।। –तोष

(ख) गोपिनु के असुवनु भरी सदा असीस अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही, बगर बगर कै बार।। –बिहारीः सतसई

(ग) गोरिन के असुवान के नीर, पनारे बहे बहिके भए नारे।
नारेहु हू सो भइ नदियाँ, नदिया नद है गए काटि कगारे।। –तोष

(घ) अश्रु सलिल बूड़त सब गोकुल सूर सुनकर गहि लीजै। –सूरदास

लाल हौ वारी तेरे मुख पर।
कुटिल अलक, मोहनि-मन बिहँसनि, भृकुटि विकट ललित नैननि पर ॥
दमकति दूध-दंतुलिया बिहंसत मनु सीपज घर कियौ बारिज पर।
लघु लघु लट सिर घूंघरवारी, लटकन लटकि रह्यौ माथे पर ॥
यह उपमा कापै कहि आवै, कछुक कहौं सकुचित हौं जिय पर।
नव तन-चन्द्र रेख-मधि राजत, सुरगुरु-सुक्र-उदोत परस्पर ॥
लोचन लोल कपोल ललित अति, नासा कौ मुकता रदछद पर।
सूर कहा न्यौछावर करियै अपने लाल ललित लरखर पर ॥

शब्दार्थ–हौं = मैं। बारी = न्यौछावर। कुटिल = टेढ़ी, घुंघराली। अलक = केश। मोहनि = मन-मोहक। बिहँसनि = मुस्कान। भृकुटि = भौं। बिकट = घनी, टेढ़ी। ललित = सुन्दर। सीपज = मोती। बारिज = जल से उत्पन्न होने वाला, कमल। कापै = किस पर। मधि = चन्द्रमा। सुरगुरु = देवताओं के गुरु, बृहस्पति। उदोत = प्रकाशित। लोल = सुन्दर। कपोल = गाल। ललित = सुन्दर। नासा = नासिका। रदछद = होंठ। लरखर = लटों।

नोट

प्रसंग–बालकृष्ण के रूप सौन्दर्य को देख और उससे (वात्सल्य भाव में भरकर) प्रभावित होते हुए माता यशोदा कहती हैं–

व्याख्या–हे पुत्र (कृष्ण)! मैं तेरे मुख (की सुन्दरता) पर बलिहारी जाती हूँ। तेरी घुँघराली केश-लटों, मनमोहक मुस्कान और सुन्दर नेत्रों पर स्थित बंकिम भौहें अत्यधिक मनमोहक हैं। हँसते हुए दूध के दो दाँत इस प्रकार दमकते हैं मानों कमल (रूपी मुख-होठों) पर मोतियों (रूपी दाँतों) ने घर कर लिया हो। तुम्हारी घुंघराली केश-लटें, मुस्कान तथा सुन्दर नेत्रों पर स्थित बंकिम भौहें मन को मोहित करने वाली हैं। हँसते समय दूध के छोटे-छोटे दाँत इस प्रकार चमकते हैं मानो (जल में उत्पन्न होने वाले) कमल पर (सीपी से उत्पन्न होने वाले) मोतियों ने निवास किया हुआ हो। सिर पर स्थित घुंघराले केशों की छोटी-छोटी लटें तुम्हारें माथे पर लटकी हैं। इनकी उपमा किसके कहने में आ सकती है (क्योंकि यह तो अनुपम है) फिर भी कुछ सकुचाते हुए कहती हूँ कि (ऐसा प्रतीत होता है) मानो नये द्वितीया के चन्द्र के मध्य देवगुरु बृहस्पति और शुक्र परस्पर मिलकर प्रकाश कर रहे हों। तुम्हारे नेत्र और गाल सुन्दर हैं तथा नाक में पहना गया मोती होठों पर (प्रतिबिम्बित होकर) दमक रहा है। अपने पुत्र कृष्ण पर क्या-क्या न्यौछावर करूँ?

विशेष–1. यहाँ पर माता यशोदा के वात्सल्यमय हृदय की झांकी एकदम स्वाभाविक और मनोविज्ञानसम्मत रूप में प्रस्तुत की गई है। 2. बालकृष्ण के सौन्दर्य का काव्यात्मक अंकन सूर की काव्य-प्रतिभा का परिचायक बन पड़ा है। 3. अलंकार–(क) अनुप्रास–दमकति.....दंतुलिया, लघु.....लट, लोचन लाल, लाल.....लरखर। (ख) उत्प्रेक्षा–मनु सीपज.....बारिज पर। (ग) पुनरुक्ति–लघु-लघु। (घ) उपमा–नव.....परस्पर। (ङ) अतिशयोक्ति–यह .....जिय पर। 4. भावसाम्य–

(क) वर दंत की पंगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की ॥
घुघरारि लटैं, लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लाल कपोलन की।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाऊँ लला, इन बोलन की ॥ –तुलसी : कवितावली

(ख) ललन हौं या छबि ऊपर वारी।
सुन्दरता को पार न पावति, रूप देखि महतारी ॥ –सूरदास

(ग) लालन वारि या मुख ऊपर।
सरबस मैं पहिलै ही वार्‌यौ, नान्हीं नान्हीं दंतुली दू पर।
अब कहा करौ निछावरि, सूरज, सोचति अपने लालन जू पर। –सूरदास

5. वात्सल्य से ओतप्रोत इस प्रकार के पद कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-क्षमता के परिचायक तो हैं ही, कवि के जन्मान्ध होने पर भी प्रश्नवाचक चिन्ह लगा देते हैं।

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन मंडित, मुख दधि लेप किए ॥
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त मधुपगन मादक मधुहिं पिए ॥
कठुला कंठ बज्र केहरि-नख; राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सतकाल्प जिए ॥

शब्दार्थ–नवनीत = माखन। कर = हाथ। घुटुरुनि = घुटनों के बल। रेनु = धूल। मंडित = युक्त, सजा हुआ। दधि = दही। चारू = सुन्दर। लोचन = नेत्र। गोरोचन = गोबर। मधुपगन = भ्रमर समूह। कठुला = ताबीज। बज्र = मणि। केहरि-नख = शेर का नाखून। रुचिर = सुन्दर। हिए = हृदय। का = क्या। सत = शत।

प्रसंग–घुटनों के सहारे चलने वाले बालकृष्ण के मनोहर रूप-सौन्दर्य का चित्रण करते हुए सूर ने कहा है–

व्याख्या–अपने हाथ में माखन लिये हुए बालकृष्ण सुशोभित (प्रतीत हो रहे) हैं। घुटनों के सहारे चलने से उनका शरीर (हाथ-पैर आदि) मिट्टी से युक्त हैं तथा मुख पर (असावधानीवश मक्खन वाला हाथ फेरने के कारण मानो) दही का लेप किया हुआ है। उनके गाल सुन्दर एवं नेत्र चंचल हैं तथा माथे पर गोबर का टीका लगा हुआ है।

नोट

(घुटनों के बल चलने और उल्टे पृथ्वी की ओर झुके होने के कारण) उनके माथे पर पड़ी केश-लटें ऐसी लगती हैं। मानों (मुख-कमल से सौन्दर्य रूपी) मादक मधु पीने के लिए मस्त बना भ्रमर-समुदाय (भंडरा रहा) है। उनके गले में कठुला पड़ा है जिसमें मोती और शेर के नाखून जड़े हुए हैं। यह कठुला उनके हृदय पर सुशोभित हो रहा है। कृष्ण के इस रूप-सौन्दर्य को क्षण भर देखने का सुख भी धन्य है (और बिना इसके) सैकड़ों कल्पों तक जीवित रहने से क्या लाभ?

विशेष–1. बालकृष्ण के बाह्य सौन्दर्य और मुद्रा-चित्रण का यह वर्णन कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-क्षमता का परिचायक है। 2. कवि (या कृष्ण) का समकालीन ग्राम्य समाज-विशेषतः ब्रज-समाज की स्थिति की झलक यहाँ मिलती है; यथा नवनीत, गोरोचन-तिलक, कठुला.....नख आदि से। 3.'कठुला.....हिए' अंश में कवि का लोकज्ञान प्रकट होता है। भारतीय ग्राम्य समाज में नजर उतारने या न लगने के लिये कठुला-प्रयोग आज भी प्रचलित है। 4. अन्तिम पंक्ति में कवि की अनन्य भक्ति-भावना प्रकट हुई है। 5. 'बालकृष्ण भक्ति' पुष्टिमार्गीय सम्पद्राय की प्रमुख मान्यता है, प्रस्तुत पद इसी प्रभाव का परिचायक है। 6. अलंकार–(क) उत्पेक्षा–लट.....पिए। (ख) अनुप्रास–कठुला कंठ, लोल लोचन, मनु.....मधुहि, राजत रुचिर।

7. भावसाम्य–(क) अरबिन्दु सो आननु रूप मरंदु अनंदित लोचन-भृंग पिएँ। –तुलसी : कवितावली

(ख) आंगन फिरत घुटुरुवनि धाए। –तुलसीः गीतावली

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताई?
खेलत कुँवर कनक आँगन मैं नैन निरखि छवि पाई ॥
कुलही लसति सिर स्यामसुन्दर कै, बहुविधि सुरंग बनाई।
मानौ नव घन ऊपर राजत मधवा धनुष चढ़ाई ॥
अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन मोहन-मुख बगराई।
मानौ प्रकट कंज पर मंजुल अलि-अवली फिरि आई ॥
नील सेतु अरु पीत, लाल मनि लटकन भाल रुलाई।
सनि, गुरु-असुर, देवगुरु मिलि मनौ भीम सहित समुदाई ॥
दूध-दंत-दुति कहि न जाति कछु अद्‌भुत उपमा पाई।
किलकत हँसत दुरति प्रगटति मनु घन मैं बिज्जु छटाई ॥
खंडित बचन देत पूरन सुख अलप-जलप जलपाई।
छुटुरुनि चलत रेनु-तन मंडित, सूरदास बलि जाई ॥

शब्दार्थ–बरनौं = वर्णन करूँ। कनक = स्वर्ण। कुलही =टोपी। लसति = शोभित। सुरंग = रंग-बिरंगी। मधवा धनुष = इन्द्र धनुष। चिकुर = केश। बगराई = फैले हुए। कंज = कमल। अलि-अवली = भ्रमरों की पंक्तियाँ। सेत = श्वेत। रुलाई = सुन्दर। गुरु-असुर = असुरों के गुरु, शुक्राचार्य। देवगुरु = बृहस्पति। भौम = मंगल। समुदाई = समुदाय। दुरति = छिपती। जलपाई = बोलना।

प्रसंग–पूर्ववत्।

व्याख्या–(सूरदास जी कहते है) ''श्री कृष्ण की सुन्दरता का कहाँ तक वर्णन करूँ? वे (बालक कृष्ण) स्वर्णिम आँगन में खेल रहे हैं। उन्हें देखकर नेत्रों में अद्‌भुत शोभा छा जाती है। कृष्ण के सिर पर छोटी-छोटी सी, अनेक सुन्दर रंगों की बनी हुई, पगड़ी शोभायमान है। ऐसा लगता है मानो सुन्दर बादलों के ऊपर इन्द्रधनुष छा गया हो। कृष्ण के सुन्दर मुख पर इधर-उधर फैले हुए कोमल बाल ऐसे शोभायमान हैं मानो कमल के चारों ओर सुन्दर भ्रमरों की पंक्तियाँ फैली हुई हों। कृष्ण के शरीर का वर्ण नीला है। मुख कमल जैसा श्वेत वर्ण का है। उनके वस्त्र पीले रंग के हैं। उनकी लाल मणियों की माला, झूलती हुई अत्यन्त सुन्दर लग रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो शनि (नीला), शुक्र (पीला), बृहस्पति (श्वेत) और मंगल (लाल) एक ही स्थान पर मिल गये हों। उनके दूधिया दाँतों की चमक का वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी उपमा एक ही चीज से दी जा सकती है। जब कृष्ण किलकारी मारकर हँसते हैं तो दाँत कभी छिपते हैं कभी दिखाई देने लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो बादलों में बिजली-छिपी हुई हो। कृष्ण

नोट

के अधूरे वचन आनन्द देते हैं जो फल को थोड़ा-थोड़ा खाने में आता है। घुटनों से चलने वाले, धूल से जिसका शरीर युक्त है, मैं उस कृष्ण पर बलिहारी जाता हूँ।''

विशेष–1. अलंकार–(क) अतिशयोक्ति–कहाँ लौ..... सुन्दरताई। (ख) उत्प्रेक्षा–कुलही.....चढ़ाई, अति..... आई, नील.....समुदाई, दूध.....छटाई। (ग) यथासंख्य–कुलही.....जलपाई। (घ) अनुप्रास–दूध.....दुति, सिर.....सुन्दर कै, अलि.....अवली। 2. यहाँ पर बालकृष्ण के बाह्य सौन्दर्य का सर्वांग (नख-शिख) चित्रण है। 3. 'कुलही' का प्रयोग तत्कालीन (कवि-युगीन) मुस्लिम समाज का प्रभाव है। 4. भाषा की दृष्टि से 'कुलही' (फारसी), बगराई जलपाई, अलप-जलप आदि (देशज शब्दावली) तथा कनक, मधवा, कंज, मंजुल, अलि-अवली आदि तत्सम-परक संस्कृत शब्दावली के परिचायक हैं। 5. उपमान-योजना की झड़ी कवि के सटीक काव्यशास्त्रीय ज्ञान की परिचायक है। 6. भावसाम्य–

(क) भाल बिसाल ललित लटकन वर, बालदसा के चिकुर सुहाए।
मनु दोउ गुर सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए। –तुलसी : गीतावली

7. 'सनि..... समुदाई' काव्यांश कवि के ज्योतिष ज्ञान का परिचायक है। साथ ही, चारों वर्णों का समुचित रूप मंगलकारी माने जाने से कवि कृष्ण के प्रति मंगलकामना भी प्रकट कर देता है।

हरिजू की बाल-छवि कहौं बरनी।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज-शोभा-हरनि ॥
भुज-भुजंग सरोज-नैननि, बएन बिधु लरनि।
रहे बिवरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि ॥
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषन भरनि।
मनहु सुभग सिगार-सिसु-तरु, फर्‌यो अद्‌भुत फरनि ॥
चलत पद प्रतिबिम्ब मनि-आँगन घुटरुवनि करनि।
जलज संपुट-सुभ-छवि भरि लेति उर जनु धरनि ॥
पुन्यफल अनुभवति लुतहिं विलोकि के नंद-घरनि।
सूर प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि ॥

शब्दार्थ–बरनी = वर्णन करना। सींव = सीमा। मनोज = मन्मथ, काम-देव। भुजंग = सर्प। सरोज = कमल। बदन = मुख। बिधु = चन्द्रमा। लरनि = लड़कर, युद्ध में। बिवरनि = वर्ण रहित, बिल। सलिल = जल। अपर = दूसरी। दुरि = छिप गयीं। मेजक = केश। अनुहरत = शोभित। फरनि = फल। संपुट = दोना। उर = हृदय। धरनि = पृथ्वी। घरनि = पत्नी। किलकनि = किलकारी। लरखरनि = लड़-खड़ाहट।

प्रसंग–पूर्ववत्।

व्याख्या–मैं श्रीकृष्ण की बाल-छवि का वर्णन करता हूँ जो समस्त सुखों की सीमा तथा करोड़ों कामदेवों (के सौन्दर्य) की शोभा का हरण करने वाली है। (सौन्दर्य-समानता के) युद्ध में (श्रीकृष्ण की) भुजाओं ने सर्प को, नेत्रों ने कमलों को और मुख ने चन्द्रमा को जीत लिया (अर्थात् श्रीकृष्ण के ये अंग अन्य उपमानों से भी अधिक सुन्दर हैं।) इसी से लज्जित होकर ये सभी उपमान क्रमशः बिल, जल और आकाश में जाकर (और मुँह छिपाकर) रहने लगे। (इसी भांति अन्य अंग-प्रत्यंगों के) विविध दूसरे उपमान भी डरकर (पहले से ही) छिप गये (ताकि कम से कम परास्त होने और लज्जित होने से तो बच सकें) उनके केश सुन्दर हैं तथा शरीर कोमल जो नाना आभूषणों से सुसज्जित होकर ऐसा लगता है मानो सुन्दर हारसिंगार के छोटे से वृक्ष (रूपी बालकृष्ण के शरीर पर) अद्‌भुत फल (रूपी आभूषण) फले हों। मणियों से निर्मित (या सुसज्जित) आंगन में घुटनों के बल चलते समय (कृष्ण के) चरणों का (मणियों में पड़ता हुआ) प्रतिबिम्ब ऐसा प्रतीत होता है मानो पृथ्वी कमल-दोने की सुन्दर छवि (प्रतिबिम्ब) को (प्रसन्न होकर) हृदय से भर रही हो (धारण कर रही हो)। नंद की पत्नी यशोदा ऐसे सुन्दर पुत्र (कृष्ण) को देखकर अपने (पूर्वसंचित) पुण्य-कर्मों का अनुभव करती हैं। उनके हृदय में (सूर के) प्रभु कृष्ण की किलकारी तथा (चलने के समय की) लड़खड़ाहट बस गयी है।

नोट

विशेष–1. वात्सल्य-चित्रण का एक सबल अंग होता है–शिशु के अंग-प्रत्यंगों और क्रीड़ाओं का अंकन करना। यह पद इसी का प्रमाण है। 2. कवि के भाव-चित्रण की दृष्टि से यह पद महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें कवि की सूक्ष्म और स्वाभाविक चित्रण की भाव-विषयक विशेषता एकदम परिपक्व रूप में मिलती है। 3. कवि की अद्‌भुत उपमान-योजना सबल तो है ही, नवीन भी है। 4. अलंकार–(क) अनुप्रास–सकल-सींव, मंजु....मृदुल। (ख) अतिशयोक्ति–सकल....हरनि। (ग) प्रतीप–भुज....डरनि। (घ) उत्प्रेक्षा–मनहु....फरनि, चलन....धरनि। 5. 'लरखरनि' देशज शब्दावली प्रयोग का उदाहरण है।

6. भावसाम्य–'रघुवर बाल छवि कहौ बरनी।' –पूरा पद तुलसी : गीतावली

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद के आँगन, बिम्ब पकरिबै धावत ॥
कबहुं निरखि आपु हरि छाँह कौं, कर सों पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत ॥
कनक भूमि पर कर-पग-छाया, यह उपमा इक राजति।
करि करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा कमल-बैठकी साजति ॥
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नंद बुलावति।
अंचरा-तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति ॥

शब्दार्थ–घुटुरुवनि = घुटनों के बल। कनक = स्वर्ण। बिंब = परछाई। कर = हाथ। रजत = शोभित। अवगाहत = करते हैं। बसुधा = पृथ्वी।

प्रसंग–बाल-कृष्ण अपने आंगन में घुटनों के बल चलते हुए नाना बाल-सुलभ क्रीड़ाएँ कर रहे थे। उनको देख माता यशोदा का हृदय वात्सल्य-भाव से भर उठा।

व्याख्या–(बालसुलभ प्रसन्नता में भर कर) किलकारी मारते हुए बालक कृष्ण (भवन के आँगन में) घुटनों के बल (चलते हुए) आ रहे हैं। नंद के भवन का आँगन मणियों और सोने से युक्त है जिसमें (प्रतिबिम्बित होती हुई) अपनी परछाई को पकड़ने के लिये कृष्ण (घुटनों के बल तेजी से चलते हुए मानो) दौड़ रहे हैं। कभी कृष्ण अपनी छाया को देख हाथ से पकड़ना चाहते हैं (और पकड़ लेने की भ्रांतिजन्य प्रसन्नता में भरकर किलकारी मारकर हँसते समय उनके आगे के) दूध के दो दाँत दीख जाते हैं और बारम्बार वही क्रिया दोहराते हैं। आँगन की स्वर्ण-भूमि पर (चलते समय पड़ने वाली) हाथ-पैरों की परछाई को देखकर यही एक उपमा ठीक प्रतीत होती है कि (पग-पग पर पड़ने वाली हाथ-पैरों की छाया रूपी) मणियों से पग-पग पृथ्वी अपनी कमल-बैठक को सजा रही है। बालकृष्ण की इस सुखद अवस्था को देख यशोदा (उत्साह और ममत्व से भरकर कृष्ण-क्रीड़ा दिखाने के लिये) बारम्बार नंद को बुलाती हैं और (अतिशय ममत्व में भर भावी आशंका से डर) आँचल से ढक सूर के प्रभु कृष्ण को दुग्धपान कराने लगती हैं।

विशेष–1. प्रस्तुत पद के पूर्वार्द्ध में बालकृष्ण के माध्यम से बाल-मनोवृत्ति का एवम् उत्तरार्द्ध में यशोदा के माध्यम से मातृ-हृदय के वात्सल्य-भाव का एकदम मनोविज्ञान-सम्मत और स्वाभाविक अंकन किया गया है। 2. 'कबहुँ. ....अवगाहत' काव्यांश कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-क्षमता का द्योतक है और कवि के जन्मान्ध होने की मान्यता पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा देता है। कारण यह है कि इस प्रकार के सूक्ष्म-स्वाभाविक चित्रण बिना देखे-भोगे करना प्रायः संभव नहीं है। 3. 'अंचरा.....ढाकि' अंश यशोदा के साधारण-ग्राम्य मातृत्व का सबल परिचायक है और एकदम स्वाभाविक बन पड़ा है। 4. 'कनक.....साजति' अंश में एकदम नवीन उपमान-योजना प्रस्तुत की गयी है। 5. अलंकार–(अ) अनुप्रास–किलकत कान्ह। (ख) पुनरुक्ति–पुनि-पुनि। (ग) उपमा-कनक.....साजति। (घ) तद्‌गुण–कनक. ....साजति।

6. भावसाम्य–रघुवर बाल छवि कहौं बरनि।..... –तुलसी : गीतावली

लसत कर-प्रतिबिम्ब मनि-आँगन घुटुरुवनि चरनि।
जनु जलज-संपुट सुछवि भरि-भरि धरति उर धरनि ॥
सखि री, नंद-नंदन देखु।
धूरि-धूसर जटा जुटली, हरि किए हर-भेषु ॥

नोट

नील पाट रिपोई मनि-गन, फनिग धोखै जाइ।
खुनखुनाकर हँसत हरि, हर नचत डमरू बजाइ ॥
जलज-माल गुपाल पहिरे, कहा कहौ बनाइ।
मुंडमाल मनौ हर-गल, ऐसी सोभा पाई ॥
स्वाति-सुत-माला बिराजत स्याम तन इतिं माइ।
मनो गंगा गौरि-उर हर लइ कंठ लगाइ ॥
केहरी-नख निरखि हिरदे, रही नारि बिचारि।
बाल-ससि मनु भाल तैं लै उर धर्‌यो त्रिपुरारि ॥
देखि अंग-अनंग झझक्यौ, नंद-सुर हर जान।
सूर के हिरदै बसौ नित स्याम-सिव को ध्यान ॥

शब्दार्थ–धूसर = युक्त। हर = शिव। पाट = माला। फनिग = सर्प। खुनखुन = खिलखिला। स्वातिसुत = मोती। भाल = माथा। उर = हृदय। त्रिपुरारि = त्रिपुर के शत्रु, शिव। अनंग = कामदेव। सुत = पुत्र।

प्रसंग–बालकृष्ण के शिव-वेषी सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कोई ब्रज-रमणी अपनी सखी से कहती है–

व्याख्या–अरी सखी! नंद के पुत्र को देखो। कृष्ण (हरि) की जटायें धूल धूसरित होकर ऐसी लग रही हैं जैसे उन्होंने शिव का वेश धारण कर लिया हो। उनके नीले शरीर पर मणियों की माला को देखकर सर्प भी धोखे में आ जाते हैं कि कहीं ये शंकर तो नहीं हैं जो खिलखिलाकर हँसते और नाचते हुए डमरू बजाते हैं। कृष्ण ने गले में कमलों की माला पहन रखी है। उसका क्या वर्णन करूँ? यह माला ऐसी शोभित हो रही है मानो शिव के गले में मुंडों की माला हो। मोतियों की माला श्रीकृष्ण के शरीर पर ऐसी शोभित हो रही है मानो पार्वती के उर से शिव ने गंगा को अपने हृदय से लगा लिया हो। छाती पर सुशोभित सिंह-नख को देखकर नारियाँ यह विचार करती हैं मानो शिवजी ने बाल चन्द्रमा को मस्तक से उतार कर, हृदय पर धारण कर लिया हो। श्रीकृष्ण के अंगों को शिव रूप समझ कर कामदेव भी घबरा गया। (सूरदास कहते हैं कि) ''शिव रूपी श्रीकृष्ण का यह ध्यान सदैव मेरे हृदय में बसा रहे।''

विशेष–1. अलंकार–(क) अनुप्रास–नद-नदंन, धूरि-धूसर, हँसत.....हर, अंग-अनंग। (ख) भ्रम–नील.....जाइ। (ग) अतिशयोक्ति–जलज.....बनाइ। (घ) उत्प्रेक्षा–मुंड.....पाइ, स्वाति.....लगाइ, केहरि.....त्रिपुरारि, बाल.....जान। 2. यहाँ पर कवि ने देशज शब्दों का एकदम मर्मस्पर्शी और रसात्मक प्रयोग किया है (यथा धूरि-धूसर, खुनखुना, झझक्यो आदि)। 3. अंतिम पंक्ति में कवि की अनन्य भक्ति-भावना प्रस्फुटित होती है। 4. दार्शनिक दृष्टि से यहाँ पर शैववाद और वैष्णववाद का समन्वय है जो कवि की समन्वयवादी उदार विचार-दृष्टि का भी परिचायक है।

देखौ माई! दधिसुत मैं दधि जात।
एक अचंभौ देखि सखि री! रिपु मैं रिपु जु समात ॥
दधि पर कीर, कीर पर पंकज, पंकज के द्वै पात।
यह शोभा देखत पसुपालक, फूलै अंग न समात ॥
बारंबार बिलोकि सोचि चित, नंद-महर मुसुक्यात।
यहै ध्यान मन आनि स्याम कौ, सूरदास बलि जात ॥

शब्दार्थ–दधिसुत = समुद्र का पुत्र, चन्द्रमा (मुख)। दधि = समुद्र, दही। रिपु = शत्रु (चन्द्रमा और कमल-हाथ)। कीर = तोता (नाक)। पंकज = कमल (नेत्र)। पात = पत्ते (पलकें)। बिलोकि = देखकर। महर = पत्नी (यशोदा)। बलि = न्यौछावर, बलिहारी।

प्रसंग–कोई ब्रज-रमणी (अथवा यशोदा) बालक कृष्ण को दही खाते हुए देखती है और वात्सल्य के साथ-साथ आश्चर्य-भाव से अभिभूत हो अपनी किसी अंतरंग सखी (अथवा यशोदा) से कहती है–

व्याख्या–अरी माई! देखो। चन्द्रमा में समुद्र प्रवेश कर रहा है (अर्थात् समुद्र के पुत्र चन्द्रमा जैसे कृष्ण मुख से दही खा रहे हैं)। अरी सखी! मैंने एक आश्चर्य देखा है कि शत्रु-शत्रु से मिल रहा है (अर्थात् चन्द्रमा और कमल मूलतः शत्रु हैं क्योंकि चन्द्रोदय होने पर कमल मुरझा जाता है लेकिन यहाँ चन्द्रमुख से कमल हस्त मिला रहा है)।

नोट

(इतना ही नहीं वरन्) समुद्र पर तोता बैठा हुआ है (जबकि साधारणतः तोता जल पर नहीं, कमल पर बैठ सकता है), तोते पर कमल और कमल पर केवल दो पत्ते हैं (अर्थात् कृष्ण का मुख शोभा का सागर है जिसके ऊपर नाक रूपी तोता है और उसके ऊपर कमल जैसे नेत्र तथा नेत्रों पर केवल दो पत्ते रूपी पलकें हैं)। (कृष्ण की) इस (अद्‌भुत) शोभा को देखकर पशुओं का पालन करने वाले ब्रज के निवासी-जन (अथवा शिव भी) प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं मानों उनका एक-एक अंग प्रसन्नता की अतिशयता से भरकर फूला नहीं समाता। इस कृष्ण-सौन्दर्य को बारम्बार देखकर नंद की पत्नी यशोदा मन में सोच-सोच (और प्रसन्न होकर) मुस्कराने लगती हैं। श्याम के इस रूप-ध्यान के मन में आने पर (कवि अथवा यशोदा) बलिहारी जाते हैं।

विशेष–1. यह पद कवि के कूटकाव्य का परिचायक है। 2. पद-पूर्वार्द्ध में शाब्दिक चमत्कार का प्रदर्शन किया गया है। 3. कवि का पांडित्य और उक्ति-कौशल एकदम सजीव बन पड़ा है। 4. यहाँ पर आश्चर्य, उत्कंठा और वात्सल्यपरक मोहादि भावों का रसमय अंकन किया गया मिलता है। 5. अलंकार–(क) यमक–दधि-दधि, रिपु-रिपु कोर, पंकज। (ख) रूपकातिशयोक्ति–एक.....समात। (ग) विरोधाभास–दधि.....पात। (घ) श्लेष–पशुपालक। 6. माई! लोक-प्रचलित आश्चर्यसूचक सम्बोधन है और यहाँ पर एकदम सटीक। 7. 'फूलै.....समात' एक सुन्दर मुहावरा-प्रयोग है। 8. अंतिम पंक्ति में कवि की अनन्य भक्तिभावना का प्रकटीकरण है।

टास्क श्रीकृष्ण के बाल रूप सौंदर्य का अपने शब्दों में चित्रण कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. कृष्ण कंस के ..... में देवकी की कोख से उत्पन्न हुए थे।
2. हाथ में माखन लिए ..... सुशोभित हैं।
3. कृष्ण के सुन्दर मुख पर इधर-उधर फैले हुए कोमल बाल ऐसे शोभायमान हैं, मानो ..... के चारों ओर सुन्दर भ्रमरों की पंक्तियाँ फैली हुई हों।

7.1.1 शृंगार-पदः संयोग शृंगार

मुरली तऊ गुपालहि भावति।
सुनि री सखि! जदपि नंदलालहिं, नाना भांति नचावति ॥
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल तन आज्ञा करवावति, करि ढेढ़ी ह्वै आवति ॥
अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नार नवावति।
आपु पौढ़ि अधर-सज्जा पर, कर-पल्लव सन पद पलुटावति ॥
भृकुटि कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कोप करावति।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, अधर सुसीस डुलावति ॥

शब्दार्थ–तऊ = तुम्हारी। भावति = अच्छी लगती है। नचावति = परेशान करती है। ठाढ़ौ = खड़ा। जनावति = दिखाती है। कनौड़े = दास। नार = गरदन। नवावति = झुकवाती। पौढ़ि = लेट कर। सज्जा = शय्या। पलुटावति = दबवाती। कुटिल = टेढ़ी। नरासा-पुट = नथुने। कोप = क्रोध।

प्रसंग–कृष्ण की वंशी के प्रति सौतिया भाव प्रकट करते हुए (एवं परोक्षतः सौत के वशीभूत कृष्ण पर व्यंग्य करते हुए) एक गोपी दूसरी से कहती है–

नोट

व्याख्या–हे सखी! यद्यपि वह मुरली नंद के पुत्र कृष्ण को तरह-तरह के नाच नचाती है (परेशान करती है) फिर भी उन्हें अच्छी लगती है। यह उनको एक पैर पर खड़ा रखती है (मुरली बजाते समय कृष्ण की मुद्रा ऐसी ही होती है) और अपना अधिकार प्रदर्शित करती है। कृष्ण का शरीर कोमल है फिर भी यह उनसे अपनी आज्ञा का पालन कराती है जिसके फलस्वरूप उनकी कमर टेढ़ी हो जाती है। (यद्यपि कृष्ण पर्वत को धारण करने वाले होने के कारण वीर हैं लेकिन यह नारी–बांसुरी–उन्हें भी झुका देती है)। साथ ही साथ यह इतनी स्वार्थिनी भी है कि स्वयं तो अधर रूपी शय्या पर विराजमान रहती है और कृष्ण के पत्ते जैसे कोमल हाथों से अपने चारण छिद्र दबवाती है। यह कृष्ण की भौंहों को टेढ़ा और नथुनों को कोपयुक्त (फूले हुए) बनाकर न केवल हम पर अपना क्रोध प्रकट करती है वरन् उनको भी हमारे प्रति क्रोधित कर देती है। कृष्ण इससे इतने अधिक प्रभावित हैं कि इसको प्रत्येक क्षण प्रसन्न जान, स्वयं भी मस्त हो, अपना शीश हिलाते रहते हैं।

विशेष–1. यहाँ कवि का वाक्चातुर्य और काव्य-कौशल दोनों ही देखने योग्य बन पड़े हैं। 2. नारी-मनोविज्ञान और तत्कालीन युग में नारी-समाज की स्थिति का द्योतक यह पद एकदम भाव-सबल और स्वाभाविक बन पड़ा है। 3. सूर की भाषा का एक सबल तत्व है–शब्द का सटीक-उपयुक्त प्रयोग। प्रस्तुत पद में 'गिरिधर' और 'गुपालहिं' शब्द इसी के प्रमाण हैं। 4. ठाढ़ौ, कनौड़े, पौढ़ि, पलुटावति आदि तथा सीस डुलावति आदि लोक-प्रचलित मुहावरों का सार्थक प्रयोग दृष्टव्य है। 6. वंशीवादक कृष्ण का मुद्रा-चित्रण एकदम सफल बन पड़ा है जो अंधकवि सूर की सूक्ष्म कल्पना-शक्ति का परिचायक है। 7. अलंकार–(क) श्लेष–गुपालहिं, गिरिधर। (ख) रूपक–कर-पल्लव। 8. 'आपुन–पलुटावति' में मुरली का (नायिका-रूप में) किया गया मानवीयकरण अत्यधिक मनोरम बन पड़ा है।

जब हरि मुरली अधर धरी।
गृह-ब्यौहार तजे आरज-पथ, चलत न संक करी ॥
पद-रिपु-पट अटकायौ, न सम्हारति, उलट न पलट खरी।
सिव-सुत-वाहन आइ मिले हैं, मन-चित्त-बुद्धि हरी ॥
दुरि गये कीर, कपोत, मधुप, पिक सारंग सुधि बिसरी।
उडुपति, बिद्रुम, बिंब, खिसाने, दामिनि अधिक डरी ॥
मिलिहैं स्यामहिं हंस-सुता-तट, आनंद-उमंग भरी।
सूर-श्याम कौं मिली परसपर, प्रेम-प्रबाह ढरी ॥

शब्दार्थ–अधर = होंठ। ब्यौहार = कार्य-कलाप। आरज-पथ = आर्य (मान्यता या परम्परा वाली) मर्यादा का पथ। संक = शंका। पद-रिपु = पैर का शत्रु, काँटा। पट = वस्त्र। सिव-सुत-वाहन = शिव के पुत्र कार्तिकेय का वाहन, मोर। दुरि = छिपना। कीर = तोता। कपोत = कबूतर। मधुप = भ्रमर। पिक = कोयल। सारंग = मृग। उडुपति = नक्षत्रों का स्वामी, चन्द्रमा। बिद्रुम = मूँगा। बिम्ब = बिम्बा-फल। खिसान = खिसिया गये। दामिनि = आकाश-विद्युत। हंस-सुता-पट = सूर्य की पुत्री यमुना नदी के किनारे।

प्रसंग–श्रीकृष्ण द्वारा किया गया वंशी-वादन अत्यधिक मनमोहक और आकर्षक है। कारण? उसके आकर्षण के वश में चर-अचर, जड़-जंगम सभी हो जाते हैं, फिर भला कृष्ण से अटल-अनन्य प्रेम करने वाला गोपी-समाज किस प्रकार अछूता रह सकता है? गोपी समाज पर पड़े वंशी-वादन-प्रभाव और गोपियों की प्रतिक्रियाओं का परिचय देते हुए कवि ने कहा है–

व्याख्या–जिस समय श्री कृष्ण ने (वादन करने के लिये) मुरली को अपने होठों पर रखा वैसे ही ब्रज की रमणियों द्वारा किये जाने वाले सभी प्रकार के घरेलू क्रिया-कलाप बन्द हो गये, यहाँ तक कि आर्य-मर्यादा के पथ को (जिसके अनुसार नारी को पर-पुरुष के सामने घर से नहीं निकलना चाहिये था) तज कर (कृष्ण के पास) जाने में भी उन्होंने शंका तक नहीं की (और वंशी-ध्वनि को सुनते ही घर-घर से दौड़ पड़ीं)। (इतना ही नहीं, पहुँचने की शीघ्रता में मार्ग पर दौड़ते समय) अपने वस्त्र में अटके कांटे को भी नहीं निकालती थी और न तो उलट कर काँटा देखतीं और न पलट कर खड़ी होतीं। वंशी-वादन को सुनकर शिव के पुत्र कार्तिकेय के वाहन अर्थात् मोर भी उनसे आकर मिल गये थे। सच में तो इस समय उनकी मन-चित्त और बुद्धि सभी का हरण हो चुका था (क्योंकि उतावली में सोच-विचार का प्रश्न ही नहीं था)। (कृष्ण-शरीर के सौन्दर्य को देख अंग-प्रत्यंग से समानता वाले उपमान भी छिप

नोट

गये। इस प्रकार नासिका का उपमान) तोता, (गरदन का उपमान) कबूतर, (केश राशि का उपमान) भ्रमर, (वाणी का उपमान) कोयल आदि (लज्जित होकर छिप गये तथा (नेत्रों के उपमान) मृग ने तो अपनी सुधि भी बिसरा दी (मानो मंत्रमुग्ध होकर रह गये थे)। इसी भाँति (मुख का उपमान) चन्द्रमा, (दाँतों का उपमान) मूँगा, (होठों का उपमान) बिम्बाफल खिसिया गये तो (शरीर की कांति का उपमान) आकाश-विद्युत और भी अधिक भयभीत हो गयी। सूर्य-पुत्री यमुना के तट पर आनंद-उमंग में भर गोपियाँ कृष्ण से मिलीं और सूरश्याम (कृष्ण) से परस्पर भेंट कर प्रेम-प्रवाह से युक्त हो गयीं।

क्या आप जानते हैं जिस समय श्री कृष्ण ने (वादन करने के लिये) मुरली को अपने होठों पर रखा वैसे ही (ब्रज) की रमणियों द्वारा किये जाने वाले सभी प्रकार के घरेलू क्रिया-कलाप बन्द हो गये, यहाँ तक कि आर्य-मर्यादा के पथ को (जिसके अनुसार नारी को पर-पुरुष के सामने घर से नहीं निकलना चाहिये था) तज कर (कृष्ण के पास) जाने में भी उन्होंने शंका तक नहीं की (और वंशी-ध्वनि को सुनते ही घर-घर से दौड़ पड़ीं)।

विशेष–1. प्रस्तुत पद में गोपियों की उत्कंठा, प्रेम-भरी विवशता और अनन्यता आदि का सजीव अंकन है। 2. प्रारम्भिक पंक्तियों में गोपी-समाज का सजीव मुद्रा-चित्रण मिलता है। 3. कृष्ण के बाह्य-सौन्दर्य का परोक्ष शैली में वर्णन कवि-कौशल का परिचायक बन पड़ा है। 4. अलंकार–(क) प्रतीक–सिव.....डरी। (ख) अतिशयोक्ति–दुरि.....डरी। (ग) अनुप्रास–स्थान-स्थान पर। 5. सिव-वाहन और हंससुता-तट में कूट शैली है।

6. भावसाम्य–

(क) मुरली अधर सजी बलबीर।
नाद सुनि बनिता बिमोहि, बिसारे उर-चीर ॥ –सूरदास

(ख) जैसी हुति उठि तैसिय दौरि, छाँड़ि सकल गृह-काम।
रोम पुलक गद्‌गद् भइँ तिहि छन, सोचि अंग अभिराम ॥ –सूरदास

(ग) किती न गोकुल कुलवधू, काहि न कित सिख दीन।
कौने तजी न कुल-गली, ह्वै मुरली-सुर लीन ॥ –बिहारी : सतसई

(घ) मुरली सुनत भई सब बौरी। मनहूं परि सिर मांझ ठगौरी।
जो जैसे सो तैसे दौरी। तन व्याकुल भई बिबस किसोरी ॥ –सूरदास

सुनहु, हरि मुरली मधुर बजाई।
मोहे सुर-नर-नाग निरन्तर, ब्रज-बनिता उठि धाई ॥
जमुना-नीर-प्रवाह थकित भयो, पवन रह्यो मुरझाई।
खग-मृग-मीन अधीन भये सब, अपनी गति बिसराई ॥
द्रुम, बेलि अनुराग-पुलक तनु, ससि थक्यो निसि न घटाई।
सूर-स्याम वृन्दावन विहरत, चलहु सखि सुधि पाई ॥

शब्दार्थ–मोहे = मोहित हुए। नाग = एक जाति। बनिता = स्त्रियाँ। धाई = दौड़ पड़ीं। खग = पक्षी। मीन = मछली। बिसराई = छोड़कर। द्रुम = वृक्ष। अनुराग = प्रेम। विहरत = विचरण करते हैं।

प्रसंग–वृन्दावन में विचरण करने वाले श्रीकृष्ण के वंशी-वादन का प्रभाव सर्वव्यापी है। उसी से आकर्षित-प्रभावित होकर कोई ब्रज-रमणी अपनी सखी से कहती है–

व्याख्या–(अरी सखी!) सुनो। कृष्ण ने मधुर (स्वर उत्पन्न करने वाली) वंशी बजाई है जिसको सुनकर देवता, मनुष्य और नाग (जो क्रमशः स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोक में रहते हैं) निरन्तर मोहित हो गये हैं तथा ब्रज की स्त्रियाँ (गोपियाँ) तो (जिस अवस्था में बैठी थीं, उसी अवस्था में) उठकर दौड़ पड़ीं। (वंशी की ध्वनि से मोहित होकर ही मानो) यमुना नदी का जल-प्रवाह थम गया तथा वायु ने भी संचरण बन्द कर दिया है। (आकाश में रहने वाले) पक्षी, (भूमि पर रहने वाले) हिरण तथा (जल में रहने वाली) मछलियाँ सभी इस (वंशी-वादन के आकर्षण) के वश में हो गये

नोट

हैं तथा अपनी स्वाभाविक गति (उड़ना, दौड़ना और तैरना) को भी भूल गये हैं। (वायु के मंद झोंकों में हिलते-डुलते हुए) वृक्ष और बेल (रूपी नायक-नायिका) के शरीर प्रेम-भाव के प्रसरण से पुलकित हो उठे हैं। (चन्द्रमा के रथ में जुते हुए मृग मोहित होकर आगे नहीं बढ़ते, फलतः रथ भी नहीं बढ़ता। परिणामतः रात्रि भी नहीं घटती मानो वंशी ध्वनि से आकर्षित-मोहित होकर) चन्द्रमा थम गया है और उसने रात्रि को भी नहीं घटाया। सूर के श्याम (कृष्ण) वृन्दावन में विहार कर रहे हैं। हे सखी! चलो, वही सुधि प्राप्त करेंगे।

विशेष–1. प्रस्तुत पद में नायिका (गोपी और वास्तव में कवि) का वाक्-कौशल एकदम मनोविज्ञान-क्रम में अंकित है। वंशी-वादन का त्रैलोक्य-प्राणियों, पशु-पक्षियों, जड़-चेतन आदि पर पड़ा प्रभाव अतिशयोक्तिपरक होने पर भी नायिका की मनोदशा का सच्चा परिचायक है। 2. यहाँ पर नायिका की गुणकथन, उत्कंठा, परोक्षतः मनोच्छा-प्रकटीकरण तथा प्रेमोद्दीपक अवस्था आदि विशेष दृष्टव्य हैं। 3. अलंकार–(क) अनुप्रास–नर.....निरन्तर, ब्रज-बनिता, वृन्दावन विहरत। (ख) अतिशयोक्ति–जमुना.....घटाइ। (ग) रूपक–अनुराग-पुलक तनु।

4. भावसाम्य–

(क) जैसी हुति उठि तैसिय दौरि, छाँड़ि सकल गृह-काम। –सूरदास

(ख) ''जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर चर थिर पवन थकित रहैं, जमुना-जल न बहत।
खग मोहे, मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन छवि रहत।'' –सूरदास

(ग) गहै बीन मकु रैन बिहाई। ससि बहन तहँ रहे ओनाई ॥ –जायसी : पद्मावत

(घ) किती न गोकुल कुलवधू, काहि न किन सिख दीन।
कौं न तजी न कुल गली, है मुरली-सुर लीन ॥ –बिहारी : सतसई

मानो माई घन घन अंतर दामिनी।
घन दामिनी दामिनी घन अंतर, सोभित हरि-ब्रज भामिनि ॥
जमुन पुलित मल्लिका मनोहर, सरद सुहाई जामिनि।
सुन्दर ससि गुन रूप-राग-निधि, अंग-अंग अभिरामिनि ॥
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं, मुदित भई गुन-ग्रामिनि।
रूपनिधान, स्यामसुन्दर घन, आनंद मन बिस्त्रामिनि ॥
खंजन-मीन-मयूर-हंस-पिक, भाइ-भेद गजगामिनि।
को गति गनै सूर-मोहन संग, काम बिमोह्यो कामिनि ॥

शब्दार्थ–घन = घने। घन = मेघ। दामिनि = आकाश-विद्युत। भामिनि = स्त्रियाँ, गोपियाँ। पुलिन = तट। मल्लिका = एक बेल। जामिनि = यामिनी, रात्रि। राग = प्रेम। अभिरामिनि = शोभा। राइ = भुला कर। गनै-गिने। बिमोह्यो = मोहित किया।

प्रसंग–शरद-पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के मादक चन्द्रिकामय वातावरण में श्रीकृष्ण ब्रज-रमणियों के साथ रास-लीला कर रहे हैं। उसी का परिचय देते हुए कोई ब्रज-रमणी अपनी अंतरंग सखी से कहती है–

व्याख्या–(श्रीकृष्ण और गोपियों द्वारा की गयी रास लीला को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि) मानो घने मेघ (वर्णीय कृष्ण के आलिंगन रूपी हृदय) में (गौरवर्णीय सजी-धजी गोपी रूपी) आकाश-विद्युत हो। इस समय मेघ में विद्युत है और विद्युत में मेघ (अर्थात् श्यामवर्णीय कृष्ण और गौरवर्णीय गोपियाँ परस्पर नृत्य करते हुए एक-दूसरे से लिपटे हुए प्रतीत होते हैं)। इसी रूप में श्रीकृष्ण और ब्रज की स्त्रियाँ (गोपियाँ) सुशोभित हो रही हैं। (यमुना-तट पर) मल्लिका की सुगंधित लताएँ मनोरम प्रतीत होती हैं तथा शरद (कालीन पूर्ण चन्द्रिका वाली) रात्रि सुशोभित हुई लगती है। ऐसे में सुन्दर चन्द्रमा के समान गुण, रूप प्रेम की खान (गोपियों के एक-एक अंग-प्रत्यंग) की शोभा सुन्दर लगती है। आज उन गोपियों ने रसिक-शिरोमणि (श्रीकृष्ण) के साथ मिलकर रास रचा है। इसी से वे गुणवती ग्रामीण स्त्रियाँ अत्यधिक प्रसन्न हैं। मेघवर्णीय श्रीकृष्ण रूपनिधान हैं तथा मन को आनन्द और विश्राम देने वाले (प्रतीत होते) हैं। खंजन, मछली, मोर, हंस तथा कोयल आदि के (परम्परागत उपमानों के) भेद-भाव को त्याग गोपियाँ मस्तानी चाल में गजगामिनी की भाँति मंथर गति से चल रही हैं। सूर के मोहन कृष्ण के साथ इनकी (प्रेममय संबंधी) गति-विधियों को कौन गिन (जान) सकता है। सच में तो, आज इन रमणियों को काम (रूपी कृष्ण) ने विमोहित कर दिया है।

नोट

विशेष–1. सूर द्वारा ग्राह्य पुष्टिमार्ग में रास का धार्मिक-आध्यात्मिक महत्त्व माना गया है, यहाँ पर उसी का काव्यात्मक चित्रण है। 2. प्रारंभिक पंक्तियों में रास-नृत्य के अन्तर्गत गत्यात्मक मुद्रा-चित्रण किया गया है जो कवि-कुशलता का परिचायक है। 3. 'जमुन.....जामिनि' में प्रकृति का सुन्दर उद्दीपक रूप में अंकन है। 4. 'रूप..... बिस्त्रामिनि' में संयोग शृंगारान्तर्गत गुणकथन की अवस्था है। 5. 'स्यामसुन्दर और कामिनि' का सटीक सार्थक प्रयोग कवि की समुचित शब्द-प्रयोग कला का परिचायक है। 6. अलंकार–(क) उत्प्रेक्षा–मानौ.....दामिनि। (ख) पुनरुक्ति (यमक).....घन-घन, दामिनि-दामिनि, अंग-अंग। (ग) तद्गुण–घन.....ब्रजभामिनि। (घ) अनुप्रास–रच्यौ.....राई सौं। (ङ) अतिशयोक्ति–को गति.....संग।

7. भावसाम्य–कंठ-कंठ, भुज-भुज दोउ जोरे।
घन-दामिनि छूटत नहिं छोरे ॥ –सूर

उपमा हरि-तनु देखि लजानी।
कोउ जल मैं, कोउ बननि रहीं दुरि, कोउ-कोउ गगन समानी ॥
मुख निरखत ससि गयौ अम्बर कौ, तड़ित दसन-छबि हेरि।
मीन कमल, कर, चरन, नयन डर, जल में कियो बसेरि ॥
भुजा देखि अहिराज लजाने, बिबरनि पैठे धाइ।
कटि निरखत केहरि उर भाग्यौ, बन-बन रहे दुराइ ॥
गारी देहिं कबिनि कै बरनत, श्री अंग पटतर देत।
'सूरदास' हमकौ सरमावत, नाउँ हमारौ लेत ॥

शब्दार्थ–दुरि = छिपी हुई। अम्बर = आकाश। तड़ित = आकाशविद्युत। हेरि = देखकर। कर = हाथ। अहिराज = सर्पराज शेषनाग। बिबरनि = बिल में। धाइ = दौड़कर। केहरि = सिंह। दुराई = छिप गये। बरनत = वर्णन। नाउँ = नाम।

प्रसंग–वृन्दावन में श्रीकृष्ण, ब्रज के नर-नारियों के साथ (ग्रीष्म-लीला के समय) विहार करते हैं। इस समय श्रीकृष्ण का सौन्दर्य अनुपम और 'अतुलनीय है। परिणाम? सभी दर्शक कृष्ण के इस मनोहर (शारीरिक) सौन्दर्य पर मुग्ध हैं। इसी सौन्दर्य का वर्णन (और प्रभाव स्पष्ट) करते हुए कवि (अथवा ब्रज-गोपी या कोई दर्शक) कहता है–

व्याख्या–कृष्ण-शरीर (के अद्भुत और अतिशयोक्तिपरक रूप) को देखकर सभी उपमाएँ (उपमान) लज्जित हो गयीं, यहाँ तक कि (लज्जा के कारण) कोई जल में छिप गयी तो कोई गहन वन में तथा कोई-कोई तो आकाश में (जाकर) छिप गयी। प्रमाण? कृष्ण के मुख को देखकर चन्द्रमा आकाश में चला गया तो (कृष्ण की दंत-छवि को देख) आकाश-विद्युत आकाश में छिप गयी। इसी भाँति। (कृष्ण के) हाथ-पैरों (के सौन्दर्य) को देख कमल तथा नेत्रों को देख मछली ने जल में बसेरा किया। (कृष्ण की भुजा-सौन्दर्य को देख सर्पराज शेषनाग लजा गये और दौड़कर बिल में छिप गए। कृष्ण के कटि-सौन्दर्य को देख सिंह ने भी भय माना और वन-वन में छिपता फिरा। यह सभी उपमान कवियों के वर्णन को कि कृष्ण का अंग-प्रत्यंग सौन्दर्य उपमानों से भी श्रेष्ठ है, गालियाँ देते हैं कि हमारा नाम ले-लेकर कविगण हमको लज्जित करते हैं।

विशेष–1. यहाँ पर परोक्ष विधि से कृष्ण के बाह्य सौन्दर्य का नख-शिख चित्रण किया गया है। 2. अलंकार–(क) पुनरुक्ति–कोउ-कोउ, बन-बन। (ख) प्रतीप–समस्त पद में। (ग) मानवीकरण–उपमा.....लेत। 3. भावसाम्य–'उपमा धीरज तज्यौ तिरखि छवि' वाला पद। –सूरदास

बनी मोतिनि की माल मनोहर।
सोभित स्याम-सुभग उर-ऊपर मनु गिरि तैं सुरसरि धँसी घर ॥
तट भुज दंड, भौंर भृग-रेखा, चंदन चित्र तरंग जु सुन्दर।
मनि की किरन मीन, कुंडल-छबि मकर, मिलन आए त्यागे सर ॥
जग्युपबीत विचित्र सूर सुनि, मध्य धारा जु बनी बर।
संख चक्र गदा पद्म पानि मनु कमल फूल हंसनि कीन्हें घर ॥

नोट

शब्दार्थ–घर = पृथ्वी। भुजदंड = भुजा का ऊपरी भाग, बाँह। भौंर = भँवर। तरंग = लहरें। मीन = मछली। सर = सरोवर। जग्युपबीत = यज्ञोपवीत्, जनेऊ। बर = सुन्दर। पानि = हाथ। कूल = तट।

व्याख्या–(श्रीकृष्ण के गले में धारण की हुई) मोतियों की माला मनोहर (अर्थात् दर्शक के मन का हरण करने वाली) बनी हुई है। यह माला कृष्ण के सुन्दर वक्ष पर सुशोभित है। (इसको देख ऐसा प्रतीत होता है कि) मानो (वक्ष रूपी) पर्वत से (माला रूपी) देवगंगा पृथ्वी की ओर धंस रही हो। (श्रीकृष्ण के) भुजदंड इसके तट हैं और (वक्ष पर महर्षि भृगु द्वारा किये गये पट्-प्रहार के चिन्ह वाली) भृगु रेखा भँवर तथा चंदन से (शरीर पर) बने चित्र सुन्दर लहरें हैं। (कृष्ण द्वारा धारण किये गये) मणि की किरणें मछली हैं तो कुंडलों की छवि मकर जो सरोवर को त्याग (पवित्र देवगंगा रूपी माला से) मिलन हेतु आये हैं। चित्रयुक्त (कृष्ण के शरीर पर धारण किया हुआ) यज्ञोपवीत सुन्दर मध्य धारा है तथा हाथों में धारण किये हुए शंख, चक्र गदा और कमल मानो (नदी के) तट पर घर करने वाले (निवास करने वाले) श्वेत हंस हैं।

विशेष–1.अन्तिम पंक्तियों में कृष्ण का विष्णु-अवतारी रूप अंकित है। 2. 'भृगु रेखा' विष्णु-भृगु-कथा की संकेतक है। 3. अलंकार–(क) सांगरूपक–समस्त पद में। (ख) उत्प्रेक्षा–सोभित.....घर, संख.....बर। (ग) अनुप्रास–स्याम सुभग, धंसी घर, भुजदंड भृगुरेखा, बनी बर, कमल फूल। (घ) रूपक–तट भुजदंड.....बर।

चितबनि रोकै हूँ न रही।
स्यामसुन्दर-सिंधु सम्मुख सरित उमगी बही ॥
प्रेम-सलिल प्रवाह भँवरनि मिति न कबहुं लही।
लोभ-लहर-कटाच्छ घूंघट-पट-कगार ठगी ॥
थके पल पथ नाव-धीरज, परति नहिंन गही।
मिलि सूर सुभाव स्यामहिं, फेरिहु न चही ॥

शब्दार्थ–सिंधु = सागर। सलिल = जल। मिति = थाह। कगार = तट। गही = ग्रहण।

प्रसंग–कृष्ण की सौन्दर्य राशि को देख ब्रज की गोपियाँ, स्वाभाविक रूप में ही, उससे प्रभावित होकर आकृष्ट हो जाती हैं। अपनी इसी विवशता का वर्णन करते हुए एक गोपी अपनी सखी (दूसरी गोपी) से कहती है–

व्याख्या–''(हे सखी!) मेरी दृष्टि प्रयत्न करने पर भी नहीं रुक सकी और श्याम वर्ण वाले कृष्ण के सौन्दर्य रूपी सागर के पीछे उसी प्रकार चल दी जैसे उमगित होकर कोई नदी स्वाभाविक तेजी से बढ़ती है। प्रेम रूपी-जल के भंवर-प्रभाव में वह पूर्णतया मग्न हो गयी और परिणामस्वरूप उसकी थाह तक नहीं मिल सकी। कृष्ण-दर्शन के लोभ और कटाक्ष रूपी लहरों से घूँघट रूपी किनारों को भी ढक दिया अर्थात् घूँघट आदि के व्यवधानों को दर्शनों की लालसा ने समाप्त कर दिया। अब टकटकी बांधकर निर्निमेष दृष्टि से उनके दर्शन करने लगी। फिर भी धीरज रूपी नौका नहीं पकड़ी जा सकी अर्थात् धैर्य प्राप्त न कर सकी। इस प्रकार मेरी दृष्टि उन्हीं में निमग्न है।''

विशेष–1. यहाँ कवि ने गत्यात्मक सौन्दर्य का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। 2. यहाँ प्रेम (भक्ति) भाव की अनन्यता एवं सहजाकर्षण और सौन्दर्य की प्रभावात्मकता दर्शनीय है। 3. यहाँ सांगरूक, विभावना और वृत्यानुप्रास अलंकार हैं। 4. भावसाम्य–

'हरि छबि जल जब तें परे, तब नें छिनु बिछुरै न।'' **–बिहारी; सतसई**

देखि री हरि के चंचल नैन।
खंजन-मीन-मृगज चपलाई, नहीं पटतक इक सैन ॥
राजिवदल इन्दीवर सतदल, कमल, कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित प्रातहि वै विकसित, ये विकसित दिन राति ॥
अरुन स्वेत सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ।
मनु सरसुति गंगा जमुना मिलि आश्रम कीन्हौं आइ ॥
अवलोकनि जलधार तेज अति, तहाँ न मन ठहराइ।
सूर स्याम-लोचन अपार-दबि, उपमा सुनि सरमाइ ॥

नोट

शब्दार्थ–खंजन = एक पक्षी। मृगज = मृग वाली। पटतर = समान। सैन = दृष्टि। राजिवदल इंदीवर सतदल = कमल-पुष्प के विविध प्रकार। कुसेसय = कमल का एक प्रकार। मुद्रित = बन्द होना, सोना। अरुन = लाल। स्वेत = श्वेत। सित = काला। लोचन = नेत्र।

प्रसंग–श्री कृष्ण के (बाह्य शारीरिक सौन्दर्य के अन्तर्गत) नेत्रों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कोई गोपिका (अपनी सखी से) कहती है–

व्याख्या–हे सखी! कृष्ण के चंचल नेत्रों को देख। इन नेत्रों में खंजन, मछली और हिरण के नेत्रों वाली चपलता है तथा एक दृष्टि में यह (अधिक क्षणों तक) समान स्थिति में नहीं रहते। राजीवदल, इन्दीवर, शतदल, कुसेसय आदि विविध प्रकार के कमल की भाँति सुन्दर ये नेत्र भी हैं किन्तु सच में, ये उनसे भी बढ़कर हैं। प्रमाण? वे तो (सूर्यास्त होने के पश्चात्) रात्रि में मुंद जाते और (सूर्योदय होने पर) प्रातः में विकसित होते हैं किन्तु ये नेत्र दिन-रात दोनों समय में निरन्तर ही विकसित रहते हैं। प्रत्येक पलक में इनमें लाल, श्वेत और काले रंग की अलग-अलग झलक मारती है। भला कौन-सी उपमा इनका वर्णन कर सकती है? (कोई नहीं)। ऐसा प्रतीत होता है कि सरस्वती (लालिमा), गंगा (श्वेत) और यमुना (कालिमा) तीनों नदियों ने मिलकर यहाँ (इन नेत्रों में) निवास किया है। इनकी जलधार देखने में अत्यधिक तेज है और वहाँ पर मन स्थिर नहीं हो पाता। सूर के श्याम कृष्ण के नेत्रों की छवि तो अपार है जिसको सुनकर (देखकर) उपमान भी लज्जित हो जाते हैं।

विशेष–1. नायक-सौन्दर्याकन में नेत्र-चापल्य का सौन्दर्याकन प्रचलित काव्य-परिपाटी है और यहां पर कवि ने इसी का पालन किया है। 2. 'री' बोलचाल का सम्बोधन है जो कवि के जनसमाज-विषयक ज्ञान का परिचायक है। कहना न होगा कि इससे पद में स्वाभाविकता बढ़ गयी है। 3. अलंकार–(क) विरोधाभास–राजिवदल.....दिन रात। (ख) उत्प्रेक्षा–मनु.....आइ। (ग) मानवीकरण–उपमा सुनि सरमाई।

4. भावसाम्य–(क) ''अमिय हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार।'' –बिहारी : सतसई

(ख) ''नैन सुरसति जमुना गंगा उपमा डारौ वारि।'' –सूरः सूरसागर

देखि सखी अधरनि की लाली।
मनि मरकत तै सुभग कलेवर, ऐसे हैं बनमाली ॥
मनौ प्रात की घटा सांवरी तापर अरुन प्रकास।
ज्यौं दामिनि बिच चमकि रहत है फहरत पीत सुबास ॥
किधौं तरुन तमाल बेलि चढ़ि जुग फल बिम्ब सुपाके।
नरसा कीर आइ मनु बैढ्यो लेत बनत नहिं ताके ॥
हँसत दसन इक सोभा उपजति उपमा जदपि लजाइ।
मनौ नीलमनि-पुट मुकुतागन, बंदन भरि बगराइ ॥
किधौं ब्रज-कन, लाल नगनि खँचि तापर बिद्रुम पाँति।
किधौं सुभग बंधूक-कुसुम-तर, झलकत जल-कन-कांति ॥
किधौं अरुन अंबुज बिच बैठी सुन्दरताइ जाइ।
सूर अरुन अधरनि की शोभा, बरनत बरनि न जाइ ॥

शब्दार्थ–अधरनि = होठों। मरकत = लीनमणि। सुभग = सुन्दर। कलेवर = शरीर। तापर = उस पर। अरुन = सूर्य। दामिनि = आकाश विद्युत। पीत सुबास = पीताम्बर। किधौं = अथवा। सुपाके = परिपक्व। नासा = नासिका। कीर = तोता। पुट = पर्वत। बगराइ = फैलाना। बज्रकन = हीरे के कण। नगनि = नगीना। खँचि = जड़ना। विद्रुम = मूंगा। बंधूक = गुलदुपहरिया का लाल पुष्प। अंबुज = कमल। बरनत = वर्णन।

प्रसंग–श्रीकृष्ण के रक्तिम आभा वाले होंठों के सौन्दर्य का आलंकारिक वर्णन करती हुई कोई गोपिका अपनी सखी से कहती है–

व्याख्या–'हे सखी! श्रीकृष्ण के होंठों की लाली देखो। ये बनमाली कृष्ण मरकत मणि से सुन्दर शरीर वाले हैं। इनका रूप ऐसा है जैसा प्रातःकालीन काली घटा पर सूर्य का प्रकाश पड़ रहा हो। इनका पीताम्बर ऐसा फहराता है जैसे घटा में बार-बार बिजली चमक रही हो अथवा किसी तमाल के वृक्ष पर चढ़ी हुई कोई बेल उसके पके हुए

नोट

बिम्ब-फलों को लेने का प्रयत्न कर रही हो। इनकी नासिका ऐसी लग रही है मानो कोई तोता उस तमाल वृक्ष पर आकर बैठ गया हो और वे बिम्ब-फल उससे लेते नहीं बन रहे हों। हँसते समय इनके दाँतों से जो सौन्दर्य उत्पन्न होता है, उसे देखकर सारी उपमायें लज्जित हो जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे नीलमणि पर्वत पर किसी ने चन्दन बिखेर दिया हो और बीच-बीच में मोतियों का पुट दे दिया हो अथवा हीरे का नगीना जड़कर उस पर मूँगों की पंक्ति सजा दी गई हो अथवा बन्धूक के सुन्दर फूल पर तरल-जलबिन्दु झलक रहे हों अथवा लाल कमल के बीच में सुन्दरता आकर बैठ गई हो। वास्तव में उनके लाल अधरों की सुन्दरता का वर्णन किया ही नहीं जा सकता।''

विशेष–1. अलंकार–(क) उपमा–ज्यों.....सुबास। (ख) उत्प्रेक्षा–मनो.....प्रकास, मनो नीलमनि .....बगराइ। (ग) व्यतिरेक–मनि.....बनमाली। (घ) सन्देह–किधौं.....ताके।

2. भावसाम्य–(क) 'सोहत औढ़े पीत-पटु श्याम सलोने गात।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतुप पर्‌यो प्रभात।'' –बिहारी : सतसई

3. आलंकारिक शैली का सुन्दर प्रयोग है।

श्याम सौं काहे की पहिचानि।
निमिष निमिष वह रूप न वह छवि, रति कीजै जिय जानि ॥
इकटक रहति निरन्तर निसिदिन, मन-बुद्धि सौं चित सानि।
एकौ पल सोभा की सीवाँ सकति न उर महँ आनि ॥
समुझि न परै प्रगटहीं निरखत, आनन्द की निधि खानि।
सखि यह बिरह संजोग, कि समरस सुख दुख लाभ कि हानि ॥
मिटति न घृत तैं होम-अग्नि-रुचि, सूर सुलोचन-बानि।
इत लोभी उत रूप परम निधि, कोउ न रहत मिति मानि ॥

शब्दार्थ–निमिष = क्षण। रति = प्रेम। सानि = सना हुआ, लिप्त। सीवाँ = सीमा। बानि = आदत। मिति = सीमा।

प्रसंग–गोपी के मतानुसार श्रीकृष्ण का सौन्दर्य अनुपम तो है ही, पल-पल में परिवर्तन होने वाला भी है। परिणाम? इस सौन्दर्य को देखने वाले का दर्शन-लोभ बढ़ता ही जाता है। कृष्ण-सौन्दर्य और अपने दर्शन-लोभ की इसी विचित्र स्थिति से अवगत कराते हुए गोपिका अपनी सखी से कहती है–

व्याख्या–कृष्ण से भला किस प्रकार की पहचान हो सकती है? (पूर्ण परिचय भला कैसे हो सकता है?) कारण यह है कि उनका वह रूप और उसकी छवि तो पल-पल में परिवर्तनशील है जिसको मन में जानकर मैं प्रेम करती हूँ। (रूप-छवि एक-सी रहे तभी तो उसको समुचित प्रकार से पहचाना जा सकता है किन्तु वहाँ तो स्थिति एकदम विपरीत है।) (इसी सौन्दर्य की दर्शन-लालसा से उत्प्रेरित होकर) मैं रात-दिन निरन्तर अपलक देखती रहती हूँ और सच में तो, यह सौन्दर्य सदा ही मेरे मन, बुद्धि और हृदय पर छाया रहता है। वह सौन्दर्य इतना मोहक और मनोरम है कि एक-एक पल में शोभा की सीमा प्रतीत होती है और एक पल के लिये भी हृदय में नहीं समा पाता। (भाव यह है कि कृष्ण-सौन्दर्य का एक-एक दृश्य मनोरम है किन्तु पल-पल परिवर्तन हो जाने के कारण मन में कोई भी एक दृश्य अधिक समय तक टिक नहीं पाता।) इतना ही नहीं, प्रत्यक्षतः देखने पर भी यह समझ में नहीं आता। वास्तव में तो यह आनन्द की निधि है। हे सखी! इस विरह-दशा में भी उससे जो मानसिक संयोग है, उसे मैं समझ नहीं पाती। (प्रेमान्तर्गत आने वाला) यह संयोग-वियोग सुख-दुख है अथवा लाभ-हानि है अथवा सुख-दुख से परे आनन्द वाली समावस्था है, कुछ भी समझ में नहीं आता। कृष्ण-सौन्दर्य को देखने की आदत तो मेरे नेत्रों को पड़ गयी है यद्यपि इससे मेरे नेत्र उसी प्रकार सन्तुष्ट नहीं होते जैसे कि घी से होमाग्नि शान्त नहीं होती। सच तो यह है कि इधर तो मेरे (कृष्ण-दर्शन को उत्सुक बने) लोभ नेत्र हैं और उधर कृष्ण का परमानिधि सौन्दर्य, लेकिन दोनों में कोई भी अपनी स्थिति से नहीं हटता (अर्थात् नेत्र सौन्दर्य-दर्शन से नहीं हटते और कृष्ण-सौन्दर्य पल-पल में परिवर्तन होते रहने से बाज नहीं आता)। व्यंजना यही है कि मैं कृष्ण-सौन्दर्य को निरन्तर देखते रहने के लिये विवश-सी हो गयी हूँ।

विशेष–1. यहाँ पर संयोग शृंगारान्तर्गत अनन्यता की स्थिति का चित्रण है। 2. अलंकार– (क) पुनरुक्ति–निमिष, निमिष। (ख) अनुप्रास–सोभा.....सकति, मिति मानि। (ग) संदेह–साखि..... बानि। (घ) अतिशयोक्ति–सम्पूर्ण पद में।

नोट

3. भावसाम्य–(क) ''तजत न लोचन लालची ए ललचौंही बानि।'' –बिहारी : सतसई

(ख) ''क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।'' –भारवि

मन-मृग बेध्यो नैन-बान सौं।
गूढ़ भाव की सैन अचानक, तकि ताक्यो भृकुटि-कमान सौं ॥
प्रथम नाद कल घेरि निकट लैं, मुरली सप्तक सुर बंधान सौं।
पाछे बंक चितै, मधुरे हंसि, घात कियौ उलटे सुठान सौं ॥
सूर सु मार बिथा या तन की, घटति नहीं औषधि आन सौं।
ह्वै है सुख तबहीं उर-अन्तर, आलिंगन गिरिधर सुजान सौं ॥

शब्दार्थ–बेध्यो = बींधना, वध करना। ताक्यो = देखना। नाद = ध्वनि। बंधान = मचान। बंक = कटाक्ष। घात = चोट। सुठान = अच्छे स्थान। मार = चोट, काम। आन सौं = दूसरी किसी से। सुजान = प्रिय।

प्रसंग–नायक श्रीकृष्ण के नेत्र-कटाक्षों से कोई नायिका (गोपी) प्रभावित हो गयी और प्रेम-लिप्त हो उठी। प्रेमातुरता का उपचार था–आलिंगनबद्ध होना। अपनी और अपने प्रिय कृष्ण की इसी प्रेम-स्थिति को स्पष्ट करते हुए वह अपनी अतरंग सखी से कहती है–

व्याख्या–अपने नेत्र (कटाक्ष) के बाण से कृष्ण ने मेरे मन-मृग को बेध दिया। प्रेम के गूढ़ भावों से परिपूर्ण नेत्रों (के कटाक्ष-बाणों) को भृकुटि रूपी कमान पर रखकर अचानक ही उस (कृष्ण) ने छोड़ा (फलतः मेरे मन-मृग को बचने का अवसर ही नहीं मिल पाया और वह कृष्ण-कटाक्ष का शिकार हो गया।) एक चतुर शिकारी की भाँति कृष्ण ने पहले तो अपनी मुरली के सप्त स्वर मचान से मधुर ध्वनि करके मन-मृग को मोहित कर घेर लिया (क्योंकि हिरण स्वभावतः ही संगीत की मधुर ध्वनि को सुन आकर्षित-मोहित ही जाता है) तत्पश्चात् अपनी बंकिम चितवन (दृष्टि) और मधुर हँसी के अच्छे स्थान से पलट कर घात की। (सच तो यह है कि) इस शरीर में व्याप्त काम (चोट) की व्यथा किसी अन्य औषधि से नहीं घटती। हृदय को तो तभी सुख होता है जबकि (गोबर्धन पर्वत को धारण करने वाले नायक) प्रिय कृष्ण आलिंगन करें।

विशेष–1. यहाँ पर प्रेम की विविध स्थिति-सोपानों का अंकन है, एकदम क्रमबद्ध और मनोविज्ञान सम्मत रूप में। 2. अलंकार–(क) सांगरूपक–समस्त पद में। (ख) रूपक–मन-मृग, नैन-बान, भृकुटि-कमान। (ग) अनुप्रास–तकि ताक्यों। 3. यहां मृग-आखेट का पूरा रूपक है।

4. भावसाम्य–(क) दृगनु लगत बेधत हियहिं, बिकल करत अंग आन।
ए तेरे सब तैं विषम ईछन-तीछन बान ॥ –बिहारी : सतसई

(ख) लड़ गई उनसे नजर, खिंच गये अबरू उनके।
मारिके इश्क के अब तीरो-कमां तक पहुँचे। –बेताब

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. 'किसी न गोकुल कुलबधू' काहि न कित सिख दीन।
कौन तजी न कुल-गली, ह्वै मुरली-सुरलीन'
उपरोक्त पंक्तियों के रचचिता कौन हैं?
(अ) घनांनद (ब) सूरदास (स) बिहारी (द) रैदास

5. गहै बीन मकु रैन बिहाई।
ससि बहन तहँ रहे ओनाई।।
उपरोक्त पंक्तियों के रचयिता कौन हैं?
(अ) जायसी (ब) सूरदास (स) कबीर (द) इनमें से कोई नहीं

नोट

6. सारंग नयन बयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने।
   सारंग ऊपर उगाए दस सारंग,
   केलित करत मधुपाने।।
   उपरोक्त पंक्तियों के रचयिता कौन हैं?
   (अ) कबीर (ब) सूरदास (स) विद्यापति (द) मीरा

7.2 सारांश (Summary)

अपने हाथ में माखन लिये हुए बालकृष्ण सुशोभित (प्रतीत हो रहे) हैं। घुटनों के सहारे चलने से उनका शरीर (हाथ-पैर आदि) मिट्टी से युक्त हैं तथा मुख पर (असावधानीवश मक्खन वाला हाथ फेरने के कारण मानो) दही का लेप किया हुआ है।

कृष्ण के सुन्दर मुख पर इधर-उधर फैले हुए कोमल बाल ऐसे शोभायमान हैं मानो कमल के चारों ओर सुन्दर भ्रमरों की पंक्तियाँ फैली हुई हों।

कृष्ण का शरीर कोमल है फिर भी बंशी उनसे अपनी आज्ञा का पालन कराती है जिसके फलस्वरूप उनकी कमर टेढ़ी हो जाती है।

मेघवर्णीय श्रीकृष्ण रूपनिधान हैं तथा मन को आनन्द और विश्राम देने वाले (प्रतीत होते) हैं। खंजन, मछली, मोर, हंस तथा कोयल आदि के (परम्परागत उपमानों के) भेद-भाव को त्याग गोपियाँ मस्तानी चाल में गजगामिनी की भाँति मंथर गति से चल रही हैं।

7.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **दामिनीः** आकाश-विद्युत
2. **अनुरागः** प्रेम
3. **कीरः** तोता
4. **मधुपः** भ्रमर, भंवरा

7.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सूरदास ने गोकुल लीला में श्रीकृष्ण की किन-किन लीलाओं का वर्णन किया है, संक्षेप में लिखिए।
2. निम्नलिखित पंक्तियों की सप्रसंग व्याख्या कीजिएः
   बनी मोतिनि की माल मनोहर सोभित स्याम-सुभग उर-ऊपर मनु गिरि तैं सुरसरि धसी।
3. सूरदास के वात्सल्य वर्णन में स्वाभाविकता, विविधता, रमणीयता एवं मार्मिकता है, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. कारागार 2. बालकृष्ण 3. कमल 4. (स) 5. (अ) 6. (स)

7.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. सूरसागर–*सूरदास कृत।*
2. सूर की काव्य कला–*गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।*
3. सूरदास के पद–*गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।*

नोट

इकाई 8

सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या (गोकुल लीला)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
8.1 सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या (1)
8.1.1 सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या (2)
8.2 सारांश (Summary)
8.3 शब्दकोश (Keywords)
8.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
8.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या करने में।
- विभिन्न शब्दार्थ जानने में।
- सूरसागर के काव्य सौंदर्य को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सूरदास के काव्य में आत्माभिव्यंजन, भावप्रवणता, मधुरता संगीतात्मकता जैसे सभी गुण विद्यमान हैं। सूरदास ने कृष्ण के प्रेम में पगी गोपियों के रसासिक्त हृदय की भावानुभूतियों को सूर ने गीतिकाव्य के द्वारा अभिव्यक्त कर पाठकों को मधुर भावों के अवगाहन करने का जो सुअवसर प्रदान किया है, उसके लिए हिन्दी काव्य जगत उनका सदैव ऋणी रहेगा।

8.1 सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या (1)

नवल निकुंज नवल नवला मिलि, नवल निकेतन रुचिर बनाए।
बिलसत विपिन बिलास बिबिध बर, बारिज-बदन बिकच सचु पाए ॥
लागत चंद्र मयूख सु तिय तनु, लता-भवन-रंध्रनि मग आए।
मनहु मदन-बल्ली पर हिमकर, सींचत सुधा धाट सत नाए ॥
सुनि सुनि सूचित स्त्रवन जिय सुन्दरि, मोन किये मोदति मन लाए।
सूर सखी राधा माधव मिलि क्रीड़त रति रतिपतिहि लजाए ॥

शब्दार्थ–नवल = नये। नवल = कृष्ण। नवला = राधा। रुचिर = सुन्दर। निकेतन = निवास-स्थान। बिलसत = सुशोभित। बिपिन = वन। वर = सुन्दर। बारिज बदन = कमलमुख। बिकच = प्रफुल्लित। सचु =

नोट

सचमुच। मयूख = किरण। सुतिय = श्रेष्ठ स्त्री। मदन-बल्ली = काम-लता, नारी-शरीर। हिमकर = ओस। मोदति = आनन्दित। रति = काम-क्रीड़ाएं। रतिपतिहि = रति का स्वामी, कामदेव।

प्रसंग–श्रीकृष्ण, प्रिया राधा और अन्य सखियों के साथ यमुना-तट पर विहार करते हैं और नाना प्रकार की संयोगकालीन क्रीड़ायें करते हैं। इन्हीं का परिचय देते हुए कोई गोपिका अपनी सखी से कहती है–

व्याख्या–(वृन्दावन स्थित यमुना नदी के तट पर) नये-नये निकुंज है जहां पर कृष्ण और राधा ने मिलकर नए-नए और सुन्दर निवास-स्थल (मिलन-स्थल) बना लिये हैं। वहाँ पर तरह-तरह के सुन्दर विलासों से युक्त वन सुशोभित हैं जहां कमलमुखी (राधा-कृष्ण) प्रफुल्लित होकर सुख पाते हैं। चन्द्रमा की किरणें (चन्द्रिका) सुन्दर स्त्री (राधा) के शरीर पर पड़ती हैं मानों अमृत की धारा से ओस के माध्यम से चन्द्रमा काम-लता (नारी-तन) को सींच रहा है। (राधा-कृष्ण की इन प्रेम-क्रीड़ाओं के वर्णन को) सुन्दर सखी कानों से और ध्यानपूर्वक सुनती है और चुपचाप मन ही मन आनंदित होती है। राधा और माधव मिलकर काम-क्रीड़ायें करते हैं जिनको देखकर रतिपति-कामदेव भी लजा जाते हैं।

विशेष–1. अलंकार–(क) अनुप्रास–नवल.....निकेतन, बिलसत.....बिकच, तिय तनु, सुनि.....स्त्रवन। (ख) यमक–नवल नवल। (ग) रूपक–वारिज बदन। (घ) उत्प्रेक्षा–लागत.....सत् नाए। (ङ) पुनरुक्ति–सुनि सुनि। (च) अतिशयोक्ति–रतिपतिहिं लजाए। 2. यहाँ पर प्रकृति का पृष्ठभूमि और उद्दीपन रूप में अंकन है।

3. भावसाम्य–'नव वृन्दावन नव-नव तरुगन।
नव नव विकसित फूल ॥ – विद्यापति : पदावली

अद्‌भुत एक अनुपम बाग।
जुगल कमल पर गज तर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग ॥
हरि पर सरबर सर पर गिरिबर, गिरि पर फूलैं कंज पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृतफल लाग ॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक पिक मृग-मद काग।
खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग ॥
अंग-अंग प्रति और छबि, उपमा ताकौ करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियौ सुधारस मानो अधरनि के बड़ भाग ॥

शब्दार्थ–अनुपम = अतुलनीय। जुगल = दो। गजबर = सुन्दर हाथी, जँघाएं। तापर = उस पर। सिंह = कटि। हरि = सिंह, कटि। सरवर = सरोवर, नाभिप्रदेश। गिरिबर = सुन्दर पर्वत, वक्षस्थल। कंज-पराग = परागमय कमल, स्तन। कपोत = कबूतर, ग्रीवा। अमृतफल = ठोड़ी। पुहुप = पुष्प, तिल। पल्लव = कोंपल, अधर। सुक पिक = तोता और कोयल, नाक और वाणी। मृगमद = कस्तूरी, बिन्दी। काम = कौआ, केश-लटें। खंजन = नेत्र। धनुष = भौंहें। चन्द्रमा = मस्तक। नांग = सर्प, वेणी। अधरनि = अधरों के। बड़भाग = सौभाग्य।

प्रसंग–राधा का बाह्य (शारीरिक) सौन्दर्य अनुपम है और उसके शरीर का एक-एक अंग-प्रत्यंग अतुलनीय है। इसी का वर्णन करते हुए कोई सखी (दूती अथवा गोपिका) अपनी सखी (अथवा नायक श्रीकृष्ण) से कहती है–

व्याख्या–(राधा का शरीर) एक आश्चर्यजनक तथा अतुलनीय उद्यान है। प्रमाण? इस उपवन (शरीर) में दो कमलों (जैसे चरणों) पर सुन्दर हाथी (जैसी जंघाएं) क्रीड़ा करती हैं और उस पर सिंह (जैसे कटि-प्रदेश) अनुराग करता है। इस सिंह (कटि प्रदेश) पर एक सरोवर (नाभि) है तथा उस पर श्रेष्ठ पर्वत (जैसे पयोधर) जिस पर परागयुक्त कमल (स्तन) फूले हैं। उसके ऊपर सुन्दर कपोत (ग्रीवा) निवास करता है तथा उसके ऊपर अमृतफल (ठुड्डी) लगा है। इस अमृतफल पर पुष्प (तिल) है तथा उस पर कोंपल (जैसे अरुणाधर) जिस पर तोता, कोयल, कस्तूरी और कौआ (अर्थात् क्रमशः नाक, वाणी, कस्तूरी की बिन्दी तथा केश-लटें) शोभित हैं। खंजन (नेत्र), धनुष (भौहें) तथा ऊपर चन्द्रमा (मस्तक) है जिसके ऊपर एक मणिधारी सर्प (मणिजटिल आभूषण) है। इतना ही नहीं, प्रत्येक अंग-प्रत्यंग का सौन्दर्य भी अलग-अलग है जिनका त्याग उपमा भी नहीं करती। सूर के प्रभु कृष्ण इस (राधा-सौन्दर्य के) अमृत-रस का पान करो (करते हैं) मानो (उनके) अधर बड़े भाग्यशाली हैं।

नोट

विशेष–1. सौन्दर्यान्तर्गत नख-शिख वर्णन की परम्परा का यहाँ पर पूरा पालन किया गया है। 2. यह पद कवि की कूट शैली का परिचायक है। 3. अलंकार–(क) रूपकातिशयोक्ति–समस्त पद में। (ख) पुनरुक्ति–पुडप, अंग-अंग, और-और। (ग) उत्प्रेक्षा–सूरदास.....बड़ीभाग। 4. सभी उपमान परम्परागत हैं।

5. भावसाम्य–

'माधव कि कहब सुन्दरि रूपे।
पल्लवराज चरनजुग सोभित गति गजरादक भाने।
कनक-कदलि पर सिंध समारल तापर मेरू समाने ॥
मेरू ऊपर दुइ कमल फुलायल नाल बिना रुचि पाइ।
सारंग नयन बयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने ॥ –विद्यापति

प्रिया-मुख देखो स्याम निहारि।
कहि न जाइ आनन की शोभा, रही बिचारि बिचारि ॥
छीरोदक घूंघट हातो करि, सन्मुख दियौ उघारि।
मनौ सुधाकर दुग्ध सिन्धु तैं कढ्यौ कलंक पखारि ॥
मुक्ता मांग सीस पर सोभित राजति इहिं आकारि।
मानौ उडुगन जानि नवल ससि, आए करन जुहारि ॥
भाल लाल-सिन्दूर-बिंदु पर मृगमद दियौ सुधारि ॥
मनौ बधूक-कुसम ऊपर अलि बैठ्यौ पंख पसारि ॥
चंचल नैन चहूं दिसि चितवत जुग खंजन अनुहारि।
मनौ परसपर करत लराई कीर बचाई रारि ॥
बेसरि के मुक्ता में झांई बरन बिराजति चारि।
मानौ सुरगुरु, स्त्रुक, भौम, सनि चमकत चंद मंझारि ॥
अधर बिंब बिच दसन बिराजत दुति दामिनि चमकारि।
चिबुक-बिन्दु-बिच दियौ बिधाता रूप सींब निरुवारि ॥
तरिवन स्त्रवन रतन मनि भूषित सिर सीमल संवारि।
जनु जुग भानु दुहूं दिसि उगए, भयौ द्विधा तमहारि ॥
लाल भाल कुच बीच विराजति, सखियन गुही सिंगारि।
मनहुं धुई निर्धूम अग्नि पर, तप, बैठे त्रिपुरारि ॥
सन्मुख दृष्टि परै मनमोहन लज्जित भई सुकुमारि।
लीन्हीं उमगि उठाई अंक भरि, सूरदास बलिहारि ॥

शब्दार्थ–आनन = मुख। विचारि = सोचकर। छीरोदक = दूध के समान श्वेत वस्त्र। हातो = अलग। दुग्ध सिन्धु = क्षीरसागर। कलंक = कालिमा। पखारि = धोकर। मुक्ता = मोतियों से युक्त। राजति = सुशोभित। इहि आकारि = इस रूप में। उडुगन = नक्षत्र। नवल = नया। जुहारि = प्रणाम। भाल = माथा। मृगमद = कस्तूरी। बधूक कुसुम = लाल रंग का एक पुष्प। अलि = भ्रमर। जुग = दो। अनुहारि = समान। कीर = तोता, नाक। बेसरि = एक आभूषण, नथ। झाँई = प्रतिबिम्ब। बरन = वर्ण, रंग। सुरगुरु = बृहस्पति, पीला रंग। भौम = मंगल, लाल रंग। मझारि = में। बिंब = बिम्बाफल। दुति = द्युति, कान्ति। चिबुक = ठोड़ी। सींव = सीमा। तिरुवारि = सुलझाकर। तरिवन = बुन्दे। तमहारि = अंधकार। कुच = वक्ष। धुई = धुनी। त्रिपुरारि = त्रिपुर-शत्रु, शिव। अंक = गोद, आलिंगन।

प्रसंग–पूर्ववत्।

व्याख्या–दूती या गोपी कहती है, "हे कृष्ण! जरा इस प्रियतमा का मुख तो देखो। इसके सुन्दर मुख की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। इसके सौन्दर्य को मैं तो केवल सोच-सोच कर ही रह जाती हूँ। दूध के समान श्वेत

नोट

वस्त्र के घूंघट को कृष्ण के सम्मुख करके उसने खोल दिया, मानो किसी ने चन्द्रमा को क्षीर-सागर से उसके कलंक को धोकर निकाला हो। मोतियों से युक्त माँग उसके शीश पर इस प्रकार शोभित हो रही है मानो नक्षत्रों का समूह उसके मुख रूपी चन्द्रमा को प्रणाम करने आया हो। उसके माथे पर सुन्दर सिन्दूर की लाल बिन्दी, ऊपर कस्तूरी का तिलक ऐसा प्रतीत होता है मानो लाल बन्धूक पुष्प के ऊपर भ्रमर पंख फैलाकर बैठा हो। खंजन पक्षी के जोड़े की समता करने वाले उसके दोनों चंचल नेत्र चारों ओर देखते रहते हैं, मानो कलह हो जाने के कारण उन्होंने शोर मचा दिया हो लेकिन तोते (नाक) ने इसको बचा दिया। नाक की नथ के मोती से पड़ने वाली परछाई चार रंग की होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है, मानो बृहस्पति (पीला) शुक्र (श्वेत) मंगल (लाल) और शनि (नीला, काला) के बीच में इन्द्र (नासिका) विराज रहे हों। उसके होंठ बिम्ब फल के समान हैं। उनके बीच में दाँतों की शोभा ऐसी है जैसे बिजली की चमक। उसके चिबुक के बीच के बिन्दु में मानो विधाता ने सौंदर्य की सीमा को सुलझाकर डाल दिया हो। रत्नमणि से युक्त बुन्दों से कान युक्त हैं और सिर सीमान्त तक संवारा हुआ है। उस प्रकाश-पुंज की उपमा देने के लिये किस चीज की समानता दूँ? उसको इस प्रकार कहा जा सकता है मानो दसों दिशाओं में अनेक सूर्य निकल आये हों, जिनसे भयभीत होकर अन्धकार पाताल में जा छिपा हो। सखियों ने अच्छी प्रकार से लाल पुष्पों की सुन्दर माला से हीरे की पंक्तियों वाले हार से उसे सजाया है। इस दशा में वह ऐसी प्रतीत होती हैं मानो शिवजी धुवें-रहित अग्नि की धूनी पर बैठे हुए तप रहे हों। इस प्रकार की सुन्दरी नायिका के सामने जब मनमोहन आ गये और उन पर दृष्टि पड़ी, तो वह सुकुमारी लज्जित हो गई। कृष्ण ने उसे उमंग में भरकर उठाकर हृदय से लगा लिया। इस दृश्य पर कवि सूरदास बलिहारी जाते हैं।

विशेष–1. यहाँ पर दूती या गोपी परोक्षतः राधा के मुख-सौन्दर्य का अतिशयोक्ति-परक वर्णन करके नायक (कृष्ण) को उत्तेजित-प्रेरित करती है जो शृंगार-काव्य की एक कवि-परम्परा है। 2. यहाँ पर काव्यशास्त्रीय दृष्टि से, राधा का वासकसज्जा नायिका के रूप में चित्रण किया गया है। 3. अलंकार–(क) अतिशयोक्ति–कहि न.....बिचारि। (ख) पुनरुक्ति–बिचारि बिचारि। (ग) रूपक–छीरोदक घूंघट। (घ) उत्प्रेक्षा–छीरोदक.....त्रिपुरारि। (ङ) मानवीकरण–उडुगन। (च) उपमा–अधर बिंब, दुति दामिनि। (छ) अनुप्रास–सिर.....संवारि, जनु जुग। 4. कवि का अनुभाव-चित्रण दृष्टव्य है। 5. यहाँ पर उल्लिखित सौन्दर्य-प्रसाधन कवि के लोक-ज्ञान के परिचायक हैं।

स्याम भए राधा बस ऐसे।
चातक स्वाति, चकोर चन्द ज्यौं चक्रवाक रवि जैसे ॥
नाद कुरंग, मीन-जल की गति, ज्यौं तनु के बस छाया।
इकटक नैन अंग-छबि मोहे, थकित भए पति जाया ॥
उठै बैठत बैठे उठत हैं, चलैं चलत सुध नाहीं।
सूरदास बड़भागिनि राधा, समुझि मनहिं मुसुकाहीं ॥

शब्दार्थ–स्वाति = एक नक्षत्र विशेष। चक्रवाक = चकवा। नाद = संगीत की ध्वनि। कुरंग = मृग। जाया = पत्नी, राधा। बड़भागिनि = सौभाग्यवाती।

प्रसंग–राधा के सौन्दर्य पर कृष्ण न केवल मुग्ध हो उठे वरन् पूरी तरह से उसके वश में हो गये। निःसन्देह (सामान्य नारी की भाँति) राधा इस पर प्रसन्न हो अपने को सौभाग्यवती मानती है। इसी का वर्णन करते हुए कोई सखी कहती है–

व्याख्या–कृष्ण तो राधा के (सौन्दर्य के) वश में इस प्रकार हो गये हैं जैसे कि चातक स्वाति नक्षत्र में हुई वर्षा के, मछली जल के तथा परछाई शरीर के वश में रहती है। उनके अलपक नेत्र राधा के शरीर की छवि पर मोहित हैं, यहाँ तक कि पत्नी (राधा) की छवि को देख पति (कृष्ण) के नेत्र थक गये हैं। (इतना ही नहीं, कृष्ण अपनी सुध-बुध तक खो-बैठे हैं)। इसी से स्थिति तो यह हो गयी है कि वे उठते ही बैठ जाते हैं और बैठते ही उठ जाते हैं, चलते हैं तो चलने की सुध की नहीं रहती (अथवा राधा के बैठने पर बैठते हैं और उठने पर उठते हैं तथा चलने पर स्वयं भी चल देते हैं। उन्हें कोई सुधि नहीं है)। राधा बड़ी सौभाग्यवती है जो (कृष्ण की इस अवस्था को) समझकर मन ही मन प्रसन्न होती है (अथवा अपने को सौभाग्यवती समझकर मन ही मन आनन्दित होती है)।

नोट

विशेष–1. अलंकार–उपमा–स्याम.....छाया। 2. चातक, चकोर, चक्रवाक, कुरंग तथा मीन प्रेम की अनन्यता के परम्परागत काव्य-प्रतीक हैं। यहाँ पर कवि ने इन्हीं से सम्बन्धित कवि-समयों का प्रयोग किया है।

3. भावसाम्य–

(क) ''कहा लड़ैते दृग करै, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट, कहूँ मुकटु बनमाल ॥'' –बिहारी : सतसई

(ख) ''कहुँ बनमाल कहुँ गुंजननि की माल कहुँ।
संग सखा ग्वाल ऐसे हाल भूलि गये हैं।
घूंघट की ओट ह्वै के चितयो कि चोट करि।
लालन तो लोटपोट तबहीं ते भये हैं॥'' –सुन्दर

(ग) नागरि छवि पर रीझे स्याम।
कबहुँक वारत हैं पीताम्बर, कबहुंक वारत मुक्ता-दाम ॥

(घ) होश जाता ही रहा, वरना जब वो आते हैं तब नहीं आता। –मीर

संग सोभित वृषभानु किसोरी।
सारंग[1] नैन बैन बर सारंग[2], सारंग[3] बदन कहै छबि कोरी ॥
सारंग[4] अधर सुघर कर सारंग[5], सारंग[6] जाति, सारंग[7] मति भोरी।
सारंग[8] दसन, हसन पुनि सारंग[9], सारंग[10] बसन पीत पर डोरी ॥
सारंग[11] चरन, पीठ पर सारंग[12], कनक खम्ब मनौ अहि लसौ री।
सारंग[13] बरन, दीठ पुनि सारंग[14], सारंग[15] गति, सारंग[16] गति थोरी ॥
सारंग[17] पुलिन, रजनि रुचि सारंग[18] सारंग[19] अंग, सुभग भुज जोरी।
बिहरति सघन कुंज, सखि निरखति, सूरस्याम-घन दामिनि गोरी ॥

शब्दार्थ–सारंग = क्रमशः 1. मृग या खंजन, 2. कोयल, 3. चन्द्रमा, 4 सरस, 5 कमलनाल, 6. पद्मनि जाति की नायिका, 7. स्त्री, 8. हीरा, 9. बिजली, 10. घनश्याम, 11. कमल, 12. वेणी, 13. स्वेत, 14, मधुरु 15. हंस, 16. सर्प, 17. नदी, 18. मधुर, 19. कामदेव। बर = सुन्दर। कर = हाथ। अहि = सर्पिणी। लसौरी = शोभित है। दीठ = दृष्टि। पुलिन = तट। बिहरति = विचरण करती है। घन = मेघ। दामिनि = आकाशविद्युत।

प्रसंग–राधा और कृष्ण, प्रेमानन्द में भरकर, वृन्दावन में विहार कर रहे हैं। इस समय राधा का एक-एक अंग-प्रत्यंग अत्यधिक सौन्दर्य से ओतप्रोत है। इन्हीं का कूटात्मक विवरण देते हुए कोई गोपी अपनी अन्तरंग सखी से कहती है–

व्याख्या–(अपने प्रिय नायक) श्रीकृष्ण के साथ (वृषभानु की किशोरावस्था वाली पुत्री) राधा सुशोभित हैं। उसके नेत्र मृग या खंजन जैसे (सुन्दर और चंचल) हैं तो वाणी कोयल (की वाणी) जैसी मधुर। मुख चन्द्रमा जैसा (सुन्दर) है तथा छवि-एकदम साफ (पवित्र या कुंवारी) है। उसके होंठ सरस हैं तथा सुघड़ हाथ कमल-नाल जैसे (कोमल और सुन्दर)। वह पद्मनि जाति की (सर्वोत्तम नारी) है तथा उसकी बुद्धि एकदम भोली (निश्छल और अबोध) स्त्री जैसी है। उसके दांत हीरे (की आभा) जैसे हैं तो हास्य आकाशविद्युत की भाँति। उसके वस्त्र श्याम घन की भाँति हैं जिनमें पीले रंग की डोरी लगी है (अथवा जो पीताम्बरधारी कृष्ण पर रीझती है)। उसके चरण कमल की तरह है, तो पीठ पर सर्पिणी की भाँति वेणी लटक (लहरा) रही है। कटि पर झूलती वेणी ऐसी प्रतीत होती है मानो किसी स्वर्ण-खम्भ (शरीर-यष्टि अथवा कटि) पर सर्प सुशोभित हो। उसके (शरीर) का वर्ण श्वेत है तथा दृष्टि भी मधुर है। उसकी चाल हंस (की चाल) सी और थोड़ी-थोड़ी सर्प (की चाल की भाँति लहराती हुयी) सी है। नदी-तट है जिस पर मधुर-मनोहर रात्रि (का वातावरण) है। ऐसे मादक और उद्दीपक वातावरण में राधा का अंग-प्रत्यंग साक्षात् कामदेव (के अंगों) सा प्रतीत होता है। दोनों ने अपनी सुन्दर भुजाओं को जोड़ रखा है (हाथ में हाथ पकड़ रखे हैं)। हे सखी! देखो गहन-कुंजों में (काले मेघ जैसे) कृष्ण और (मेघों में छिपी विद्युत-सी) राधा विचरण कर रहे हैं।

विशेष–1. संयोगान्तर्गत युगल-चारण (नायक-नायिका का सम्मिलित विचरण) और पुष्टिमार्गीय विचारधारा के अनुकूल युगल-उपासना दोनों ही दृष्टियों से यह पद महत्त्वपूर्ण है। 2. प्रस्तुत पद कवि की कूटकाव्य-शैली का

नोट

परिचायक है। 3. उपमान-योजना में (सारंग' शब्द कवि को सर्वाधिक प्रिय रहा है। यह पद इसी सत्य का उद्घोषक है। 4. 'सारंग' शब्द का बहुअर्थी प्रयोग कवि के विशद् भाषा-ज्ञान का साक्षी है। 5. अलंकार–(क) उपमा और रूपक–समस्त पद में। (ख) रूपकातिशयोक्ति–समस्त पद में। (ग) यमक–'सारंग' शब्द की आवृत्ति और अर्थ-वैभिन्नय में। (घ) अनुप्रास–बैन वर। (ङ) उत्प्रेक्षा–कनक.....लसौ री।

6. भावसाम्य–

(क) सारंग चरन सुभग कर सारंग, सारंग नाम बुलावहु।
सूरदास सारंग उपकारिनि, सारंग मरत जियावहु ॥ –सूरदास

(ख) सारंग नयन बयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने।
सारंग ऊपर उगाए दस सारंग, केलि करत मधुपाने ॥ –विद्यापति : पदावली

लोचन भए पखेरू, माई
लुब्धे स्याम-रूप चारा कौं, अतम-फंद परे जाई ॥
मोर मुकुट टाटी मानौं, यह बैठनि ललित त्रिभंग।
चितवनि लकुट, लास लटकनि-पिय, कांपा अलक तरंग ॥
दौरि गहनि मुख-मृदु-मुसुकावनि, लोभ-पींजरा डारे।
सूरदास मन-व्याध हमारौ, गृह-बन तैं जु बिसारे ॥

शब्दार्थ–लोचन = नेत्र। पखेरू = पक्षी। लुब्धे = मोहित हुए। अलक-फंद = केश पाश। टाटी = टट्टी, ओट। लकुट = छड़ी, लाठी। लास = लासा। काँपा = बाँसतिली। व्याध = शिकारी।

प्रसंग–प्रेमारम्भ का मूल है–दर्शन और तद्जनित रूप-लिप्सा। इनका माध्यम होते हैं–नेत्र। इसी से शृंगारान्तर्गत नेत्र-व्यापारों का विशेष महत्त्व रहता है। अपने नेत्रों की इसी विवशता भरी स्थिति का परिचय देते हुए कोई गोपिका (अपनी सखी से) कहती है–

व्याख्या–(अरी माई!) मेरे नेत्र तो (प्रिय कृष्ण के रूप-सौन्दर्य को देख लेने के पश्चात्) पक्षी हो गये हैं। प्रमाण? (एक पक्षी की भाँति) मेरे ये नेत्र श्याम वर्ण वाले कृष्ण के सौन्दर्य रूपी चारे पर मुग्ध हुए और (शिकारी द्वारा पूर्व नियोजित फन्दे रूपी) अलक-पाश में जाकर फंस गये (अर्थात् कृष्ण की सुन्दर केशराशि पर मोहित होकर मानो वहीं पर अटक गये)। कृष्ण का मोरपंखी मुकुट ही वह ओट है जिसकी आड़ में (वह कृष्ण रूपी) शिकारी (त्रिभंगिमा वाले आसन से) बैठा है। उसकी चितवन छड़ी है और केश-लटकन ही मानो लासा है तथा इसमें लहरदार केश का कंघा लगा है (जिसके द्वारा शिकारी पक्षी को फाँसकर शिकार करता है)। उसके मुख की मृदु मुस्कान ही दौड़कर (शिकार बनने वाले पक्षी को) पकड़ लेती है। (आकर्षित कर लेती है) तथा लोभ (आकर्षण) के पिंजरे में डाल देती है। सच में तो, हमारा मन ही शिकारी है जिसने हमको (पक्षी की भाँति) घर और वन (अर्थात् घर और बाहर सभी) से अलग कर दिया है (तथा शिकारी की भाँति अपने रूपजाल में बन्दी बना लिया है)।

विशेष–1. यहाँ पर प्रेमारम्भ की स्थिति का एकदम प्रभावशाली और मनोविज्ञानसम्मत अंकन है।

2. 'माई' बोलचाल की भाषा का सूचक है।
3. अलंकार–(क) सांगरूपक–समस्त पद में। (ख) उत्प्रेक्षा–मोर.....मानौ। (ग) अनुप्रास–लकुट.....लटकनि, मुख.....मुसुकावनि। (घ) रूपक–अलक-फंद, लोभ-पींजरा, मन-व्याध।
4. परोक्षतः कृष्ण-सौन्दर्य का काव्यात्मक अंकन किया गया है।
5. भावसाम्य–मोहन छवि रसखान लख, अब दृग अपने नाहिं।
ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहिं ॥ –रसखान

टास्क सूरदास श्रीकृष्ण और राधा के प्रेमालाप का वर्णन करने में अद्वितीय स्थान रखते हैं। क्या आप इस बात से सहमत हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. ..... पक्षी के जोड़े की समता करने वाले उसके दोनों चंचल नेत्र चारों ओर देखते हैं, मानो कलह हो जाने के कारण उन्होंने शोर मचा दिया हो।
2. सुक-पिक ..... को कहा जाता है।
3. 'मोहन छवि रसखान लख, अब दृग अपने नाहिं।' पंक्तियां ..... की हैं।

8.1.1 सूरसागर के प्रमुख पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या (2)

लोचन मेरे भृंग भए री।
लोकलाज बन-घन बेलि तजि, आतुर ह्वै जु गए री ॥
स्याम-रूपरस बारिज-लोचन, तहाँ जाइ लुब्धे री।
लपटे लटकि पराग-बिलोकनि, संपुट-लोभ परे री ॥
हँसनि प्रकास बिभास देखिकै, निकसत पुनि तहँ पैठत।
सूरस्याम अंबुज कर चरननि, जहाँ तहां भ्रमि बैठत ॥

शब्दार्थ–भृंग = भ्रमर। आतुर = उत्सुक। बारिज = कमल। संपुट = पराग। विभास = आभा। निकसत = निकले। पैठत = बैठे। अम्बुज = कमल। भ्रमि = भ्रम करके, भ्रमवश।

प्रसंग–पूर्ववत्।

व्याख्या–(अरी सखी!) मेरे नेत्र तो (कृष्ण का रूप-सौन्दर्य देखकर) भ्रमर बन गये हैं। प्रमाण? इन्होंने लोक-लाज रूपी वन-बेल को तज दिया और (निःसंकोच होकर) वहाँ (कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर) मोहित हो गये। कारण? (कृष्ण के) केश-राशि रूपी पराग को देख उससे लिपट गये और पराग के लोभ में पड़ गये। सूर्य (उदय होने पर लाली) प्रकाश-आभा को देख ये निकले और पुनः वहीं बैठ गये। कृष्ण के हाथ और चरण तो कमल तुल्य हैं जिनके आस-पास भ्रमण करके (अथवा कमल का भ्रम मानकर) ये बैठ गये।

विशेष–1. अलंकार–(क) सांगरूपक–समस्त पद में। (ख) रूपक–लोक,.....बेलि, बारिज लोचन, अम्बुज.... .चरननि। 2. 'री' देशज शब्दावली-प्रयोग का सूचक है।

3. भावसाम्य–'लोचन-भृंग कोस-रस पागे।
स्याम कमल-पद सौं अनुरागे ॥' –सूर : सूरसागर

मेरे नैन कुरंग भए।
जोबन-वन तें निकसि चले ये, मुरली-नाद रए ॥
रूप-व्याध, कुंडल-दुति ज्वाला, किंकनि घंटा-घोष।
व्याकुल ह्वै एकहि टक देखत, गुरूजन तजि संतोष ॥
भौंह-कमान, नैन-सर-साषनि, मारनि चितवनि-वारि।
ठौर रहे नहिं टरत सूर वै, मंद हँसनि सिर डारि ॥

शब्दार्थ–कुरंग = हिरण। भए = हो गये हैं। नाद = ध्वनि। रए = मस्त। व्याध = शिकारी। दुति = द्युति, छवि। ह्वै = होकर। सर = शर। चारि = चारु। ठौर = स्थान। सिर डारि = सिर झुकाना।

प्रसंग–पूर्ववत्।

व्याख्या–(कृष्ण के सौन्दर्य के दर्शन करने के लिये) मेरे नेत्र तो हिरण बन गये हैं। प्रमाण? (हिरण की भाँति मेरे) ये नेत्र यौवन-वन से निकलकर चले और (कृष्ण की) वंशी के स्वर को सुनकर मोहित हो गये (अपनी सुधबुध

नोट

खो बैठे)। सच तो यह है कि कृष्ण का रूप शिकारी है तो कुंडलों की कान्ति अग्नि की ज्वाला तथा किंकणी की घंटा-घोष है जिससे व्याकुल होकर ये नेत्र अपलक दृष्टि से उसी (कृष्ण-सौन्दर्य) की ओर देखते रहते हैं। यहाँ तक कि गुरुजन की लज्जा भी नहीं करते। कृष्ण की भौंहें कमान हैं जिनसे वे नेत्र (दृष्टि) रूपी बाण साधकर चितवन की मार करते हैं। फिर भी ये नेत्र (सौन्दर्य-मुग्ध होने के कारण) उस स्थान से तनिक भी नहीं हटते और (कृष्ण की) मन्द हँसी (मुस्कान) के सम्मुख सिर झुका देते हैं।

विशेष–1. अलंकार–(क) सांगरूपक–समस्त पद में। (ख) अनुप्रास–सर साधनि, चितवनि चारि।

नैन भए बस मोहन तैं।
ज्यौं कुरंग बस होत नाद के, टरत नहीं ता गोहन तैं ॥
ज्यौं मधुकर बस कमल-कोस के, ज्यौं बस चंद चकोर।
तैसेहि ये बस गए स्याम के गुड़ी-बस्य ज्यौं डोर ॥
ज्यौं बस स्वाति-बूंद के चातक, ज्यौ बस जल के मीन।
सूरज-प्रभु के बस्य भये ये, छनु-छिनु प्रीति नवीन ॥

शब्दार्थ–कुरंग = मृग। नाद = संगीत की ध्वनि। ता = उसके। गोहन = समीप। भए = हुए। गुड़ी = पतंग। मीन = मछली।

प्रसंग–पूर्ववत्।

व्याख्या–मेरे नेत्र (मन को मोहित करने वाले) कृष्ण के वश में हो गये हैं। जिस प्रकार मृग संगीत-ध्वनि के वशीभूत होकर उसके पास से नहीं हटता, जिस प्रकार भ्रमर (पराग-लोभ में) कमल-कोष के तथा चकोर (दर्शनार्थ) चन्द्रमा के वश में हो जाता है, उसी भाँति से नेत्र भी (कृष्ण की वाणी, सौन्दर्य-लोभ और दर्शनार्थ) कृष्ण के वश में हो गये हैं ठीक उसी प्रकार जैसे कि पतंग के वश में डोरी हो जाती है। जिस प्रकार (अनन्य प्रेम-भाव से भरकर) चातक स्वाति (नक्षत्र में होने वाली वर्षा के) जल-बूंद के तथा मछली जल के अधीन हो जाती है। उसी भाँति ये नेत्र (सूर के) प्रभु कृष्ण के वश में हो गये हैं तथा क्षण-क्षण में नये प्रेम (भाव) का अनुभव करते हैं।

विशेष–1. यहाँ पर परोक्षतः नायिका के कृष्ण-प्रेम की अनन्यता, अटलता, एक-निष्ठा तथा पल-पल वर्धित प्रेमानुभूति आदि स्थितियों का अंकन किया गया है। 2. समस्त पद में उपमा अलंकार का (मालोपमा अलंकार का) कौशल दृष्टव्य है। 3. समस्त उपमेय-योजना पारस्परिक कवि-समयों से सम्बन्धित है। 4. 'सूरज' सूर का ही वास्तविक नाम माना जाता है।

रोम रोम है नैन गए री।
ज्यौं जलधर परबत पर बरषत, बूंद बूंद है निचटि द्रए री ॥
ज्यौं मधुकर रस कमल पान करि मोतैं तजि उन्मत्त भए री।
ज्यौं कांचुरी भुअंगम तजहिं, फिरि न तकै, जु गए सु गए री ॥
ऐसी दसा भई री इनकी, स्याम-रूप मैं मगन भए री।
सूरदास प्रभु अगनित-सोभा, ना जानौं किहिं अंग छए री ॥

शब्दार्थ–जलधर = बादल। निचटि = समूह। द्रए = द्रवित। मधुकर = भ्रमर। मोतैं = मुझको। उन्मत्त = मस्त। भुअंगम = सर्प। तकै = देखे। छए = मोहित।

प्रसंग–पूर्ववत्।

व्याख्या–(अरी सखी! कृष्ण के रूप-सौन्दर्य को देखने के लिये तो मेरे शरीर का) एक-एक रोम नेत्र बन गया है (अर्थात् मैं रोम-रोम से कृष्ण-सौन्दर्य को देखती हूँ)। जिस प्रकार जल से परिपूर्ण बादल पर्वत पर बरसते हैं और एक-एक बूँद के समूह से द्रवित होते हैं, उसी भाँति मेरा रोम-रोम कृष्ण-दर्शन करके द्रवित (आकर्षित-मोहित) हो जाता है। जिस प्रकार कोई भ्रमर कमल रस (पराग) को पीकर तथा उसको छोड़कर उन्मत हो जाता है उसी प्रकार मेरे नेत्र कृष्ण-दर्शन का पान करके मस्त हो गये हैं। जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुल उतारकर फिर उसको नहीं देखता, एक बार छोड़कर चला जाता है, उसी भाँति ये नेत्र मुझको छोड़कर चले गये (कृष्ण सौन्दर्य पर ही टिक गये) और पुनः

नोट

मेरी ओर नहीं आये। मेरे नेत्रों की जो यह अवस्था हो गयी है कि ये श्याम के रूप में ही मग्न हो गये हैं। (सूर के) प्रभु कृष्ण (के सौन्दर्य) की शोभा तो अगण्य है। न जाने ये उनके किस अंग-सौन्दर्य पर मोहित हो गये हैं?

विशेष–1. अलंकार–(क) पुनरुक्ति–रोम-रोम, बूँद-बूँद। (ख) उपमा–ज्यौ.....गए री।

2. भावसाम्य–(क) प्रीतम के संग ही उमगि उड़ि जएबे को, नाहिं अंग-अंगन अनन्त पंखिया देइ।
कीजे कहा राम स्याम आनत बिलोकिबे को, बिरचि बिरंच ना अनन्त अंखिया देइ ॥–पद्माकर

(ग) 'नैन गए सु फिरे नाहि फेरि।' –सूरदास

नैना घूँघट में न समात।
सुन्दर बदन नन्द-नन्दन-कौ, निरखि-निरखि न अघात ॥
अति रस-लुब्ध महा मधु लम्पट, जानत एक न बात।
कहा कहौं दरसन-सुख माते, ओट भरों अकुलात ॥
बार बार बरजत हौ हारी, तऊ टेव नहिं जात।
सूर तनक गिरिधर बिनु देखै, पलक कलप सम जात ॥

शब्दार्थ–समात = समाते, छिपते। बदन = मुख। नन्दन = पुत्र। माते = मस्त। अकुलात = दुःखी। बरजत = मना करना। हौं = मैं। तऊ = फिर भी। टेब = आदत। सम = समान।

प्रसंग–पूर्ववत्।

व्याख्या–(कृष्ण के रूप सौन्दर्य को देखने के लिये उत्सुक बन मेरे) ये नेत्र घूँघट में नहीं समाते। नंद के पुत्र कृष्ण का मुख अत्यधिक सुन्दर है जिसको बारम्बार और अधिकाधिक देखकर भी ये नेत्र अघाते नहीं (क्योंकि उसको और भी देखने की इच्छा बनी रहती है)। ये नेत्र तो (कृष्ण के रूप सौन्दर्य के) रस के लोभी तथा (भ्रमर की भाँति) बहुत बड़े लम्पट हैं और एक भी बात नहीं जानते (कि इनको सबके सामने इतना रूप-लोभी नहीं होना चाहिये)। मैं (इनके विषय में और) क्या कहूँ? ये तो सौन्दर्य-दर्शन के सुख में मस्त हैं और तनिक-सी ओट होने पर भी व्याकुल हो जाते हैं। मैं इनको बारम्बार मना करते-करते हार गयी हूँ किन्तु फिर भी (कृष्ण दर्शन की) इनकी आदत नहीं जाती। सच तो यह है कि कृष्ण को न देखे हुए तो एक पल भी कल्प के समान बीतता है।

विशेष–1. यहाँ पर नायिका का वाक्चातुर्य विशेष दृष्टव्य है। 2. अलंकार–(क) पुनरुक्ति–निरखि-निरखि, बार-बार। (ख) अनुप्रास–महा मधु, बार-बार बरजत। (ग) उपमा–सूर.....जात।

3. भावसाम्य–

(क) ये नैना मेरे ढीठ भए री।
घूँघट ओट रहत नहिं रोके, हरि-मुख देखत लोभि गए री ॥ –सूर

(ख) 'नयनन में नय नाहिनै, याते नयना नाम।'

(ग) नैना नेकु न मानहीं, कितौ कहौं समुझाय।
तन-मन हारे हू हँसै तिनसो कहा बसाय ॥ –बिहारी : सतसई

(घ) जैसे मेरी निगाह ने देखा न हो तुझे, महसूस ये हुआ तुझे हर बार देखकर। –शाद

जाकी जैसी टेव परी री।
सो तौ टरे जीव के पीछे जो जो धरनी धरी री ॥
जैसे चोर तजै नहिं चोरी, बरजै वही करी री।
बरु ज्यौं जाइ, हानि पुनि पावत, बकतहिं बकत मरी री ॥
जदपि व्याध बधै मृग प्रगटहि, मृगिनि रहे खरी री।
ताहूं नाद-बस्य ज्यौं दीन्हौं, संका नहीं करी री ॥

नोट

जदपि मैं समुझावती पुनि पुनि, यह कहि कहि जु लरी री।
सूरस्याम दरसन तैं इकटक, टरत न निमिष धरी री ॥

शब्दार्थ–जाकी = जिसकी। टेव = आदत। धरनि = धारण, आदत। बरजै = मना करना। बरु = फिर भी। ब्याध = शिकारी। ताहुँ = उसको। संका = शंका, सन्देह। निमिष = क्षण।

प्रसंग–पूर्ववत्

व्याख्या–जिसकी जैसी आदत पड़ जाती है वह तो उसी (आदत) के पीछे दौड़ता है जो कि उसने (आदत के रूप में) धारण कर रखा है। जिस प्रकार कोई चोर चोरी करना नहीं छोड़ता, उसको (अथवा वह स्वयं) जिस चीज को मना करो, वही करता है और फिर भी जाकर बारम्बार हानि उठाता है, चाहे (मना करते समय) कहते-कहते मर ही जाओ। (यही स्थिति मेरे नेत्रों की है। इन्हें जितना भी कृष्ण-दर्शन के लिये मना किया, ये नहीं मानते और बारम्बार आदतवश वही करते हैं अर्थात् कृष्ण-सौन्दर्य को देखते हैं)। यद्यपि शिकारी प्रत्यक्षतः मृग का वध करता है किन्तु मृगी फिर भी वहीं खड़ी रहती है। उसको शिकारी नाद के वश में करता है किन्तु फिर भी वह तनिक भी शंका नहीं करती इसी भाँति, यद्यपि मैं बारम्बार समझाती हूँ, यह कहकर लड़ती हूँ फिर भी सूरश्याम के निरन्तर दर्शन से ये नेत्र क्षण भर को भी नहीं हटते।

नोट्स जिसकी जैसी आदत पड़ जाती है वह तो उसी (आदत) के पीछे दौड़ता है जो कि उसने (आदत के रूप में) धारण कर रखा है।

विशेष–1. पूर्वानुरागिनी नायिका की विवशता भरी स्थिति का यह चित्रण एकदम स्वाभाविक बन पड़ा है। अलंकार–(क) पुनरुक्ति–जो जो, पुनि पुनि, कहि। उदाहरण–जैसे.....करी री। 2. प्रारंभिक तीन पंक्तियाँ सूक्ति वाक्य हैं।

4. भावसाम्य–'नैना नैंक न मानहीं, कितौ कह्यौ समुझाई।' –बिहारी

अति रस-लंपट नैन भए।
चाख्यो रूप-सुधा-रस हरि कौ, लुब्धे उतहिं गए ॥
ज्यौं विट-नारी भवन नहीं भावत, औरहिं पुरुष रई।
आवति कबहुं होति अति व्याकुल जैसे गवन नई ॥
फिरि उतहिं कौ धावति जैसे छूटत धनुष तैं तीर ॥
चुभे जाइ हरि-रूप-रोम में सुन्दर स्याम सरीर ॥
ऐसे रहत उतहिं कौ आतुर, मोसो रहत उदास।
सूर स्याम के मन बच क्रम भए, रीझे रूप-प्रकास ॥

शब्दार्थ–लुब्धे = लुब्ध होकर। विट = कामुक, दुराचारी। रई = मस्त। गवन = गौना। धावति = दौड़ती। उतहि = उधर।

प्रसंग–पूर्ववत्।

व्याख्या–(कृष्ण के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध होने वाले) मेरे नेत्र (सौन्दर्य) रस के लिये अत्यधिक लम्पट हो गये हैं। ये हरि के रूप रूपी अमृत को चखना चाहते हैं, इसी से लुब्ध होकर उधर (कृष्ण की ओर) हो गये हैं। जिस प्रकार किसी कामुक या व्यभिचारिणी नारी को घर अच्छा नहीं लगता और वह पर-पुरुष में लिप्त हो जाती है लेकिन कभी-कभी व्याकुल होकर इस प्रकार आती है जैसे कि गौने पर (कोई) नव वधू (लज्जित होते हुए) आती है लेकिन फिर उसी (पर-पुरुष की) ओर ऐसे दौड़ती है जैसे कि धनुष से छूटा हुआ बाण (तेजी से दौड़ता है)। उसी तेजी से ये नेत्र रूपी बाण हरि के रूप-रोम में जाकर चुभते (अटक जाते) हैं क्योंकि कृष्ण का श्याम-शरीर सुन्दर है। इस प्रकार मेरे नेत्र उधर (कृष्ण-सौन्दर्य की ओर) ही आतुर रहते हैं और मुझसे उदास (या तटस्थ)। मन-वचन-कर्म अर्थात् सभी प्रकार से ये नेत्र सौन्दर्य-प्रकाश वाले श्याम पर रीझे हुए हैं।

नोट

विशेष–1. पूर्वानुरागवती नायिका की अनन्य प्रेम-स्थिति का अंकन है। 2. अलंकार–(क) रूपक–रूप-सुधा-रस, हरि-रूप-रोम। (ख) उपमा–ज्यौं....तीर। (ग) अनुप्रास–सुन्दर स्याम शरीर।

3. भावसाम्य–

(क) मोहन छबि रसखान लखि, अब दृग अपने नाहिं।
ऐंचे आवक धनुष से, छूटे सर से जाहिं ॥ –रसखान

(ख) भई सखि ये अंखियाँ बिगरैल।.....
हरिचन्द्र कुलकानि छांडिकै, हरि की भई रखैल ॥ –भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(ग) जसु अपजसु देखत नहीं, देखत सांवल गात।
कहा करौं, लालच भरे चपल नैन चलि जात ॥ –बिहारी

अंखियाँ हरि कै हाथ बिकानी।
मृदु मुसुकानि मोल इनि लीन्हों, यह सुनि सुनि पछतानी ॥
कैसे रहति रहीं मेरे बस, अब कछु और भाँति।
अब वै लाज मरति मोहि बैठत, बैठी मिलि हरि पाँति ॥
सपने की सी मिलनी करति हैं, कब आवहिं कब जाति।
सूर मिली ठरि नन्द-नन्दन कौं, अनत नहीं पतियाति ॥

शब्दार्थ–बिकानी = बिक गयीं, वश में हो गयीं। इनि = इनको। पांती = पंक्ति, पक्ष। अनत = अन्यत्र, किसी और का। पतियाति = विश्वास करती है।

प्रसंग–कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर रीझकर गोपिका (नायिका) उनकी ओर न केवल आकर्षित हो गयी वरन् पूर्वानुराग भी करने लगी। इसका कारण वह निःसन्देह अपने नेत्रों को मानती है। इन्हीं नेत्रों की स्थिति को अपनी अंतरंग सखि के सम्मुख स्पष्ट करते हुए वह कहती है–

व्याख्या–(कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर लुब्ध और आकर्षित होकर) मेरी आँखें तो (मन का हरण करने वाले) कृष्ण के हाथों बिक गयी हैं (अर्थात् कृष्ण के वश में हो गयी हैं)। कृष्ण ने केवल अपनी मृदु मुस्कान के मूल्य पर इनको मोल ले लिया है, यह सुनकर मैं पछताती हूँ (कि कितने ही सस्ते में ये आँखें बिक गयीं)। (मुझे तो यही आश्चर्य है कि अब तक) ये मेरे वश में किस प्रकार रहती थीं? कारण यह है कि अब (कृष्ण के वश में होने के उपरान्त तो) ये कुछ और ही प्रकार की (पराधीन) हो गयी हैं। अब ये कृष्ण की पंक्ति (पक्ष) में बैठी हुयी मुझे देखकर लाज के मारे मरती हैं। अब तो ये मिलन भी स्वप्न के समान (झूठा और क्षणिक) करती हैं। यही मालूम नहीं होता कि ये कब आती हैं और अन्य किसी का विश्वास नहीं करती।

विशेष–1. यहाँ पर परोक्ष विधि से नायिका की पूर्वानुरागमय स्थिति का सूक्ष्म अंकन किया गया है जो कवि की भाव-चित्रण-कुशलता का परिचायक है। 2. अंतिम पंक्ति में अनुराग-अनन्यता और एकनिष्ठा का अंकन है। 3. यहाँ पर लोक-प्रचलित मुहावरों का स्टीक और सार्थक प्रयोग कवि की भाषा-सबलता का परिचय देता है। 4. अलंकार–(क) अनुप्रास–मृदु.....मोल। (ख) पुनरुक्ति–सुनि सुनि। (ग) उपमा–सपने.....जाति। 5. गोपिका (के माध्यम से प्रकट मूलतः कवि) का वाग्वैदग्ध्य दृष्टव्य है। 6. 'हरि' शब्द का सटीक प्रयोग कवि की शब्द की पकड़ और समुचित प्रयोग का साक्षी है।

अंखियनि की सुधि भूल गई।
स्याम-अधर मृदु सुनत मुरलिका, चक्रित नारी भई ॥
जो जैसे सो तैसे रहि गई, सुख दुख कह्यौ न जाइ।
लिखि चित्र की सी सब ह्वै गई इकटक पल बिसराइ ॥
काहूं सुधि, काहूं सुधि नाहीं, सहज मुरलिका गान।
भवन रवन की सुधि न रही तनु, सुनत शब्द वह कान ॥

नोट

अंखियनि तैं मुरली अति प्यारी वै बैरिनी यह सौति।
सूर परस्पर कहति गोपिका, यह उपजी उद्‌भौति ॥

शब्दार्थ–सुधि = ध्यान। अधर = होंठ। चक्रित = चकित, चकई। भई = हो गयीं। काहूं = कभी। रवन = गमन, तनिक। उद्‌भौति = अद्‌भुत।

प्रसंग–नायिका (गोपी) अपनी सखियों के साथ पारस्परिक वार्तालाप में मग्न थी। उसी समय कृष्ण की बंशी की ध्वनि उसके कानों में पड़ी। परिणाम क्या हुआ इसी को बताते हुए कवि ने कहा है–

व्याख्या–(नायिका गोपी और उसकी सभी अंतरंग सखियाँ) आँखों का ध्यान भूल गयीं। कृष्ण-होठों पर रखी मुरली की मधुर ध्वनि सुनते ही सभी गोपियाँ चकित हो गयीं (अथवा चकई की भाँति चंचल हो गयी)। उस क्षण जो जिस अवस्था में थी, उसी में रह गयी, परस्पर सुख-दुःख भी उनसे नहीं कहा जाता क्योंकि संगीत-रस में डूबी होने से वाणी भी अवाक् हो गयी थी) सभी चित्र-लिखित सी (स्तब्ध) हो गयी और पलभर को तो पलक झपकना भी बिसार दिया। मुरली के सहज गान में खोई और तल्लीन बनी इन गोपियों को कभी सुध थी तो कभी बेसुध (अथवा किसी को अपनी सुध थी तो कोई एकदम बेसुध बन गयी थी)। उनको घर वापिस जाने की तनिक भी सुधि नहीं थी। वे तो कानों से मुरली के शब्द को ही सुन रही थीं। उनको अपनी आँखों से अधिक मुरली प्यारी थी यद्यपि आँखें यदि शत्रु थीं तो यह मुरली सौत (की भाँति कृष्ण के मुँह लगने वाली प्रिया)। गोपियाँ परस्पर कहने लगी कि यह मुरली तो अद्‌भुत जन्मी है (क्योंकि इसने सभी को एकदम विभोर कर दिया है)।

विशेष–1. यहाँ पर मुरली का अतिशयोक्तिपरक प्रभाव दिखाया गया है जो पुष्टिमार्गीय मतानुयायी सूर के लिये स्वाभाविक ही था। 2. अलंकार–(क) उपमा–लिखि.....बिसराइ। (ख) अनुप्रास–सुनत सबद। 3. संयोग शृंगारान्तर्गत मुग्धावस्था, स्तंभ और जड़तादि अवस्थायें चित्रित हैं।

4. भावसाम्य–

(क) मुरली सुनत देह गति भूलि, गोपी प्रेम-हिंडोरे झूली।
कबहुँक चक्रित होहिं समानी, स्वेद चले द्रव जैसे पानी।
कबहुँ सुधि कबहुँ सुधि नाहिं, कबहुँ मुरली नाद समाही।

नैना भए अनाथ हमारे।
मदनगुपाल उहाँ तैं सजनी, सुनियत दूरि सिधारे ॥
वै समुद्र हम मीन बापुरी, कैसे जीवैं न्यारे।
हम चातक वै जलद स्याम-घन, पियतिं सुधारस प्यारे ॥
मथुरा बसत आस दरसन की, जोई नैन मग हारे।
सूरदास हमकौ उलटि विधि, मृतकहुं तै पुनि भारे ॥

शब्दार्थ–भए = हो गये। उहाँ = वहाँ, मथुरा से। बापुरी = बेचारी। न्यारें = अलग। जलद = जल से भरे। जोइ = देखते, प्रतीक्षा करते। मृतकहु = मरे हुए। पुनि = पुनः।

प्रसंग–कृष्ण के मथुरा-प्रवास के उपरान्त गोपियाँ वृन्दावन में ही अकेली रहकर कृष्ण-विरह में व्यथित रहने लगी थीं। किसी पथिक से उनको पता चला कि कृष्ण अब मथुरा को भी छोड़ दूर द्वारिकापुरी चले गये हैं फलतः गोपियों की कृष्ण-मिलन की आशा पर फिर पानी पड़ गया और वे और भी अधिक विरह-व्यथित हो उठीं। अपनी इसी अवस्था को स्पष्ट करते हुए कोई गोपी (अथवा राधिका) अपनी अंतरंग सखी से कहने लगी–

व्याख्या–(कृष्णा के चले जाने और दर्शन न कर पाने के कारण) हमारे नेत्र (स्वामी कृष्ण के अभाव में) अनाथ हो गये हैं। हे सखि! सुनते हैं कि मदनगोपाल कृष्ण अब वहाँ (मथुरा) से कहीं दूर (द्वारिका में) चले गये। (अतएव अब तो उनसे मिलन होना और भी मुश्किल हो गया है। जब मथुरा से ही वे नहीं लौटे तो अब भला इतनी दूरी पर स्थित द्वारिका से क्या लौट पायेंगे)। वे यदि समुद्र हैं तो हम बेचारी मछलियाँ (जो जल में ही जीवित रह पाती है), अब भला दूर (अलग) रहकर कैसे जीवित रह सकती हैं? हम चातक (पक्षी की भाँति है) और वे (कृष्ण) जल से परिपूर्ण श्याम वर्ण वाले मेघ जिसके अमृतरस को हम (चातक की भाँति ही) पीती हैं। (कृष्ण के) मथुरा में रहते हुए

नोट

तो (हमको) दर्शनों की आशा थी किन्तु अब (कृष्ण के द्वारिका पहुँच जाने के कारण) नेत्र तो रास्ता देखते-देखते (प्रतीक्षा करते-करते) हार गये हैं। सच तो यह है कि विधाता ने हमारे लिये उल्टी स्थिति उत्पन्न कर दी है और (हम कृष्ण-विरह में पहले से ही) मरी हुई नारियों को पुनः मारा डाला है।

विशेष–1. यहाँ पर वियोगान्तर्गत प्रेम की एकनिष्ठा-अनन्यता आदि भावनाओं तथा गुणकथन, उद्वेग आदि विरह-दशाओं का काव्यात्मक चित्रण है। 2. अलंकार–(क) उपमा–वै.....प्यारे। (ख) रूपक और श्लेष–स्याम घन, सुध ाारस। 3. अन्तिम दो पंक्तियों में मुहावरों का सुन्दर प्रयोग कवि की भाषा-कला का परिचायक है। 4. 'मदन गुपाल' तथा 'जलद स्याम घन' आदि शब्दों का सटीक और सार्थक प्रयोग है। 5. उपमानयोजना परम्परागत है।

क्या आप जानते हैं

कृष्ण के मथुरा-प्रवास के उपरान्त गोपियाँ वृन्दावन में अकेली रहकर कृष्ण-विरह में व्यथित रहने लगी थीं।

उडुपति सौं बिनवति मृगनयनी।
तुम कहियत उडुराज अमृतमय, तजि स्वभाव कत बरषत बहनी ॥
उमापति-रिपु अधिक दहत हैं, हरि-रिपु-प्रीतम सुख नितैनी ॥
छपा न छीन होति सुनु सजनी, भूमि-घिसन-रिपु कहा दुरैनी ॥
स्याम संदेस विचार करति हौं, कहाँ रहे हरि, छाइ जु छौनी।
सूर स्याम बिनु भवन भयानक, जोहत रहति गोपाल की औनी ॥

शब्दार्थ–उडुपति = नक्षत्रों का स्वामी, चन्द्रमा। बिनवति = प्रार्थना करती हैं। बहनी = वन्हि, अग्नि। उमापति-रिपु = पार्वती के पति शिव का शत्रु, कामदेव। दहन = जलाता है। हरि-रिपु = सर्प का शत्रु मयूर। नितैनी = पाताल। छपा = रात्रि। भूमिघिसन रिपु = भूमि पर रेंगने वाले साँप का शत्रु, गरुड़। दुरैनी = छिप गया। छौनी = किशौरी। जोहत = प्रतीक्षा। औनी = आगमन।

प्रसंग–कृष्ण के द्वारिका-प्रवास के उपरान्त, वृन्दावन-स्थित गोपियों की विरह-व्यथा और भी अधिक बढ़ जाती है। कृष्ण से हुआ विच्छेद और विरह-ग्रस्त स्थिति उनको पहले से भी अधिक व्याकुल करने लगती है। इसी स्थिति को प्रकट करते हुए कोई गोपी (अपने अथवा राधा के विषय में) अपनी सखी से कहती है–

व्याख्या–(वह) मृग जैसे नेत्रों वाली (नायिका, गोपी अथवा राधिका) नक्षत्रपति चन्द्रमा से प्रार्थना करती है कि हे चन्द्रमा! कहने के लिये (अथवा कहलाने वाले) तुम अमृतमय हो किन्तु अपने (दयालु) स्वभाव को छोड़कर अग्नि की वर्षा क्यों करते हो? (भाव यह है कि संयोगकाल में अमृतमयी लगने वाली चन्द्रिका अब वियोगकाल में अग्नि की भांति जलाने वाली प्रतीत होने लगी है।) (ऐसे उद्दीपन वातावरण में) पार्वती के पति शिव का शत्रु अर्थात् कामदेव (मुझको कामोद्दीप्त करके) बहुत अधिक जलाता है (काम-व्यथित करता है)। ऐसे में सर्प-शत्रु गरुड़ के प्रियतम अर्थात् श्रीकृष्ण न जाने कहाँ पाताल में चले गये हैं। हे सजनी! रात्रि भी नहीं घटती। भूमि पर रेंगने वाले सर्प के शत्रु न जाने कहाँ छिप गये हैं? मैं तो कृष्ण के संदेश पर ही विचार करती हूँ। न जाने वे कहाँ हैं, जिन्होंने मुझ किशोरी को छोड़ दिया है? श्यामवर्णीय कृष्ण के बिना तो मुझे अपना भवन भी भयानक प्रतीत होता है और मैं (इन्द्रियों को सुख देकर इनका पालन करने वाले) कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करती रहती हूँ।

विशेष–1. यहाँ पर विरह का अतिशयोक्तिपरक चित्रण है। 2. काव्यशास्त्रीय दृष्टि से उन्मादावस्था को सजीव किया गया है। 3. नायिका का वागवैदग्ध्य दृष्टव्य है। 4. 'उमापति....दुरैनी' अंश कूटकाव्य का उदाहरण है। 5. अलंकार–(क) विरोधाभास–तुम.....बहनी। (ख) अतिशयोक्ति–सूरस्याम.....भयानक। 6. यहाँ पर प्रकृति का विरहान्तर्गत उद्दीपक रूप में अंकन किया गया है।

भावसाम्य– (क) कोउ, माई! बरजै या चंदहि।
करत है कोप बहुत हम्ह ऊपर कुमुदनि करत अनंदहि ॥ –सूरदास

नोट

(ख) हर को तिलक, हरि! चित को दहत।
कहियत है उडुराज अमृतमय, तजि सुभाव मोको वह्नि बहत ॥ –सूरदास

(ग) कलप समान रैनि तेहि बाढ़ी,
तिल तिल भर जुग जुग जिमि गाढ़ी।
गहै बीन मकु रैनि बिहाइ। –जायसी : पद्मावत

(घ) ऐ रे मतिमन्द चन्द! आवत न तोहि लाज,
ह्वै कै द्विजराज काज करत कसाई के। –मतिराम पदावली

(ङ) औरे भाँति भयेब ये चौसर चन्दन चन्द।
पति बिन अति पारस विपत मारत मारुतचंद ॥ –बिहारी : सतसई

(च) किस तरह से अब कटेगी जिन्दगी,
रात कटती नजर नहीं आती।

वायस गहगहात सुनि सुन्दरि बानि बिमल पूर्व दिसि बोली।
आजु मिलावा होइ स्याम कौ, तू सुनि सखि राधिका भोली ॥
कुच भुज नैन अधर फरकत हैं, बिनहिं बात अंचल-ध्वज डोली।
सोचि निवारि, करौ मन आनन्द मानो भाग दसा विधि खोली ॥
सुनत बात सजनी के मुख की, पुलकित प्रेम तरकि गई चोली।
सूरदास अभिलाषा नन्दसुत, हरषि सुभग नारि अनमोली ॥

शब्दार्थ–वायस = कौआ। गहगहात = गद्‌गद् होकर बोलना। बिमल = मीठी। मिलावा = मिलन। कुच = वक्ष। अधर = होंठ। ध्वज = ध्वजा। निवारि = छोड़कर। विधि = ब्रह्मा। तरकि = तड़कना, खुलना। सुभग = सुन्दर।

प्रसंग–श्री कृष्ण के द्वारिका-गमन के पश्चात् ब्रज का गोपी-समाज एकदम विरह-व्यथित हो गया। इनमें सबसे अधिक व्यथित थी–राधा। किसी दिन श्रेष्ठ शकुन देख राधा की कोई अन्तरंग सखी प्रसन्न हो उठी। विरह-व्यथित राधा को सान्त्वना देते हुए वह कहने लगी–

व्याख्या–हे सुन्दरी (राधा!) सुनो। पूर्व दिशा में कौआ गद्‌गद् होकर मीठी वाणी में बोल रहा है। हे भोली सखी राधा! तू इसको सुन। आज तेरा श्याम से मिलन अवश्य होगा। आज कुच, भुजा, नेत्र और होंठ अपने आप फड़क रहे हैं तथा बिना वायु के झोंके के आँचल रूपी ध्वजा फहराती है। (ये सभी प्रिय मिलन के शुभ लक्षण हैं।) अतएव चिन्ता छोड़कर मन में प्रसन्न हो। ऐसा लगता है मानो ब्रह्मा ने तेरे भाग्य की दशा को खोल दिया है (अर्थात् तेरा भाग्योदय हो गया है)।

सखी के मुख (से कही गयी इन सान्त्वनामयी) की बातों को सुनकर राधा प्रेम पुलकायमान हो गयी तथा उनकी चोली के बन्द टूट गये। नन्द के पुत्र कृष्ण से मिलन होने की अभिलाषा से भरकर वह सुन्दर और अनमोल नारी (राधा) हर्षित हो गयी।

विशेष–1. लोक-नारी समाज में शकुन-विचार की आम परिपाटी है। यहाँ कवि ने ऐसे ही कुछ लोक-प्रचलित शकुनों का उल्लेख किया है जो एक ओर कवि के शकुन-परिचय के साक्षी हैं तो दूसरी ओर कवि की जनसमाज में गहरी पैठ तथा समकालीन नारी-समाज के भी। 2. काव्यशास्त्रीय दृष्टि से यहाँ पर मिलनातुर नायिका का मर्मस्पर्शी चित्रण है। 3. अलंकार–(क) अनुप्रास–सुनि सुन्दरि, वानि बिमल। (ख) रूपक–अंचल-ध्वज। (ग) उत्प्रेक्षा–सोचि... ..खोली। 4. 'पुलकित.....चोली' में सुन्दर अनुभाव-चित्रण किया गया है।

4. भावसाम्य–(क) मोरा रे अगनवा चनन केरि गछिया ताहि चढ़ि कुरुरय। –विद्यापति

(ख) पिय आयौ परदेस तै हिय हुलसि अति बाम।
टूट-टूट कंचुकि जियौ करि कमनैति काम ॥ –रसराज

नोट

माधव या लगि है जग जीजत।
जात हरि सौं प्रेम पुरातन, बहुरि नयौ करि लीजत ॥
कहँ ह्याँ तुम जदुनाथ सिंधु तट, कहँ हम गोकुलवासी।
वह वियोग यह मिलन कहाँ अब, काल चाल औरासी ॥
कहँ रबि राहु कहाँ यह अवसर, विधि संजोग बनायौ।
उहिं उपकार आजु इन नैननि, हरि दरसन सचु पायौ।
तब अरु अब यह कठिन परय अति निमिषहु पीर न जानी।
सूरदास प्रभु जानि आपने, सबहिनि सौं रुचि मानी ॥

शब्दार्थ–या लगि = इसीलिये। जीजत = जीवित है। जातै। = जिससे। बहुरि = पुनः। ह्याँ = कहाँ। औरासी = विलक्षण। विधि = भाग्य, ब्रह्मा। उहि = उसी। सचु = सुख। निमिषहु = क्षण भर। पीर = पीड़ा। रुचि = प्रेम।

प्रसंग–ब्रज का समुदाय कृष्ण से भेंट करने के लिये कुरुक्षेत्र जा पहुँचा। वहाँ पर कृष्ण से भेंट करते हुए ब्रज-समाज का कोई व्यक्ति कहने लगा–

व्याख्या–हे माधव! यह संसार इसलिये जीवित है जिससे कि हम अपने हरि के प्रति अपने प्रेम को फिर से नया कर लें। (भाव यह है कि कृष्ण से हमारा प्रेम जन्म-जन्मान्तर का है जो हमारे हर एक जनम में नया होता रहता है)। कहाँ तो तुम सिंधु-तट (द्वारिका) पर रहने वाले यदुराज तथा कहाँ हम गोकुल ग्राम के निवासी? फिर भी दोनों में कहाँ तो वह वियोग और कहाँ अब यह मिलन। वास्तव में, समय की गति बड़ी विलक्षण है। कहाँ तो सूर्य और कहाँ राहू? (दोनों का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं) लेकिन आज यह अवसर है कि दोनों का मिलन हो रहा है। विधि ने भी यह क्या संयोग बनाया है। कारण? उसी ब्रह्म (द्वारा निर्मित संयोग रूपी) उपकार से हम अपने इन नेत्रों से हरि-दर्शन का सुख प्राप्त कर रहे हैं। तब (वियोग-काल में) और अब (मिलन-काल में) दोनों ही स्थितियों में यह (समझ पाना) बड़ा कठिन है। अब तो क्षण भर को भी पीड़ा नहीं जान पड़ी। कारण? सूर के प्रभु कृष्ण ने सबको अपना जानकर प्रेमपूर्वक व्यवहार किया।

राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव माधव राधा कीट, भृंग गति ह्वै जु गई॥
माधव राधा के रंग राँचे, राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरन्तर, रसना करि सो कहि न गई॥
बिहँसि कहयौ-हम तुम नहिं अन्तर, यह कहिकै उन ब्रज पठई।
सूरदास प्रभु राधा माधव, ब्रज-बिहार नित नई-नई॥

शब्दार्थ–भई = हुई। कीट-भृंग = भृंग नामक कीड़ा। रांचे = रंगे। रई = हो गयी। रसना = जिह्वा, वाणी। बिहँसि = हँसकर। पठई = भेज दिया।

प्रसंग–प्रिय कृष्ण से भेंट करने के लिये आये हुए ब्रज-समाज में कृष्ण की अटल-अनन्य बाल सखा राधा भी थी। दीर्घकाल के पश्चात् उसकी कृष्ण से भेंट हुई थी। निःसंदेह इस भेंट में राधा-माधव एकाकार हो गए। इसी भेंट-चित्रण और राधा-माधव पर हुई भेंट प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करते हुए कवि ने कहा है–

व्याख्या–(दीर्घ प्रतीक्षा और दीर्घ काल के पश्चात्) राधा और माधव (वसन्त जैसे मादक और सुन्दर कृष्ण) की भेंट हुई। मिलते ही राधा माधवमय हो गई तो माधव राधामय (अर्थात् दोनों एक-दूसरे में खोकर एकाकार-एकरूप हो गए। दोनों की अवस्था भृंग नामक कीट की भाँति हो गयी (अर्थात् दोनों एक हो गये)। माधव राधा के रंग में रंग गये तो राधा माधव के। राधा और कृष्ण में पारस्परिक प्रीति निरन्तर बढ़ने लगी जिसका वर्णन जिह्वा या वाणी से भी नहीं किया जा सकता। कृष्ण ने हँसते हुए राधा से कहा कि 'हम-तुम में कोई अन्तर नहीं है, (दोनों अभिन्न हैं)। यह कहकर राधा को ब्रज वापिस भेज दिया। सूर के प्रभु राधा और माधव ब्रज में नित्य नया विहार करते हैं (अर्थात् राधा-कृष्ण की ब्रज-विहार-लीला अनित्य है)।

नोट

विशेष–1. इस पद का महत्त्व कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। काव्य-दृष्टि से यहाँ पर नायक-नायिका का अभेद भाव प्रतिपादित किया गया है तो कवि की पुष्टिमार्गीय विचारधारा के अनुकूल राधा-कृष्ण (ब्रह्म और जीव अथवा ब्रह्म और माया) का अनित्यत्व और अभेद। 2. राधा-कृष्ण-प्रेम के द्वारा प्रेम की आदर्श स्थिति यहाँ पर प्रकट की गयी है। 3. अलंकार–(क) पुनरुक्ति–राधा.....राधा, नई-नई। (ख) उदाहरण–राधा.....गई। (ग) अतिशयोक्ति–रसना. ....गई। 4. 'राधा' और 'माधव' शब्दों का एकदम सटीक और सार्थक प्रयोग है जो कवि की अद्‌भुत शब्द-प्रयोगशक्ति का परिचायक है।

5. भावसाम्य–

(क) मिलन दुहुं तन कि वा अपरूप। –चंडीदास : पदावली

(ख) राधा सेय जब पुनतहि माधव, माधव सेय जब राधा.....।
दुहि दिसि दाह दारुन दगधई आकुल कीट-कीट परागा। –विद्यापति : पदावली

(ग) मोहि मोहि मोहन को मन भयो राधामय।
राधा मन मोहि मोहि मोहन भई भई ॥ –देव

(घ) सूर स्याम नागर इह नागरि एक प्राण तनु द्वै। –सूरदास

6. धार्मिक-दार्शनिक प्रतीकत्व की दृष्टि से अन्तिम दो पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उसमें राधा-कृष्ण के साथ-साथ ब्रज और ब्रज-लीलाओं की अनित्यता के स्पष्ट संकेत दिये गये हैं।

7. यहाँ पर 'रंग राचे' और 'रंग रई' आदि ब्रजप्रदेशीय मुहावरों का एकदम काव्यात्मक और व्यंजनात्मक प्रयोग मिलता है जो कवि की भाषा-समृद्धि और लोकज्ञान-वैपुल्य का परिचायक है।

स्याममुख देखे ही परतीति।
जो तुम कोटि जतन करि सिखवत जोग ध्यान रीति ॥
नाहिन कछू सयान ज्ञान में यह हम कैसे मानै।
कहौ कहा कहिये या नभ को कैसे उर में आनै ॥
यह मन एक, एक वह मूरति, भृंगकीट सम माने।
सूर सपथ दे, बूझत ऊधौ यह ब्रज लोग सयाने ॥33॥

शब्दार्थ–परतीति = विश्वास। कोटि = करोड़ों। सयान = चालाकी। नभ = शून्याकाश। उर = हृदय। भृंगकीट = बिलनी अथवा उपात्त नामक कीड़ा जो हर दूसरे कीड़े को अपनी ही तरह का बना लेता है। सम = समान। बूझत = पूछना।

सन्दर्भ और प्रसंग–उपर्युक्त।

व्याख्या–श्यामल कृष्ण के मुख को देखकर ही हमको (उनके प्रेम पर) विश्वास है अथवा कृष्ण के मुख को देखकर ही हम (तुम्हारे द्वारा लाये गये) उस योग-संदेश पर विश्वास कर सकती हैं। जिस योग को तुम करोड़ों प्रकार से प्रयत्न करके हमको सिखा रहे हो उसके ध्यान-रीति पर हमको तभी विश्वास हो सकता है जबकि हम कृष्ण-मुख के दर्शन कर लें। तुम्हारे इस ज्ञान (उपदेश) में कोई चालबाजी नहीं है, यह बात हम किस प्रकार मान लें (क्योंकि हमको तो तुम्हारा बार-बार योग का उपदेश देना चालाकी अथवा धूर्तता से भरा हुआ लगता है। तुम ही बताओ, इस शून्य (ब्रह्म) आकाश को हृदय में किस प्रकार धारण किया जा सकता है। कारण? हमारा मन तो एक ही है और उसमें केवल (कृष्ण की ही) एक मूर्ति बसी है। इस मूर्ति ने उपात्त कीट की भाँति हमारे मन को भी अपनी ही भाँति बना लिया है। हे उद्धव! हम तुमको शपथ, देकर पूछती हैं, तुम सच बताओ कि क्या हृदय में एक मूर्ति के रहते किसी दूसरे (ब्रह्म अथवा योग) का ध्यान किया जा सकता है? हम ब्रज के लोग बहुत सयाने हैं अतएव सोच-समझकर सच ही बताना।

विशेष–1. यहां पर गोपियों का नारी वाग्वैदग्ध्य, अनन्य प्रेम-भाव और तर्क-शक्ति एक साथ मुखर हुई मिलती है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि सूर नारी-मनोविज्ञान के कितने बड़े कुशल चितेरे थे। 2. यहाँ पर उपमा (भृंगकीट), रूपकातिशयोक्ति (कहौ.....आनै) अलंकार हैं।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. कौन-सा जानवर अपनी केंचुल उतारकर उसको फिर नहीं देखता?

   (अ) सर्प (ब) केंचुआ (स) न (अ) और न (ब)(द) इनमें से कोई नहीं

5. 'नैना नेकु न मानहीं, कितौ कहौं समुझाय' पंक्तियां किसकी हैं?

   (अ) सूरदास (ब) बिहारी (स) तुलसी (द) इनमें से कोई नहीं

6. भई सखि ये अंखियां बिगरैल।

   हरिश्चन्द्र कुल कानि छांडिकै, हरि की भई रखैल।।

   पंक्तियों के रचयिता हैं–

   (अ) भारतेन्दु हरिश्चंद्र (ब) बिहारी (स) सूरदास (द) इनमें से कोई नहीं

8.2 सारांश (Summary)

खंजन पक्षी के जोड़े की समता करने वाले उसके दोनों चंचल नेत्र चारों ओर देखते रहते हैं, मानो कलह हो जाने के कारण उन्होंने शोर मचा दिया हो लेकिन तोते (नाक) ने इसको बचा दिया।

कृष्ण तो राधा के (सौन्दर्य के) वश में इस प्रकार हो गये हैं जैसे कि चातक स्वाति नक्षत्र में हुई वर्षा के, मछली जल के तथा परछाई शरीर के वश में रहती है। सच तो यह है कि कृष्ण का रूप शिकारी है तो कुंडलों की कान्ति अग्नि की ज्वाला तथा किंकणी की घंटा-घोष है जिससे व्याकुल होकर ये नेत्र अपलक दृष्टि से उसी (कृष्ण-सौन्दर्य) की ओर देखते रहते हैं। जिस प्रकार कोई चोर चोरी करना नहीं छोड़ता, उसको (अथवा वह स्वयं) जिस चीज को मना करो, वही करता है और फिर भी जाकर बारम्वर हानि उठाता है, चाहे (मना करते समय) कहते-कहते मर ही जाओ। मुरली के सहज गान में खोई और तल्लीन बनी इन गोपियों को कभी सुध थी तो कभी बेसुध (अथवा किसी को अपनी सुध थी तो कोई एकदम बेसुध बन गयी थी)। उनको घर वापिस जाने की भी तनिक भी सुधि नहीं थी। राधा और कृष्ण में पारस्परिक प्रीति निरन्तर बढ़ने लगी जिसका वर्णन जिह्वा या वाणी से भी नहीं कहा जा सकता। कृष्ण ने हँसते हुए राधा से कहा कि 'हम-तुम में कोई अन्तर नहीं है, (दोनों अभिन्न है)। यह कहकर राधा को ब्रज वापिस भेज दिया। सूर के प्रभु राधा और माधव ब्रज में नित्य नया विहार करते हैं (अर्थात् राधा-कृष्ण की ब्रज-विहार-लीला अनित्य है)।

8.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **परतीतिः** विश्वास, यकीन होना
2. **औनीः** आगमन, किसी का आना

8.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. निम्नलिखित पंक्तियों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

   राधा माधव भेंट भई।

   राधा माधव माधव राधा कीट,

   भृंग गति ह्वै। जु गई।।

नोट

2. क्या आप इस बात से सहमत हैं कि 'गोकुल लीला' में सूरदास ने श्रीकृष्ण और गोपियों का मनोहारी वर्णन किया है? उदाहरण सहित बताएं।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. खंजन
2. तोता और कोयल
3. रसज्ञान
4. (अ)
5. (ब)
6. (अ)

8.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सूरसागर–*सूरदास कृत।*
2. सूर की काव्य कला–*गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।*
3. सूरदास के पद–*गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।*

नोट

इकाई 9

सूरसागर की तात्विक समीक्षा एवं शिल्प विधान

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
9.1 सूरसागर की तात्विक समीक्षा एवं शिल्प विधान
9.1.1 मुहावरे–लोकोक्तियाँ
9.2 सारांश (Summary)
9.3 शब्दकोश (Keywords)
9.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
9.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शिल्प विधान के अर्थ को जानने में।
- सूरसागर की भाषा-विषय चमत्कार को समझने में।
- सूरसागर की तात्विक समीक्षा को अपने शब्दों में लिखने में।

प्रस्तावना (Introduction)

काव्य और शिल्पविधान–काव्य का इष्ट है–रस, जिनकी प्रतिष्ठा कवि दो प्रकार से करता है–(1) भावगत तुष्टि से तथा (2) कलागत रमणीयता से। यह कलागत रमणीयता भी मूलतः शिल्पविधान की ही प्रर्ण्य है। कवि की अनुभूति इसी के माध्यम से प्रकट होकर रसिक-हृदय तक पहुँचती है और साधारणीकरण का माध्यम बनती है। दूसरे शब्दों में, कवि-कथ्य को साकार करने एवं रसिक-हृदयों तक पहुँचाने का कार्य शिल्प-विधान ही करता है। यही कारण है कि काव्य-कला का यह अभिन्न अंग माना गया है। इसी का सविस्तृत परिचय देते हुये एक काव्यशास्त्रीय रूपक में कहा गया है'', कविता एक लावण्यमयी सुन्दरी है। शब्दार्थ इसका तन है, अलंकार आभूषण, रीति अवयवों का गठन तथा गुण स्वभाव।'

9.1 सूरसागर की तात्विक समीक्षा एवं शिल्प विधान

शिल्पविधान का तात्पर्य–'शिल्पविधान' दो शब्दों से मिलकर बना है–शिल्प + विधान। 'शिल्प' का शब्दार्थ है–'कला' जबकि 'विधान' का अर्थ है–संयोजन। इस प्रकार शिल्पविधि का शब्दार्थ होगा–कला अथवा कलागत संयोजन। कलागत-तुष्टि, अभिव्यंजना बहिर्पक्ष अथवा अभिव्यक्ति-कौशल आदि भी इसी के पर्यायसूचक शब्द हैं।

संक्षेप में, भाषा, अलंकार, छन्द और काव्य-रूप आदि शिल्प के विविध अंग हैं और इनका समुचित संयोजन करना ही समग्रतः शिल्पविधान। दृष्टव्य बात यह भी है कि यह कोई बाह्य अथवा भिन्न तत्व नहीं, 'काव्य' का ही अन्तरंग और अभिन्न पक्ष है।

सूरकाव्य का शिल्प-विधान–श्रेष्ठ कवि अथवा उसके काव्य का अन्तर्बाह्य सब कुछ मधुर होता है–'मधुराधिपतेरखिलम् मधुरम्। निःसन्देह सूर और उनका काव्य इसी कोटि का है। 'साहित्य-लहरी' का आचार्यत्व

नोट

हो अथवा 'सूर सूरावली' और सबसे अधिक 'सूरसागर' का काव्य-कौशल, सूरकाव्य के साहित्यिक या काव्यात्मक गुणों के परिचायक हैं। निःसन्देह महाकवि सूर ने काव्याचार्यों की संगति नहीं भोगी थी, काव्यशास्त्रियों के चरणों में बैठकर सूत्र व्याख्याओं को नहीं रटा था किन्तु फिर भी सूर ने काव्यशास्त्र का अपूर्व ज्ञान संजोया, जैसा कि 'साहित्य-लहरी' से स्पष्ट भी हो जाता है। दूसरे, **डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया** के शब्दों में, 'सूर की जन्म-भूमि 'साही', सूर का साधना क्षेत्र, 'गौघाट' (रुनकता-आगरा) तथा उपासना-क्षेत्र परासोली (गोवर्धन-मथुरा) तीनों ही ब्रजभाषा क्षेत्र में स्थित हैं।' तीसरे, 'सूर न तो कबीर की भाँति घुमक्कड़ थे और न उन्होंने तुलसी की भाँति दो भाषाओं का प्रयोग किया, इस दृष्टि से वह एक भाषा (ब्रज) निष्ठ थे।'' चौथे, 'सूरसागर' आदि समस्त सूरकाव्य का मूल वर्ण्य ब्रज से सम्बन्धित है। फलतः इन सबका प्रभाव सूर के शिल्प-विधान पर पड़ना स्वाभाविक ही है। सच तो यह है कि सूर के काव्य का समस्त शिल्प-विधान नाना विशेषताओं से युक्त है। प्रमाण है–'सूरकाव्य' की शिल्पगत विशेषताएँ जो निम्नांकित हैं–

भाषा विषयक

शब्दावली–सूर ब्रजभाषा के प्रथम कवि हैं। अपने समस्त काव्य में उन्होंने इसी भाषा को मुख्यतः अपनाया है। यह तत्कालीन जनसमाज की लोक-भाषा थी जिसको सूर ने 'भाषा' नाम दिया है–''सूरदास सोई कहे पद भाषा, करि गाई।'' यही कारण है कि यहाँ पर मुख्यतः ब्रजभाषा की लोक-प्रचलित शब्दावली की प्रधानता है यथा आंखि, सोई, पतिआरौ, दोऊ, सेए, बटाऊ, मुआल, सिरनोई, जनियत, जुवतिनि, अंजोरी, सकुचात तथा सकोरत आदि। भाषा को अधिकाधिक स्वाभाविक बनाने के लिये कहीं शब्दों में व्यंजनादि बदले गये हैं (यथा रिसि, रिचा), तो कहीं उनको तोड़ा-मरोड़ा गया है (यथा किलकी, मिलकी)। ध्वननशीलता भी इसका एक बड़ा गुण है यथा अरबाई, झमंकत, लखिखत, गहरात आदि। कहीं-कहीं इसमें अन्य भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं यथा–

संस्कृत– (i) अम्बुज, अधोमुख, कमल-दललोचन, निरालंब, वसुधा, अवज्ञा, खगपति, करभ, पिनाक, राका, संघात, गृह, अजिर आदि तत्सम शब्द।

(i) **तद्भव**–जोजन, कलेद, परतीति, भिनुसार, मरजाद, स्वारथ, स्रवन, औसर, कान्ह, पंखी, हियरो, अटारी, बछल, बिज्जु, आदि तद्भव शब्द।

लोक-प्रचलित देशज शब्द–यथा करतूति, करनी, उहकावे, तलबेली, मूँड, लाहा, खोही, छाक, डहकाओ, बागरि, धारी, दुर, लठबांसी आदि।

स्व-निर्मित–यथा ज्योतिक, मसानी, उतजीग, उषाधा, बिचवाना आदि।

अरबी-फारसी–तरवारि, दिवसी, दागना, हद, तारव, गुमान, दगा आदि।

पंजाबी–महंगी, प्यारी, पा, बिरियाँ।

पूर्वी–हमार, गोड, आपने।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है ''सूर में चलती भाषा-कोमलता है.....भाषा की स्वाभाविकता में बाधा नहीं पड़ने पाई है।.....कहने का तात्पर्य यह है कि सूर की भाषा बहुत चलती हुई और स्वाभाविक है। काव्य-भाषा से होने से यद्यपि उसमें कहीं-कहीं संस्कृत के पद, कवि के समय से पूर्व परम्परागत प्रयोग तथा ब्रज से दूर-दूर के प्रदेशों के शब्द भी आ मिले हैं, पर उनकी मात्रा इतनी नहीं है कि भाषा के स्वरूप में कुछ अन्तर पड़े या कृत्रिमता आवे।' सच तो यह है कि ''भाव-सम्राट सूर के मनो-दशा विशेष चित्रण में भाषा को भाव के समान्तर लाने के लिये प्रस्तुत्य प्रयास किया है। भाषा को प्रवाह और प्रभाव प्रदान करने वाली मिली-जुली शब्दावली उसी प्रयास का एक अंग और सूर की उस समन्वयवादी का प्रतीक है।''

टास्क सूरसागर के शिल्प-विधान पर अपना मत प्रस्तुत कीजिए।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. भाषा, अलंकार, छन्द और ..... आदि शिल्प के विविध अंग हैं।
2. सूरदास ..... के बाद कवि थे।
3. हमार, गोड, आपन आदि ..... बोली (भाषा) के शब्द हैं।

9.1.1 मुहावरे-लोकोक्तियाँ

भाषा के अन्तर्गत मुहावरों का विशिष्ट महत्त्व होता है। कारण? एक ओर तो मुहावरे अर्थ-व्यंजना को बढ़ाते हैं और दूसरी ओर उसको रोचक, सबल, प्रामाणिक, स्वाभाविक और संक्षिप्त बनाने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त समाज का संचित अनुभव और मनोवैज्ञानिकता जैसे गुण भी इनमें मिलते हैं। कहना न होगा कि सूर की भाषा को भी मुहावरों ने इन सभी गुणों से युक्त तो बनाया ही है, वाग्वैदग्ध्य से भी शक्ति-सम्पन्न बना दिया है। सूर द्वारा प्रयुक्त अधिकांश मुहावरे ब्रज प्रदेश में प्रचलित रहे हैं और सबसे अधिक मात्रा (और गुण में) 'भ्रमरगीत-प्रसंग' में मिलते हैं। कुछ प्रमुख मुहावरे इसी सत्य के परिचायक हैं यथा गगन के तारे गिनना, चाम के दाम लगाना, एक डार के तोरे, इक दूजे हांसी, जी में सल रहना, जरे पर जारत, पवन को भुजा बनाना, पोच करना, धतुरा खाये फिरना, बारह बाने तथा एक ही सांचे से काढ़ना आदि। सच तो यह है कि सूरकाव्य में मुहावरों का विस्तृत कोष है। **डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया** के अनुसार तो केवल आँख से सम्बन्धित सैकड़ों मुहावरे केवल 'भ्रमरगीत' में उपलब्ध हैं।

मुहावरे वाले गुण **लोकोक्तियों** में भी होते हैं। इसी से भाषा में इनका भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। साधारणतः 'लोकोक्तियाँ किसी सारगर्भित विचारपूर्ण वाक्य अथवा परम्परागत कथा, इतिहास किंवा ज्ञानोपदेशमय सूक्ति के रूप में कथनी की पुष्टि के लिये प्रयुक्त होती हैं।'' भ्रमरगीत में तो इन्होंने वचन-वक्रता का कार्य भी किया है। सूर ने लोकोक्तियों को दो ओर से सबल बनाया है। एक तो लोक-प्रचलित लोकोक्तियों को सटीक रूप से प्रयुक्त किया गया है, यथा–

''ले आये हो नफा जानि के सबै वस्तु अकरी।
कहौ कौन पै कढ़त कनूका जिन अठि भुसी पछोरी ॥

दूसरे, सूर ने कुछ लोकोक्तियों का निर्माण भी किया है, यथा–

(i) **'मूरी के पातन के बदले को मुक्ताहल दैहै।'**

(ii) **'सूरजदास दिगम्बर पुर तैं रजक कहा त्यौहाइ।'**

समग्रतः कुछ प्रमुख लोकोक्तियाँ देखिये जिनका प्रयोग 'भ्रमरगीत' में किया गया है–अपने स्वारथ के सब कोउ, अपनो दूध छाड़ि को पीवे खार कूप के वारि, काकी भूख गई मन जाडू, जे आवें ते कारे, तुमसौं प्रेम कथा का काहबो मनहु काटिबो घास, लवादेइ धराधरि में कौन रंक को भूप, हठि नाव चलावत सूर सुझाव तजै नहीं कारौ कीजै कोटि उपाय आदि।

शब्द शक्ति–सूर में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीनों शब्द-शक्तियाँ मिलती हैं और वह भी अपने सशक्त और प्रभावशाली रूप में। इनमें भी प्रधानता है अन्तिम दो की। कुछ उदाहरण देखिये–

(i) **''मधुकर स्याम हमारे चोर।**
मन हरि लियो माधुरी मूरति चितै नयन की कोर ॥''

(ii) **''ऊधो! तुम साथी मोरे।**
मेरे कहे विलख मानोगे, कोटि कुटिल लैं जोर।''
॥ ॥ ॥

(iii) **प्रकृति जोइ जाके अंग परी।**
स्वान पूंछ कोटिक जा लागै, सूधि न काहू करी।''

नोट

वाग्वैदग्ध्य–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है, 'सूरदास जी में सहृदयता और भावुकता है, प्रायः उतनी ही चतुरता और वाग्वैदग्ध्यता (Wit) भी है। किसी बात को कहने के न जाने कितने टेढ़े-सीधे ढंग उन्हें मालूम थे।'' यही कारण है कि तुलसी वाली गम्भीरता का यहाँ पूर्णतया अभाव है। दूसरी ओर गोपियों के कथनों में आद्योपांत वचन-चातुर्य और वाग्वैदग्ध्य भरा पड़ा है। यहाँ तक कि बारम्बार पुनरावृत्ति पर भी यह खलता नहीं है। निम्नलिखित कुछ उदाहरण इसी सत्य के परिचायक हैं–

(i) **''सन्देसनि मधुवन कूप भरे।**
जो कोउ पथिक गए हैं ह्यातें फिरि नहीं गवन करे।
के वै स्याम सिखाये समोधे, कै वे बिच मरे।''

× × ×

(ii) **''ऊधो! जानियो ज्ञान तिहारो।**
जानै कहा राजगति लीला, अन्त अहीर विचारो।''

सच तो यह है कि भ्रमरगीत में गोपियों का एक-एक कथन मूलतः कवि के वचन-चातुर्य और वाग्वैदग्ध्य-शक्ति का परिचायक है। वास्तव में उच्चकोटि के कवि ही इस प्रकार के वाग्वैदग्ध्य के अधिकारी होते हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि इसी एक विशेषता के कारण सूर के पद एक वर्ण्य विशेष से सम्बन्धित होने पर भी एकरसता-दोष से अछूते बच गये हैं गोपियाँ कभी तो ज्ञान मार्ग के व्यावहारिक पक्ष की कठिनाइयों की ओर संकेत करके, कभी ज्ञानमार्गी एकांगिता को आधार बनाकर और कभी ज्ञानोपदेश की शैलीगत दुर्बोधता को लक्ष्य करके तरह-तरह से उद्धव को छकाती हैं और अन्त में उद्धव को छकाने के साथ-साथ प्रभावित भी करती हैं। यही कथन सूर के दृष्टकूट पदों, विनय पदों और वात्सल्यमय पदों आदि पर चरितार्थ होता है। राधा-कृष्ण की छेड़छाड़ से अधिक वाक्-कौशल भला और कहाँ मिल सकता है?

नोट्स भ्रमरगीत में गोपियों का एक-एक कथन मूलतः कवि के वचन-चातुर्य और वाग्वैदग्ध्य-शक्ति का परिचायक है।

संगीतात्मकता–'सूरसागर' के सभी पद विविध राग-रागनियों में बंधे हैं। उनकी लययुक्त शब्दावली संक्षिप्त आकार और भाव-परिपूर्णता आदि भी उनको पूर्णतया गेय बना देती हैं। संगीत की रक्षा के लिये ही सूर ने प्रायः प्रसाद गुण युक्त शब्दावली को ही अधिक ग्रहण किया है। **डॉ. मनमोहन गौतम** ने इस विषय में ठीक ही कहा है, ''सूर के पदों का गेयत्व अपूर्व है।.....सूर के गीतों में शास्त्रीय स्वर-लय का पूर्ण विधान है फिर भी सूर के गीत शास्त्रीय संगीत मात्र नहीं हैं। उनमें.....प्रधानता है शब्द संगीत की।.....संगीत शब्द सौन्दर्य या अर्थसौरम्य में किसी प्रकार का विघ्न उत्पन्न नहीं करता। वह तो शब्दों की रमणीयता, ध्वन्यात्मकता और स्वर-लहरी से अर्थ में सौष्ठव और कल्पना में कमनीयता भरता है।.....पदगत शब्द संगीत अनुभूति की सूक्ष्मता को मूर्तिमान कर देता है।.....साथ ही दन्त्य वर्णों की बहुलता और सानुनासिक ध्वनि के संयोग से उसका गेयत्व सघन कर दिया गया है।''

क्या आप जानते हैं सूर के काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों मिलते हैं।

अलंकार विषयक–सूरकाव्य में अलंकारों का सागर है, कोई भी गोताखोर चाहे जितने अलंकार निकाल ले फिर भी ये अलंकार सायास नहीं आये वरन् पूर्णतया स्वाभाविक और भाव-सबलता के सहायक रूप में आये हैं। इनका मूलोद्देश्य है–सौन्दर्य का बोध कराना। **डॉ. हरवंश लाल शर्मा** (सूरकाव्य की आलोचना) ने ठीक कहा है, ''किसी वस्तु के साक्षात्कार से जब कवि की सौन्दर्यानुभूति सजग हो उठती है, हृदय तल्लीन हो जाता है तो उसकी कल्पना उस वस्तु के सौन्दर्य को अधिक हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक बनाने के लिये अप्रस्तुत-व्यापार योजना का सन्निवेश

नोट

करने लगती है, उस समय कवि की रचना में अलंकारों का समावेश स्वतः हो जाता है।'' कहना न होगा कि सूरकाव्य में अलंकार इसी रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

सूर के काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों मिलते हैं। इनमें भी प्रधानता दूसरे प्रकार के अर्थात् अर्थालंकारों की है। अर्थालंकारों में भी सबसे अधिक साम्यमूलक अलंकार आये हैं और इनमें भी सारूप्य या सादृश्य, साधर्म्य और प्रभाव साम्य तीनों प्रकार के अलंकार हैं। जैसा कि **डॉ. विश्वनाथ शुक्ल** ने (सूर की साहित्य साधना) कहा है, ''उनके प्रियतम अलंकार, उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा हैं जिनके सुन्दर और अतिशय कलात्मक प्रयोग में सम्भवतः कोई हिन्दी कवि इनके समकक्ष नहीं ठहर सकता।.....सांगरूपक पर तो.....सूरदास का असाधारण अधिकार है।.....सूर के सांगरूपक उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, तत्तत् शास्त्रों के ज्ञान और अनुभूति के अतुल गाम्भीर्य से उद्‌भुत हैं।'' इसी भाँति **डॉ. हरवंश लाल शर्मा** का मत है, ''अनुप्रास का प्रयोग तो सूरकाव्य में अत्यन्त ही स्वाभाविक है क्योंकि अनुप्रास द्वारा जहाँ एक ओर ध्वन्यात्मक सौन्दर्य का विधान होता है, वहाँ दूसरी ओर उसके वातावरण की सृष्टि भी। वीप्सा अलंकार कवि के हृदय की भक्ति-भावना का ही परिचायक कहा जा सकता है क्योंकि उसका प्रयोग उन्होंने राधा और कृष्ण के अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य-रसापान से तृप्त न होकर बार-बार स्वरूप वर्णन में किया है। वक्रोक्ति का प्रयोग व्यंग्योक्तियों में है।.....विरहणी गोपियों की उक्तियाँ तो उनके भावों के साथ व्यंग्य को भी लेकर निकलती हैं, इसलिये उनमें वक्रोक्ति के सुन्दर उदाहरण भरे पड़े हैं।'' इनके अतिरिक्त व्याजनिन्दा, संगति, विभावना, विरोधाभास, विषम, अनन्वय, सन्देह, भ्रान्ति, उल्लेख, अपन्हुति, दृष्टान्त आदि अनेक उदाहरण व्याप्त हैं। कुछ उदाहरण देखिये–

(i) **रूपकातिशयोक्ति**

''खजन मीन भृंग, वारिज, मृग पर दृग अति रुचि पाई।''

(ii) **उत्प्रेक्षा, रूपक और अनुप्रास–**

''देखियत चहुं दिसि ते घन घोर।
मानो मत मदन के हथियनु बलकरि बन्धन तोरे ॥
स्याम सुभग तन चुअत गण्डमद बरसत थोरे-थोरे।
रुकत न पौन महावत हू पै मुख न अंकुस भोरे ॥''

(iii) **व्यतिरेक–**

''उपमा नैन न एक गही।
कवि जन कहत-कहत सब आए सुखि करि नाहिं कही ॥''

(iv) **अतिशयोक्ति–**

''नयन सजल, कागद अति कोमल, कर अंगुली अति ताती।
परसत जरै, विलोकन भीजै, दुहं भाँति दुख छाती ॥''

(v) **अनुप्रास–**

''ऊधो! कोकिल कूजत कानन ॥''

(vi) **सन्देह–**

''तिहारी प्रीति किधौं तरबारि?''

(vii) **वक्रोक्ति–**

''मधुकर! त्याग जोग सन्देसो।
भली स्याम कुसलात सुनाई सुनतहिं भयो अंदेसो ॥''

इस प्रकार, ''सूरकाव्य विशेषतः भ्रमरगीत में अलंकारों का अनन्त वैभव विकीर्ण है। स्वभावोक्ति में तो उनसे आगे विश्व का सम्भवतः कोई ही कवि बढ़ सका हो।.....अलंकार उनके काव्य में सहज समाविष्ट होकर उसकी चारुता

नोट

को अतिशय प्रदान कर रहे हैं।'' सच तो यह है कि ''सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो अलंकारशास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है।''

छन्द विषयक–सूर के सभी पद गीतात्मक है। उनमें छन्दों का वैविध्य तो नहीं है, केवल पद प्रकार की दृष्टि से उनको विविधापरक माना जा सकता है। अधिकांश पद षट्पदी हैं जिनमें सवैय्या, रोला और छप्पय का स्वतन्त्र और मिश्रित रूप मिलता है। कुछ पद काफी बड़े और कुछ बहुत बड़े छन्दों में बद्ध हैं यथा ''उद्धव-गोपी संवाद'' के पद। कहीं-कहीं लोक छन्दों यथा होली, विरवा, कजरी आदि का उदाहरण भी देखा जा सकता है यथा 'तुम्हारें बिरह, ब्रजनाथ, अहो प्रिय' नयनन नदी बढ़ी' तथा 'ऊधो का उपदेस सुनौ किन कान दे।' कहीं-कहीं चौपाई छन्द भी हैं यथा ''हौ तुम ब्रजनाथ पठायो। आतमज्ञान सिखावन आये।''

काव्य-रूप-विषयक–समस्त सूरकाव्य प्रबन्धात्मक मुक्तक है। तात्पर्य यह है कि इसमें प्रबन्ध की एक हल्की योजना-रेखा है किन्तु सभी पद अपने में स्वतन्त्र भी हैं। गीतात्मकता के सभी गुणों से युक्त होने के कारण सभी पद गेय हैं। सच तो, **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के शब्दों में, यह है कि 'सूर की रचना जयदेव और विद्यापति के गीत काव्यों की शैली पर है, जिसमें सुर और लय के सौन्दर्य या माधुर्य का भी रस-परिपाक में बहुत कुछ योग्य रहता है।'' इस शैली को भी कवि ने उच्च कोटि का बनाकर प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष–उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सूर के काव्य का शिल्प पक्ष भी उच्च कोटि का है और विविध विशेषताओं से युक्त होने के कारण विशिष्ट भी है। वास्तव में, सूर के भाव विधान की भाँति उनके काव्य का शिल्प विधान भी अत्युत्तम है। क्या भाषा और क्या अलंकार, क्या छन्द योजना और क्या काव्य-रूप, सूर और उनका काव्य सभी अनुपम हैं, अत्युत्तम हैं, नवीनताओं और मौलिकताओं से परिपूर्ण हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. 'भ्रमरगीत' के रचयिता कौन हैं?

   (अ) सूरदास (ब) तुलसीदास (स) कबीर (द) जायसी

5. निम्नलिखित में से कौन-सा शब्द अरबी-फारसी भाषा का है?

   (अ) दागना, हद (ब) प्यारी, पा (स) करनी, छाक (द) इनमें से कोई नहीं

6. सूर के काव्य में ..... और अर्थालंकार दोनों मिलते हैं।

   (अ) शब्दालंकार (ब) रस (स) दोहा (द) इनमें से कोई नहीं

9.2 सारांश (Summary)

शिल्पविधान का तात्पर्य–'शिल्पविधान' दो शब्दों से मिलकर बना है–शिल्प + विधान। 'शिल्प' का शब्दार्थ है–'कला' जबकि 'विधान' का अर्थ है–संयोजन।

'सूर की जन्म-भूमि 'साही', सूर का साधना क्षेत्र, 'गौघाट' (रुनकता-आगरा) तथा उपासना-क्षेत्र परासोली (गोवर्धन-मथुरा) तीनों ही ब्रजभाषा क्षेत्र में स्थित हैं।'

सूरकाव्य में अलंकारों का सागर है, कोई भी गोताखोर चाहे जितने अलंकार निकाल ले फिर भी ये अलंकार सायास नहीं आये वरन् पूर्णतया स्वाभाविक और भाव-सबलता के सहायक रूप में आये हैं।

समस्त सूरकाव्य प्रबन्धात्मक मुक्तक है। तात्पर्य यह है कि इसमें प्रबन्ध की एक हल्की योजना-रेखा है किन्तु सभी पद अपने में स्वतन्त्र भी हैं।

नोट

9.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **भामिनिः** स्त्रियां, गोपियां
2. **पानिः** हाथ

9.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'सूरदास ने अपने काव्य में चमत्कारपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है'–स्पष्ट कीजिए।
2. 'सूर-काव्य में अलंकारों का सागर है' विश्लेषण कीजिए।
3. सूरसागर के शिल्प-विधान को अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. काव्य रूप	2. ब्रजभाषा	3. पूर्वी	4. (अ)
5. (अ)	6. (अ)		

9.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सूरसागर–*सूरदास कृत।*
2. सूर की काव्य कला– *गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।*
3. सूरदास के पद–*गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।*

नोट

इकाई 10

तुलसीदास का काव्यात्मक योगदान

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
10.1 तुलसीदास की लेखन कुशलता
10.2 तुलसीदास का काव्यात्मक योगदान
10.3 सारांश (Summary)
10.4 शब्दकोश (Keywords)
10.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
10.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- तुलसीदास की लेखन कुशलता समझने में।
- तुलसीदास के काव्यात्मक योगदान को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी काव्य-गगन के सर्वाधिक दैदीप्यमान नक्षत्र हैं। उनकी प्रतिभा और पाण्डित्य का प्रभाव देश-काल की सीमा का अतिक्रमण का आज सर्वकालिक और सार्वभौम होकर सर्वत्र व्याप्त हो गया है। उनकी काव्यकृतियाँ अपनी प्रभूत भावसामग्री, अनुपम अभिव्यक्ति पद्धति, समृद्ध भाषाशैली, प्रचुर कल्पना-सृष्टि, अद्‌भुत वस्तुविन्यास और उत्कृष्ट कला-कौशल के कारण हिन्दी काव्य में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती हैं।

10.1 तुलसीदास की लेखन कुशलता

तुलसी मूलतः भक्त और संत कोटि के साधक थे। काव्य-रचना के मूल में भी उनकी आत्मोद्धार की प्रेरणा ही प्रधान है। इस प्रकार कविता उनका साधन है और साध्य-रामभक्ति। इस साधन को तुलसी ने इतना पूर्ण और समर्थ बना दिया है कि भक्ति और साहित्य के क्षेत्र में वे अद्वितीय बन गए हैं।

अपनी रचना में तुलसी ने प्रायः सभी रसों-भावों का वर्णन किया है अपने भावों की विशद व्यंजना के लिए उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा आदि सहज अलंकारों को उनके नैसर्गिक रूप में ही ग्रहण किया है। तुलसी के काव्य में उपमा और उत्पेक्षा का सहज-समीचीन प्रयोग दर्शनीय है–

सोभित छींट छटा निज ते तुलसी प्रभु सौहैं महाछवि छूटी।
मानौ मरक्कत सैल विसाल में फैलि चली वर वीर बहुटी ॥

गोस्वामी जी ने भावों की उत्कर्ष-व्यंजना में, वस्तुओं का अनुभव तीव्र करने में तथा गुण-क्रिया आदि की अनुभूति को व्यापकता देने में सहायक रूप में भी अलंकारों का यथास्थान प्रयोग किया है।

नोट

क्या आप जानते हैं अवधी और ब्रजभाषा पर तुलसीदास का पूर्ण अधिकार उनकी रचनाओं में स्पष्ट झलकता है।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी तुलसी अप्रतिम हैं। अवधी और ब्रजभाषा दोनों पर समर्थ अधिकार उनकी रचनाओं से स्पष्ट है। विनम्रतावश उन्होंने अपनी भाषा को 'गँवारू' अवश्य कहा है परन्तु वास्तविकता यह है कि अवधी भाषा का जैसा प्रांजल, परिमार्जित और प्रवाहपूर्ण प्रयोग उन्होंने किया है, वैसा उनके पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती किसी कवि द्वारा संभव नहीं हुआ है। ब्रजभाषा के शब्दों का नैसर्गिक प्रयोग भी उन्हें सिद्ध था। उनकी सहज ब्रजभाषा देखकर उनके अवधवासी और काशीवासी होने में आश्चर्य होता है। ब्रजभाषा के सहज प्रयोग का एक उदाहरण दर्शनीय है–

राम सों बड़ो है कौन मो सों कौन छोटो।

राम सों खरो है कौन मो सों कौन खोटो॥

तुलसी ने शब्द-शक्तियों का भी साधिकार और समीचीन प्रयोग किया है। अभिधा का सुन्दर प्रयोग तो सर्वत्र हुआ ही है, लक्षणा और व्यंजना का भी सहज प्रयोग हुआ है–

सुनि विलाप सुखहु दुःख लागा। धीरज हू कर धीरज भागा।

यहाँ लक्षणा का और–

सेवत तोहि सुलभ फल चारि। वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी।

में व्यंजना के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति और विषय-विकास को सहयोग मिला है।

भावानुरूप नैसर्गिक छवि को छन्दों में समा देने में प्राप्त सफलता में गोस्वामी जी छन्दविधायक कवि सिद्ध होते हैं। 'मानस' के सोपानों के प्रारम्भ और अंत में तुलसी ने विविध वृत्तों में संस्कृत-श्लोकों का प्रयोग किया है। शेष ग्रंथ की रचना चौपाई और दोहे छन्दों में हुई है। कहीं-कहीं सोरठे का भी प्रयोग हुआ है। दोहों और चौपाइयों के बीच कहीं-कहीं हरिगीतिका छन्द की छटा भी देखने को मिल जाती है। 'कवितावली' में सवैया, मनहरण, घनाक्षरी, छप्पय और झूलना आदि छन्दों का तथा 'वैराग्यसन्दीपनी' में दोहा, सोरठा और चौपाई का प्रयोग हुआ है। कवि के विषयोपयुक्त छन्दों के सफल प्रयोग को देखकर इन छन्दों पर उसके अधिकार का सहज ज्ञान हो जाता है।

इस प्रकार तुलसी की लेखन कुशलता सचमुच की अप्रतिम और स्पृहणीय है। हरिऔध की यह उक्ति सर्वथा उपयुक्त ही है–

कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।

नोट्स तुलसीदास मूलतः भक्त और सन्त कवि थे उनकी काव्य रचना में आत्मोद्धार की प्रेरणा झलकती है।

10.2 तुलसीदास का काव्यात्मक योगदान

तुलसी मुख्य रूप से प्रबंधकाव्य-प्रणेता महाकवि हैं, परन्तु उनकी प्रतिभा का क्षेत्र सीमित नहीं है। काव्य के प्रसाधन और समस्य आवश्यक उपकरण जुटाने-सँवारने में उन्हें अपूर्व सफलता मिली है। प्रबंधकाव्य की मूलभित्ति कथा या वस्तु है। कथा का यथोचित विन्यास कवि की सफलता का निर्णायक तत्त्व होता है। महाकाव्य की व्यापक परिभाषा के अन्तर्गत अन्य तत्त्व हैं–चरित्र-चित्रण, रस-निरूपण, प्रकृति-वर्णन, मर्यादा स्थापन, लोक-संरक्षण, आद्योपान्त आकर्षण। तुलसी के 'मानस' में इन सभी तत्वों की परिपूर्णता मिलती है।

नोट

कथा-कौशल की दृष्टि से 'रामचरितमानस' इतना पुष्ट है कि उसका प्रचार-प्रसार उसके मूलाधार ग्रंथों से भी अधिक है। इस ग्रंथ में कवि का ध्यान मुख्य रूप से राम पर रहा है और उसी के आश्रय से रस की पुष्टि हुई है। तुलसी के 'मानस' की कथावस्तु इतनी सुसज्जित और सन्तुलित रही है कि वह राम-महिमा के विस्तार के साथ जन साधारण का अतुलनीय मनोरंजन करने में अपार आकर्षण जुटाने में तथा अमित कल्याण-साधन करने में समर्थ हुई है।

तुलसी मूलतः भक्त थे। गंभीर चिन्तक एवं प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी उनका वास्तविक रूप भक्त का था। उनकी भक्ति दास-भाव की थी, जिसमें अनन्य अनुराग होते हुए भी स्वामी के प्रति संभ्रम का भाव था। श्रद्धातत्व की अनिवार्य स्थित को बनाए रखने के कारण तुलसी की रामभक्ति में सात्त्विकता बनी रही, कलुषता नहीं आने पायी भक्त के रूप में भी उनका उल्लेखनीय योगदान समन्वय-भावना और उदारता है। भक्ति को गौरव देते हुए भी उन्होंने स्वातन्त्रयोत्तरकाल में आकर तुलसी-विषयक नई-नई सामग्री प्रकाश में आयी, नई-नई स्थापनायें हुईं। यहाँ तक कि उनको 'हिन्दू समाज के पथभ्रष्टक' जैसे नाम दिए गए। कहना न होगा कि दोनों ही पक्ष 'अतिकर और एकांगी' हैं। सत्य तथ्य को पहचानने, सामान्य पाठक की शंकाओं-जिज्ञासाओं का समाधान करने, तटस्थ-निर्लिप्त होकर निष्कर्ष स्थापित करने तथा उससे अधिक वास्तविकता को स्थापित करने के लिए 'तुलसी और उनके साहित्य' का निष्पक्ष मूल्यांकन आवश्यक? है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. गोस्वामी जी की कविता ..... है और रामभक्ति ..... है।
2. तुलसीदास जी ने विनम्रतावश अपनी भाषा को ..... कहा है।
3. तुलसीदास की रचना में दोहों और चौपाइयों के बीच कहीं-कहीं ..... की छटा भी देखने को मिल जाती है।
4. तुलसीदास मुख्य रूप से ..... प्रणेता महाकवि हैं।
5. गंभीर चिंतक और प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी तुलसीदास का वास्तविक रूप ..... का था।

10.3 सारांश (Summary)

तुलसी मूलतः भक्त और संत कोटि के साधक थे। काव्य-रचना के मूल में भी उनकी आत्मोद्धार की प्रेरणा ही प्रधान है।

तुलसी मुख्य रूप से प्रबंधकाव्य-प्रणेता महाकवि हैं।

गोस्वामी जी ने भावों की उत्कर्ष-व्यंजना में, वस्तुओं का अनुभव तीव्र करने में तथा गुण-क्रिया आदि की अनुभूति को व्यापकता देने में सहायक रूप में भी अलंकारों का यथास्थान प्रयोग किया है।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी तुलसी अप्रतिम हैं। अवधी और ब्रजभाषा दोनों पर समर्थ अधिकार उनकी रचनाओं से स्पष्ट है।

भावानुरूप नैसर्गिक छवि को छन्दों में समाहित कर देने में प्राप्त सफलता से गोस्वामी जी छन्दविधायक कवि सिद्ध होते हैं।

10.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **त्रिपुरारिः** शिव, भगवान शंकर
2. **आत्मोद्धारः** अपने प्रयास से अपना उद्धार करना
3. **नैसर्गिकः** प्राकृतिक, स्वाभाविक

नोट

10.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'तुलसीदास प्रबन्धकाव्य-प्रणेता महाकवि हैं' स्पष्ट करें।

2. तुलसीदास की भाषा-शैली पर टिप्पणी करें।

2. तुलसीदास के काव्यात्मक योगदान का वर्णन करें।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. साधन, साध्य 2. गँवारू 3. हरिगीतिका छन्द 4. प्रबंधकाव्य 5. भक्त

10.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. रामचरितमानस–साहित्यिक मूल्यांकन–*पाण्डेय सुधाकर, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली।*

2. गोस्वामी तुलसीदास–*मीना मनिशिखा, प्रभात प्रकाशन।*

3. तुलसी दास–*शिवसरन राम, एस.राम, वेदाम बुक्स।*

नोट

इकाई 11

रामचरितमानस उत्तरकाण्ड दोहा–सप्रसंग व्याख्या

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
11.1 रामचरितमानस उत्तरकाण्ड दोहा-सप्रसंग व्याख्या
11.2 सारांश (Summary)
11.3 शब्दकोश (Keywords)
11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
11.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- रामचरितमानस के दोहों का अर्थ जानने में।
- रामचरितमानस की व्याख्या करने में।
- तुलसीदास की काव्य विशेषताओं को समझने में।
- रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड की कथा-वस्तु को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

महाकवि तुलसीदास एक उत्कृष्ट कवि ही नहीं, महान लोकनायक और तत्कालीन समाज के दिशा-निर्देशक भी थे। इनके द्वारा रचित महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' भाषा, भाव उद्देश्य, कथावस्तु, चरित्र-चित्रण तथा संवाद की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य का एक अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें तुलसी के कवि, भक्त एवं लोकनायक रूप का चरम उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। 'श्रीरामचरितमानस' में तुलसीदास ने व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य, राजा, प्रशासन, मित्रता, दाम्पत्य एवं भ्रातृत्व आदि का जो आदर्श प्रस्तुत किया है, वह सम्पूर्ण विश्व के मानव समाज का पथ-प्रदर्शन करता रहा है। 'विनयपत्रिका' ग्रन्थ में ईश्वर के प्रति इनके भक्त-हृदय का समर्पण दृष्टिगोचर होता है। इसमें एक भक्त के रूप में तुलसी ईश्वर के प्रति दैन्यभाव से अपनी व्यथा-कथा कहते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास की काव्य-प्रतिभा का सबसे विशिष्ट पक्ष यह है कि ये समन्वयवादी थे। उन्होंने 'श्री रामचरितमानस' में राम को शिव का और शिव को राम का भक्त प्रदर्शित कर वैष्णव एवं शैव सम्प्रदायों में समन्वय के भाव को अभिव्यक्त किया। निषाद एवं शबरी के प्रति राम के व्यवहार का चित्रण कर समाज की जातिवाद पर आधारित भावना की निस्सारता (महत्त्वहीनता) को प्रकट किया और ज्ञान एवं भक्ति में समन्वय स्थापित किया।

11.1 रामचरितमानस उत्तरकाण्ड दोहा-सप्रसंग व्याख्या

तुलसीदास विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न तथा लोकहित एवं समन्वय भाव से युक्त महाकवि थे। भाव-चित्रण, चरित्र-चित्रण एवं लोकहितकारी आदर्श के चित्रण की दृष्टि से इनकी काव्यात्मक प्रतिभा का उदाहरण सम्पूर्ण विश्व-साहित्य में भी मिलना दुर्लभ है।

नोट

'श्रीरामचरितमानस', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली', 'गीतावली', 'श्रीकृष्णगीतावली 'दोहावली', 'जानकी-मंगल', 'पार्वती-मंगल', 'वैराग्य-सन्दीपनी' तथा 'बरवै-रामायण' आदि।

दोहा– रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग ॥1॥

शब्दार्थ–अवधि = सीमा, मीआद। आरत = आर्त, व्याकुल। कृस = दुर्बल।

व्याख्या–श्रीराम के चौदह वर्ष के वनवास की अवधि का अब एक दिन ही शेष रह गया है। अतः अयोध्यावासी स्त्री-पुरुष अत्यंत व्याकुल हैं और श्रीराम के वियोग में उनका शरीर दुर्बल हो गया है। वे जहाँ-तहाँ एकत्र होकर चिंतामग्न हैं।

विशेष–1. नगरवासी यही सोचते हैं कि आज श्रीराम के वनवास की अवधि पूर्ण होने का अंतिम दिन है, अतः आज उन्हें वापस आ जाना चाहिए।

2. चौदह वर्ष वनवास की अवधि कब पूर्ण हुई थी, इस पर विद्वानों में मतभेद है। एक मत से अवधि चैत्र मास में पूर्ण हुई थी। वाल्मीकि के अनुसार श्रीराम ने चतुर्थी को किष्किंधा में रहकर पंचमी को वहाँ से प्रस्थान किया था और चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होने पर पंचमी तिथि को भारद्वाज आश्रम में पहुँचे थे–

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चभ्यां लक्ष्मणाग्रजः।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ॥(युद्धकाण्ड, 124वां सर्ग)

अध्यात्मरामायण के अनुसार भी 14वां वर्ष पूर्ण होने पर पंचमी तिथि को भारद्वाज मुनि का दर्शन कर उन्हें भाई सहित प्रणाम किया–

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चभ्यां रघुनन्दनः।
भरद्वाजं मुनिं दृष्ट्वा ववन्दे सानुजः प्रभुः ॥ (युद्धकाण्ड, चतुर्दश सर्ग)

3. वाल्मीकि जी वनवास का प्रारंभ राम के जन्मदिन से ही मानते हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि यदि चौदह वर्ष चैत्र में ही उसी तिथि पर पूर्ण न होते हो वे अंत में मास का नाम अवश्य देते, क्योंकि यह चरित उनके समय का है।

दोहा– सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहूँ फेर ॥2॥

शब्दार्थ–आगवन = आगमन, आना। रम्य = सुन्दर। फेर = दिशा, ओर।

व्याख्या–सभी लोगों को शुभ शकुन की अनुभूति हो रही है, सभी का मन प्रसन्न है (प्रसन्नता का भाव कार्य सिद्धि का सूचक होता है), उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ये शुभ शकुन प्रभु श्रीराम के आगमन के सूचक हैं। पूरा नगर सुंदर दिखाई पड़ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह भी प्रभु के आगमन का सूचक है। श्रीराम के अयोध्या से चले जाने के पश्चात् पूरा नगर भयानक प्रतीत हो रहा था–

'लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अंधियारी॥' (अयोध्याकाण्ड, 83/5)

अब श्रीराम के आगमन को जानकर मानों अवध रमणीक हो गया है।

अलंकार– दूसरे चरण में उत्प्रेक्षा।

दोहा– कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ ॥3॥

शब्दार्थ–श्री = सीता जी। जुत (युक्त) = साथ।

व्याख्या–श्री कौसल्यादि सभी माताओं के मन में ऐसा आनंद हो रहा है कि अब कोई यह कहना ही चाहता है कि श्रीराम जी और सीता जी लक्ष्मण के साथ आ गए।

विशेष–आयउ प्रभु–यह संदेश कहने वाले के वचन हैं, कौसल्यादि के नहीं, क्योंकि उनके मन में श्रीराम के प्रति वात्सल्य-भाव था।

तुलनीय–गीतावली में इस प्रसंग का अत्यंत मनोरम और शकुन-सूचक वर्णन है–

नोट

क्षेमकरी बलि बोलि सुबानी।
कुसलक्षेम सियराम लषन कब ऐहैं, अंब! अवध रजधानी ॥
ससिमुख कुंकुम बरनि सुलोचनि मोचनि सोचनि बेद बखानी।
देवि दया करि देहि दरसफल जोरि पानि बिनवहिं सब रानी ॥
सुनि सनेहमय बचन निकट ह्वै मंजुल मंडल कै मँडरानी।
सुभ मंगल आनंद गगन धुनि अकनि उर जरनि जुड़ानी ॥
फरकन लगे सुअंग बिदिस दिसि मन प्रसन्न दुख दसा सिरानी।
करहिं प्रनाम सप्रेम पुलकि तनु मानि बिबिध बलि सगुन सयानी ॥

दोहा– भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार ॥4॥

शब्दार्थ–भुज = भुजा, बाँह।

व्याख्या–भरत जी का दाहिना नेत्र और दक्षिण भुजा बारंबार फड़कते हैं। इसे शुभ शकुन समझकर उनके मन में अपार हर्ष हुआ और वे विचार करने लगे।

विशेष–1. पुरुष के दाहिने अंगों का फड़कना शुभ माना जाता है। यहाँ तीन प्रकार के शकुन दिखाए गए हैं–पुरवासियों को प्रत्यक्ष, माताओं को मानसिक और भरत को कायिक।

2. श्रीराम के वनवास की अवधि पूर्ण होने में केवल डेढ़ पहर शेष रह गया है। इसी कारण सभी अवधवासी 'अति आरत' होकर चिंतामग्न हैं, किंतु इसी समय होने वाले शुभ शकुन उनमें आशा का संचार करते हैं।

दोहा– राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत ॥1(क)॥

शब्दार्थ–मगन = डूबना। पोत = जहाज या नौका।

व्याख्या–इस प्रकार श्रीराम के विरह रूपी समुद्र में भरत का मन डूब रहा था। उसी समय विप्र रूप में हनुमान जी आ गए, मानों डूबते व्यक्ति को सहारा देने के लिए जहाज पहुँच गया हो।

अलंकार–पहली पंक्ति–रूपक, दूसरी पंक्ति–उत्प्रेक्षा।

दोहा– बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जलजात ॥1(ख)॥

शब्दार्थ–कृस (कृश) = दुर्बल। गात = शरीर। स्त्रवत = प्रेमाश्रुप्रवाह। जलजात = कमल।

व्याख्या–हनुमान ने देखा कि भरत जी कुशासन पर बैठे हैं, सिर पर जटाओं का मुकुट है, श्रीराम के वियोग में उनका शरीर दुर्बल हो गया है। वह निरंतर 'राम राम' का कर जप रहे हैं और उनके कमल के समान नेत्रों से अश्रुप्रवाह हो रहा है।

विशेष–श्रीराम वन में कुशासन पर ही बैठते थे, सिर पर जटाओ का मुकुट था। भरत की भी वही स्थिति है, केवल एक अंतर है–श्रीराम के वियोग में उनका शरीर सूख गया है।

अलंकार–स्त्रवत नयन जलजात–परिणाम।

तुलनीय–1. वाल्मीकि रामायण में भी भरत की दशा का इसी प्रकार वर्णन मिलता है। हनुमान ने देखा कि–

ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनं।
जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम् ॥
फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम्।
समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम् ॥ (युद्धकाण्ड, 125वां सर्ग)

नोट

2. अध्यात्मरामायण के अनुसार भी हनुमान ने अयोध्या से एक कोस की दूरी पर नन्दिग्राम में इसी रूप में भरत को बैठे हुए देखा–

क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीर कृष्णाजिनाम्बरम्।
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥
मलपङ्कविदिग्धाङ्गं जटिलं वल्कलाम्बरम्।
फलमूलकृताहारं रामचिन्तापरायणम् ॥ (युद्धकाण्ड, चतुर्दश सर्ग)

दोहा– राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात ॥2(क)॥

सोरठा– भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ हरिषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि॥2(ख)॥

शब्दार्थ–जान (सं. यान) = पुष्पक विमान।

व्याख्या–हनुमान ने कहा कि हे तात! तुम श्रीराम को प्राणों के समान प्रिय हो। मेरा वचन पूर्णतः सत्य है। हनुमान के ऐसे उद्‌गार सुनकर भरत के हृदय में हर्ष समा नहीं रहा है। वह प्रेम तथा कृतज्ञता से वशीभूत होकर हनुमान का पुनः पुनः आलिंगन करते हैं।

तत्पश्चात् हनुमान भरत के चरणों में प्रणाम करके तत्काल श्रीराम के पास चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने भरत का समग्र कुशल वृत्तांत निवेदित किया, जिसे सुनकर प्रभु राम ने प्रसन्न होकर पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया।

दोहा– हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत ॥3(क)॥
बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान ॥3(ख)॥

शब्दार्थ–परिजन = कुटुंबीजन। भूसुर = ब्राह्मण। बृंद = समूह। कृपानिकेत = दया के धाम।

व्याख्या–गुरु वशिष्ठ, कुटुम्बीजन, अनुज (शत्रुघ्न) तथा ब्राह्मण-ऋषि वृन्द आदि परम प्रसन्न हैं। उन सबके साथ अत्यंत प्रेमपूर्वक श्रीभरत जी दयानिधि प्रभु राम के स्वागत के लिए चले।

बहुत-सी स्त्रियाँ जो बाहर निकलने में संकोच करती थीं, वे महलों की अटारियों पर चढ़कर आकाश में विमान को देख रही हैं। जब उन्हें विमान दिखाई दिया तो हर्षित होकर मधुर स्वर में मंगलगीत गाने लगीं। स्त्रियाँ अटारियों पर हैं, अतः उनको विमान पहले दिखाई पड़ा।

दोहा– राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान।
बढ़यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान ॥3(ग)॥

शब्दार्थ–राका ससि = पूर्णिमा का चंद्रमा। सिंधु = सागर। तरंग = लहर।

व्याख्या–श्रीराम पूर्णिमा के चंद्र हैं और अयोध्या समुद्र है। अयोध्या रूपी सागर श्रीराम रूपी चंद्रमा को देखकर हर्षित हुआ। (पूर्णिमा तिथि को समुद्र में ज्वार-भाटा आता है, तब उसमें ऊँची-ऊँची तरंगें उठती हैं)। यहाँ नगर की स्त्रियाँ तरंग के समान हैं, वे मधुर गीत गा रही हैं, जिससे प्रतीत होता है कि मानों समुद्र ही कोलाहल (शब्द) करता हुआ बढ़ रहा है।

विशेष–1. चंद्रमा की उत्पत्ति सिंधु से हुई थी और श्रीराम अयोध्या में प्रकट हुए थे। अतः श्रीराम को चंद्रमा कहा गया है।

2. पूर्णिमा चौदह दिनों के बाद आती है और श्रीराम चौदह वर्षों के बाद आ रहे हैं।

3. चंद्रमा प्राची (पूर्व) दिशा में उदित होता है। यहाँ व्यंजना यह है कि श्रीराम भी अयोध्या की पूर्व दिशा में आ गए।

नोट

अलंकार–1. पहली पंक्ति – समअभेद रूपक

2. जनु नारि तरंग समान – वस्तुत्प्रेक्षा

दोहा– आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान ॥4(क)॥
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु ॥4(ख)॥

व्याख्या–जब दया के सागर भगवान राम ने देखा कि अवधवासी उनका स्वागत करने के लिए आ रहे हैं, तब उन्होंने नगर के समीप ही पुष्पक विमान को भूमि पर उतरने की प्रेरणा (आज्ञा) दी। उनकी आज्ञानुसार विमान भूमि पर आ गया।

पुष्पक यान से उतरकर प्रभु ने उससे कहा कि अब तुम कुबेर के पास जाओ। श्रीराम की प्रेरणा (आज्ञा) से वह अपने स्वामी कुबेर के पास चला। उस समय उसे हर्ष तथा वियोगजन्य दुःख, दोनों का अनुभव हो रहा था।

क्या आप जानते हैं चंद्रमा की उत्पत्ति सिंधु से हुई थी और श्रीराम अयोध्या में प्रकट हुए थे। अतः श्रीराम को चंद्रमा कहा गया है।

विशेष– 1. श्रीराम ने पुष्पक विमान विभीषण को वापस नहीं किया, उसे कुबेर के पास भेज दिया। वस्तुतः यह यान कुबेर का ही था, जिसे रावण छीन लाया था। अतः नियमतः उस पर कुबेर का ही अधिकार था।

2. हरषु बिरहु अति ताहु–विमान बहुत समय के अंतराल के बाद अपने स्वामी के पास जा रहा है, अतः उसे हर्ष हुआ। किंतु श्रीराम से उसका वियोग हो रहा है, अतः उसे दुःख भी हुआ।

अलंकार–यहाँ प्रथम समुच्चय अलंकार है, क्योंकि विमान को हर्ष व शोक एक ही साथ हुए हैं।

तुलनीय–अध्यात्मरामायण के अनुसार भी राम के आदेश से ही विमान कुबेर के पास गया था–

अब्रवीत्पुष्पकं देवो गच्छ वैश्रवणं वह।
अनुगच्छानुजानामि कुबेरं धनपालकम् ॥ (युद्धकाण्ड, चतुर्दश सर्ग)

दोहा– पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ॥5॥

व्याख्या–भरत जी से भेंट करने के पश्चात् श्रीराम ने प्रसन्नतापूर्वक शत्रुघ्न को हृदय से लगाकर आलिंगन किया। जब श्रीराम, भरत और शत्रुघ्न दोनों से मिल चुके, तब लक्ष्मण और भरत दोनों भाई प्रेमपूर्वक मिले।

दोहा– भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि ॥6(क)॥
लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकई कहँ पुनि-पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ ॥6(ख)॥

शब्दार्थ–तनय = पुत्र। रति = प्रेम। छोभु (सं. क्षोभ) = व्याकुलता, खेद।

व्याख्या–सुमित्रा माता लक्ष्मण को राम का प्रेमी समझकर मिलीं, केवल पुत्र समझकर नहीं। कैकेयी श्रीराम से मिलीं, किंतु भेंट करते समय उनके हृदय में बहुत संकोच हो रहा है। वह सोचती हैं कि मेरे कारण ही इनको वनवास का दुःख झेलना पड़ा। पुनः लक्ष्मण सभी माताओं से मिले और उनका आशीर्वाद प्राप्त करके प्रसन्नता का अनुभव किया। वह कैकेयी से बार-बार मिलते हैं, किंतु उनके मन का खेद अथवा व्याकुलता समाप्त नहीं होती है।

विशेष–1. सुमित्रा ने लक्ष्मण को रामचरणानुरक्त समझकर भेंट किया। भाव यह है कि उनमें पुत्र के प्रति ममत्व की अपेक्षा उनके राम-भक्त होने के कारण अधिक प्रसन्नता है।

नोट

2. मन कर छोभु न जाइ–यह पंक्ति दोनों के लिए हो सकती है। कैकेई के मन का क्षोभ नहीं जाता है अथवा लक्ष्मण के मन का क्षोभ नहीं जाता है।

लक्ष्मण के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि वह कैकेयी से बार-बार मिलते हैं, किंतु यह स्मरण करके कि उनके कारण ही श्रीराम को वन जाना पड़ा, उनके दुःख का शमन नहीं होता है। लक्ष्मण ने कैकेयी को कटुवचन कहा था, अतः अपने मन का क्षोभ मिटाने के लिए वह उनसे बार-बार मिलते हैं।

कैकेयी को राम को वनवास देने का क्षोभ था, अतः उनका क्षोभ मिटाने के लिए लक्ष्मण उनसे बार-बार मिलते हैं।

3. यहाँ लक्ष्मण के चरित्र का अत्यंत सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रांकन हुआ है। महाकाव्य में किसी भी पात्र के चरित्र-निरूपण में यह ध्यान रखना पड़ता है कि उसमें जिस भाव का उद्रेक दिखाया जाए, क्रमशः उसका विकास, ह्रास और फिर शमन भी दिखाया जाए। लक्ष्मण में कैकेयी के प्रति शृंगवेरपुर में जिस भाव का उद्रेक होता है, चित्रकूट में उसका उत्कर्ष दिखाई पड़ता है और उत्तरकाण्ड में शमन।

दोहा– लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु।
परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु ॥7॥

व्याख्या–इसके पूर्व कहा गया था कि माता कौसल्या श्रीराम को बार-बार देखती है; किंतु किसी को यह संदेह न हो कि माता का ममत्व केवल राम के प्रति है, अतः कवि पुनः स्पष्ट करता है कि माता कौसल्या लक्ष्मण और सीता सहित श्रीराम को बार-बार देखती हैं और प्रत्येक बार उनका शरीर प्रेम से रोमांचित हो जाता है तथा मन परमानंद में डूबा हुआ है।

दोहा– नारि कुमुदिनीं अवध सर रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भएँ बिगसत भई निरखि राम राकेस ॥9(क)॥
होहिं सगुन सुभ बिबिधि बिधि बाजहिंक गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान ॥9(ख)॥

शब्दार्थ–सर = तालाब। दिनेस = सूर्य। राकेस = पूर्ण चंद्र। निसान = नगाड़ा। सनाथ = कृतार्थ।

व्याख्या–अयोध्या रूपी सरोवर की स्त्रियाँ रूपी कुमुदिनी श्रीराम के विरह रूपी सूर्य के अस्त होने पर श्रीराम रूपी पूर्ण चंद्र को देखकर विकसित (प्रसन्न) हो गई। इस समय अनेक प्रकार के मंगल सगुन हो रहे हैं, आकाश में देवता वृंद नगाड़े बजा रहे हैं। इस प्रकार नगर के स्त्री-पुरुषों को कृतार्थ करके प्रभु श्रीराम महल को चले।

विशेष–1. राजतिलक के समय देवता दुःखी थे, क्योंकि उन्हें चिंता थी कि यदि राम वन न गए तो राक्षसों का विनाश कैसे होगा? इसीलिए–'तिन्हति सोहाव न अवध-बधावा।' किंतु अब उनका कार्य संपन्न हो गया है, अतः वे प्रसन्न हैं और नगाड़े बजा रहे हैं।

2. श्रीराम के वन जाने पर पुरवासी अनाथ हो गए थे, अब उनके वापस आने पर वे फिर से 'सनाथ' हो गए हैं।

अलंकार–पहला दोहा–सांगरूपक।

दोहा– तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ ॥10(क)॥
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मगाइ।
हरष समेत बसिष्ट पद पुनि सिरु नायउ आइ ॥10(ख)॥

शब्दार्थ–बाजि = अश्व। सँवारे = सजाया। धावन = शीघ्रगामी व्यक्ति।

व्याख्या–तब वशिष्ठ मुनि ने सुमंत्र से राज्याभिषेक की सभी तैयारियाँ यथाशीघ्र संपन्न करने के लिए कहा। सुमंत्र प्रसन्नतापूर्वक चले और अनेक प्रकार के रथों, अश्वों और हाथियों को सजाया तथा यत्र-तत्र शीघ्रगामी व्यक्तियों को भेजकर राज्याभिषेक के अवसर पर प्रयुक्त होने वाले मांगलिक पदार्थों को मँगवाकर वापस आ गए और प्रसन्नतापूर्वक वशिष्ठ मुनि का अभिवादन किया।

नोट

दोहा– सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन बर भूपन अँग अँग सजे बनाइ ॥11(क)॥
राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि॥11(ख)॥

शब्दार्थ–मज्जन = स्नान। बसन = वस्त्र। बर = श्रेष्ठ। रमा = लक्ष्मी; यहाँ तात्पर्य है–सीता।

व्याख्या–एक ओर श्रीराम, उनके अनुजों तथा सखाओं आदि को स्नानादि कराकर तैयार किया जा रहा है, उधर उसी समय माताओं (सासुओं) ने सीता जी को आदरपूर्वक स्नान कराया तथा दिव्य वस्त्र एवं श्रेष्ठ आभूषण उनके अंग-अंग में पहनाया। इस प्रकार पूर्ण शृंगार करके रूप और गुण की खान सीता जी श्रीराम के बायीं ओर सुशोभित हुईं। यह देखकर सभी माताओं ने अपना जन्म कृतार्थ समझकर प्रसन्नता का अनुभव किया।

विशेष–सीता जी को सोलहों शृंगार कराए गए हैं और बारहों आभूषण पहनाए गए हैं। भारतीय परंपरा में 16 शृंगार और 12 आभूषण मान्य हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं–

1. सोलह शृंगार–अंगों में उबटन लगाना, स्नान करना, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, केश-सज्जा करना, काजल लगाना, माँग सँवारना, सेंदुर लगाना, महावर देना, भाल पर तिलक लगाना, चिबुक पर तिल बनाना, मेहंदी लगाना, अरगजा आदि सुगंधित वस्तुओं का प्रयोग करना, आभूषण पहनना, पुष्प-माला धारण करना, पान खाना तथा मिस्सी लगाना।

2. बारह आभूषण–नूपुर, किंकिणी, चूड़ी, अँगूठी, कंकण, बिजायठ, हार, कंठश्री, बेसर, बिरिया, टीका, शीशफूल।

दोहा– सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृंद।
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद ॥11(ग)॥

शब्दार्थ–खगेस = पक्षिराज गरुड़। सुखकंद = 1. आनंद के मूल, 2. आनंद रूपी मेघ।

व्याख्या–काग भुशुण्डि कहते हैं–हे पक्षिराज! सुनिए। उस समय ब्रह्मा, शिव, मुनि वृंद तथा सभी देवता विमानों पर चढ़कर आनंद के मूल अथवा आनंद की वर्षा करने वाले श्रीराम का दर्शन करने आए।

दोहा– वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।
बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस ॥12(क)॥

शब्दार्थ–खगेस = गरुड़। सारद = शारदा, सरस्वती। श्रुति = वेद।

व्याख्या–काग भुशुण्डि कहते हैं कि हे गरुड़! श्री राम-जानकी के सिंहासनारूढ़ होने की वह शोभा, वह समाज और वह आनंद मुझसे कहते नहीं बनता। उसका वर्णन सरस्वती, शेषनाग और वेद करते हैं, किन्तु वस्तुतः उस रस (आनंद) को केवल शिव जी ही जानते हैं। तात्पर्य यह है कि वह शोभा, समाज और आनंद अलौकिक थे, अप्राकृत थे।

अलंकार– संबंधातिशयोक्ति।

दोहा– भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम ॥12(ख)॥
प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहूँ मरम कछु लगे करन गुन गान ॥12(ग)॥

शब्दार्थ–बंदी = चारण। मरम = मर्म, रहस्य।

व्याख्या–सभी देवताओं ने भिन्न-भिन्न प्रकार से श्रीराम की स्तुति की और अपने-अपने निवास को चले गए। तात्पर्य यह है कि इन्द्र, पितर, यक्षादि, महानाग, सिद्ध, किन्नर, मरुत, वसु आदि ने भिन्न-भिन्न प्रकार से स्तुति की है। तत्पश्चात् चारण के वेश में वेदगण श्रीराम के निकट आए। प्रभु श्रीराम सर्वज्ञ हैं, अतः वह वेदों को चारण वेश में भी पहचान गए तथा उनका स्वागत-सत्कार किया। इस रहस्य को वहाँ उपस्थित कोई व्यक्ति न जान सका। तब वेदों ने श्रीराम का गुणगान प्रारंभ किया।

नोट

विशेष–अध्यात्मरामायण में विभिन्न देवताओं द्वारा की गई स्तुति का विस्तृत विवरण मिलता है। वहाँ पितर, यक्ष, गंधर्व, महानाग, सिद्ध, किन्नर, मरुत, वसु, मुनि, गौ, गुह्यक, पक्षी, प्रजापति और अप्सराओं द्वारा श्रीराम की स्तुति का उल्लेख किया गया है। (युद्धकाण्ड, सर्ग 15, छंद सं. 65 से 74 तक)। तुलसीदास ने संक्षेप में ही इसका उल्लेख कर दिया है।

दोहा– सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार।
अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार ॥13(क)॥
बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर ॥13(ख)॥

शब्दार्थ–उदार = श्रेष्ठ, महान। आगार = लोक। बैनतेय = गरुड़।

व्याख्या–सभी लोगों के देखते-देखते वेदों ने श्रीराम की महान विनती की, फिर अंतर्धान (गायब) हो गए और ब्रह्मलोक चले गए। (ब्रह्मलोक ही वेदों का निवास-स्थान है)

काग भुशुण्डि कहते हैं कि हे विनता के पुत्र गरुड़ जी! सुनो। तत्पश्चात् जहाँ श्रीराम थे, वहाँ शिव जी आए और उनकी स्तुति की। उस समय उनकी वाणी प्रेमाधिक्य के कारण गद्‌गद थी और शरीर रोमांचित था।

विशेष–सामान्यतः वेद प्रकट होकर स्तुति नहीं करते। यहाँ वह सशरीर चारण रूप में आए और जब अंतर्धान हो गए तब लोगों ने जाना कि ये वेद थे।

दोहा– बार बार बर मागऊँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ॥14(क)॥
बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास ॥14(ख)॥

शब्दार्थ–श्रीरंग = श्री जानकी जी का रंजन करने वाले अर्थात् पति। अनपायनी = जिसका कभी अपाय (वियोग) न हो, अर्थात् हृदय में सदा एक रस रहने वाली।

व्याख्या–शिव जी ने कहा कि हे जानकी पति! मैं बार-बार आपसे यही वरदान माँगता हूँ कि आप मुझे अपने चरण-कमलों में सदा एक रस रहने वाली भक्ति तथा सत्संग प्रदान करें। इस प्रकार शिव जी राम के गुणों का वर्णन करके प्रसन्नतापूर्वक अपने निवास कैलाश पर्वत पर चले गए। ('हरषि' शब्द में यह व्यंजना है कि उन्हें वरदान मिल गया)। तत्पश्चात् श्रीराम ने सभी वानरों को सभी प्रकार के सुखदायी निवास-स्थान दिलवाए।

दोहा– ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति ॥15॥

व्याख्या–सभी वानर अलौकिक ब्रह्मानंद-मग्न हैं। सभी के हृदयों में प्रभु श्रीराम के चरणों के प्रति प्रेम है। वे प्रभु-प्रेम में इतने अधिक आनंदमग्न हैं कि उन्हें पता ही नहीं चला कि कब छः मास बीत गए।

दोहा– अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम ॥16॥

व्याख्या–अब आप सभी लोग अपने घरों को जाइए और अटल नियम के साथ मेरी उपासना करते रहिए। मुझे सर्वव्यापी तथा सबका हितैषी समझकर मुझसे अत्यंत प्रेम करते रहना।

दोहा– जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हियँ धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ ॥17(क)॥
तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रस बोरि ॥17(ख)॥

व्याख्या–तत्पश्चात् श्रीराम ने जामवंत, नीलादि सभी को स्वयं वस्त्राभूषण पहनाए। सुग्रीव और विभीषण को निष्कंटक राज्य दिया था, अतः भाइयों ने उनका सम्मान किया। अन्य लोगों को राज्य नहीं मिला था। अतः श्रीराम

नोट

ने उनके सम्मानार्थ स्वयं वस्त्राभूषण पहनाए। सभी वानरादि श्रीराम के रूप को हृदय में धारण करके उनके चरणों में प्रणाम करके विदा हो गए।

तत्पश्चात् अंगद ने उठकर प्रमाण करके सजल नेत्रों से हाथ जोड़कर अत्यंत विनम्र वाणी में, मानों प्रेमासक्त वाणी में कहा। अंगद के कथन में आर्त भाव की व्यंजना है।

दोहा– अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव ॥18(क)॥
निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥18(ख)॥

शब्दार्थ–करुना सींव = करुणा की सीमा, अत्यंत कृपालु। बसन = वस्त्र।

व्याख्या–अंगद के विनम्र वचनों को सुनकर अत्यंत कृपालु श्रीराम ने सजल नेत्रों से उसे उठाकर छाती से लगा लिया तथा अपने वक्षस्थल की माला, वस्त्र तथा मणिजटित आभूषण अंगद को पहना दिए और अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर उसे विदा कर दिया।

विशेष–1. 'निज उर माला' देने में व्यंजना यह है कि मेरी दी हुई माला को पहनने वाले का कोई अहित नहीं हो सकता। उन्होंने सुग्रीव को माला पहनाई थी, बालि ने उसकी उपेक्षा की, अतः वह श्रीराम के द्वारा मारा गया। अब यदि सुग्रीव ने अंगद को दी हुई माला की उपेक्षा की तो वह भी मारा जाएगा।

2. बहु प्रकार समुझाइ–(क) तुम्हें सेवक रूप में रखने से अपयश होगा, क्योंकि तुम्हें किष्किंधा का युवराज बना चुके हैं। (ख) युवराज-पद दिया था, वह वचन भी खाली जाएगा। (ग) माता दुःखी होगी। (घ) अपने वस्त्र-आभूषण देकर यह प्रमाणित किया कि किष्किंधा की प्रजा अब समझ जाएगी कि राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी अंगद ही है, सुग्रीव के पुत्र नहीं हो सकते।

दोहा– कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि ॥19(क)॥
अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत ॥19॥(ख)॥
कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि ॥19(ग)॥

शब्दार्थ–सुरति = स्मृति। कुलिसहु = वज्र से भी (वज्र या हीरा सर्वाधिक कठोर तथा बहुमूल्य रत्न होता है)। कुसुमहु = पुष्प से भी। खगेस = गरुड़।

व्याख्या–अंगद ने कहा कि हे हनुमान! मैं तुमसे करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि जाते ही श्रीराम से मेरा प्रणाम निवेदित कीजिएगा तथा बार-बार मेरा स्मरण दिलाते रहिएगा। यहाँ व्यंजना यह है कि शायद कभी वह द्रवित होकर अपनी शरण में वापस बुला लें। ऐसा कहकर बालिपुत्र अंगद चल पड़ा और हनुमान श्रीराम के पास वापस आ गए। हनुमान ने आते ही श्रीराम से अंगद की प्रीति का उल्लेख किया, जिसे सुनकर श्रीराम भी स्नेह-मग्न हो गए।

काग भुशुण्डि कहते हैं कि हे गरुड़! श्रीराम का चित्त वज्र से भी अधिक कठोर और पुष्प से भी अधिक कोमल है। ऐसे अद्‌भुत चित्त को समझना किसके लिए संभव है? अर्थात् कोई भी व्यक्ति उनके चित्त की दशा को समझने में समर्थ नहीं है।

विशेष–श्रीराम बालि के लिए बहुत कठोर थे, उसका वध कर दिया, किंतु उसकी विनती सुनकर इतने द्रवित हुए कि उसे अमरत्व प्रदान करने की घोषणा कर दी। इसी प्रकार अंगद को वापस भेजने में कठोरता दिखाई, किंतु हनुमान द्वारा उसकी विनती सुनकर करुणा से द्रवित भी हो गए।

अलंकार–अंतिम दोहा–प्रतीप, व्याघात तथा विरोधाभास।

तुलनीय– वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥

नोट

दोहा– बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ॥20॥

व्याख्या–सभी लोग वेदसम्मत वर्ण और आश्रम धर्म का पालन करते हैं तथा वेदमार्ग पर चलते हुए सदा सुखी रहते हैं। वे भय, शोक तथा रोग से मुक्त हैं।

विशेष–तुलसीदास निगमागम पद्धति के कट्टर अनुयायी थे। वर्ण और आश्रम व्यवस्था में उनका अटूट विश्वास था। वे मानते थे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व और शूद्र वेदों द्वारा निर्धारित व्यवस्था का अनुसरण करने से ही सुखी रह सकते हैं तथा चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) का पालन भी अनिवार्य है।

दोहा– राम राज नभगेसे सुनुं सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं ॥21॥

शब्दार्थ–नभगेस = गरुड़। सचराचर = जड़-चेतन।

व्याख्या–काग भुशुण्डि कहते हैं कि हे गरुड़! सुनो! राम के राज्य में जड़-चेतन किसी भी प्राणी को काल, कर्म, स्वभाव (व्यसनादि) और गुणों से उत्पन्न दुःख व्याप्त नहीं होता है।

चौ.– भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी ॥
सोउ महिमा खेगस जिन्ह जानी। फिरि ऐहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी ॥
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला ॥

शब्दार्थ–मेखला = करधनी। हीनता = तुच्छता। दमसीला = जितेन्द्रिय।

व्याख्या–जिस पृथ्वी के सातों समुद्र मेखला समान हैं अर्थात् जिसके चारों ओर सात समुद्र हैं, रघुवंशी अयोध्या-नरेश उसके ही सम्राट् हैं। तुलसीदास के अनुसार श्रीराम केवल अयोध्या के राजा नहीं हैं, अपितु समग्र पृथ्वी के सम्राट् हैं। समस्त पृथ्वी का नरेश होना भी उनकी प्रभुता का द्योतक नहीं है, क्योंकि उनके एक-एक रोम में अनेक ब्रह्मांड स्थित हैं। उनकी इस महिमा को समझ लेने पर, उन्हें केवल भूमंडल का सम्राट् बताना अत्यंत तुच्छता है। काग भुशुण्डि कहते हैं कि हे गरुड़! उनकी इस महिमा को जो जान लेता है वह प्रभु की सगुण लीला से प्रेम करने लगता है। उपर्युक्त महिमा को जानने का फल है–सगुण लीला में प्रीति। तुलसीदास कहते हैं कि यह मेरी ही मान्यता नहीं है अपितु जितेन्द्रिय महामुनि भी इसका उल्लेख करते हैं।

विशेष–1. सप्त दीप–जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर। 2. श्रीराम के रोम-रोम में अनेक ब्रह्मांड हैं, यह उनका ऐवर्श्य रूप है, सगुण लीला उनका माधुर्य रूप है। **अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, नारद,** सनकादि इन्द्रियजित मुनिश्रेष्ठ उनके ऐश्वर्य रूप से परिचित हैं, फिर भी उनकी सगुण लीला का गान करते हैं। केवल ऐश्वर्य का ज्ञान होने से भव से निष्कृति संभव नहीं है। मुमुक्ष के लिए माधुर्य अवतारी लीला के प्रति प्रेम आवश्यक है।

दोहा– दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस रामचंद्र के राज ॥22॥

व्याख्या–राजनीति के चार अंग माने गए हैं–साम, दान, दंड और भेद। राम के राज्य में कोई अपराधी नहीं था अतः किसी को दंड देने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। सामान्य जन भी दंड (डंडा) नहीं रखते थे, केवल साधुओं के हाथ में दंड (त्रिदंडी स्वामी आदि) अवश्य दिखाई पड़ता था। इसी प्रकार राम-राज्य में भेद नीति की भी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उनका कोई शत्रु ही नहीं था। भेद का स्वरूप नर्तक-नृत्य समाज में अवश्य दिखाई पड़ता था। विभिन्न वाद्यों की ध्वनियों में भेद रहता था तथा नृत्य-कला के भी अनेक भेद थे। उनके राज्य में किसी को जीतने की भी चर्चा नहीं सुनाई देती थी। केवल मन को जीतने (कामादि पर नियंत्रण रखने) की बात अवश्य होती थी। इस प्रकार राम-राज्य में केवल दो नीतियों–साम, दान का ही प्रयोग होता था।

अलंकार–परिसंख्या-लक्षण–जहाँ किसी वस्तु का निषेध करके पुनः उसकी उपस्थिति दिखाई जाए।

नोट

दोहा– बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तब जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज ॥23॥

शब्दार्थ–बिधु = चंद्रमा। मयूखन्हि = किरणों से। बारिद = मेघ।

व्याख्या–श्री रामचंद्र के राज्य में पृथ्वी चंद्रमा की रश्मियों से परिपूर्ण रहती है। सूर्य आवश्यकतानुसार ही ताप विकीर्ण करता है और मेघ माँगने पर जल प्रदान करते हैं।

दोहा– जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ ॥24॥

व्याख्या–जिनकी कृपा-कटाक्ष की आकांक्षा देवता करते रहते हैं, सीता जी उनकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करती हैं। उनकी दृष्टि सदैव पति पर ही रहती है। यद्यपि श्री (लक्ष्मी) कहीं स्थिर नहीं रहतीं, किंतु सीता जी अपनी इस चंचलावृत्ति को छोड़कर, अपने स्वभाव को छोड़कर सदैव श्रीराम के चरण-कमलों से प्रेम करती रहती हैं। अपने ऐश्वर्य-भाव को छिपाकर पति-सेवा में निरत रहती हैं।

दोहा– ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार ॥25॥

शब्दार्थ–गिरा = वाणी। गोतीत = इन्द्रियों से परे। पार=परे।

व्याख्या–जो ब्रह्म वाणी और इन्द्रियों से परे है; अजन्मा है; माया, मन गुणों (सत, रज, तम) से परे है; सत् चित् और आनंद का समूह है; वही ब्रह्म उदार नर लीला कर रहा है।

विशेष–1. गोतीत–उसका कोई रूप नहीं है, गंध नहीं है, शब्द नहीं है, रस नहीं है, शरीर नहीं है, अतः वह क्रमशः नेत्रों, नासिका, कान, जिह्वा तथा स्पर्श द्वारा नहीं जाना जा सकता–

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा। (कठ-2/3/12)

2. गोस्वामी जी जब-जब नर-लीला का विस्तृत वर्णन करते हैं, तब-तब पाठकों को स्मरण दिला देते हैं कि श्रीराम सामान्य नर नहीं हैं, परब्रह्म ही नर-लीला कर रहा है।

दोहा– अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज ॥26॥

व्याख्या–जिस अयोध्या के श्रीराम स्वयं सम्राट् हैं, वहाँ के निवासियों के सुख सम्पत्ति और सामाजिक स्थिति का वर्णन सहस्त्रों शेष नाग भी नहीं कर सकते।

दोहा– चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ।
राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ ॥27॥

शब्दार्थ–चित्रसाला = रंग-बिरंगे सजावट का स्थान। चारु = सुंदर।

व्याख्या–प्रत्येक आवास में सुंदर चित्रशाला हैं, जिनमें श्रीराम का चरित्र लिखा गया है। उनकी सजावट इतनी सुंदर है, जिसे देखकर मुनियों का भी मन मुग्ध हो जाता है।

चौ.– सुमन बाटिका सबहिं लगाई। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं ॥
लता ललित बहु जाति सुहाई। फूलहिं सदा बसंत कि नाई ॥
गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिधि सदा बह सुंदर ॥
नाना खग बालकन्हि जिआए। बोलत मधुर उड़ात सुहाए ॥

शब्दार्थ–मधुकर = भ्रमर। मुखर = शब्द। मारुत = पवन। त्रिबिध = शीतल, मंद, सुगंध। खग = पक्षी। जिआए = जिलाया, पालन किया।

व्याख्या–सभी अवधवासियों ने सुंदर उपवन लगा रखा है। ये वाटिकाएँ बहुत प्रयत्नपूर्वक लगाई गई हैं। उनके साथ ही अनेक प्रकार की सुंदर लताएँ भी सुशोभित हैं, जो सदैव वसंत ऋतु के समान पुष्पित रहती हैं। उन पर भ्रमर मधुर शब्दों से गुंजार करते रहते हैं। सुंदर, शीतल, मंद, सुगंध प्रवाहित होता रहता है। बच्चों ने अनेक प्रकार के पक्षियों को पाल रखा है, जिनकी बोली बहुत ही मधुर है तथा वे उड़ते समय बहुत मनोहर प्रतीत होते हैं।

नोट

दोहा– रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रही अवध सब छाइ ॥29॥

शब्दार्थ–रमानाथ = लक्ष्मीपति। अनिमादिक = अष्ट सिद्धियाँ–अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व।

व्याख्या–लक्ष्मीपति ही जिस नगर के राजा हों, उसकी महिमा का वर्णन कैसे किया जा सकता है? ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वहाँ अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ तथा समस्त प्रकार के सुख और वैभव छावनी डालकर बस गए हों।

दोहा– एहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान।
सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान ॥30॥

व्याख्या–इस प्रकार नगर के सभी स्त्री-पुरुष राम के गुणों का गान करते हैं। दयानिधि श्रीराम भी सभी लोगों पर सदैव प्रसन्न रहते हैं।

दोहा– यह प्रताप रबि जाकें उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास ॥31॥

व्याख्या–यह प्रताप रूपी सूर्य जिसके हृदय में जब प्रकाशित होता है, तब जिनका बाद में वर्णन किया गया (अर्थात् धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सुख, संतोष, विवेक, वैराग्य आदि उनकी वृद्धि होती है और जिनका वर्णन पहले किया गया। (अविद्या, पाप, काम, क्रोध, मत्सरादि) उनका विनाश हो जाता है।

विशेष–यहाँ से राम-राज्य का पूर्व चरित समाप्त हो गया, अब आगे से उत्तरचरित का कथन होगा।

अलंकार–सांगरूपक।

दोहा– देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ॥32॥

व्याख्या–श्रीराम ने जब सनकादि मुनियों को आते देखा तो प्रसन्नतापूर्वक उनको प्रणाम किया। फिर उनका स्वागत-सत्कार करके पीत-वस्त्र बैठने के लिए दिया।

दोहा– संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ ॥33॥

शब्दार्थ–अपबर्ग = मोक्ष। कोबिद = विद्वान्। श्रुति = वेद।

व्याख्या– संतों का समागम मोक्ष–प्रदाता है और कामीजनों का संग सांसारिक प्रपंच की ओर ले जाता है। संतों, कवियों, विद्वानों, वेदों, पुराणों तथा उत्तम ग्रंथों का यही कथन है।

अलंकार–शब्द प्रमाण।

तुलनीय–बिनु सत्संग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥

दोहा– परमानंद कृपायतन मनि परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ॥34॥

शब्दार्थ–कृपायतन = कृपा के धाम। अनपायनी = निश्चल, अविचल।

व्याख्या–हे प्रभु! आप परमानंद स्वरूप हैं–'आनंदो ब्रह्मोति व्याजानात्' (तैत्त.3/6), कृपा के आगार हैं तथा मन से पूर्ण काम हैं अर्थात् आप में कोई इच्छा-कामना नहीं है। अतः हे प्रभु! हम चारों भाइयों को अविचल प्रेमाभक्ति प्रदान कीजिए।

दोहा– बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ।
ब्रह्म भवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ ॥35॥

व्याख्या–इस प्रकार श्रीराम की बार-बार स्तुति करके तथा मनोवांछित वरदान प्राप्त करके सनकादि चारों भाई श्रीराम को प्रणाम करके ब्रह्मलोक चले गए।

नोट

दोहा– नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह ॥36॥

व्याख्या–भरत जी ने कहा कि हे स्वामी! मुझे न कोई संदेह है, न शोक है और न मोह है। हे कृपानिधि! यह केवल आपके ही अनुग्रह का प्रताप है।

विशेष–श्रीराम ने कह दिया था कि मुझमें और भरत में कोई अंतर नहीं है। भक्त और भगवान् की इस अभेदता के कारण भरत भी पूर्ण ज्ञानी हैं। अतः उनमें शोक-मोहादि कुछ भी नहीं है–'तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।' (यजुर्वेदसंहिता, 40/3)

दोहा– ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड ॥37॥

शब्दार्थ–जग बल्लभ = संसार को प्रिय। श्रीखंड = चंदन।

व्याख्या–परिणामस्वरूप चंदन को देवताओं के सिर पर चढ़ाया जाता है और वह संसार को प्रिय होता है। कुठार अपने दुष्ट आचरण के कारण अग्नि में जलाया जाता है, फिर घन पर पीटा जाता है। इस प्रकार उसे दंडित किया जाता है।

अलंकार–दृष्टांत तथा सम।

दोहा– निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज ॥38॥

शब्दार्थ–उभय = दोनों। सुख = आनंदमग्न।

व्याख्या–जिनके लिए निंदा-प्रशंसा एक समान है, जो मेरे चरण-कमलों के प्रति ममत्व-भाव रखते हैं, सद्गुणों के आगार हैं, सदैव आनंदमग्न रहते हैं, ऐसे संत मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं।

दोहा– पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद ॥39॥

शब्दार्थ–पर दार = दूसरे की स्त्री। रत = प्रेमी। अपबाद = निंदा। पाँवर = नीच। मनुजाद = राक्षस।

व्याख्या–असंत सदैव दूसरों से द्रोह (बैर) रखते हैं, दूसरे की स्त्री और पराए धन को हड़पने का प्रयास करते हैं तथा परनिंदा में ही दत्तचित्त रहते हैं। ऐसे व्यक्ति नीच और पापी होते हैं तथा मनुष्य रूप में राक्षस ही होते हैं।

दोहा– ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ॥40॥

व्याख्या–ऐसे दुष्ट और नीच व्यक्ति सत्युग तथा त्रेता में नहीं होते हैं, द्वापर में थोड़ी संख्या में पाए जाते हैं, किंतु कलियुग में झुंड के झुंड मिल जाएँगे।

दोहा– सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक ॥41॥

शब्दार्थ–गुन = लाभ। अविवेक = अज्ञान।

व्याख्या–श्रीराम ने कहा कि हे भ्राता! मायाजन्य गुण और दोष असंख्य हैं। लाभ इसी में है कि दोनों पर दृष्टिपात न किया जाए। उन पर विचार करना एक प्रकार का अज्ञान ही है।

विशेष–गुण विद्या माया कृत हैं और अवगुण अविद्या माया की उपज है–हैं दोनों मायाकृत ही, अतः तत्वदृष्टि यही है कि प्राणी प्रभु भक्ति करे, गुण-दोषों के चक्कर में न पड़े। गुण-दोष देखने वाली वृत्ति दृष्टि का दोष है। इसी से इसे अविवेक कहा है।

अलंकार–गुन गुन–यमक।

दोहा– जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान ॥42॥

नोट

व्याख्या–सनकादि मुनि जो जीवनमुक्त हैं तथा ब्रह्म परायण हैं, वे भी ध्यान त्यागकर श्रीराम का चरित-श्रवण करते हैं। ऐसी आनंदमयी प्रभु-लीला से जो प्रेम नहीं करते, उनका हृदय प्रस्तर-तुल्य है।

दोहा– सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ ॥43॥

शब्दार्थ–परत्र (पर + त्रत) = परलोक।

व्याख्या–जो इस शरीर से पुरुषार्थ-चतुष्ट्य-प्राप्ति की चेष्टा नहीं करता, वह परलोक (अथवा इस लोक और परलोक) में दुःख पाता है, तथा काल, कर्म और ईश्वर को मिथ्या दोष लगाकर सिर धुन-धुन कर पछताता है। कुछ लोग काल को दोष लगाते हैं कि काल अच्छा नहीं था, समय का फेर है; कुछ लोग कहते हैं कि हमारा प्रारब्ध (संचित कर्म) अच्छा नहीं था और कुछ लोग ईश्वर को दोष देते हैं कि उसकी यही इच्छा थी। ज्योतिषी काल को, मीमांसक कर्म को और नैयायिक ईश्वर को दोषी बताते हैं। वे उपर्युक्त तीनों को मिथ्या दोष लगाते हैं; वे यह भूल जाते हैं कि जैसा कर्म किया वैसा फल पाया।

दोहा– जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ॥44॥

शब्दार्थ–समाज = सामग्री, साधन। कृतनिंदक = कृतघ्न। आत्माहन = आत्मघाती।

व्याख्या–जो व्यक्ति ऐसे साधन पाकर भी संसार-सागर से पार जाने का प्रयास नहीं करता, वह कृतघ्न और मूर्ख है तथा उसे आत्मघाती अथवा आत्महत्या करने वाले की गति प्राप्त होती है।

तुलनीय–श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है–

नृदेहमाधं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम्।
मयानुकूलेन नमस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥ (श्रीमद्भागवत–11/20/17)

दोहा– औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना न भगति न पावइ मोरि ॥45॥

व्याख्या–भगवत्-प्राप्ति के लिए प्रथम शर्त है–सत्संग। इसका उल्लेख किया जा चुका है। सत्संग के अतिरिक्त राम-भक्ति की सुलभता की एक अन्य शर्त भी है, और वह है–शिव की भक्ति। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए श्रीराम कहते हैं कि मैं हाथ जोड़कर एक रहस्य का उल्लेख और देना चाहता हूँ। शिव की उपासना के बिना कोई भी व्यक्ति मेरी भक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता।

विशेष–यहाँ शिव-विष्णु की अद्वैतता का प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः मध्यकाल में शैवों और वैष्णवों में काफी विरोध बढ़ गया था। प्रायः दोनों में संघर्ष होते रहते थे। तुलसीदास ने इस विवाद को समाप्त करने के लिए शिव-विष्णु में अविरोध-भाव का प्रतिपादन किया है। राम-कथा के प्रथम वक्ता शिव हैं ही, मानस में अनेक स्थानों पर दोनों की अभिन्नता की, चर्चा की गई है, यथा–

1. बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू ॥
   सिवपद कमल जिन्हहिं रति नाहीं। रामहिं ते सपनेहु न सोहाहीं ॥ (उत्तरकाण्ड-104)
2. इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिय न कोटि जोग जप साधे।
   जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥ (उत्तरकाण्ड-138/7)
3. संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥ (6/2/8)
4. सिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥

दोहा– मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह ॥46॥

शब्दार्थ–गुन ग्राम = गुणों का समूह। रत = ध्यानमग्न। परानंद = वह आनंद जो सबसे परे है अर्थात् पूर्णानंद।

नोट

व्याख्या–जो व्यक्ति मेरे गुणों तथा नाम-जप में सदा लीन रहता है और ममत्व अहंकार तथा मोह का पूर्ण रूपेण परित्याग कर चुका है, वही पूर्णानंद का अनुभव कर सकता है। वह ऐसा सुख है जो अनिर्वचनीय है, अर्थात् उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दोहा– उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप ॥47॥

व्याख्या–शिव जी कहते हैं कि हे पार्वती! अवध के स्त्री-पुरुषों का जीवन कृतार्थ है, धन्य है क्योंकि उन्हें श्रीराम की भक्ति सुलभ हो गई है, जो मोक्ष से बढ़कर है। अवधवासियों के कृतार्थ होने का वास्तविक कारण यह है कि जो ब्रह्म सत्, चित् और आनंद का समूह है, वही अवध का राजा है।

दोहा– तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन ॥48॥

व्याख्या–तब मैंने हृदय में विचार किया कि जिस परमात्मा की प्राप्ति के लिए योग, यज्ञ, जप, दान आदि कृत्य किए जाते हैं, मुझे उसका सान्निध्य-लाभ होगा। अतः इस पौरोहित्य कर्म के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है।

दोहा– नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ॥49॥

व्याख्या–इसी प्रेमाभक्ति की याचना करते हुए वशिष्ठ मुनि श्रीराम से कहते हैं कि हे नाथ! मैं आपसे एक ही वरदान माँगता हूँ। हे राम! आप कृपा करके ऐसा वरदान दीजिए जिससे जन्म-जन्मांतर में आपके चरण-कमलों के प्रति स्नेह कभी कम न हो अर्थात् आपके चरणों में अविचल प्रीति सदैव बनी रहे।

दोहा– प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम ॥51॥

व्याख्या–इस प्रकार नारद मुनि श्रीराम के गुण-समूह का प्रेम सहित गान करके तथा उनके सौंदर्य-सागर को हृदय में धारण करके ब्रह्म लोक (जहाँ ब्रह्मा का निवास है) चले गए।

विशेष–पार्वती का अंतिम प्रश्न था–

बहुरि कहहु करुयातन कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजासहित रघुवंसमनि किमि गवने निज धाम ॥

उपर्युक्त पंक्तियों में इसी प्रश्न का उत्तर है। कुछ विद्वानों के मत से वह सभी भाइयों तथा प्रजासहित परम दिव्य विमानों पर चढ़कर परविभूति को चले गए। अन्य विद्वानों के अनुसार अयोध्या ही प्रभु का नित्यधाम है। अयोध्या में ही उन्होंने नर लीला की और अंततः वह अव्यक्त रूप से वहीं निवास करने लगे। वह अयोध्या को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं रहते हैं।

दोहा– तुम्हरी कृपाँ कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह ॥52(क)॥
नाथ तवानन ससि स्त्रवत कथा सुधा रघुबीर।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर ॥52(ख)॥

शब्दार्थ–कृपायतन = कृपा के आगार। कृतकृत्य = कृतार्थ। चिदानंद = सत्, चित्, आनंद स्वरूप। संदोह = पूर्ण। श्रवन पुटन्हि = कर्ण छिद्र।

व्याख्या–पार्वती कहती हैं कि हे कृपासिंधु। आपकी कृपा से मैं कृतार्थ हो गई। अब मेरा मोह दूर हो गया। हे प्रभु! अब मुझे सद्, चित्, आनंद के समूह श्रीराम के प्रताप का पूर्ण ज्ञान हो गया। हे नाथ! हे मतिधीर! आपके मुख रूपी चंद्रमा से श्रीराम की कथा रूपी अमृत की वर्षा मेरे कर्ण छिद्र रूपी दोनाओं से मन पीकर तृप्त नहीं होता है।

अलंकार–परंपरित रूपक।

दोहा– राम परायन ग्यान रत गुनागार मति धीर।
नाथ कहहु केहि कारन पायउ काक सरीर ॥54॥

नोट

व्याख्या–हे नाथ! मुझे यह बताइए कि राम का सच्चा भक्त, ज्ञान में तत्पर, गुणों का आगार, धीर बुद्धिवाला प्राणी किस कारण से काग-शरीर को पाया? अर्थात् सर्वगुणसंपन्न प्राणी काग (कौआ) कैसे हो गया?

दोहा– ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहउँ सुनहु उमा मन लाइ ॥55॥

व्याख्या–इसी प्रकार के प्रश्न गरुड़ ने भी काग के पास जाकर किए थे। मैं उन सभी प्रश्नों का उत्तर दूँगा। हे उमा! मन लगाकर सुनो।

दोहा– सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहुरंग।
कूजत कल रव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग ॥56॥

व्याख्या–उस सरोवर का जल अत्यंत शीतल और निर्मल था तथा उस पर विविध रंगों के अत्यधिक कमल विकसित थे। उस पर हंसों का समूह मधुर ध्वनि से कूजन कर रहा था तथा सुंदर भ्रमर गुंजार कर रहे थे।

दोहा– तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास ॥57॥

व्याख्या–तब मैंने हंस का शरीर धारण करके वहाँ निवास किया और श्रीराम का गुणगान आदरपूर्वक सुनकर पुनः कैलाश पर्वत पर आ गया।

दोहा– भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम ॥58॥

शब्दार्थ–भव बंधन = सांसारिक बंधन। खर्ब = तुच्छ।

व्याख्या–जिस ईश्वर का नाम लेकर मनुष्य सांसारिक बंधन से मुक्त हो जाते हैं, उसे तुच्छ राक्षस ने नागपाश में बाँध लिया। यह कैसे संभव हुआ।

दोहा– अस कहि चले देवरिषि करत राम गुन गान।
हरि माया बल बरनत पुनि पुनि परम सुजान ॥59॥

व्याख्या–इतना कहने पर दो घड़ी बीत गई। अतः नारद श्रीराम का गुणगान करते हुए गरुड़ लोक से चल दिए। परम चतुर नारद बारंबार प्रभु की माया की शक्ति का वर्णन करते हुऐ चले जा रहे हैं। वह माया से भयभीत हैं। अतः बार-बार उसका गुणगान कर रहे हैं।

विशेष–नारद ने ही गरुड़ को श्रीराम का नागपाश छिन्न करने के लिए भेजा था। अतः वह समाचार जानने के लिए तब तक गरुड़ लोक में ही रुके रहे, जब तक गरुड़ वापस नहीं आ गया।

दोहा– परमातुर बिहंगपति आयउ तब मो पास।
जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास ॥60॥

व्याख्या–तब परम व्याकुल गरुड़ मेरे पास आया। मैं उस समय कुबेर के आवास (अलकापुरी) को जा रहा था और तुम (उमा) कैलास पर्वत पर थीं।

दोहा– बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥61॥

व्याख्या–बिना सत्संग के हरिकथा सुनने को नहीं मिलती, बिना हरिकथा के श्रवण से मोह-भंग नहीं हो सकता और जब तक मोह नहीं समाप्त होता, तब तक श्रीराम के चरणों में अविचल प्रेम नहीं हो सकता। यहाँ क्रमशः यह बताया गया है कि सत्संग से हरिकथा सुनने को मिलती है, हरिकथा से मोह-निवृत्ति होती है और मोह-निवृत्ति से श्रीराम के चरणों में अनुराग उत्पन्न होता है।

अलंकार–कारणामाला।

दोहा– ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर पावँर करहिं गुमान ॥62(क)॥

नोट

सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन।
अस जियँ जानि भजहिं मुनि माया पति भगवान ॥62(ख)॥

शब्दार्थ–जान (यान) = सवारी। पाँवर = पामर, तुच्छ। गुमान = अहंकार। बपुरा = बेचारा। आन = अन्य।

व्याख्या–गरुड़ ज्ञानी और भक्तों में शिरोमणि है तथा त्रैलोक्य स्वामी विष्णु का वाहन है अर्थात् सदैव उनके निकट रहता है। जब ऐसे सद्गुण संपन्न गरुड़ को माया ने अपने वश में कर लिया, तब तुच्छ व्यक्ति व्यर्थ ही अहंकार करते हैं कि उन्होंने माया को जीत लिया। माया ऐसी प्रबल है कि वह शिव और ब्रह्मा तक को मोहित कर लेती है, फिर बेचारे अन्य प्राणियों को क्या कहा जाए? ऐसा समझ कर मुनिजन माया के स्वामी भगवान् की उपासना में निरत रहते हैं।

अलंकार–दूसरी पंक्ति – काव्यार्थापत्ति।

दोहा– नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज।
आयसु देहु से करौं अब प्रभु आयहु केहि काज ॥63(क)॥
सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस ॥63(ख)॥

व्याख्या–काग ने कहा कि हे नाथ! आज मैं आपके दर्शन से कृतार्थ (धन्य) हुआ। सेवक के घर स्वामी का आना उसे कृतार्थ करना है–'सेवक सदन स्वामि आगमनू, मंगल मूल अमंगल दमनू।' काग ने पुनः कहा कि हे प्रभु! आप किस कार्यवश आए हैं। आप आज्ञा कीजिए, मैं तत्काल वह कार्य संपादित करूँ। तब गरुड़ ने मधुर वाणी में कहा कि आप सदैव कृतार्थ की मूर्ति हैं, अर्थात् आपको देखकर दूसरे लोग कृतार्थ होते हैं। आपकी प्रशंसा स्वयं शिव जी ने की। शिव जी सामान्य जीवों की स्तुति नहीं कर सकते। उनका प्रशंसा करना ही आपके कृतार्थ रूप का प्रमाण है।

अलंकार–प्रथम दोहा–चित्रोत्तर तथा अर्थांतरन्यास।

दोहा– बालचरित कहि बिबिधि बिधि मन महँ परमक उछाह।
रिषि आगवन कहेसि पुनि श्रीरघुबीर बिबाह ॥64॥

व्याख्या–शिशु रूप वर्णन (5 वर्ष की अवस्था) करने के पश्चात् उन्होंने श्रीराम की बाललीला (14 वर्ष तक की) का उत्साहपूर्वक वर्णन किया। इसके पश्चात् विश्वामित्र के आगमन तथा श्रीराम (अथवा सीता और राम) के विवाह का वर्णन किया। यह बालकाण्ड तक की कथा है।

दोहा– कहि बिराध बध जेहि बिधि देह तजी सरभंग।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सतसंग ॥65॥

व्याख्या–महर्षि अत्रि से विदा होकर श्रीराम दंडकारण्य चले। उनकी पहली भेंट बिराध नामक राक्षस से हुई। प्रभु ने तत्काल उसका वध कर दिया। तत्पश्चात् शरभंग ऋषि से भेंट हुई। उन्होंने प्रभु-दर्शन के बिना ब्रह्मलोक जाना स्वीकार न किया था। श्रीराम का दर्शन होते ही उन्होंने योगाग्नि से शरीर भस्म कर लिया। इसके पश्चात् अगस्त्य के शिष्य सुतीक्ष्ण ऋषि और प्रभु के मिलन तथा सुतीक्ष्ण के प्रेम का वर्णन किया। तत्पश्चात् अगस्त्य ऋषि से मिलन की कथा कही।

विशेष–श्रीराम दंडकारण्य में अनेक ऋषि-मुनियों से मिले थे, किंतु काग ने केवल चार ऋषियों–अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्य–से मिलन का उल्लेख किया। कारण यह है कि अत्रि से मिलन महत्त्वपूर्ण है; शरभंग का देह-त्याग के कारण महत्त्व है; सुतीक्ष्ण की प्रीति महिमामयी है और अगस्त्य ऐसे ऋषि हैं, जिन्होंने समुद्र का शोषण किया था, विंध्याचल को बढ़ने से रोक दिया था और श्रीराम को राक्षसों के वध का उपाय बताया था। उनके कहने से ही राम पंचवटी में रुके थे।

दोहा– प्रभु नारद संबाद कहि मारुति मिलन प्रसंग।
पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग ॥66(क)॥
कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रबरषन बास।
बरनन बर्षा सरद अरु राम रोष कपि त्रास ॥66(ख)॥

नोट

व्याख्या–शबरी के आश्रम से श्रीराम सुंदर वन, सरोवर आदि देखते हुए बिरहावस्था में एक वट-वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। तब नारद ने सोचा कि चलकर प्रभु को इस दशा में देखना चाहिए। यह विचार कर नारद प्रभु राम के पास गए। उस समय दोनों में जो संवाद हुआ था, काग ने वह सब गरुड़ को सुनाया। बालि से भयभीत सुग्रीव मुनियों सहित ऋष्यमूक पर्वत पर रहता था। एक दिन उसने दो वीरों (राम-लक्ष्मण) को अपनी ओर आते देखा, अतः उसने हनुमान को उनके पास पता लगाने के लिए भेजा। हनुमान राम के पास बटु रूप में गए। दोनों का परिचय हुआ। काग ने यह वृत्तांत भी सुनाया। श्रीराम हनुमान के साथ सुग्रीव के पास गए, दोनों में मैत्री हुई। सुग्रीव ने अपनी व्यथा सुनाई। श्रीराम ने बालि का वध किया। सुग्रीव किष्किंधा के राजा हुए। काग ने यह घटना भी बताई। इसी समय वर्षा ऋतु आ गई थी। अतः श्रीराम व लक्ष्मण प्रवर्षन पर्वत पर कई मास रुके। सुग्रीव ने सीता का पता लगाने का वादा किया था, किंतु वह राजमद और सुरा-सुंदरी में इतना डूब गया था कि राम को दिए गए वचनों को भूल गया। इस पर राम क्षुब्ध हुए और कहा कि 'जेहि सायक मारा मैं बाली, तेहि सर हतौं मूढ़ कँहु काली।' राम के निर्देशानुसार लक्ष्मण किष्किंधापुरी गए और अपना क्रोध प्रकट किया। इससे सुग्रीव समेत सभी वानर भयग्रस्त हो गए। सुग्रीव तत्काल राम की शरण में आया और सीता का पता लगाने के लिए चारों दिशाओं में वानरों को भेज दिया। काग ने इस पूरे वृत्तांत का उल्लेख किया।

विशेष–श्रीराम-नारद संवाद के बाद अरण्यकाण्ड की समाप्ति हुई और किष्किंधाकाण्ड प्रारंभ हो गया।

दोहा– सेतु बाँधि कपि सेन जिमि उतरी सागर पार।
गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार ॥67(क)॥
निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिधि प्रकार।
कुंभकरन घननाद का बल पौरुष संघार ॥67(ख)॥

शब्दार्थ–बसीठी = दौत्यकर्म। कीस = बानर। संघार = वध।

व्याख्या–समुद्र पर जिस प्रकार सेतु-बंधन हुआ तथा सेना ने समुद्र पार किया, श्रेष्ठ वीर अंगद जिस प्रकार दौत्यकर्म के लिए रावण के दरबार में गया, वे सारे वृत्तांत भी काग ने सुनाए। अंगद ने रावण-दरबार में पहुँचने के पूर्व ही उसके एक पुत्र का वध कर दिया था तथा रावण-सभा में कोई भी राक्षस उसके पैर को नहीं उठा सका था, इसीलिए अंगद को 'वीरवर' कहा गया है।

अंगद के वापस आने पर युद्ध प्रारंभ हो गया। सर्वप्रथम राक्षसों और वानरों में विविध प्रकार का युद्ध हुआ, काग ने वह सारा वृत्तांत सुनाया। तत्पश्चात् मेघनाद-लक्ष्मण युद्ध तथा कुंभकर्ण-श्रीराम युद्ध, लक्ष्मण के द्वारा मेघनाद-वध तथा श्रीराम के द्वारा कुंभकर्ण-वध का वृत्तांत कहा।

दोहा– सुनि बिहंगपति बानी सहित बिनय अनुराग।
पुलक गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग ॥69(क)॥
श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास ॥69(ख)॥

शब्दार्थ–गात = शरीर। समुति = सद्बुद्धिसंपन्न। सुसील = सदाचारी। सुचि = पवित्र। रसिक = प्रेमी। गोप्यमति = रहस्यपूर्ण, छिपाने वाली।

व्याख्या–गरुड़ की विनम्र तथा प्रेमपूर्ण वाणी सुनकर काग भुशुण्डि का शरीर रोमांचित हो गया, नेत्रों में अश्रु आ गए तथा वह मन में बहुत प्रसन्न हुआ। शिव जी कहते हैं कि यदि श्रोता सद्बुद्धिसंपन्न, सदाचारी, पवित्र, कथाप्रेमी तथा भगवद्-भक्त हो तो संतजन अत्यंत गोपनीय रहस्य को भी प्रकाशित कर देते हैं।

दोहा– ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार ॥70(क)॥
श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ॥70(ख)॥

नोट

शब्दार्थ–सूर (शूर) = वीर। कोविद = विद्वान्। बिडंबना = हँसी। श्री मद = प्रभुता, लक्ष्मी अथवा धन का अहंकार। बक्र = टेढ़ा।

व्याख्या–बड़े-बड़े ज्ञानी, तपस्वी, वीर, कवि, विद्वान् आदि गुणों से संपन्न व्यक्तियों में ऐसा कौन है जो लोभ के वशीभूत होकर हँसी का पात्र न बन गया हो? ऐसा कौन धन-संपन्न व्यक्ति है जो अहंकार के वशीभूत न हुआ हो? राजमद ने किसे बधिर नहीं बनाया–'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं?' संसार में ऐसा कौन प्राणी है जिसे सुंदर स्त्री के मृग के समान नेत्र रूपी बाणों ने घायल न कर दिया हो? तात्पर्य यह है कि संसार के सभी प्राणी लोभ, धनमद, वैभव तथा काम के वशीभूत हो ही जाते हैं।

अलंकार–वक्रोक्ति।

दोहा– ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड ॥71(क)॥
सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि ॥71(ख)॥

शब्दार्थ–कटक = सेना। भट = योद्धा। सोपि (सोऽपि) = वह भी। पद रोपि = प्रतिज्ञापूर्णक।

व्याख्या–माया की बलिष्ठ सेना पूरे संसार में व्याप्त है। काम, क्रोध, लोभ आदि तथा अहंकार, कपट, पाषंड उसके सेनापति हैं। यह माया श्रीराम की दासी है, वह भी ज्ञान के प्रकाश होने पर मिथ्या प्रतीत होती है। मिथ्या होते हुए भी यह माया श्रीराम के अनुग्रह के बिना छूटती नहीं है। यह मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ।

विशेष–माया का तात्पर्य है–जो नहीं है, भ्रांतिवश उसे समझना। (मा = नहीं + या = जो = जो नहीं है।) जैसे भ्रमवश अंधकार में रज्जु को सर्प समझ लेते हैं, किंतु प्रकाश होने पर वास्तविकता का ज्ञान होता है, उसी प्रकार जीव भ्रमवश असत्य को सत्य समझ लेता है। यह रघुबीर की दासी है, अतः इसमें सत्य की प्रतीति होती है, किंतु जब उनकी कृपा रूपी प्रकाश की प्राप्ति हो जाती है, तब वह असत्य प्रतीत होने लगती है।

अलंकार–तीसरी पंक्ति–विरोधाभास।

तुलनीय– 1. जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया।

× × × ×

जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥ (बाल.–117)

2. विनयपत्रिका में भी कहा गया है–

माधव असि तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया।
सुनिय गुनिय समुधिय समुझाइय दस हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुन भव बिपति सतावै। (पद–116)

दोहा– काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप ॥73(क)॥
निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥73(ख)॥

शब्दार्थ–रत = आसक्त। तम = अंधकार। तमकूप = अंधकूप, अंधा कुआँ।

व्याख्या–जो व्यक्ति काम, क्रोध, अहंकार, लोभ में आसक्त हैं और दुःखदायी गृहस्थी के कार्यों में लिप्त हैं, वस्तुतः वे अंधकूप में पड़े हैं। ऐसे लोग प्रभु श्रीराम के मर्म को समझ ही नहीं सकते। जिस प्रकार अंधे कुएँ में पड़ा व्यक्ति कुछ भी देख नहीं पाता, उसी प्रकार ब्रह्म के दो रूप हैं–निर्गुण-सगुण। निर्गुण रूप को समझना सरल है, किंतु सगुण को कोई समझ नहीं पाता। सगुण रूप के चरित दो प्रकार के होते हैं–कुछ सुगम और कुछ अगम, जिन्हें सुनकर मुनिजनों का भी मन भ्रम में पड़ जाता है।

नोट

दोहा– जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर ॥74(क)॥
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कर न भजहु भ्रम त्यागि ॥74(ख)॥

व्याख्या–यद्यपि फोड़े को चिराते समय शिशु को बहुत कष्ट होता है और वह व्याकुल होकर रोता है। किंतु माता जानती है कि फोड़े को चिराने से ही बच्चे का क्लेश दूर होगा। अतः उस रोग के नाश के लिए माता बच्चे की आपरेशनजन्य पीड़ा की परवाह नहीं करती है। उसी प्रकार प्रभु अपने भक्त के अभिमान को उसके हित के लिए निर्मम होकर नष्ट कर देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे भक्तवत्सल समस्त भ्रम त्याग कर प्रभु की उपासना क्यों नहीं करते?

दोहा– लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ ॥75(क)॥
एक बार अतिसय सब चरित किए रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर ॥75(ख)॥

शब्दार्थ–अजिर = आँगन। अतिसय (अतिशय) = अत्यधिक, अद्‌भुत।

व्याख्या–शिशुराम हाथ में पक्वान्न लेकर आँगन में इधर-उधर घूमते हैं, काग भी उन्हीं के साथ-साथ उड़ता रहता है और आँगन में उनकी जो जूठन गिरती है, काग उसे उठाकर खा लेता है। एक बार श्रीराम ने अत्यंत अद्‌भुत लीला की। उसका स्मरण करते ही काग का शरीर रोमांचित हो गया।

दोहा– रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गँभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषन चीर ॥76॥

शब्दार्थ–आयत = विशाल। भ्राजत = सुशोभित। चीर = वस्त्र।

व्याख्या–पेट पर तीन सुंदर रेखाएँ (त्रिबली) हैं, नाभि बहुत सुंदर और गहरी है। विशाल वक्षस्थल पर अनेक प्रकार के सुंदर आभूषण और वस्त्र सुशोभित हैं।

दोहा– आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं ॥77(क)॥
प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह ॥77(ख)॥

व्याख्या–जब मैं प्रभु के निकट जाता था, तब वे प्रसन्न हो जाते थे और जब मैं भागता था तब रोने लगते थे। उनके रुदन को देखकर जब मैं उनके चरणों को पकड़ने के लिए निकट जाता था, तब मेरी ओर बार-बार देखकर भाग जाते थे। पीछे मुड़कर देखने में भाव यह है कि वह देखते थे कि मैं उनके समीप आ रहा हूँ कि नहीं। इस प्रकार उनकी सामान्य बालक के समान क्रीड़ा देखकर मुझे मोह उत्पन्न हो गया। मैंने सोचा कि जो प्रभु चित्-आनंद-घन है, वह इस प्रकार की लीला क्यों कर रहा है?

विशेष–श्रीराम का काग को पकड़ने के लिए दौड़ना, भागने पर पूप दिखाना, निकट आने पर हँसना, भागने पर रोना आदि बाल-लीलाओं को देखकर काग को मोह हो गया। उसको यह भ्रम हुआ कि सच्चिदानंद प्रभु को इस प्रकार का आचरण नहीं करना चाहिए। गरुड़ को भी उनकी इसी प्रकार की माधुर्य लीला देखकर मोह हुआ था–'चिदानंद संदोह राम विकल कारन कवन।'

दोहा– ब्रह्मलोक लगि गयऊँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात ॥79(क)॥
सप्ताबरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि ॥79(ख)॥

शब्दार्थ–ब्रह्मलोक–भू, भव, स्व, जन, तप, सत्य इन छः लोगों को पार कर सातवाँ ब्रह्मलोक है। जुग = दो। सप्तावरन–आवरण नौ माने गए हैं–गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति और शुद्ध सत्व। जीव की गति केवल सात आवरण तक है। दूसरे मत से सात आवरण ये हैं–पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, अहंकार और महत्तत्व।

नोट

व्याख्या–काग कहता है कि मैं ब्रह्मलोक तक गया। पृथ्वी से ब्रह्मलोक तक पहुँचने के लिए भू, भव, स्व, जन, तप, सत्य इन छः लोगों को पार करना पड़ता है। ब्रह्मलोक तक जाने के पश्चात् उसने पीछे मुड़कर देखा। राम की भुजा तब भी उसका पीछा कर रही थी। केवल दो अँगुल की दूरी थी। अतः वह पुनः उड़ा और सात आवरणों को भेदकर गया। आवरण नौ माने गए हैं–गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति और शुद्ध सत्व। जीव की गति यहीं तक है। अब, प्रकृति और शुद्ध सत्व दो आवरण शेष थे। यही दो अंगुल का अंतर था। दूसरे मत से अहंता और ममता दो अँगुल हैं। यही शेष थे। इनको पार करने पर ही प्रभु का सान्निध्य प्राप्ति होता है। सप्तावरण भेद करने पर उसने पुनः पीछे मुड़कर देखा, किंतु राम की भुजा अब भी उसका पीछा कर रही थी। अतः वह त्रस्त हो गया। अन्य मत से सप्तावरण ये हैं–पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, अहंकार और महत्तत्व। जहाँ ब्रह्मांड समाप्त होते हैं, यहाँ से ये सात आवरण प्रारंभ होते हैं।

विशेष–सामान्यतः जीव परमात्मा से विमुख हो जाता है। वह भागता है, किंतु परमात्मा उस पर अनुग्रह करना चाहता है। राम-भुजा का काग के पीछे-पीछे जाने का यही रहस्य है। दो अँगुल की दूरी प्रकृति और शुद्ध सतोगुण की है। इसको पार करने पर ही परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त होता है। अविद्या माया प्रभु से वियोग करा देती है और विद्या माया भक्त–भगवान के संबंध को दृढ़ कराती है। दो अँगुल का भेद दिखाकर कवि ने यह स्पष्ट किया है कि प्रभु ने काग का साथ कभी नहीं छोड़ा। काग भेद-भगति का उपासक है, इसलिए भी यह अंतर बना हुआ है।

दोहा– जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ ॥80(क)॥
एक एक ब्रह्मांड महुँ रहउँ बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरउँ मैं अंड कटाह अनेक ॥80(ख)॥

शब्दार्थ–अंड कटाह = ब्रह्मांड।

व्याख्या–मैंने जो पूरे जीवन में न देखा था और न सुना था तथा जो मन से परे है, मन में समा नहीं सकता अर्थात कल्पनातीत है। ऐसे अद्भुत दृश्य मेरे द्वारा देखे गए। उनका वर्णन करना संभव नहीं है। मैं एक-एक ब्रह्मांड में सौ-सौ वर्ष तक रहा। इस प्रकार अनेक ब्रह्मांडों में अद्भुत दृश्य देखता हुआ घूमता रहा।

विशेष–एक-एक ब्रह्मांड में एक सौ वर्ष रहे। मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन होता है और देवताओं के एक हजार वर्ष का एक कल्प होता है। ऐसे-ऐसे सौ कल्पों तक काग विचरण करते रहे।

दोहा– भिन्न भिन्न में दीख सबु अति बिचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखउँ आन ॥81(क)॥
सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरउँ प्रेरित मोह समीर ॥81(ख)॥

शब्दार्थ–हरिजान (सं. हरियान) = विष्णु की सवारी, गरुड़। आन = अन्य। समीर = पवन।

व्याख्या–हे गरुड़! मैंने सभी लोकों में भिन्न-भिन्न तथा विचित्र दृश्य देखे। इस प्रकार मैं असंख्य लोकों में विचरण करता रहा, किंतु अन्य प्रभु राम को नहीं देखा। सभी लोकों में राम ही थे, उसी प्रकार की शिशुता थी, वैसा ही सौंदर्य था और वही उदारता थी। इस प्रकार मैं मोह रूपी पवन के द्वारा प्रेरित एक लोक से दूसरे लोक तक विचित्र दृश्य देखते हुए विचरण करता रहा।

दोहा– देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसतहीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर ॥82(क)॥
सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावउँ मनु न लहइ बिश्राम ॥82(ख)॥

व्याख्या–मुझे व्याकुल देखकर दयालु प्रभु हँसे। उनके हँसने पर उनका मुख खुल गया। अतः मैं बाहर आ गया। श्रीराम पुनः मुझसे यथापूर्व बालक्रीड़ा करने लगे। मैं अपने मन को बार-बार समझाता था कि ये मेरे इष्टदेव ही हैं, स्वामी ही हैं, किंतु मन को शांति नहीं मिलती थी।

नोट

विशेष–1. यहाँ गोस्वामी जी समझाते हैं कि ज्ञानी, भक्तशिरोमणि, सर्वज्ञ काग भुशुण्डि के मन में जब संदेह पैदा हो गया और वह अपनी बुद्धि से उसका निवारण करने का प्रयत्न करने लगे, तब उनको सफलता नहीं मिली। अतः सामान्य व्यक्ति प्रभु के रहस्य को कैसे समझ सकता है।

2. भक्त जब व्याकुल होता है, तब प्रभु हँस देते हैं। हँसी के द्वारा उसके मोह का निवारण करते हैं, जैसे–

(i) देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर-मुसुकानी ॥

(ii) निज माया बल देखि बिसाला। हिय हँसि बोले दीनदयाला ॥

दोहा– सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास ॥83(क)॥
काकभसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि ॥83(ख)॥

शब्दार्थ–अनिमादिक = अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व–ये आठ सिद्धियाँ मानी गई हैं। सिधि = सिद्ध। अपर = अन्य। रिधि = रिद्धि, निधि।

व्याख्या–मेरी प्रेम और विनम्रता पूर्ण कर्णा सुनकर तथा अपना भक्त देखकर रमापति (राम) सुखदायी, मधुर और गंभीर वाणी में बोले कि हे काग! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम अणिमादि आठों सिद्धियाँ, नौ निधियाँ तथा समस्त सुखों की राशि मोक्ष आदि कुछ भी वरदान में माँगो।

दोहा– अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥84(क)॥
भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपासिंधु सुख धाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ॥84(ख)॥

शब्दार्थ–अबिरल भगति = अचल, एकरस भक्ति। जोगीस = योगीश्वर। प्रनत हित = शरणागत का कल्याण करने वाले।

व्याख्या–काग ने कहा कि हे भक्तों के लिए कल्पवृक्ष, शरणागत हितकारी, कृपा के आगार और सुख के धाम प्रभु! मुझे वह अविचल एकरस भक्ति प्रदान कीजिए जिसका उल्लेख वेदों और पुराणों में है, जिसको बड़े-बड़े योगीश्वर मुनि भी खोजते रहते हैं, किंतु प्रभु के अनुग्रह से कोई-कोई ही जिसे पाते हैं। हे राम! मुझे वही एकरस भक्ति प्रदान कीजिए।

दोहा– माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापिहहिं तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि ॥85(क)॥
मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुने काग।
कायँ बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग ॥85(ख)॥

शब्दार्थ–संभव = उत्पन्न। अगुन = सत्, रज, तम गुणों से परे। गुनाकर = असंख्य कल्याणकारी गुण। संतत = निरंतर। काय = शरीर।

व्याख्या–हे काग! अब माया से उत्पन्न कोई भ्रम तुझमें व्याप्त नहीं होंगे। संभव भ्रम का तात्पर्य है–स्वरूप में भ्रम, प्रकृति में भ्रम, चरित्र में भ्रम, राम को सामान्य मानव समझना आदि। तुम मुझे परब्रह्म, अनादि तत्व, अजन्मा, सत्, रज, तम गुणों से अतीत तथा समस्त कल्याणकारी गुणों की राशि समझते रहना।

हे काग! तुम यह समझकर कि मुझे भक्त सदैव प्रिय होते हैं, शरीर, वाणी और मन से एकनिष्ठ भाव से मेरे चरणों में प्रीति बनाए रखना।

अलंकार–अगुन गुनाकर–विरोधाभास।

तुलनीय–अंतिम पंक्ति–गीता में भी इसी प्रकार कहा गया है–

मन्मना भव मद्भक्तों मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ **(9/34)**

नोट

दोहा– सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग ॥86॥

व्याख्या–श्रीराम कहते हैं कि हे काग! ध्यानपूर्वक इस तथ्य का श्रवण करो। सदाचारी, पवित्र और परमार्थ बुद्धिवाला भक्त किसे प्रिय नहीं होता है अर्थात् ऐसे सेवक पर सभी प्रसन्न रहते हैं। वेदों और पुराणों का भी यही मत है।

विशेष–यहाँ गोस्वामी जी ने वेदमत और लोकमत दोनों का समन्वय कर दिया है।

चौ.– एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा ॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई ॥

व्याख्या–प्रभु को सेवक सर्वाधिक प्रिय होता है, इस तथ्य का स्पष्टीकरण गोस्वामी जी एक लौकिक दृष्टांत के द्वारा देते हैं। वह कहते हैं कि एक पिता के कई पुत्र होते हैं। उनका गुण, स्वभाव तथा आचरण एक-दूसरे से भिन्न होता है। उनमें कोई विद्वान् होता है, कोई तपस्वी और ज्ञानी होता है, कोई धनाढ्य, कोई वीर और कोई दानी होता है, कोई सर्वज्ञ और कोई धर्मपरायण होता है। किंतु पिता सभी पुत्रों से समान-भाव से प्रेम करता है।

अलंकार–दृष्टांत।

दोहा– पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ॥87(क)॥

सोरठा– सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब ॥87(ख)॥

शब्दार्थ–सर्ब भाव = अनन्य भाव से।

व्याख्या–पुरुष, नपुंसक और स्त्री अथवा कोई भी जड़-चेतन जो प्राणी अनन्य भाव से निष्कपट रूप से मेरी उपासना करता है, वह मुझे परम प्रिय है। हे गरुड़! मैं तुमसे सत्य वचन कहता हूँ कि पवित्र सेवक मुझे प्राणों के समान प्रिय है। ऐसा विचार कर समस्त लौकिक-पारलौकिक आशाओं का परित्याग कर मेरी उपासना करो।

तुलनीय– अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं बहाम्यहम् ॥

× × ×

यह विनती रघुबीर गुँसाई।
और आस बिस्वास भरोसो हरौ जिय की जड़ताई ॥
चहौं न सुगति सुमति संपति कछु रिधि सिधि बिपुल बड़ाई ॥
हेतु रहित अनुराग नाथ पद बढ़ो अनुदिन अधिकाई ॥103॥ (विनयपत्रिका)

दोहा– बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥89(क)॥
कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥89(ख)॥

व्याख्या–क्या सद्गुरु के बिना ज्ञान संभव है? और क्या वैराग्य के बिना भी ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है? उत्तर है–नहीं। यहाँ ज्ञान-प्राप्ति की दो आवश्यक शर्तें बताई गई हैं–सद्गुरु का सान्निध्य और वैराग्य। वस्तुतः जब तक तत्वदर्शी गुरु का साक्षात्कार नहीं होता तब तक आत्मस्वरूप की उपलब्धि असंभव है। गुरु का अर्थ ही है–अंधकार को नष्ट करने वाला। यदि गुरु से ज्ञान प्राप्त भी हो गया तो वैराग्य न होने पर वह कुछ काल के बाद समाप्त हो जाएगा। इसी प्रकार भगवद्-भक्ति के बिना वास्तविक सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह केवल कवि-कथन ही नहीं है, वेद-पुराण इसके प्रमाण हैं। इसी प्रकार जब तक सहज संतोष न हो जाए, तब तक स्थायी शांति नहीं मिल सकती। असंतोष ही समस्त दुःखों का मूल है। सहज संतोष का तात्पर्य है–हर्ष-विषाद से मुक्ति। 'सहज

नोट

संतोष' और 'हरि-भक्ति' सच्चे सुख के लिए उसी प्रकार अनिवार्य हैं, जिस प्रकार नौका-चालन के लिए जल। अर्थात् जिस प्रकार जल के बिना, केवल थल पर नौका नहीं चल सकती, वैसे ही 'संतोष' के बिना शांति नहीं प्राप्त हो सकती। कोई भी व्यक्ति चाहे कितना ही परिश्रम करते-करते थक जाए।

अलंकार–1. पहली पंक्ति–कारणमाला।

2. अंतिम पंक्ति–दृष्टांत।

3. वक्रोक्ति।

दोहा– बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु ॥90(क)॥

सो.– अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भहजु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद ॥90(ख)॥

व्याख्या–बिना विश्वास के भक्ति का उद्रेक नहीं होता। वस्तुतः श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। तुलसीदास ने कहा भी है कि परिचय के बिना विश्वास नहीं होता, विश्वास के बिना प्रेम नहीं होता और प्रेम के बिना भक्ति में दृढ़ता नहीं आती–'जाने बिनु न होइ परतीती, बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती; प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई, जिमि खगपति जल कै चिकनाई।' जब तक भक्ति का उद्रेक नहीं होता, तब तक राम द्रवित नहीं होते अर्थात् भगवान् का अनुग्रह भक्ति से ही होता है। और जब तक राम का अनुग्रह प्राप्त नहीं होता, तब तक जीव स्वप्न में भी शांति नहीं प्राप्त कर सकता। काग कहता है कि हे गरुड़! इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए समस्त कुतर्कों और संदेहों को त्यागकर करुणानिधान तथा सुख प्रदान करने वाले श्रीराम की उपासना करो।

विशेष–गरुड़ में दो ही दोष आ गए थे–कुतर्क और संशय। उसका कुतर्क था– 'चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन।' तथा उसका संदेह था–'देखि चरित अति नर अनुसारी, भयउ हृदय मम संसय भारी।' अतः काग भुशुण्डि ने इन दो दोषों का निवारण किया।

अलंकार–कारणमाला तथा विनोक्ति।

दोहा– मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास ॥91(क)॥
काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत ॥91(ख)॥

शब्दार्थ–मरुत = पवन। समन (सं. शमन) = शांत करने वाले। दुस्तर = 1. जिसे पार पाना कठिन हो, 2. विकट, कठिन। दुर्ग = जिसमें पहुँचना कठिन हो, दुर्गम। दुरंत = 1. जिसका अंत जल्दी न मिले, अपार 2. प्रचंड, भीषण। धूमकेतु = अग्नि। दुराधर्ष = प्रबल, प्रचंड।

व्याख्या–भगवान् में करोड़ों पवन के समान बल है। पवन सर्वाधिक बलवान माना गया है। सैकड़ों करोड़ सूर्यों के समान उनमें प्रकाश है। सैकड़ों करोड़ चंद्रमा के समान संसारजन्य भय का दमन करने वाली शीतलता है। वे सैकड़ों करोड़ काल के समान विकट, दुर्गम और प्रचंड हैं तथा सैकड़ों करोड़ अग्नि के समान शक्तिशाली हैं।

दोहा– रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।
संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ ॥92(क)॥

सो. भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन ॥92(ख)॥

व्याख्या–काग कहता है कि श्रीराम अनंत गुणों के सागर हैं, उनके सम्यक् गुणों की जानकारी संभव नहीं। जैसे समुद्र की थाह लगाना दुष्कर है, वैसे ही श्रीराम के गुणों का पूर्ण ज्ञान संभव नहीं है। मैंने जो कुछ संतों (शिव जी तथा लोमश आदि) से सुना था, उसका वर्णन कर दिया।

भगवान् षट् ऐश्वर्य युक्त हैं, सुख के आगार हैं, करुणा की मूर्ति हैं। अतः ममत्व, अहंकार तथा अभिमान त्यागकर उनकी उपासना करनी चाहिए।

नोट

दोहा– ताहि प्रसंसि बिबिधि बिधि सीस नाइ कर जोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि ॥93(क)॥
प्रभु अपने अबिबेक ते बूझउँ स्वामी तोहि।
कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि ॥93(ख)॥

व्याख्या–इस प्रकार गरुड़ ने काग की अनेक प्रकार से प्रशंसा की तथा हाथ जोड़कर प्रमाण किया और प्रेमपूर्वक मधुरवाणी में पुनः विनम्रतापूर्वक कहा कि हे स्वामी! मैं अपने अज्ञानवश आपसे पुनः पूछता हूँ। हे दयानिधि! मुझे अपना सेवक समझकर मेरी जिज्ञासा का समाधान कीजिए।

सो.– तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल ॥94(क)॥

दोहा– प्रभु तव आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग ॥94(ख)॥

व्याख्या–ऐसा सर्वभक्षी, अनुलंघनीय, विकराल काल का भी आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसका कारण आपका परम ज्ञानी होना है अथवा यह आपके योग का बल है? अखंड ज्ञान संपन्न व्यक्ति कालातीत होते हैं, उसी प्रकार अष्टांग योग की साधना के बल से लोग देह-सिद्ध प्राप्त कर लेते हैं, योगी योग बल से काल पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

गरुड़ का एक प्रश्न और है। वह कहता है कि हे स्वामी! आपके आश्रम में प्रवेश करते ही मेरा समस्त मोह और भ्रम भंग हो गया। इसका क्या कारण है? हे नाथ! मुझे ये सारे तथ्य प्रेमपूर्वक समझाइए।

विशेष–यहाँ गरुड़ ने काग से चार प्रश्न किए हैं–

(क) राम-भक्त होते हुए भी तुम्हें काग-शरीर क्यों मिला?

(ख) रामचरितसर की प्राप्ति कहाँ हुई?

(ग) महाप्रलय में भी आपका नाश क्यों नहीं होता है?

(घ) आपके आश्रम में प्रवेश करते ही मेरा मोह-भंग क्यों हो गया?

दोहा– पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं।
अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित ॥95(क)॥
पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम ॥95(ख)॥

शब्दार्थ–पन्नगारि = सर्पों के शत्रु, गरुड़। पाट = रेशम। पाटंबर = रेशमी वस्त्र। कृमि = कीड़ा।

व्याख्या–काग का कथन है कि हे गरुड़! वेद और लोकमत दोनों दृष्टियों से यह नीति-सम्मत माना गया है कि यदि अत्यंत नीच प्राणी से अपना कल्याण होता हो तो उससे भी प्रेम करना चाहिए। सामान्यतः यह नीति है कि 'बुध नहिं करहिं अधम कर संगा', किंतु यदि अपना हित होता हो तो उससे भी प्रेम करने में दोष नहीं है। यही लोक रीति है।

अपने कथन की पुष्टि के लिए वह एक दृष्टांत देते हैं कि रेशम कीड़े से बनता है, उसी रेशम से सुंदर रेशमी वस्त्र बनाए जाते हैं। यद्यपि वह कीड़ा बहुत गंदा होता है, फिर भी लोग उसे बहुत प्यार से पालते हैं।

अलंकार–1. दृष्टांत।

2. परम अपावन प्रान सम–दृष्टांत।

दोहा– प्रथम जन्म के चरित अब कहउँ सुनहु बिहगेस।
सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस ॥96(क)॥
पूरुब कल्प एक प्रभु जुग कलिजुग मल मूल।
नर अरु नारि अधर्मरत सकल निगम प्रतिकूल ॥96(ख)॥

नोट

व्याख्या–काग कहता है कि हे गरुड़! अब मैं अपने प्रथम जन्म का वर्णन करता हूँ। उसे सुनकर तुम्हारे पंच क्लेश समाप्त हो जाएँगे और प्रभु के चरणों में प्रेम भी उत्पन्न होगा। सत्ताईस कल्पों पूर्व (काग-शरीर 27 कल्पों से है) कलियुग था, जो समस्त विकारों का मूल है। उस कलियुग में सभी स्त्री-पुरुष अधर्म परायण थे तथा वैदिक रीतियों के प्रतिकूल आचरण करते थे।

दोहा– असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध न पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥98(क)॥
सो.– जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ ॥98(ख)॥

शब्दार्थ–भूषन = आभूषण, गहने। भच्छाभच्छ = अभक्ष्य का भक्षण करने वाले। अपकारी = दूसरों का अहित करने वाले। चार = चुगलखोर, पिशुन। बकता = वक्ता।

व्याख्या–जो अमंगल वेष और आभूषण धारण करते हैं, वे ही कलियुग में सिद्ध और योगी माने जाते हैं। अघोर पंथी मद्य-माँस, मल-मूत्र आदि खाते थे तथा नरमुंड माला, हड्डियाँ, चिता की भस्म आदि शरीर पर लगाते थे। ऐसे लोगों को योगी और सिद्ध समझा जाता था। जो दूसरों की निंदा करते थे, चुगलखोर थे, उनकी पूजा होती थी। जो मन, वाणी और कर्म से झूठे थे, रोचक कथाओं द्वारा श्रोताओं को प्रसन्न करने में निपुण थे, उन्हें वक्ता माना जाता था। सत्य-कथन करने वालों की उपेक्षा होती थी।

विशेष–मध्यकाल में ऐसे तथाकथित साधुओं की भीड़ देखी जा सकती थी, जिनकी वेश-भूषा साधुओं के समान थी, किंतु आचरण निम्न कोटि का था। छल-प्रपंच, झूठ-फरेब, पाषंड-धूर्तता आदि उनकी जीवनचर्या थी। धर्म के नाम पर शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन, बौद्ध, शैवों में पाशुपत, कापालिक, लकुलीश, वीर शैव, अघोरपंथी आदि मतावलम्बी विद्यमान थे। शाक्तों में आनंद भैरवी, भैरवी, भैरवी चक्र, सिद्धि मार्ग जैसी गुह्य साधनाओं का प्रचलन था। बौद्ध धर्म महायान, हीनयान, मन्त्रयान, सहजयान, वज्रयान आदि के रूप में विकसित हो रहा था। समाज में ऐसे साधुओं की भीड़ देखी जा सकती थी, जो अध्यात्म-चिंतन के लिए विरक्त नहीं हुए थे अपितु मठाधीश बनकर शिष्यों की अपार मंडली बनाकर ऐश्वर्य-भोग में ही लिप्त रहते थे। उनकी सारी चतुराई सांसारिक भोग तक ही सीमित थी। इनमें कुछ लोग सदैव नग्न रहते थे, कुछ साधु मयूर पिच्छ धारण करते थे, कुछ मस्ती के लिए सुरापन करते थे। शैव मत में तांत्रिक क्रिया और श्मशान-साधना प्रचलित थी। कापालिक वामाचारी थे। शव-साधना, कपाल-साधना, पशु-बलि, नर-बलि इनके साधना-सम्मत विधान थे। कालामुख संप्रदाय में कपाल-पात्र-भोजन, शव-भस्म-स्नान, सुरा-कुम्भ-स्नान आदि विधियाँ प्रचलित थीं। कौल-साधना में असामाजिक एवं दूषित कार्य चरम सीमा पर पहुँच गए थे। माँस भक्षण, मदिरा सेवन आदि अनेक प्रकार के निषिद्ध कार्य इनकी साधना के अंग बन गए थे। वे कीचड़ और चंदन में, श्मशान और भवन में अंतर नहीं मानते थे। मद्य, माँस, मंत्र, मैथुन और मुद्रा वज्रयान के मूल आधार थे। प्रत्येक साधक के लिए एक मुद्रा (स्त्री) रखना अनिवार्य था। कबीरदास ने भी इसी प्रकार उस युग के तथाकथित साधुओं एवं उनके द्वारा अपनाई गई समाज-विरोधी गतिविधियों का इन शब्दों में उल्लेख किया है–

इक जगम जटा धार, इक अंग बिभूति करै अपार।
इक मुनियर एक मनहुँ लीन, ऐसे होत होत जग जात खीन।
इक आराधैं सकति सीव, इक परदा दे दे बधैं जीव।
इक कुलदेवी को जपहिं जाप, त्रिभुवनपति भूले त्रिविध ताप ॥ (पद-332)

दोहा– ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात ॥99(क)॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्मा सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि ॥99(ख)॥

शब्दार्थ–बिप्र = ब्राह्मण। घात = हत्या। बादहिं = विवाद करते हैं।

व्याख्या–कलियुग में स्त्री व पुरुष ब्रह्म ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई बात नहीं करते और एक कौड़ी के लालच में ब्राह्मण तथा गुरु की हत्या तक कर डालते हैं।

नोट

शूद्र ब्राह्मणों से विवाद करते हैं कि क्या वे उनसे कुछ छोटे हैं? शूद्रों के अनुसार जो ब्रह्म को जानता है, वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। उनका अभिप्राय है, क्योंकि वे भी ब्रह्म को जानते हैं इसलिए वे उनसे कम नहीं है। यह कहकर वे ब्राह्मणों को डाँटकर आँखें दिखाते हैं।

दोहा– भए बरनं संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ॥100(क)॥
श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ॥100(ख)॥

शब्दार्थ–बरन संकर = वर्णसंकर, दो भिन्न जातियों के स्त्री-पुरुषों से उत्पन्न व्यक्ति। सेतु = पुल, मार्ग, पंथ, संप्रदाय। रुज = रोग। संजुत = संयुक्त। बिरति = वैराग्य।

व्याख्या–जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गुण-कर्माश्रित वर्ण-व्यवस्था समाप्त हो गई थी। उनका स्थान जातियों ने ले लिया था। इनमें से अनेक जातियाँ ऐसी थीं जो व्यभिचार तथा अनुलोम-प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न हुई थीं। इस प्रकार वर्ण संकर (दो भिन्न जातियों के स्त्री-पुरुषों से उत्पन्न) जातियों का बाहुल्य हो गया था। ऐसे लोग प्राचीन धर्म-ग्रंथों पर आधारित व्यवस्था का तिरस्कार करके भिन्न-भिन्न मार्ग (सेतु) पर चलते थे। उनका कहना था कि वह जिस मार्ग (सेतु) पर चल रहे हैं, वह भव-सागर पार करने का सर्वोत्तम साधन है। ऐसे तथाकथित 'सेतु' प्रायः अनाचाराश्रित होते थे, लोग धर्म के नाम पर पाप-कर्म करते थे। परिणामतः वे दुःख, भय, रोग, शोक, वियोग आदि विपत्तियों में पड़ जाते थे।

शास्त्रों में निरूपित ज्ञान-वैराग्य सम्मत भगवद्-भक्ति का मार्ग त्यागकर प्रायः ऐसे लोग मोह के वशीभूत होकर नाना प्रकार के पंथों और संप्रदायों का प्रवर्तन कर रहे थे।

विशेष–कबीरदास ने भी पंथ-निर्माता तथाकथित साधुओं की निंदा की है। उनका एक पद इस प्रकार है–

ऐसा जोग न देखा भाई, भूला फिरै लिए गफिलाई।
महादेव को पंथ चलावै, ऐसो बड़ो महंत कहावै ॥
हाट बजारै लावै तारी, काचे सिद्धहि माया प्यारी।
कब दत्ते मावासी तोरी, कब सुखदेव तोपची जोरी ॥
नारद कब बंदूक चलाई, व्यासदेव कब बंब बजाई।
करहिं लराई मति के मंदा, ई अतीत की तरकस बंदा ॥
भए बिरक्त लोभ मन ठाना, सोना पहिरि लजावैं बाना।
घोरा घोरी कीन्ह बटोरा, गांव पाय जस चले करोरा ॥(रमैनी-69)

दोहा– सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड।
मान मोह मारादि मढ ब्यापि रहे ब्रह्मंड ॥101॥(क)॥
तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान ॥101(ख)॥

व्याख्या–काग कहते हैं कि हे गरुड़! सुनो। कलियुग में छल-कपट, हठ (दुराग्रह), अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष, पाषंड, मिथ्याभियान, मोह, कामादि विकार पूरे ब्रह्मांड में परिव्याप्त हो जाएँगे। व्यक्ति सत्वगुण अथवा रजोगुण के स्थान पर तामसी वृत्तियों को बढ़ावा देने वाले जप, तप, यज्ञ, व्रत, दान आदि करेंगे। तात्पर्य यह है कि शास्त्रोक्त विधि से धार्मिक कृत्यों का दिखावा करेंगे। देश में प्रायः सूखा पड़ेगा, वर्षा कम होगी अथवा नहीं होगी। परिणामतः धान आदि वर्षा पर आश्रित अन्न नहीं पैदा होंगे।

दोहा– सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।
गुनउँ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार ॥102॥(क)॥
कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अऊ जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग ॥102(ख)॥

शब्दार्थ–ब्यालारि = सर्पों के शत्रु, गरुड़। मल = पाप। निस्तार = उद्धार। कृतयुग = सतयुग।

नोट

व्याख्या–काग कहता है कि हे गरुड़! सुनिए। यद्यपि कलियुग पापों और अवगुणों की खान है, फिर भी उसमें अनेक गुण भी हैं। इस युग में बहुत प्रयास के बिना ही भव-सागर से उद्धार हो जाता है। सतयुग, त्रेता और द्वापर में पूजा-पाठ, यज्ञ तथा योग-साधना से जो सद्गति प्राप्त होती है, वही गति कलियुग में केवल भगवन्नाम के स्मरण से प्राप्त हो जाती है।

तुलनीय– कृते यद् ध्यायते विष्णुं त्रेतायां यजतो मरवैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात् ॥52॥ (भागवत-12/3)

दोहा– कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥103(क)॥
प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान ॥103(ख)॥

व्याख्या–इसके पूर्व कलियुग के दोष गिनाए गए हैं। यहाँ कलियुग का गुण बताते हुए कहा गया है कि कलियुग के समान दूसरा कोई युग नहीं है, यदि मनुष्य इस तथ्य पर विश्वास करे, क्योंकि इस युग में श्रीराम के निर्मल गुणों का गान मात्र करने से बिना अन्य प्रयास (यज्ञ, जप, तप आदि) के ही भव-सागर से पार हो जाता है। धर्म के चार चरण माने गए हैं, वे हैं–सत्य, दया, तप और दान। इसी प्रकार अधर्म के भी चार चरण माने गए हैं–असत्य भाषण, हिंसा, असंतोष और द्वेष। इनमें से कलियुग में केवल दान की ही प्रतिष्ठा है। किसी भी विधि से दिए गए दान से सर्वथा कल्याण ही होता है।

तुलनीय–तमः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानकर्म च द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।
(सृष्टिखण्ड, अध्याय-18/37)

दोहा– हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं ॥104(क)॥
तेहिं कलिकाल बरष बहु बसेउँ अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपति बस तब मैं गयउँ बिदेस ॥104(ख)॥

व्याख्या–सभी प्रकार के गुण और दोष भगवान् की माया की उपज हैं। दोष और गुण दोनों मायाकृत हैं। वे भगवद्-भक्ति के बिना नहीं जाते। यह समझकर निष्काम भाव से ईश्वर की आराधना करनी चाहिए। यहाँ से कलिधर्म-निरूपण समाप्त हुआ।

काग पुनः कहता है कि हे गरुड़! उस कलियुग में मैं अनेक वर्षों तक अवध में रहा। कुछ समय के पश्चात् दुर्भिक्ष अथवा अकाल पड़ा। तब में विपत्तिवश अवध को छोड़कर विदेश चला गया। अकाल पड़ने पर भोजनादि का अभाव हो जाता है और लोग अकाल ही काल-कवलित होने लगते हैं।

दोहा– मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह।
हरिजन द्विज देखें जरउँ करउँ विष्नु कर द्रोह ॥105(क)॥
सो.– गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई ॥105(ख)॥

शब्दार्थ–खल = दुष्ट। मल संकुल मति = दोष तथा विकारग्रस्त बुद्धि। हरिजन = भगवद्-भक्त। जरउँ = ईर्ष्या करता था। प्रबोध = उपदेश देना।

व्याख्या–मुझमें दुष्टता, विकारग्रस्त बुद्धि, नीचता, मोह आदि अनेक अवगुण थे। अतः मैं भगवद्-भक्तों तथा ब्राह्मणों को देखकर उनसे ईर्ष्या करता था। विष्णु का द्रोही था, वैष्णवों से वाद-विवाद करता था।

गुरु मेरे इस अनैतिक आचरण को देखकर बहुत दुःखी होते थे तथा सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते थे। किंतु मुझ पर उनके वचनों का विपरीत प्रभाव पड़ता था। गुरु पर भी मुझे बहुत क्रोध आ जाता था, क्योंकि दंभी व्यक्ति को नीति अथवा नैतिक वचन कभी भी अच्छे नहीं लगते हैं।

दोहा– एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम ॥106(क)॥

नोट

सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस ॥106(ख)॥

व्याख्या–एक दिन मैं शिव-मंदिर में उनके नाम का जप कर रहा था, उसी समय मेरे गुरु आ गए। मैंने अभिमानवश उठकर उनको प्रणाम नहीं किया। गुरु अत्यंत दयालु थे, अतः उन्होंने कुछ भी नहीं कहा और उनके हृदय में रंचमात्र का भी क्रोध नहीं आया। किंतु गुरु का अपमान जघन्य पाप था। अतः शिव जी उसे सहन नहीं कर सके।

दोहा– हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप ॥107(क)॥
करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि।
बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि ॥107(ख)॥

व्याख्या–शिव जी के भयंकर शाप को सुनकर गुरु शोक से चीत्कार कर उठे तथा मुझे काँपता हुआ देखकर उनके हृदय में असीम वेदना उत्पन्न हो गई। उन्होंने शिव जी को साष्टांग प्रणाम किया और उनके सम्मुख हाथ जोड़कर गदगद वाणी में विनती करने लगे, क्योंकि वह मेरी अधोगति सुनकर बहुत दुःखी हो गए थे।

दोहा– सुनि बिनती सर्बग्य सिव देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभबानी भइ द्विजबर बर मागु ॥108(क)॥
जौं प्रसन्न प्रभु मो पर नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर बर देहू ॥108(ख)॥

व्याख्या–सर्वज्ञ शिव ने विप्र की विनती सुनकर और उसका प्रेम देखकर, मंदिर में पुनः आकाशवाणी की कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! वरदान माँगो। तब विप्र ने कहा कि हे प्रभु! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और इस दीन पर स्नेह है तो कृपा करके मुझे अपने चरणों में भक्ति प्रदान कीजिए, तत्पश्चात् दूसरा वरदान यह दीजिए।

दोहा– तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान ॥108(ग)॥
संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल ॥108(घ)॥

व्याख्या–विप्र ने कहा कि हे प्रभु! यह जड़ जीव आपकी माया के वशीभूत होकर निरंतर भटकता रहता है। अतः हे दयानिधि भगवान्! इस शिष्य पर क्रोध न कीजिए। हे दीन दयाल शिव जी! अब इस पर ऐसी दया कीजिए कि आपके शाप का अंत अल्प काल में ही हो जाए अर्थात् यह दस हजार वर्षों तक सर्प योनि में न पड़ा रहे।

दोहा– सुनि सिव बचन हरषि गुर एवमस्तु इति भाषि।
मोहि प्रबोधि गयउ गृह संभु चरन उर राखि ॥109(क)॥
प्रेरित काल बिंधि गिरि जाइ भयउँ मैं ब्याल।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउँ गएँ कछु काल ॥109(ख)॥

व्याख्या–शिव जी की उपर्युक्त वाणी सुनकर गुरु बहुत प्रसन्न हुए और कहा–'एवमस्तु' अर्थात् ऐसा ही होगा। तत्पश्चात् मुझे उपदेश देकर, शिव के चरणों को हृदय में धारण करके गुरु अपने घर चले गए।

काल की प्रेरणा से मैं विंध्याचल में जाकर सर्प हो गया। कुछ कालोपरांत मैंने बिना प्रयास के अर्थात् बिना कष्ट के ही उस शरीर को त्याग दिया।

दोहा– जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान ॥109(ग)॥
सिवँ राखी श्रुति नीति अरु मैं नहिं पावा क्लेस।
एहि बिधि धरेएँ बिबिधि तनु ग्यान न गयउ खगेस ॥109(घ)॥

नोट

व्याख्या–काग कहते हैं कि हे हरि के वाहन अर्थात् गरुड़ जी! इस प्रकार मैं जो शरीर धारण करता था, बिना जन्म-मरण के कष्ट के ही सरलतापूर्वक उसे त्याग देता था। मेरा शरीर-परिवर्तन उसी प्रकार सहज ढंग से होता था, जिस प्रकार कोई व्यक्ति पुराने वस्त्र त्यागकर नए वस्त्र धारण कर लेता है।

इस प्रकार शिव जी ने वेद-नीति की रक्षा की और मुझे भी जन्म-मरण संबंधी क्लेश का अनुभव नहीं हुआ। इसी प्रकार मैंने अनेक योनियों में शरीर धारण किया, किंतु शिव जी के अनुग्रह से मेरा ज्ञान बना रहा।

अलंकार– उदाहरण।

तुलनीय– द्वितीय पंक्ति–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यानि संयाति नवीन देही ॥ (गीता-2.22)

दोहा– गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग।
रघुपति जस गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग ॥110(क)॥
मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिरु नायउँ बचन कहेउँ अति दीन ॥110(ख)॥

व्याख्या–मुझे गुरु के इन वचनों का स्मरण करके कि तुम्हारे हृदय में भी राम के चरणों में अविरल प्रीति होगी ('अविरल भगति राम पद होई' तथा 'राम भगति उपजिहि उर तोरे'), मेरे मन में सगुण राम के चरण-कमलों में प्रेम बढ़ता जा रहा था। मैं दशरथ-सुत श्रीराम के पावन यश का गान करता हुआ विचरण कर रहा था और उनके प्रति निरंतर नित-नूतन प्रेम में वृद्धि हो रही थी।

भ्रमण करते हुए मैं सुमेरु पर्वत पर पहुँच गया। उसके शिखर पर वट-वृक्ष की छाया में लोमश ऋषि विराजमान थे। उनको देखकर मैंने उनके चरणों में प्रमाण किया और अत्यंत विनम्र वाणी में उनसे निवेदन किया।

विशेष–लोमस (लोमश ऋषि)–ये ब्रह्मा जी के पुत्र हैं तथा चिरंजीवी हैं। एक ब्रह्मा के मरने पर ये अपना एक रोम (बाल) उखाड़कर फेंक देते हैं। इसीलिए इनका नाम लोमश (लोम अथवा रोम तोड़ने वाला) पड़ा।

दोहा– सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज।
मोहि सादर पूँछत भए द्विज आयहु केहि काज ॥110(क)॥
तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्बग्य सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान ॥110(ख)॥

व्याख्या–हे खगराज! मेरे अत्यंत विनम्र और कोमल वचनों को सुनकर दयालु लोमश ऋषि ने मुझसे आदरपूर्वक पूछा कि हे विप्र! तुम यहाँ किस प्रयोजन से आए हो? तब मैंने कहा कि हे दयानिधि! आप सर्वज्ञ और सुजान हैं, अतः आप कृपा करके मुझे सगुण ब्रह्म की आराधना का उपदेश दीजिए।

दोहा– बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन ग्यान।
मैं अपनें मन बैठ तब करउँ बिबिधि अनुमान ॥111(क)॥
क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।
मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान ॥111(ख)॥

शब्दार्थ–परिछिन्न = घिरा हुआ, सीमित। जड़ = अज्ञानोपहित।

व्याख्या–विप्र तथा लोमश मुनि में वाद-विवाद हो जाने पर, वह क्रोधपूर्वक बार-बार अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने लगे और विप्र के मन में अन्य अनेक प्रकार के प्रश्न उठने लगे। वह विचार करने लगा कि द्वैतभाव के बिना क्रोध कैसे और किस पर आएगा, बिना अज्ञान के द्वैत-बुद्धि कैसे आ सकती है तथा माया से आवृत्त, सीमित तथा अज्ञानोपहित जीव ईश्वर के समान कैसे हो सकता है?

विशेष–जब तक व्यक्ति दूसरे को अपने से पृथक् नहीं मानेगा, तब तक क्रोध किस पर करेगा? अज्ञान से द्वैत होता है और द्वैत से क्रोध। द्वैत नानात्व दृष्टि से होता है। नानात्व दृष्टि ही अज्ञान है। लोमश मुनि ने उसे उपदेश दिया था कि 'सो तैं ताहि तोहि नहि भेदा', अर्थात् तुम ईश्वर हो–तत्वमसि। तुम्हारे और ईश्वर में कोई भेद नहीं

नोट

है–अयमात्मा ब्रह्म। तात्पर्य यह है कि जब सभी प्राणी ईश्वर ही हैं–'देख ब्रह्म समान सब माहीं', तब कौन किस पर क्रोध करेगा? अतः लोमश के कथन में विरोधाभास है। विप्र यह भी सोचता है कि ईश्वर स्वतंत्र है, जीव माया के वश में और परतंत्र है। ईश्वर सर्वज्ञ है, जीव अल्पज्ञ है। अतः वह ईश्वर कैसे हो सकता है? इस प्रकार उसे ईश्वर-जीव के भेद स्मरण हो आए।

यहाँ ईश्वर, जीव और माया–तीनों की स्थिति पृथक्-पृथक् दिखाई गई है। इस प्रकार अद्वैतवाद का खंडन और विशिष्टाद्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है।

अलंकार–प्रत्यक्षप्रमाण, वक्रोक्ति तथा विनोक्ति।

दोहा– तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ ॥112(क)॥
उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ॥112(ख)॥

व्याख्या–मुनि के शाप से मैं तुरंत काग हो गया। शापवश वही शरीर काग का शरीर हो गया, शरीर को त्यागकर गर्भवास के उपरांत दूसरा शरीर धारण की आवश्यकता न पड़ी। काग होने पर मैंने लोमश ऋषि को पुनः प्रणाम किया। यह बिदाई का प्रणाम था। तत्पश्चात् रघुवंश शिरोमणि श्रीराम का स्मरण करते हुए प्रसन्न-भाव से उड़ चला। पुनः प्रणाम करने में यह व्यंजना भी हो सकती है कि आप धन्य हैं। बनते थे अभेदवादी और व्यवहार किया भेदवादियों जैसा।

संभवतः इस घटना को सुनकर पार्वती को आश्चर्य हुआ होगा। अतः शिव जी कहते हैं कि हे उमा! जो एकनिष्ठ भाव से राम की भक्ति करते हैं तथा काम, अहंकार, क्रोध से रहित हैं, वे सभी प्राणियों में अपने प्रभु का अस्तित्व मानते हैं–'सीयराम मय सब जग जानी।' अतः वे किससे विरोध करें? तात्पर्य यह है कि उनकी दृष्टि में किसी भी व्यक्ति का विरोध करना, राम का ही विरोध करना होगा।

तुलनीय–ईशावास्योपनिषद् में भी कहा गया है–

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥6॥

दोहा– सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान ॥113(क)॥
जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।
ब्यापिहि तँह न अबिद्या जोजन एक प्रजंत ॥113(ख)॥

शब्दार्थ–अमान = अभिमान रहित। कामरूप = इच्छानुसार रूप परिवर्तन करने की क्षमता। निधान = खजाना। प्रजंत = पर्यंत, तक।

व्याख्या–लोमश ने यह भी आशीर्वाद दिया कि तुम सदैव राम के प्रिय रहोगे। श्रीराम तुमसे प्रेम करते रहेंगे और तुम श्रीराम से प्रेम करते रहोगे। तुम समस्त गुणों से संपन्न तथा अभिमान रहित रहोगे। तुम इच्छानुसार अपना रूप-परिवर्तन कर सकोगे। मृत्यु तुम्हारे वश में रहेगी अर्थात् जब तुम्हारी इच्छा होगी तभी तुम्हारी मृत्यु होगी, प्रलय काल में भी तुम्हारा विनाश नहीं होगा। तुम ज्ञान और वैराग्य की निधि बनोगे। तुम श्रीभगवान का ध्यान करते हुए जिस आश्रम में निवास करोगे, उसके चतुर्दिक एक योजन (चार कोस अथवा 12 किलोमीटर) तक अविद्या माया का प्रवेश नहीं हो सकेगा।

दोहा– ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह ॥114(क)॥
भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप ॥114(ख)॥

नोट

व्याख्या–मुझे यह काग शरीर इसलिए प्रिय है, क्योंकि मुझे इसी शरीर से श्रीराम के चरणों में स्नेह पैदा हुआ, अपने प्रभु का दर्शन मिला तथा मेरे समस्त संदेह समाप्त हो गए।

भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए वह कहता है कि मैंने हठपूर्वक भक्ति का पक्ष ग्रहण किया, जिससे लोमश ऋषि ने मुझे शाप दिया, किंतु अंततः मुझे ऐसे वरदान प्राप्त हुए, जो मुनियों को भी दुर्लभ हैं। यह भक्ति की ही महिमा है।

दोहा– पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर ॥115(क)॥
सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट ॥115(ख)॥

व्याख्या–जो वैराग्य संपन्न और धीर बुद्धि के पुरुष हैं, वही स्त्री का त्याग कर सकते हैं, किंतु जो भगवद्-भक्त नहीं हैं तथा कामी और विषयी हैं, वे स्त्री का त्याग नहीं कर सकते। किंतु हे गरुड़ जी! जो वैराग्य संपन्न और धीर बुद्धि हैं, वे भी मृग के समान सुंदर नेत्रों वाली और चंद्रमुखी स्त्री को देखकर उसके प्रति आकृष्ट हो जाते हैं क्योंकि विश्व में माया स्त्री रूप में ही प्रकट है। स्त्री माया का ही रूप है और माया के वश में बड़े-बड़े ज्ञानी और विरागी भी हो जाते हैं, जैसे–नारद और विश्वामित्र।

विशेष–जो वैराग्य संपन्न हैं तथा जिनमें स्त्री-त्याग की शक्ति है, यदि वह भक्त नहीं हैं तो वे नारी को देखकर विकल हो जाते हैं। भक्तों पर नारी (माया) का प्रभाव नहीं पड़ता है। स्त्रियाँ यद्यपि अबला कही जाती हैं, फिर भी वे अपने रूपाकर्षण से बड़े-बड़े मुनियों को भी अपने वश में कर लेती हैं, क्योंकि विश्व को रचने वाली माया स्त्री रूप में सर्वत्र प्रकट है। नारी माया का स्थूल रूप है।

अलंकार–1. विभावना (क्योंकि स्त्री अबला होते हुए भी सबल पुरुषों को अपने वश में कर लेती है)।

2. नारि बिष्नु माया प्रगट-निदर्शना।

3. तीसरी पंक्ति–अर्थांतरन्यास।

दोहा– यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ ॥116(क)॥
औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन ॥116(ख)॥

व्याख्या–श्री रघुनाथ का यह गुप्त चरित जल्दी किसी की समझ में नहीं आता। यदि कोई व्यक्ति श्रीराम के अनुग्रह से उसे जान ले, तब उसे स्वप्न में भी मोह नहीं होता। ज्ञान और भक्ति के दो भेद ऊपर बताए गए हैं–1. ज्ञानादि पुरुष हैं और माया तथा भक्ति स्त्री हैं, 2. भक्ति श्री रघुनाथ को प्रिय है, माया नर्तकी है। इनके अतिरिक्त ज्ञान और भक्ति में एक अंतर और है। हे चतुर गरुड़ जी! उस अंतर को भी समझ लीजिए। उसके सुनने से श्रीराम के चरणों में अविरल, कभी न क्षीण होने वाली भक्ति सुलभ हो जाएगी।

दोहा– जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाए ॥117(क)॥

शब्दार्थ–लाइ = लगाकर। सिरावै = ठंडा करें।

व्याख्या–मक्खन निकाल लेने पर उसे योगाग्नि प्रकट करके उसमें शुभ और अशुभ कर्मों (सात्विक तथा राजस-तामस कर्मों) का ईंधन लगाकर अग्नि को प्रज्वलित करें। इस प्रक्रिया से मक्खन से घृत निकल आएगा और ममत्व रूपी मल (छाँछ) जल जाएगा। शुभाशुभ दोनों प्रकार के कर्म जलाने के लिए कहा गया है, क्योंकि ये स्वर्ग-नरक आदि में घुमाते रहते हैं। इनके जलने पर ही मुक्ति हो सकती है। अतः इनको जला देना चाहिए। अष्टांग योग ही अग्नि को प्रकट करना है। उसमें दोनों प्रकार के कर्म रूप ईंधन को लगाने से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है।

अलंकार–सांगरूपक।

नोट

दोहा– तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ। ॥117(ख)॥

शब्दार्थ–विषद = शुद्ध। दिआ = दीपक। दिअटि = दीपाधार, जिस पर दीपक रखा जाता है।

व्याख्या–घी दीपक में रखा जाता है, दीपक दीवट पर रखा जाता है, जिससे वह गिरे नहीं। तात्पर्य यह है कि विज्ञान रूपी बुद्धि अर्थात् विज्ञान का निरूपण करने वाला बुद्धि को शुद्ध घृत (ज्ञान) प्राप्त हो गया, उसे चित्त रूपी दीपक में भरकर समत्व-भाव रूपी दृढ़ दीपाधार पर दीपक को रख दें। समत्व का तात्पर्य यह है चित्त में वैषम्य-भाव न आने पाए। दीपक को सुरक्षित स्थान पर रख दिया। वह बाह्य समाधि हुई।

विशेष–जब शुद्ध आत्म तत्व की पहचान हो गई, ज्ञान-घृत मिल गया, तब विज्ञान का निरूपण करने वाली अर्थात् आत्मा-परमात्मा की वृत्ति एक में मिलाने वाली बुद्धि का काम आया, उस पर समता रूपी दीअट को आधार बनाकर चित्त रूपी दीपक में ज्ञान भरकर रख दिया। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार वृत्ति एक में मिलाकर स्थिर होना ही समता रूपी दीपाधार है।

दोहा– तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि ॥117(ग)॥।

शब्दार्थ–तीनि अवस्था = जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। तीनि गुन = सत्, रज, तम। तूल = रुई। तुरीय = तुरीयावस्था (यह शब्द + चतुर ईयट् के योग से बना है, 'च' और 'ट्' का लोप हो गया; इस प्रकार तुरीय शेष रह गया)। सुगाढ़ि = स्थूल और मोटी।

व्याख्या–दीपक हो गया, घृत हो गया। अब बत्ती चाहिए, जिससे दीपक को जलाया जा सके। बत्ती के लिए रुई चाहिए। रूई कपास में होती है, उससे निकालना होता है।

यहाँ तीन अवस्थाएँ कपास के फाल अथवा बोड़री पर के छिलके हैं और तीन गुण भीतर के बिनौले हैं। तुरीयावस्था रुई है। कपास में तीन फाल होते हैं, जिनके ऊपर छिलका होता है। तीनों फालों में बिनौला होता है। जाग्रत सत्व प्रधान है, स्वप्न रजः प्रधान है और सुषुप्ति तम प्रधान है। तीनों गुणों और तीनों अवस्थाओं के निकल जाने पर यह ज्ञान होगा कि हम ब्रह्मस्वरूप चिन्मय अविनाशी हैं। तुरीयावस्था आत्म-स्वरूप की उपलब्धि की अवस्था है। यही रुई है। उसे भी सँवारकर अर्थात् तुरीयावस्था के संस्कारों को भली प्रकार से घनीभूत कर, यही बाती है, उसे दीपक में रख दे।

सो.– एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ॥117(घ)॥

शब्दार्थ–लेसै = जलावे, प्रज्वलित करे। बिग्यानमय = अपरोक्ष ज्ञान से युक्त। सलभ (सं. शलभ) = पतिंगे।

व्याख्या–उपर्युक्त विधान से ज्ञान रूपी दीपक को प्रज्वलित कर दें। यह ज्ञान-दीप तेजोमय तथा अपरोक्ष ज्ञान-संपन्न होता है। इसके निकट पहुँचते ही मद, मात्सर्य आदि पतिंगे जल जाएँगे।

विशेष–इस ज्ञान-दीपक प्रसंग में ज्ञान की सात भूमियाँ बताई गई हैं। योगवाशिष्ठ में ज्ञान की सात भूमियों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है–

ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता।
विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया तनुमानसा ॥
सत्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनाभिका।
पदार्थाथः विनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृताः ॥

1. शुभेच्छा–परम तत्व की इच्छा, सत्य को पाने की कामना।
2. विचारणा–गुरु द्वारा प्राप्त उपदेश का चिंतन-मनन।
3. तनुमानसा–मन का क्षीण होना।
4. सत्वापत्ति–शुद्ध अंतःकरण, जिसमें सत्वगुण प्रधान हो जाए।
5. असंसक्ति–विषयों से सारी आसक्ति का हट जाना।

नोट

6. परार्थाभाविनी–जो ज्ञानभूमि परब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी की भावना नहीं करती।

7. तुर्यगा–यहाँ जीव तुरीयावस्था में पहुँच जाता है। उसे सब ब्रह्ममय प्रतीत होता है।

यही सात भूमियाँ ज्ञानदीपक प्रसंग में इस प्रकार बताई गई हैं–

1. सात्विक श्रद्धा.....अचारा–शुभेच्छा।

2. तेइ तृन.....निजदासा–विचारणा।

3. परमधर्ममय.....जमावै–तनुमानसा।

4. मुदिता.....सुपुनीता–सत्वापत्ति।

5. जोग अगिनि.....जरिजाइ–असंसक्ति।

6. तब विज्ञान रूपिनी.....बनाइ–परार्थाभाविनी।

7. एहि बिधि.....सलभ सब–तुर्यगा।

दोहा– तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस ॥118(क)॥
कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक ॥118(ख)॥

शब्दार्थ–संसृति = जन्म, जरा, मरण आदि। दुस्तर = कठिन। घुनाच्छर न्याय = लकड़ी में बैठे घुन के द्वारा लकड़ी काटते-काटते दैवयोग से अक्षर बन जाना। प्रत्यूह = बाधा।

व्याख्या–ज्ञान विमुख हो जाने पर जीव विषयी (बद्ध) ही रह जाता है। परिणामतः वह जन्म, जरा, मरण आदि संबंधी क्लेश भोगता रहता है। इस प्रकार हे पक्षिराज! भगवान् की माया अत्यंत कठिन है, उससे पार पाना दुष्कर है, और ज्ञान-मार्ग कहने में, समझने में तथा साधना में बहुत कठिन है। तात्पर्य यह है कि जीव-ब्रह्म एक ही हैं, यह कहना कठिन है। यदि कोई समझाने का प्रयत्न करे तो उसे समझना और भी कठिन है। यदि किसी प्रकार से समझ में भी आ जाए तो उसकी साधना अत्यंत कठिन है। यदि किसी प्रकार घुणाक्षर न्याय से ज्ञान-प्राप्ति हो भी जाए, तब भी उस मार्ग में अनेक विघ्न-बाधाएँ हैं। जैसे घुन द्वारा लकड़ी काटते-काटते दैवयोग से कोई अक्षर बन जाए तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि घुन जान-बूझकर अक्षर बना रहा था। अक्षर का बनना संयोगमात्र है। उसी प्रकार यदि कदाचित् ज्ञान-मार्ग से सिद्धि प्राप्त हो भी जाए तो अनेक बाधाएँ हैं, क्योंकि माया अनेक प्रकार के उपद्रव करती रहती है, वह ऋद्धि-सिद्धि को प्रेरित करती है, बुद्धि को अनेक प्रकार के प्रलोभन देती है, आँचल की वायु से ज्ञान-दीपक को बुझाने की चेष्टा करती है और अंततः इन्द्रियों के देवता विघ्न उपस्थित करते हैं। यही ज्ञान-मार्ग की बाधाएँ हैं।

तुलनीय– हरि माया अति दुस्तर न जाइ बिहगेस–
यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः। (मानस, बाल., श्लोक–61)

दोहा– सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि ॥119(क)॥
जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ॥119(ख)॥

व्याख्या–सेवक-स्वामी के भाव के बिना संसार-सागर से पार पाना संभव नहीं है। हे उरगारि! इस सिद्धांत को ध्यान में रखकर श्रीराम के चरण-कमलों की उपासना कीजिए।

श्रीराम में इतनी शक्ति है कि वह चेतन को जड़ और जड़ को चेतन करने की क्षमता रखते हैं। ऐसे समर्थ श्रीराम की जो उपासना करते हैं, वे धन्य हैं।

विशेष–1. सेवक सेब्य भाव–भक्ति के चार भाव माने गए हैं–दास्य, सख्य, माधुर्य और वात्सल्य। तुलसीदास दास्य भाव के उपासक थे। इसी की पुष्टि इस कथन द्वारा की गई है।

नोट

2. जो चेतन कहँ जड़ करइ–चेतन जीव है–'चेतन अमल सहज सुखरासी', किंतु माया के वशीभूत होने पर वह जड़वत् आचरण करने लगता है और माया जड़ है–'जड़-चेतनहि ग्रंथि परि गई' में 'जड़' शब्द माया के लिए ही आया है। वह चेतन जीव को बाँध लेती है। दूसरा उदाहरण है–नारद चेतन हैं, किंतु वह इतने जड़ हो गए कि अपने स्वामी ईश्वर पर ही क्रोध कर बैठे, और उनको शाप दे दिया। ध्रुव पाँच वर्ष के अज्ञानी (जड़) बालक थे। वह प्रभु की स्तुति करना चाहते थे, किंतु उनको ज्ञान ही नहीं था। भगवान् विष्णु ने अपने शंख से उनके गाल का स्पर्श कर लिया अतः वह सर्वशास्त्रों के ज्ञाता हो गए।

नोट्स ध्रुव पाँच वर्ष के अज्ञानी (जड़) बालक थे। वह प्रभु की स्तुति करना चाहते थे, किंतु उनको ज्ञान ही नहीं था। भगवान् विष्णु ने अपने शंख से उनके गाल का स्पर्श कर लिया अतः वह सर्वशास्त्रों के ज्ञाता हो गए।

दोहा– ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं ॥120(क)॥
बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ से हरि भगति देखु खगेस बिचारि ॥120(ख)॥

शब्दार्थ–ब्रह्म – यहाँ वेद से तात्पर्य है। पयोनिधि = क्षीरसागर। मंदर = मंदराचल। बिरति = वैराग्य। चर्म = ढाल। असि = तलवार।

व्याख्या–वेद-पुराणादि क्षीरसागर हैं, ज्ञान मंदराचल है, संत देवता हैं। जिस प्रकार समुद्र-मंथन के द्वारा देवताओं ने उससे अमृत निकाला था, जिसे पीकर वे अमर हो गए और राक्षसों से युद्ध किया, उसी प्रकार संत जन वेद-पुराणादि से कथा रूपी अमृत निकालते हैं, जिसकी भक्ति ही मधुरता है। तात्पर्य यह है कि राम-कथा वेदों का सार है। वैराग्य रूपी ढाल और ज्ञान रूपी तलवार के द्वारा मद, लोभ, मोह आदि शत्रुओं का वध करके जो विजय प्राप्त होती है, वही हरि की भक्ति है।

विशेष–1. यहाँ मोह-विवेक युद्ध की व्यंजना है। एक ओर मोह राजा है, कामादि उसके सहायक हैं; दूसरी ओर विवेक राजा है, वैराग्यादि उसके सहायक हैं। दोनों पक्षों में अनादि काल से युद्ध हो रहा है। इसी द्वन्द्व में ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ, प्राण आदि प्रजा पीड़ित रहती है। जब कथामृत-पान से विवेक का पक्ष दृढ़ होता है, तब मोहादि मार डाले जाते हैं। विवेक रूपी राजा की विजय होती है। उसका अकंटक राज्य स्थापित होता है।

2. इसी तथ्य की व्यंजना 'विनयपत्रिका' में सांगरूपक के द्वारा की गई है। मोह रावण है, उसका भाई कुंभकर्ण अहंकार है तथा मेघनाद काम है। लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर, क्रोध देवान्तक, द्वेष दुर्मुख, दंभ खर, कपट अकंपन तथा दर्प, मद आदि अन्य राक्षस हैं। विभीषण जीव है, जो इन दुष्टों के मध्य चिंताग्रस्त निवास करता है। श्रीराम ने इसीलिए दशरथ–कौशल्या के यहाँ जन्म लिया। यहाँ विवेक दशरथ हैं, शुभ भक्ति ही कौशल्या हैं तथा ज्ञान सुग्रीव है। इनकी सहायता से मोह पक्ष का विनाश हुआ–

मोह दसमौलि, तद्भ्रात अहंकार, पाकारिजित काम विस्रामहारी।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदय दुष्ट, क्रोधपापिष्ठ विबुधांतकारी ॥
द्वेष दुर्मुख, दंभ खर, अकंपन कपट दर्प मनुजाद, मद-सूलपानी।
अमितबल परमदुर्जय, निसाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-जातुधानी ॥
× × × ×
ग्यान-अवधेस-गृह, गोनिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभार-हर्त्ता।
भक्त-संकष्ट अवलोकि पितु-वाक्य-कृत गमन किय गहन वैदेहि-भर्त्ता ॥ (पद-58)

अलंकार–सांगरूपक।

नोट

तुलनीय–सचित बिराग बिबेक नरेसू। बिपिन सोहावन पावन देसू ॥
भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदरि रानी ॥

दोहा– एक व्याधि बस न मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि ॥121(क)॥
नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान ॥121(ख)॥

शब्दार्थ–असाधि = असाध्य, जिनका उपचार न हो। संतत = निरंतर। समाधि = अष्टांग योग की अंतिम अवस्था, मन का एकाग्र होकर प्रभु में लगना। भेषज = दवा।

व्याख्या–रोग तीन प्रकार के माने गए हैं–सुसाध्य, कष्टसाध्य और असाध्य। ऊपर जिन मानसिक रोगों (मोह, काम, क्रोध, लोभ विषय मनोरथ, ममता, ईर्ष्या, हर्ष-विषाद, जलन, मन की कुटिलता, दुष्टता, अहंकार, दंभ, कपट, पाषंड, तृष्णा, त्रिविध एषणा, मत्सर, अविवेक) को गिनाया गया है, वे सभी असाध्य रोग हैं। इनमें से किसी एक रोग का वशीभूत व्यक्ति भी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, जबकि यहाँ तो अनेक असाध्य रोग हैं जो जीव को निरंतर यातना देते रहते हैं। अतः वह समाधि दशा (मन का एकाग्र होकर प्रभु में लगना) को कैसे प्राप्त हो सकता है? और जब तक मन एकाग्र होकर प्रभु में नहीं लगता, तब तक सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?

उपर्युक्त मानसिक रोगों के उपचार हेतु नियम, धर्म, सदाचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान आदि करोड़ों औषधियाँ हैं। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, दर्शन आदि में इन औषधियों के विवरण भरे पड़े हैं, फिर भी हे हरि के वाहन गरुड़ जी! रोग समाप्त नहीं हो रहे हैं।

अलंकार–अंतिम पंक्ति–विशेषोक्ति (कारण के होते हुए भी कार्य का न होना)।

दोहा– बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ॥122॥(क)॥

शब्दार्थ–बारि = जल। सिकता = बालू। अपेल = अटल।

व्याख्या–जल मथने से घी भले ही निकल आवे और बालू से तेल भले ही निकल आवे (जो असंभव है), किंतु भगवद्-भक्ति के बिना मुक्ति संभव नहीं है। यह सिद्धांत अटल है।

विशेष–यहाँ तक नौ असंभव दृष्टांत दिए गए हैं। नौ संख्या की सीमा है।

अलंकार–1. भुशुण्डि ने अपने अनुभव से प्रमाण दिया है, अतः यहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण अलंकार हुआ।
2. असंभव बातें स्वयं सिद्ध हैं, अतः प्रौढ़ोक्ति अलंकार हुआ।

दोहा– मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन ॥122(ख)॥

श्लोक– विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥122(क)॥

शब्दार्थ–मसकहि = मच्छड़ को। बिरंचि = ब्रह्मा। अजहि = ब्रह्मा को। विनिश्चितं = निश्चय किया हुआ। बदामि = कहता हूँ। वचांसि = वचन। दुस्तरं = कठिनाई से पार जाने योग्य।

व्याख्या–काग कहता है कि प्रभु में इतना सामर्थ्य है कि वह मच्छर को ब्रह्मा बना दें और ब्रह्मा को मच्छर से भी छोटा बना दें। मच्छर सभी जीवों में सबसे छोटा है और सृष्टि रचयिता ब्रह्मा सबसे बड़े हैं। तात्पर्य यह है कि प्रभु असंभव को भी संभव कर सकते हैं। वह 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः' हैं। ऐसा विचार कर समस्त संदेहों को त्यागकर चतुर जन श्रीराम की उपासना करते हैं।

मैं आपसे निश्चयपूर्वक कहता हूँ। मेरी वाणी अन्यथा नहीं हो सकती, अर्थात् मेरा कथन अक्षरशः सत्य है। जो व्यक्ति भगवान् की उपासना करते हैं, वे अति दुस्तर भवसागर को पार कर लेते हैं, अर्थात् मुक्त हो जाते हैं।

नोट

दोहा– आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन ॥123(क)॥
नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ।
चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोई ॥123(ख)॥

व्याख्या–यद्यपि मैं जाति, धर्म, ज्ञानादि से सर्वथा रहित था, फिर भी आज मेरा जीवन धन्य हो गया, सार्थक हो गया। मैं चिरंजीवी बन गया और मेरा अहर्निश श्रीरामोपासना में व्यतीत होता है। हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार श्रीरामचरित कहा, कुछ भी गोपन नहीं रखा तथापि उसका सम्यक् वर्णन नहीं कर सका, क्योंकि प्रभु का चरित समुद्र के समान अथाह और गंभीर है। कोई भी व्यक्ति उसकी थाह नहीं पा सकता।

दोहा– जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल ॥124(क)॥
सुनि भुसुंडि के बचन सुभ देखि राम पद नेह।
बोलेउ प्रेम सहित गिरा गरुड़ गित संदेह ॥124(ख)॥

शब्दार्थ–भेषज = औषध। त्रय सूल = दैहिक, दैविक, भौतिक ताप।

व्याख्या–जिनका नाम सांसारिक रोगों की औषधि तथा दैहिक, दैविक, भौतिक घोर तापों का हरण करने वाला है, ऐसे दयालु प्रभु मुझ पर तथा आप पर सदैव प्रसन्न रहें। भुशुण्डि के ऐसे शुभ वचनों को सुनकर तथा श्रीराम के चरणों में उसकी अगाध प्रीति देखकर गरुड़, जिसके संदेह का निवारण हो चुका था, प्रेममयी वाणी में बोला।

व्याख्या–गरुड़ ने कहा कि हे भुशुण्डि जी! आपकी राम-भक्तिमय वाणी सुनकर मैं सफल मनोरथ हो गया तथा श्रीराम के चरणों में नूतन प्रेम का अभ्युदय हो गया तथा अविद्या माया से उत्पन्न अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश–ये चारों क्लेश समाप्त हो गए।

चौ.– मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए ॥
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउँ तव पद बारहिं बारा ॥

व्याख्या–मैं मोह रूपी समुद्र में डूब रहा था। आपने जहाज रूप होकर मेरा उद्धार कर दिया। मेरा मोह समाप्त कर दिया तथा मुझे ज्ञान, वैराग्य, विज्ञान तथा मुनि दुर्लभ गुण प्रदान किए। यही गुण सुख के आधार हैं। मैं आपका प्रत्युपकार करने में असमर्थ हूँ। तात्पर्य यह है कि आपने मुझे जो अमूल्य भक्ति-चिंतामणि प्रदान की है, उसके बदले में आपको देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं आपका ऋणी हूँ। अतः मैं आपके चरणों की पुनः पुनः वंदना करता हूँ।

अलंकार–मोह जलधि–रूपक।

चौ.– पूरन काम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी ॥
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी ॥

व्याख्या–अब मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण हो गई हैं, किसी प्रकार की कामना शेष नहीं है तथा मैं श्रीराम के चरणों का प्रेमी हो गया हूँ। वस्तुतः संत, वृक्ष, नदियाँ, पर्वत और पृथ्वी इन सभी के कार्य परोपकार के लिए ही होते हैं। संत स्वभाव से परोपकारी होते हैं, वृक्षों के फल दूसरे लोग ही खाते हैं, नदियों का जल सर्वजन सुलभ है, पर्वतों से ही नदियाँ निकलती हैं, अनेक प्रकार की औषधियाँ प्राप्त होती हैं तथा पृथ्वी का नाम ही क्षमा है।

चौ.– संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥

शब्दार्थ–नवनीत = मक्खन। परिताप = गर्मी। द्रवइ = पिघलता है।

व्याख्या–प्रायः कवियों ने संतों की तुलना मक्खन से की है, किंतु यह उपमा ठीक नहीं है। मक्खन अपने ताप से पिघलता है। उसे दूसरों के सुख-दुःख से कुछ भी लेना-देना नहीं, किंतु संत दूसरों के दुःख को देखकर द्रवित हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि संत पराए कष्ट का निवारण करने के लिए तत्पर रहते हैं।

अलंकार–व्यतिरेक (लक्षण–उपमान से उपमेय में उत्कर्ष का दिखाया जाना)।

नोट

तुलनीय– सज्जनस्य हृदयं नवनीतं यद्वान्ति कवयस्तदलीकम्।
अन्यदेहविलसत्परितापात्सज्जनो द्रवति नो नवनीतम् ॥ (सुभषित)

चौ.– जीवन जन्म सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद संसय सब गयऊ ॥
जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर ॥

व्याख्या–शिव जी पार्वती से कहते हैं कि गरुड़ ने काग से कहा कि मेरा जीवन और जन्म सार्थक हो गया। आपके अनुग्रह से मेरा संदेह पूर्णरूप से समाप्त हो गया। मुझे सदैव अपना दास समझते रहिएगा। इसके पूर्व उसने कहा था कि आपने जो मेरा उपकार किया है, उसके बदले में देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं आपका चिरऋणी हूँ। उसी की पुष्टि के लिए वह कहता है कि मैं सदा-सदा के लिए आपका दास बन गया। इस प्रकार के वचन वह बार-बार कहता है।

दोहा– तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदयँ राखि रघुबीर ॥125(क)॥
गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान ॥125(ख)॥

व्याख्या–इस प्रकार संतुष्ट होकर स्थिरबुद्धि गरुड़ प्रेमपूर्वक काग भुशुण्डि के चरणों में प्रणाम करके और श्रीराम को अपने हृदय में धारण करके बैकुंठ लोक को चला गया। शिव जी कहते हैं कि हे पार्वती! संत के समागम के समान संसार में कुछ भी लाभदायक नहीं है, किंतु सत्संग बिना भगवद्-कृपा के सुलभ नहीं होता। वेद और पुराणों का भी यही कथन है।

दोहा– मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास ॥126॥

व्याख्या–जो व्यक्ति इस राम-कथा को निरंतर और विश्वासपूर्वक सुनते हैं, वे बिना प्रयास के ही वह ईश्वर-भक्ति प्राप्त कर लेते हैं, जो मुनियों को भी दुर्लभ है।

दोहा– सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत ॥127॥

व्याख्या–शिव जी कहते हैं कि हे पार्वती! वह कुल धन्य है, जगत-पूज्य है और परम पवित्र है, जिसमें श्रीराम का भक्त और विनम्र व्यक्ति जन्म लेता है।

दोहा– राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान ॥128॥

व्याख्या–यदि कोई व्यक्ति श्रीराम के चरणों में प्रेम की कामना रखता है अथवा मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, उसे यह कथा प्रेम और श्रद्धापूर्वक कान रूपी दोने (पात्र) के द्वारा पान करना चाहिए। जिस प्रकार पात्र से जल मुख द्वारा पेट में जाता है, उसी प्रकार श्रवण रूपी पात्र के द्वारा कथा रूपी अमृत हृदय में जाता है।

दोहा– मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस ॥129॥

व्याख्या–पार्वती ने कहा कि हे जगत के स्वामी। आपके अनुग्रह से मैं कृतकृत्य (धन्य) हो गई हूँ, मेरे हृदय में दृढ़ राम-भक्ति का अभ्युदय हो गया है और मेरे समस्त क्लेश समाप्त हो गए हैं।

विशेष–कलेस (क्लेश)–अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश–ये पाँच क्लेश माने गए हैं– 'अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः' (योगसूत्र)। ये क्लेश दूर हो गए।

दोहा– मो सम दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर ॥130(क)॥

नोट

व्याख्या–श्रीराम के अनुपम गुणों का उल्लेख करने के पश्चात् अब गोस्वामी जी आर्त भाव से अपने प्रभु से निवेदन करते हैं कि हे रघुवंश शिरोमणि! मेरे समान संसार में दूसरा कोई व्यक्ति दीन (साधन हीन) नहीं है और न कोई अन्य आपके समान दीनों का हितैषी है। यह विचार करके हे रघुकुल की मणि श्रीराम जी! आप मुझे भवसंकट (आवागमन के चक्र) से मुक्त कीजिए। मैं भयभीत होकर आपकी शरण में आया हूँ।

तुलनीय–

तुम सम दीनबंधु, न दीन कोउ मोसम, सुनहु नृपति रघुराई।
मोसम कुटिल-मौलिमन नहिं जग, तुमसम हरि न हरन कुटिलाई ॥
हौं मन बचन करम पातक-रत, तुम कृपालु पतितन-गतिदाई।
हौं अनाथ प्रभु! तुम अनाथ-हित, चित यहि सुरति कबहुँ नहिं जाई ॥
हौं आरत, आरति-नासक तुम, कीरति निगम पुराननि गाई।
हौं सभीत, तुम हरन सकल भय, करन कवन कृपा बिसराई ॥
तुम सुखधाम राम स्रम-भंजन, हौं अति दुखित त्रिबिध स्रम पाई।
यह जिय जानि दासतुलसी कहँ, राखहु सरन समुझि प्रभुताई ॥ (विनयपत्रिका-242)

दोहा– कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥130(ख)॥

व्याख्या–जिस प्रकार कामी पुरुष को स्त्री प्रिय होती है और लोभी व्यक्ति को धन से प्रेम होता है, उसी प्रकार हे रघुनाथ! आपमें मेरी निरंतर अनुरक्ति बनी रहे। कामी पुरुष अपनी प्रेमिका पर सर्वस्व, प्राण तक न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहता है, उसके कारण माता-पिता, भाई आदि से भी संबंध तोड़ लेता है, भूख-प्यास भी भूल जाता है; मेरा श्रीराम पर उसी प्रकार का प्रेम बना रहे।

स्त्री का जब तक यौवन रहता है, तभी तक उसके प्रति आसक्ति रहती है; उसके वृद्ध हो जाने पर कामी पुरुष का प्रेम घट जाता है। राम के प्रति प्रेम नैरंतर्य बना रहे, इसके लिए वह दूसरा उदाहरण देते हैं–जैसे लोभी व्यक्ति धन के प्रति आसक्त रहता है, धन के प्रति उसकी आसक्ति किसी भी अवस्था में कम नहीं होती, इसी प्रकार यावद् जीवन राम के प्रति प्रेम बना रहे।

अलंकार–उदाहरण।

श्लोक–यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं,
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम् ॥
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥1॥

शब्दार्थ–दुर्गमं = दुरूह, कठिन। पदाब्ज = चरण-कमल। अनिशं = निरंतर। निरतम् = तत्पर। तमः = अंधकार, यहाँ तात्पर्य है–अज्ञान।

व्याख्या–जिस दुरूह रामायण को सर्वप्रथम सर्वसमर्थ श्रेष्ठ कवि श्रीशिव जी ने श्रीराम के चरण-कमलों में निरंतर भक्ति प्राप्त होने के लिए रचा था, तुलसीदास ने भी उसी नाम के द्वारा कृतार्थ होकर, उसी राम नाम के विभव को विस्तार करने वाले चरित को अपने अंतः करण के अंधकार (अज्ञान) का विनाश करने के लिए भाषाबद्ध किया।

विशेष–यहाँ रामचरितमानस का उपसंहार है। अतः यहाँ तुलसीदास उसका प्रयोजन स्पष्ट करते हैं। मानस के बालकाण्ड में उनका संकल्प था कि जो राम-कथा नानापुराण, निगमागम तथा रामायण में वर्णित है, उसे 'स्वान्तः सुखाय' वह भाषा में लिखेंगे। अंत में उसी की पुनरावृत्ति करते हैं कि जो राम-चरित पूर्व में सुकवि श्री शम्भु द्वारा रचित हुआ, उसी को अपने हृदय के अंधकार को दूर करने के निमित्त मैंने भाषाबद्ध किया है।

यह सर्वविदित है कि रामचरित के प्रथम सृष्टा शिव जी हैं–'रचि महेस निज मानस राखा, पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा।' यह ग्रंथ 'शिवरामायण' अथवा 'अध्यात्मरामायण' के नाम से विख्यात है। रामचरितमानस पर इसी का सर्वाधिक प्रभाव है। इसी की रचना से गोस्वामी जी को परम विश्राम, स्वांतः सुख की प्राप्ति हुई।

नोट

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ॥2॥

शब्दार्थ–शिवकरं = कल्याण करने वाला। प्रदं = प्रदान करने वाला। मलापहं = पापनाशक। प्रेमाम्बुपूरं = प्रेमजल से परिपूर्ण। अवगाहन्ति = डुबकी लगाते हैं, अवगाहन करते हैं। पतंग = सूर्य। दह्यन्ति = जलते हैं।

व्याख्या–रामचरितमानस की फलश्रुति बनाते हुए गोस्वामी जी इसका समापन करते हैं। वह कहते हैं कि यह रामचरितमानस पुण्य प्रदान करने वाला, पापनाशक, कल्याण करने वाला, विज्ञान तथा भक्ति देने वाला, माया और मोहजन्य सभी पापों का विनाशक, श्रेष्ठ निर्मल प्रेम-जल से परिपूर्ण और मंगलकारी है। जो लोग भक्तिपूर्वक इस रामचरित रूपी सरोवर में स्नान करते हैं, वे संसार रूपी प्रखर सूर्य की रश्मियों में नहीं जलते हैं।

विशेष–मानस के प्रत्येक काण्ड के अंत में फलश्रुति दे दी गई है, जैसे–

1. बालकाण्ड – सुख-संपादन,
2. अयोध्याकाण्ड – प्रेम-वैराग्य संपादन,
2. अरण्यकाण्ड – विमल-वैराग्य संपादन,
4. किष्किंधाकाण्ड– विशुद्ध संतोष संपादन,
5. सुंदरकाण्ड – ज्ञान-संपादन,
6. लंकाकाण्ड – विज्ञान-संपादन,
7. उत्तरकाण्ड – अविरल भक्ति-संपादन।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. शिवजी राम के गुणों का वर्णन करके प्रसन्नतापूर्वक अपने निवास ..... पर्वत पर चले गए।
2. ..... हनुमान के साथ सुग्रीव के पास गए, दोनों में मैत्री हुई।
3. स्त्रियां यद्यपि ..... कही जाती हैं, फिर भी वे अपने रूपाकर्षण से बड़े-बड़े मुनियों को भी अपने ..... में कर लेती हैं।

11.2 सारांश (Summary)

भगवत्-प्राप्ति के लिए प्रथम शर्त है–सत्संग। सत्संग के अतिरिक्त राम-भक्ति की सुलभता की एक अन्य शर्त भी है, और वह है–शिव की भक्ति।

जो वैराग्य संपन्न हैं तथा जिनमें स्त्री-त्याग की शक्ति है, यदि वह भक्त नहीं हैं तो वे नारी को देखकर विकल हो जाते हैं भक्तों पर नारी (माया) का प्रभाव नहीं पड़ता है।

11.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **मेखलाः** करधनी।
2. **बिद्युः** चंद्रमा।

नोट

11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'रामचरितमानस तुलसीदास द्वारा रचित अद्वितीय कृति है'–इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
2. जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोई।
   राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोई।।
   उपरोक्त पंक्तियों की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।
3. तुलसीदास के अनुसार भगवत् प्राप्ति की प्रथम शर्त का उल्लेख कीजिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. कैलाश
2. श्रीराम
3. अबला, वश

11.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. रामचरितमानस–साहित्यिक मूल्यांकन–*पाण्डेय सुधाकर, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली।*
2. गोस्वामी तुलसीदास–*मीना मनिशिखा, प्रभात प्रकाशन।*
3. तुलसी दास–*शिवसरन राम, एस.राम, वेदाम बुक्स।*

नोट

इकाई 12

तुलसीदास की भक्ति-भावना

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
12.1 तुलसीदास की भक्ति-भावना
12.2 सारांश (Summary)
12.3 शब्दकोश (Keywords)
12.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- तुलसीदास की भक्ति-भावना को समझने में।
- तुलसीदास की दास्य-भाव की भक्ति के रूप को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

हिन्दी साहित्य में तुलसीदास को राम भक्ति काव्य का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। इनके द्वारा रचे 12 ग्रंथों को प्रमाणिक माना जाता है, जिनमें शामिल हैं–रामचरितमानस, रामलला नहछू, जानकी मंगल, दोहावली, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, विनय-पत्रिका आदि। इसमें तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस- विश्वभर में अत्यंत लोकप्रिय है। इसमें दास्यभाव की भक्ति दिखती है। इसमें मर्यादा का प्रमुख स्थान है। राम का चरित्र ही मर्यादा पुरुषोत्तम का स्वरूप है। रामकाव्य में सर्वत्र मर्यादा का पालन करने का प्रयास किया गया है। राम के अतिरिक्त हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि प्रमुख भ्रातृ मर्यादा में बंधे हैं। रामकाव्य का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक है। यद्यपि तुलसीदास जी रामभक्त थे, किन्तु उन्होंने शिव, पार्वती, गणेश आदि देवताओं की भी स्तुतियां की हैं। उनके राम ने रामेश्वरम् में शिवलिंग की स्थापना की, सीता ने भी गौरी-पूजन किया। तुलसी ने राम के मुख से कहलवाया है–

'शिवद्रोही मम दास कहावा, सो नर मोहि सपनेहु नहिं भावा।'

धार्मिक समन्वय के अतिरिक्त ज्ञान, भक्ति और कर्म का दार्शनिक समन्वय भी तुलसीदास के रामकाव्य में उपलब्ध है।

12.1 तुलसीदास की भक्ति-भावना

गोस्वामी तुलसीदास भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा के अन्तर्गत आने वाली रामकाव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने अपने सभी काव्य-ग्रन्थों में राम के प्रति अनन्य भक्ति-भाव व्यक्त किया है, इसलिए उन्हें राम का एकनिष्ठ एवं अनन्य भक्त कहा गया है। वे चातक को प्रेम और भक्ति का परम आदर्श मानते हुए कहते हैं।

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास ॥

नोट

अपने इष्टदेव राम के प्रति उनके मन में अनन्य प्रेम, भक्ति-भाव, श्रद्धा, विश्वास एवं भरोसा व्याप्त है। श्रद्धा और विश्वास ही तुलसी की भक्ति के मेरुदण्ड हैं। रामचरितमानस एवं विनय-पत्रिका–दोनों ही काव्य-ग्रन्थों में तुलसी की भक्ति-भावना अभिव्यक्त हुई है। तुलसी की भक्ति दास्य भाव की भक्ति है। वे अपने प्रभु राम के प्रति पूर्ण समर्पित थे और राम को अपना स्वामी तथा स्वयं को राम का सेवक मानते थे। रामचरितमानस में वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि 'सेवक-सेव्य' भाव के बिना कोई व्यक्ति इस संसार-सागर से तर नहीं सकताः

सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।

विनय-पत्रिका में तुलसी की भक्ति पद्धति की अधिक स्पष्टता से अभिव्यक्ति हुई है। वे स्पष्ट घोषणा करते हैं :

ब्रह्म तू है जीव हौं तू ठाकुर हौं चेरो।

तात-मात गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो ॥

तुलसी की भक्ति में 'दैन्य' की प्रधानता है। इस दैन्य के कारण वे अपने इष्टदेव राम को महान एवं सर्वगुण सम्पन्न तथा स्वयं को तुच्छ, छोटा, खोटा और पापी मानते हैं। 'आत्म निवेदन' की इस प्रवृत्ति के कारण वे कहते हैं :

''राम सौं बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो?

राम सौं खरो है कौन मोसो कौन खोटो?''

तुलसी की भक्ति पद्धति में 'नवधा भक्ति' का पूर्ण स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। नवधा भक्ति के अन्तर्गत श्रवण, कीर्तन, पाद सेवन, अर्चना, वन्दना, दास्य, नाम स्मरण और आत्म निवेदन आते हैं। तुलसी ने राम नाम की महिमा का प्रतिपादन स्थान-स्थान पर किया है। वे कहते हैंः

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे

घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे ॥

क्या आप जानते हैं तुलसी के राम विष्णु के अवतार हैं जो भक्तों की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिए तथा दुष्टों का विनाश करने के लिए बार-बार अवतार लेते हैं।

वे शक्तिशाली हैं, अत्यन्त शीलवान हैं और करोड़ों कामदेव से भी अधिक सौन्दर्य सम्पन्न हैं। इस प्रकार तुलसी के राम शक्ति, शील एवं सौन्दर्य के भण्डार हैं। वे सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं तथा ईश्वर (परमात्मा) रूप में अनादि, अविकारी, अजन्मा, परब्रह्म हैं।

तुलसी की भक्ति पद्धति में विनय की सातों भूमिकाएं– दैन्य, मानमर्षता, भयदर्शना, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य एवं विचारणा का समावेश है।

दैन्य नामक प्रथम भूमिका में भक्त अपने को तुच्छ एवं प्रभु को महान मानते हुए प्रभु से प्रार्थना करता है कि वह अपने भक्त को शरण में ले ले। जब भक्त अभिमान शून्य होकर अपने इष्ट देव के समीप जाने का निश्चय करता है तो उसे मानमर्षता कहा जाता है। जीव को भय दिखाकर प्रभु की शरण में जाने के लिए प्रेरित करना भयदर्शना है। यथाः

राम कहतु चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।

नांहि तौ भव बंगार में परिहै छूटन अति कठिनाई रे ॥

मन को डांट-डपटकर सही मार्ग पर लाने का प्रयास जब भक्त करता है तो उसे 'भर्त्सना' कहा जाता है। यथा

ऐसी मूढ़ता या मन की।

परिहरि राम भगति सुर सरिता आस करत ओसकन की।

हे प्रभु मेरे मन की यह ऐसी मूर्खता है कि क्या बताऊं? यह मूर्ख राम भक्ति रूपी गंगा नदी से अपनी प्यास न बुझाकर ओस चाटता फिर रहा है। सांसारिक विषय भोग रूपी ओस कणों से कहीं प्यास बुझती है?

प्रभु के गुणों पर विश्वास करते हुए भक्त तुलसीदास अपने मन को जहां आश्वस्त करते दिखाई पड़ते हैं वहां आश्वासन नामक भूमिका है और जहां मन की कामनाओं की अभिव्यक्ति है वहां मनोराज्य नामक भूमिका दिखाई पड़ती है। यथाः

नोट

कबहुंकि हौं यह रहनि रहौंगो?

श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें संत स्वभाव गहौंगो।

जथा लाभ संतोष सदा काहू सौं कहु न चहौंगो।

संसार के माया जाल की जटिलता दिखाकर संसार से विरक्त होकर जब कोई भक्त भक्ति-भावना में लीन दिखाया जाता है, तब वहां विचारण नामक अन्तिम भूमिका होती है। विनय-पत्रिका के निम्न पद में इसी भूमिका को देखा जा सकता है। यथाः

केसव कहि न जाइ का कहिए।

देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये।

सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे।

धोये मिटै न मरै भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे ॥

तुलसी ने विनय-पत्रिका में अपने दैन्य, विषाद, विवशता, पीड़ा का निरूपण करने के साथ-साथ प्रभु राम के सामर्थ्य, प्रभुत्व एवं महानता का वर्णन किया है। सगुणोपासक मोक्ष प्राप्त नहीं करते, वे तो प्रभु से भक्ति की भावना करते हैं। संसार में उन्हें और कुछ नहीं चाहिए एकमात्र भक्ति ही उनका प्राप्य हैः

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौं निरबान।

जनम-जनम रति राम पद यह वरदान न आन ॥

तुलसी ने भक्ति की प्राप्ति के लिए सत्संग को महत्त्व दिया है। वे कहते हैंः

बिनु सतसंग विवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

बिना सत्संग विवेक नहीं होता और बिना विवेक जाग्रत हुए भक्ति नहीं होती। सत्संग राम की कृपा से ही सुलभ हो पाता है। ज्ञान और वैराग्य को तुलसी भक्ति का साधन मानते हैं। रामचरितमानस के 'ज्ञान-भक्ति' प्रसंग में वे भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं। तुलसी ने भक्ति-मार्ग को ज्ञान-मार्ग की तुलना में सरल एवं सहज बताया है। तुलसी की भक्ति-भावना में उन एकादश आसक्तियों को भी स्थान मिला है जिनका उल्लेख 'नारद भक्ति सूत्र' में किया गया है। इन आसक्तियों के नाम हैं–रूपासक्ति, कान्तासक्ति, तन्मयतासक्ति, परम विरहासक्ति, शरणागत, वत्सलता, गुण महात्म्यासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति। इनमें से कुछ के उदाहरण इस प्रकार हैं–काव्यासक्ति–निरखि-निरखि रघुवीर छवि बाढ़ै प्रीति न थोरि।

नोट्स ज्ञान और वैराग्य को तुलसी भक्ति का साधन मानते हैं। रामचरितमानस के 'ज्ञान-भक्ति' प्रसंग में वे भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं।

रूपासक्ति–**कोटि मनोज लजावनिहारे।**

सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे ॥

तन्मयतासक्ति–**रामहिं देखि एक अनुरागे।**

चितवत चले जाहिं मग लागे ॥

शरणागत वत्सलता–

ह्वै है कहा विभीषन की गति रही सोक भरि छाती।

तुलसी की भक्ति पद्धति में शरणागत के छः प्रकार भी उपलब्ध होते हैं जिनके नाम हैं–अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, गौप्तृत्व वरण, रक्षा का विश्वास, कारुण्य और आत्म निक्षेप।

विनय-पत्रिका के निम्न पद में तुलसी ने यह संकल्प व्यक्त किया है कि मेरी अब तक की आयु तो व्यर्थ में बीत गई किन्तु शेष आयु का मैं सदुपयोग करूँगा, राम के चरणों में मन-मधुकर को बसाऊँगाः

नोट

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।

राम कृपा भव निसा सिरानी जागे फिरि न डसैहौं।

यहां 'अनुकूल के प्रति संकल्प' नामक शरणागति का प्रकार व्यंजित है। इसी प्रकार जो बातें प्रभु से दूर ले जाती हैं, उनके त्याग का संकल्प ही प्रतिकूल का परित्याग है। तुलसी जैसे भक्त को प्रभु की शक्ति एवं सामर्थ्य पर पूरा विश्वास रहता है। वे जानते हैं कि प्रभु हर हाल में उनकी रक्षा करेंगे। इसे रक्षा का विश्वास कहा जाता है, यथाः

कौन की आस करै तुलसी जो पै राखिहै राम तो मारिहै को रे?

इस विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तुलसी अप्रतिम भक्त हैं। उनकी भक्ति दास्य भाव की है जिसमें दैन्य की प्रधानता है। उन्हें प्रभु राम की शक्ति एवं सामर्थ्य पर पूरा विश्वास है। वे राम के प्रति अटल श्रद्धा एवं परम विश्वास से युक्त हैं। वे संसार को त्यागकर प्रभु की शरण में जाने के लिए मन को बार-बार समझाते हैं। तुलसी की भक्ति पद्धति में राम के प्रति अनन्यता दिखाई पड़ती है। चातक को वे प्रेम और भक्ति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मानते हैं। उन्हें मुक्ति की आकांक्षा नहीं है। वे प्रभु से अद्वैत भाव के आकांक्षी नहीं हैं क्योंकि भक्ति के लिए द्वैत की आवश्यकता रहती है। वे सच्चे अर्थों में राम के परम भक्त कहे जा सकते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी की भक्ति पद्धति पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है–''गोस्वामी जी की भक्ति पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है–उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। न उसका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से। धर्म तो उसका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं।''

सगुण भक्ति करने वाले लोग ईश्वर को भीतर और बाहर सर्वत्र मानकर उसकी छटा व्यक्त जगत के बीच देखते हैं। प्रेम के वशीभूत होकर भगवान कहीं से भी प्रकट हो सकते हैं, ऐसी उनकी मान्यता है। इसी से गोस्वामी जी कहते हैं :

पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिए तें।

तुलसी की भक्ति साधना गुह्य नहीं है और न वह केवल उच्च वर्ण तक सीमित है। ऊंच-नीच, छोटे-बड़े सब उस प्रभु की भक्ति के अधिकारी हैं क्योंकि वह 'ईश्वर' केवल प्रेम को पहचानता है :

रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु सो जाननि हारा ॥

भक्ति के लिए मन, वचन एवं कर्म की शुद्धता, सत्यता एवं निश्छलता चाहिए। तुलसी भक्ति मार्ग को ऐसा सीधा-सादा स्वाभाविक मार्ग बताते हैं जो सबके के लिए समान रूप से खुला है। इस पर न किसी का एकाधिकार है और न यह किसी के लिए प्रतिबन्धित है। भक्ति की चरम सीमा पर पहुंचने पर भी तुलसी ने भक्ति के लोक-पक्ष का त्याग नहीं किया था। आचार्य शुक्ल के अनुसार–**''लोक संग्रह का भाव उनकी भक्ति का एक अंग था।.. ...यही कारण है कि इनकी भक्ति रस भरी वाणी जैसी मंगलकारिणी मानी गई वैसी और किसी की नहीं।''**

तुलसीदास जी ने ज्ञान-भक्ति का विशद निरूपण रामचरितमानस में किया है। उत्तरकाण्ड में वे ज्ञानमार्ग को 'कृपाण की धार' के समान कठिन तथा भक्तिमार्ग को सहज, सरल एवं सुगम बताते हैं। यद्यपि ईश्वर को दोनों मार्गों से पाया जा सकता है किन्तु भक्तिमार्ग अपनी सरलता एवं सुगमता के साथ अधिक लोकप्रिय है। तुलसी ने अपनी भक्ति पद्धति में इसी भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया है। उनकी भक्ति में एक ओर तो शास्त्रोक्त विधियों का पूर्ण समावेश है तो दूसरी ओर वह जनसाधारण में भी अपनी सरलता के कारण लोकप्रिय हुई है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ..... को तुलसीदास की भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता बताई है।
2. तुलसीदास के राम ..... के अवतार हैं।
3. मन को डांट-डपटकर सही मार्ग पर लाने का प्रयास जब भक्त करता है, तो उसे ..... कहा जाता है।

नोट

12.2 सारांश (Summary)

तुलसी की भक्ति में 'दैन्य' की प्रधानता है। इस दैन्य के कारण वे अपने इष्टदेव राम को महान एवं सर्वगुण सम्पन्न तथा स्वयं को तुच्छ, छोटा, खोटा और पापी मानते हैं। तुलसी की भक्ति पद्धति में 'नवधा भक्ति' का पूर्ण स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। नवधा भक्ति के अन्तर्गत श्रवण, कीर्तन, पाद सेवन, अर्चना, वन्दना, दास्य, नाम स्मरण और आत्म निवेदन आते हैं। तुलसी के राम विष्णु के अवतार हैं जो भक्तों की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिए तथा दुष्टों का विनाश करने के लिए बार-बार अवतार लेते हैं। तुलसी की भक्ति पद्धति में राम के प्रति अनन्यता दिखाई पड़ती है। चातक को वे प्रेम और भक्ति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मानते हैं। तुलसी की भक्ति साधना गुह्य नहीं है और न वह केवल उच्च वर्ण तक सीमित है। तुलसीदास जी ने ज्ञान-भक्ति का विशद निरूपण रामचरितमानस में किया है।

12.3 शब्दकोश (Keywords)

1. मंगलाचरणः कार्यारम्भ के पूर्व की जाने वाली मंगल स्तुति, मांगलिक मंत्र, ग्रंथ के आरंभ में लिखा जाने वाला मांगलिक पद।

2. आसक्तिः मन का लगाव, प्रेम, अनुराग, लिप्तता।

12.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' विश्वभर में प्रसिद्ध है, इस कथन के समर्थन में अपने मत प्रस्तुत कीजिए।

2. तुलसीदास रामभक्त हैं। ज्ञान और वैराग्य उनकी भक्ति के साधन हैं। स्पष्ट कीजिए।

3. तुलसीदास की भक्ति पद्धति में शरणागत के कितने प्रकार उपलब्ध हैं?

4. तुलसीदास की राम भक्ति की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. सर्वांगपूर्णता 2. विष्णु 3. भर्त्सना

12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. रामचरितमानस–साहित्यिक मूल्यांकन–*पाण्डेय सुधाकर, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली।*
2. गोस्वामी तुलसीदास–*मीना मनिशिखा, प्रभात प्रकाशन।*
3. तुलसी दास–*शिवसरन राम, एस.राम, वेदाम बुक्स।*

नोट

इकाई 13

जायसी की लेखन कुशलता

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
13.1 जायसी का काव्य-कौशल
13.2 जायसी की काव्यगत विशेषताएँ (भावपक्ष एवं कलापक्ष)
13.3 सारांश (Summary)
13.4 शब्दकोश (Keywords)
13.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
13.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- जायसी की लेखन कुशलता जानने में।
- जायसी का परिचय जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

जायसी का पूरा नाम मलिक मोहम्मद जायसी था। उनका जन्म 1492 ई. में राय बरेली जिले के जायस नगर (उ.प्र.) में हुआ था। वह एक सूफी कवि थे। वे अमेठी के राजा के आग्रह पर अमेठी चले आए थे। इनकी चार रचनाएँ प्राप्त होती हैं–पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, चित्रलेखा।

'पद्मावत' महाकाव्य जायसी की प्रसिद्धि का आधार है। इसमें चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती के मिलन का वर्णन है। जायसी सूफी कवि थे। हिन्दी की प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा में उनका शीर्ष स्थान है। उनका पद्मावत हिन्दी साहित्य की एक मूल्यवान कृति है। यह एक प्रबन्ध-काव्य है।

13.1 जायसी का काव्य-कौशल

मलिक मुहम्मद जायसी को प्रेममार्गी निर्गुण-भक्ति शाखा के कवियों में प्रतिनिधि कवि माना जाता है। अब तक जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत', 'आखिरी कलाम, चित्र रेखा', 'कराहनामा', 'मसलानामा' आदि रचनाएँ प्राप्त हुई। इन ग्रन्थों में पद्मावत' सर्वोत्कृष्ट रचना है। वास्तविकता यह है कि जायसी की काव्य प्रतिभा का विकसित रूप 'पद्मावत' में ही मिलता है।

जायसी निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और जिसकी प्राप्ति के लिए 'प्रेम' की ईश्वर से वियोग की तीव्र प्रेमानुभूति ही भक्त को साधना-पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती है। यह भक्ति-भावना 'पद्मावत' में प्रभावशाली रूप से व्यक्त हुई है। जायसी का विरह-वर्णन और विरह-भावना की अनुभूति अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। यदि यह कहा जाए कि सौन्दर्य एवं विरह की अभिव्यक्ति में जायसी हिन्दी-काव्य-जगत के सर्वाधिक प्रतिभाशाली कवि थे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। जायसी एक रहस्यवादी कवि थे। इन्होंने 'पद्मावत' में स्थूल पात्रों के माध्यम से सूक्ष्म दार्शनिक भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है। इसमें ईश्वर एवं जीव के पारस्परिक प्रेम की अभिव्यंजना दाम्पत्य भाव से की गई है।

नोट

जायसी की प्रबन्ध-पटुता–आचार्य वामन ने काव्य के दो भेद बताए हैं।–अनिबद्ध काव्य और निबद्ध काव्य। इनमें से प्रथम मुक्तक-काव्य और दूसरे को प्रबन्ध-काव्य कहा गया।

अनिबद्ध मुक्तक निबद्ध प्रबन्ध रूपमिति प्रसिद्ध। **आचार्य शुक्ल** ने प्रबन्ध काव्य के रूप पर विचार करते हुए स्वीकार किया कि–''यदि प्रबन्ध काव्य एक वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता।'' प्रबन्ध काव्य की विशेषताओं का उल्लेख आनन्दवर्धनाचार्य ने इस प्रकार किया–

1. ऐतिहासिक या कल्पित कथावस्तु।
2. प्रासंगिक कथाओं की योजना।
3. नाटकीय सन्धियों की योजना।
4. रसात्मक वर्णनों की प्रधानता।
5. अलंकारों की रसानुरूप योजना।

आचार्य शुक्ल ने जायसी ग्रंथावली की भूमिका में प्रबन्ध काव्य के लिए दो ही आवश्यक तत्व माने हैं–(1) इतिवृत्तात्मकता, (2) रसात्मकता।

जायसी कृत पद्मावत एक सफल प्रबन्ध काव्य है, इसमें कोई संदेह नहीं। **आचार्य शुक्ल** ने स्वयं उसे 'प्रबन्ध काव्य' कहा है और डॉ. शंभुनाथ सिंह ने उसे 'रोमांचक महाकाव्य' की संज्ञा दी है। यहाँ हम जायसी की प्रबन्ध-पटुता पर विचार करेंगे।

1. कथानक–इसकी कथा मिश्रित है। आचार्य शुक्ल के अनुसार पूर्वार्द्ध तो बिल्कुल कहानी है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर है। पर इसमें एक सुसम्बद्ध कथा राजा रत्नसेन और पद्मावती के विरह-मिलन की है। इसकी कथा सानुबन्ध है क्योंकि आदि, मध्य और अवसान शृंखलाबद्ध एवं सुसम्बद्ध हैं और कथा-प्रवाह आद्यांत प्रवाह के साथ चला है। अतः ऐतिहासिक और कल्पित कथा का सुसम्बद्ध निर्वाह बराबर हुआ है।

2. प्रासंगिक कथाएँ–आचार्यों ने प्रबन्ध काव्य की कथा वस्तु के दो प्रकार बताए हैं–आधिकारिक और प्रासंगिक। मुख्य कथा आधिकारिक होती है–जैसे राज रत्नसेन और पद्मावती की कथा। जो कथाएँ बीच-बीच में या प्रासंगिक रूप में आती हैं, वे प्रासंगिक कथाएं कहलाती हैं। सफल प्रबन्ध काव्य की यह विशेषता है कि ये प्रासंगिक कथाएं मूल कथा से मेल खाती हुई, उसको गति प्रदान करती हुई, उसके उत्कर्ष में सहायक होनी चाहिए। पद्मावत की सभी प्रासंगिक कथाएं इसी कोटि की हैं। हीरामन तोता का प्रसंग, राघव-चेतन का वृत्तान्त, शिव-पार्वती का आगमन आदि।

टास्क महाकाव्य के नायक के लक्षणों का वर्णन कीजिए।

3. रसात्मकता या रोचकता–रोचकता का आधार रसात्मक वस्तु वर्णन ही है। पद्मावत में रोचक और सरस दोनों ही प्रकार के प्रसंग पर्याप्त मात्रा में आए हैं। जिसमें से कुछ प्रमुख ये हैं–मायके में कुमारियों की स्वच्छन्द क्रीड़ा, नागमती का शोक, रत्नसेन की सूली-व्यवस्था, समुद्री दुर्घटना, गोरा-बादल युद्ध आदि। **डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत** ने इस प्रसंग में स्वीकार किया है कि उसकी सबसे बड़ी विशेषता है–जायसी का इतिवृत्तात्मक तथा रसात्मक वर्णनों में सन्तुलन बनाए रखना। यह इस प्रकार सम्भव हो सका कि उन्होंने एक दो इतिवृत्तात्मक प्रसंग देकर कोई न कोई रसात्मक प्रसंग उपस्थित कर दिया है।

4. नायक–प्रायः यह कहा जाता है कि शास्त्रीय लक्षणों के अनुरूप पद्मावत के नायक का स्वरूप नहीं है। पर ये लक्षण तो महाकाव्य के लिए निर्धारित हैं। फिर रत्नसेन राजा हैं, वीर हैं और प्रेमी हैं, कष्ट सहने में सक्षम हैं, साहसी हैं, अभिजात कुल जन्मा हैं। अतः उसकी यह विशेषताएँ उसे धीरोदात्तनायक के समकक्ष ला खड़ा करती हैं।

5. उद्देश्य–अरस्तु के अनुसार महाकाव्य में किसी पूर्ण कार्य का उल्लेख होना चाहिए। उसी को हमारे यहाँ उद्देश्य माना गया है। यह तो निर्विवाद सत्य है कि इसका उद्देश्य लौकिक प्रेम वर्णन के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना और प्रिय मिलन के अनन्त शक्ति की अनुभूति की व्यंजना ही है। जायसी ने अपने इस 'कार्य' या उद्देश्य के आधार पर समस्त कथाओं की योजना की है, उन्हें नाटकीय सन्धियों के आधार पर सूत्रबद्ध भी किया है।

नोट

6. अरस्तु की मान्यता और जायसी की प्रबन्ध पटुता–अरस्तु ने प्रबन्ध काव्य के लिए कुछ बातों को महत्व दिया है–(i) कथानक की नाटकीय ढंग से योजना, (ii) उसमें किसी पूर्ण कार्य का उल्लेख, (iii) कथा में प्रारम्भ, मध्य एवं अवसान की योजना, (iv) कथानक का सरल या मिश्रित, नैतिक या कष्टपूर्ण होना, (v) प्रासंगिक कथाओं की सुसम्बद्ध योजना, (vi) भव्य एवं आकर्षक शैली।

इन कसौटियों के आधार पर यदि जायसी के पद्मावत पर विचार किया जाए तो हमें पता चलेगा कि कथा की पूर्ण नाटकीय ढंग से योजना हुई है। अचानक हीरामन का आगमन और रत्नसेन का पद्मावती के वियोग में घर छोड़कर निकल जाना, इसका प्रमाण है। अन्य कथाएं भी इसी प्रकार हैं। पूर्ण कार्य की चर्चा ऊपर हो चुकी है, पद्मावती जन्म से राजा रत्नसेन के सिंहलगढ़ पहुंचने की कथा 'आदि भाग' ही कही जा सकती है, पद्मावती विवाह से लेकर सिंहलद्वीप से प्रस्थान तक की कथा को 'मध्य भाग' माना जाता है, और राघव चेतन के चितौड़ छोड़कर जाने से लेकर पद्मावती के सती होने की घटना 'अन्त' भाग ही है। कथा सरल भी है, मिश्रित भाषा है और कष्टपूर्ण भी। नागमती वियोग, समुद्र घटना, रत्नसेन के कष्ट, युद्ध और सती जैसी घटनाएँ नैतिक और कष्टपूर्ण स्थितियों को उभारती हैं। प्रासंगिक कथाएँ सम्बद्ध हैं और शैली भव्य और आकर्षक है।

नोट्स अरस्तु ने प्रबंध-काव्य की कथा के चयन हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदुओं का उल्लेख किया है–कथानक की नाटकीय ढंग से योजना, कथानक में किसी कार्य का पूर्ण उल्लेख, कथा में प्रारंभ, मध्य एवं अवसान की योजना, कथानक का सरल या मिश्रित, नैतिक एवं कष्टपूर्ण होना, प्रासंगिक कथाओं की सुसंबद्ध योजना, भव्य एवं आकर्षक शैली।

अतः भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही कसौटियों पर कसकर यदि हम पद्मावत के प्रबन्ध-शिल्प पर विचार करें तो यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि वह एक सफल प्रबन्ध काव्य है जिसमें जायसी की प्रबन्ध पटुता की श्रेष्ठता के दर्शन होते हैं।

13.2 जायसी की काव्यगत विशेषताएँ (भावपक्ष एवं कलापक्ष)

कलापक्ष के अनेक आधार हैं और जायसी महाकवि थे, अतः महाकाव्य के आधार पर उनके कलापक्ष पर विवेचन होना अपेक्षित है। परंतु यहाँ महाकाव्य का नहीं जायसी के कलापक्ष का विवेचन प्रस्तुत है। जिसमें भाव-रस, भाषा, अलंकार छन्द आदि पर विचार किया जाएगा।

1. भाव और रस परिपाक–जायसी ने पद्मावत में सभी रसों का उत्कर्ष दिखाया है और उसका वर्णन अपने पूर्ण आवेग के साथ किया है। शृंगार रस की व्यंजना करने में जायसी ने कोई कोताही नहीं की है, उनका विप्रलम्भ शृंगार तो उत्कृष्ट कोटि का है। नागमती का वियोग हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

शृंगार के बाद शान्त रस की व्यंजना भी जायसी ने पर्याप्त मात्रा में की है, निर्वेद की स्थिति इन पंक्तियों से स्पष्ट उभरती दिखायी देती है–जिनमें संसार की असारता मृत्यु के आते ही सब कुछ यहां छोड़कर चले जाना है, व्यंजना कितने सहज ढंग से हुई है–

''काल आइ देखराई सौटी। उढ़ि जिड चला छोड़िकै माटी।
हाथ झारि जस चला जुआरी। तजा राज होइ चला भिखारी।''

करुण रस की व्यंजना भी हुई है–पद्मावती के सिंहलगढ़ से विदाई के अवसर पर करुण रस की व्यंजना हुई है–

रवितभाय न बहुरत बारा। रतन चला, घर भी अन्धियारा।

इसी प्रकार वात्सल्य, भयानक, अद्भुत, वीर, वीभत्स और रौद्र रसों की भी व्यंजना अत्यन्त सफल ढंग से हुई है। केवल हास्य का अभाव है, इन रसों की सफल योजना के साथ विभाव अनुभाव, संचारी भावों की भी मनोरम झाँकियाँ उभरी हैं, जायसी की भावुकता ने भाव वर्णन में सजीवता ला दी है।

नोट

2. जायसी की भाषा–जायसी की भाषा की निम्न विशेषताएँ हैं–

(क) अल्पाक्षर-प्रयोग–डॉ. वासुदेव शरण के अनुसार उनकी भाषा की एक विशेषता 'अल्पाक्षर विशिष्टता' भी है। अर्थात् जहां अधिक शब्द कहने हो वहां कम शब्दों से काम चलाना–

''चन्दन चोप पवन असपीऊ।

भइड चतुर सम कस भा जीऊ।।''

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा है कि जायसी ने यहाँ 'चन्दन' 'चोप' शब्द का प्रयोग करके 'स्त्री रूपी चन्दन रस' की व्यंजना की है।

(ख) अवधी की मिठास–जायसी की भाषा की मधुरता की प्रशंसा **आचार्य शुक्ल** ने इन शब्दों में की है–''जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है पर उसका माधुर्य निराला है–उसमें अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिए हुए है।'' नागमती वियोग खंड में लोक-प्रचलित बारहमासा शैली के प्रयोग के समय तो भाषा बेइन्तहा मधुर हो गयी है–

''बरसै मेह, चुवहि नैनाहे। छपर-छपर होइ रहि बिनु नाहा।''

(ग) लोकोक्ति-मुहावरे–जायसी की भाषा का माधुर्य लोक प्रचलित लोकोक्ति और मुहावरों की छटा से भी निखरा है–

''कान दुरै जेहि पहिरे, का लेइ वरबसो सनि।''

इसी प्रकार एक मुहावरा भी देखिए–

''जौ लहि मथे न कोई देह जीऊ।

सूधी अंगरि न निकसै घीऊ।।''

3. अलंकार योजना–जायसी ने सादृश्य मूलक अलंकारों में से उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, सांगरूपक, रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग अधिक किया है, जिसने अर्थ गांभीर्य में सहायक होकर भावोत्कर्ष भी किया है, उत्प्रेक्षा उनका सबसे प्रिय अलंकार है इसका प्रयोग बड़ा मनोहारी हुआ है–

''पुहुप सुगन्ध करहिं ऐति आसा।

मकु हिरकाइ लेइ हम पासा।।''

इसके अतिरिक्त प्रायः सभी प्रचलित अलंकारों का सहज प्रयोग जायसी ने किया है–व्यतिरेक, तद्गुण, विभावना, संदेह आदि की योजना भी बड़े मधुर ढंग से हुई है। अतिशयोक्ति की छटा देखिए–

''तेहि कपोल बाएँ तिल परा।

जेइ तिल देखा जा तिल तिल जरा।।''

4. छन्द-योजना–जायसी ने दोहा-चौपाई शैली अपनाई है। यह शैली अपने में कितनी प्रभावी रही है, इसका अन्दाज दो बातों से लगाया जा सकता है कि पद्मावत की सरसता का आधार जहां उसकी भाव-व्यंजना है, वहीं इस शैली ने उसमें जान-सी डाल दी है, दूसरे तुलसीदास को भी यह शैली इतनी पसन्द आयी कि रामचरितमानस की रचना भी इसी दोहा-चौपाई शैली में हुई है।

क्या आप जानते हैं

जायसी ने पद्मावत की रचना दोहा एवं चौपाई शैली में की है। बाद में इसी शैली को तुलसी ने रामचरितमानस में अपनाया है।

नोट

निष्कर्ष–पद्मावत का भावपक्ष, कलापक्ष दोनों ही पर्याप्त समुन्नत और पुष्ट है उसकी प्रबन्धात्मकता, भाषा, अलंकार योजना, प्रतीक विधान सभी उत्कृष्ट हैं, जायसी इस दृष्टि से सफल और उत्कृष्ट कवि कहे जा सकते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

1. जायसी ने पद्मावत की रचना दोहा-चौपाई शैली में की है।
2. पद्मावत की नायिका रानी नागमती है
3. जायसी सूफी काव्य परंपरा के कवि हैं।
4. पद्मावत प्रबंध-काव्य है।
5. जायसी ने पद्मावत में फारसी की मसनवी शैली का अनुसरण किया है।
6. पद्मावत फारसी भाषा में लिखा गया महाकाव्य है।

13.3 सारांश (Summary)

जायसी सूफी कवि थे। हिन्दी की प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा में उनका शीर्ष स्थान है। उनका पद्मावत हिन्दी साहित्य की एक मूल्यवान कृति है। वह एक प्रबन्ध-काव्य है। जायसी कृत पद्मावत एक सफल प्रबन्ध काव्य है।

भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही कसौटियों पर कसकर यदि हम पद्मावत के प्रबन्ध-शिल्प पर विचार करें तो यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि वह एक सफल प्रबन्ध काव्य है जिसमें जायसी की प्रबन्ध पटुता की श्रेष्ठता के दर्शन होते हैं। जायसी ने पद्मावत में सभी रसों का उत्कर्ष दिखाया है और उसका वर्णन अपने पूर्ण आवेग के साथ किया है। शृंगार रस की व्यंजना करने में जायसी ने कोई कोताही नहीं की है, उनका विप्रलम्भ शृंगार तो उत्कृष्ट कोटि का है।

जायसी की भाषा की मधुरता की प्रशंसा **आचार्य शुक्ल** ने इन शब्दों में की है–''जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है पर उसका माधुर्य निराला है–उसमें अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिए हुए है।'' नागमती वियोग खंड में लोक-प्रचलित बारहमासा शैली के प्रयोग के समय तो भाषा बेइन्तहा मधुर हो गई है।

13.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **रसात्मकताः** काव्य को पढ़कर होने वाली रस की अनुभूति यथा-करुण रस, शांत रस आदि
2. **कथानकः** काव्य का मूल या सार तत्व, यह गद्य में भी लागू होता है।

13.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. पद्मावत की प्रबंध योजना का वर्णन कीजिए।
2. जायसी की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. पद्मावत के भावपक्ष एवं कलापक्ष का विवेचन कीजिए।

नोट

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. (सत्य)
2. (असत्य)
3. (सत्य)
4. (सत्य)
5. (सत्य)
6. (असत्य)

13.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. पद्मावत–*मलिक मुहम्मद जायसी कृत।*
2. जायसी ग्रन्थावली–*शुक्ल रामचंद्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।*
3. मलिक मुहम्मद जायसी–*बी.सी. पाण्डेय, विनोद प्रकाशन।*

नोट

इकाई 14

पद्मावत : कथासार अथवा सारांश

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
14.1 पद्मावत की संक्षिप्त कथा-वस्तु
14.2 सारांश (Summary)
14.3 शब्दकोश (Keywords)
14.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
14.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- पद्मावत की संक्षिप्त कथा-वस्तु से परिचित होंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

पद्मावत फारसी में प्रचलित मसनवी शैली के आधार पर लिखा गया महाकाव्य है। अतएव इसकी कथा भारतीय महाकाव्यों की तरह सर्गों में विभाजित न होकर खण्डों में विभाजित है। यहाँ प्रत्येक खण्ड की कथा का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

14.1 पद्मावत की संक्षिप्त कथा-वस्तु

पद्मावत की रचना मसनवी पद्धति में होने के कारण सर्गों के स्थान पर 57 खण्डों में विभक्त हैं। इन खंडों की कथा का सारांश प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. स्तुति खंड–प्रथम खंड का आरम्भ जायसी ने सृष्टि-कर्ता की स्तुति या स्मरण से किया है। भरतार द्वारा वैविध्यमयी सृष्टि की रचना का वर्णन होने के उपरान्त पैगम्बर मुहम्मद और उनके चार मित्रों (खलीफ़ाओं) का वर्णन किया है। तदुपरान्त उन्होंने तत्कालीन शासक शेरशाह के रूप, गुण और यशादि का वर्णन करते हुए अपनी गुरु-परम्परा पर प्रकाश डाला है। अंततः कवि ने अपना जीवन-परिचय देते हुए अपने चार मित्रों का उल्लेख किया है और कृति के रचनास्थल और काल के साथ-साथ पद्मावत की कथा का सारांश भी प्रस्तुत किया है।

2. सिंहलद्वीप-वर्णन खंड–द्वितीय खंड में सिंहलद्वीप (पद्मावती की जन्मस्थली) को कवि ने सातों द्वीपों में सर्वश्रेष्ठ चित्रित करते हुए वहाँ की नारियाँ पद्मिनी जाति की दिखाई हैं। सिंहलद्वीप का शासक गन्धर्वसेन उल्लिखित किया गया है, जिसका वैभव स्वर्ग-तुल्य है। वहाँ के बागों में आम, कटहल आदि अनेक प्रकार के वृक्ष दिखाए गए हैं।

3. जन्म खंड–इस खंड की कथा गन्धर्वसेन की रानी चम्पावती के गर्भ से पद्मावती के जन्म लेने से आरम्भ की गई है। इस अत्यधिक सुन्दरी कन्या का नाम कन्या-राशि में जन्म लेने के कारण पद्मावती रखा जाता है। बारह वर्षीया पद्मावती को सयानी हुई समझकर गन्धर्वसेन ने सात खंड वाले धवलगृह में रहने का प्रबन्ध कर दिया। पद्मावती के साथ उसकी कुछ सहेलियाँ और एक चतुर तोता भी रहता था, जिसका नाम हीरामन था। वह तोते के साथ धर्म-चर्चा किया करती थी। पद्मावती पूर्ण-यौवना हो चुकी थी। किंतु गंधर्वसेन ने उसका विवाह नहीं किया,

नोट

क्योंकि वह अपने समकक्ष किसी को मानता ही नहीं था। पद्मावती अपना विवाह न होने की कसक को हीरामन से कह देती थी जिसका राजा को पता चल गया और उसका यह अभिप्राय ग्रहण किया कि हीरामन तोता ही पद्मावती को इस प्रकार की अनुचित बातें सिखाता रहता है। फलतः उसने हीरामन तोते को मारने की आज्ञा दे दी। पद्मावती द्वारा छिपा लेने के कारण हीरामन की प्राण रक्षा तो हो गई किंतु वह अन्यमनस्क होकर वहाँ से चले जाने की इच्छा व्यक्त करने लगा। पद्मावती के आग्रह के कारण वह वहाँ से जा न सका।

4. मानसरोदक खंड–एक बार पूर्णमासी के अवसर पर पद्मावती अपनी समवयस्काओं के साथ मानसरोवर में स्नान करने गई। पद्मावती के अनिंद्य सौन्दर्य को देखकर सरोवर भी मोहित हो गया। पद्मावती को साक्षी बनाकर सखियाँ जल में एक खेल खेलने लगीं जिसकी शर्त यह थी कि जो खेल में हार जाएगी, वह हार देगी। एक सखी उस खेल में निपुण न होने के कारण हार खो बैठी और रोने लगी। सब सखियों ने डुबकियाँ लगा लगाकर उस हार को खोजने का प्रयत्न किया। अंततः पद्मावती के पद-स्पर्श को धन्य मानते हुए सरोवर ने स्वयं ही हार ऊपर तैरा दिया जिसे लेकर सभी प्रसन्न हो गईं।

5. सुआ-खंड–पद्मावती अपनी सखियों के साथ उछल कूद में लगी हुई असावधान थी कि मौके का लाभ उठाकर हीरामन तोता उड़ गया। वन के पक्षियों ने हीरामन का स्वागत किया। कुछ दिनों तक तो वह वन-पक्षियों के साथ आनन्दपूर्वक रहा, किन्तु अन्त में एक बहेलिए द्वारा पकड़ लिया गया।

6. रत्नसेन-जन्म खंड–प्रस्तुत खंड में कृति नायक रत्नसेन का चित्तौड़गढ़ के चित्रसेन नामक राजा के यहाँ जन्म लेना चित्रित किया गया है। पंडितों और ज्योतिषियों ने उसके भविष्यफल के विषय में बताया कि यह बड़ा प्रतापी राजा होगा। उन्होंने यह भी बताया कि रत्नसेन जोगी बनकर सिंहलद्वीप जाएगा और वहाँ से पद्मावती को विवाह करके चित्तौड़ लाएगा। यह ऐश्वर्य में राजा भोज और विक्रमादित्य के तुल्य होगा।

7. बनिजारा खण्ड–इस सातवें खण्ड में चित्तौड़गढ़ का एक बनजारा व्यापार के लिए सिंहलद्वीप जाते चित्रित किया गया है। उसके साथ एक गरीब ब्राह्मण भी सिंहलद्वीप गया। वह किसी से थोड़ा-सा कर्ज ले गया था। वह सिंहलद्वीप की हाट में बहुमूल्य वस्तुओं में से कुछ भी नहीं खरीद सका तभी वह बहेलिया हीरामन को लेकर हाट में आया और उस ब्राह्मण ने हीरामन को खरीद लिया। इस समय तक रत्नसेन चित्तौड़ का राजा बन चुका था। जब उसने यह सुना कि सिंहलद्वीप से लौटे व्यापारी बहुमूल्य वस्तुओं के साथ एक उत्तम गुणों से ओत-प्रोत तोता भी लाए हैं, तो उसने तोते को अपने यहाँ मँगवा लिया। हीरामन से परिचय पूछने पर उसने उत्तर दिया कि मैं वेदज्ञ पंडित हूँ और तुम्हें पद्मावती से मिलवा दूंगा। यह सुनकर राजा ने हीरामन को एक लाख में खरीद लिया।

8. नागमती-सुआ खण्ड–हीरामन को राजमहल में रहते हुए कुछ दिन ही व्यतीत हुए थे कि एक दिन राजा शिकार खेलने गया। रत्नसेन की पत्नी नागमती अत्यधिक रूपवती थी। उसने शृंगार किया और अपने सौन्दर्य को दर्पण में देखकर उस पर गर्व करते हुए हीरामन के समीप आकर बोली कि तुमने सिंहलद्वीप आदि स्थानों की स्त्रियाँ देखी हैं। बताओ क्या सिंहलद्वीप में कोई मुझसे भी ज्यादा सुन्दर नारी है? पद्मावती की सुन्दरता को याद करते हुए हीरामन ने सोचा कि जिस सरोवर में हँस नहीं आता वहाँ लोग बगुला को ही हँस समझते है। उसने उत्तर दिया कि वैसे तो उसी स्त्री को सुन्दर समझना चाहिए जिसे उसका प्रियतम प्रेम करता हो, किन्तु जहाँ तक शारीरिक सुन्दरता का प्रश्न है तुम सिंहलद्वीप की नारियों की समता नहीं कर सकतीं। नागमती को आशंका हुई कि कहीं यदि इस तोते ने ये बातें मेरे पति से कह दीं तो वे मुझे छोड़कर सिंहलद्वीप चले जायेंगे। अतः उसने धाय को उस तोते को मारने का आदेश दे दिया। धाय को राजा का भय था अतः उसने तोते को मारने के स्थान पर छिपा दिया। राजा के आने पर तोते की खोज हुई। नागमती ने तोते को मारने का कारण बताया तो राजा को और अधिक क्षोभ हुआ। उपयुक्त अवसर पाकर धाय ने तोते को लाकर राजा को सौंप दिया।

9. राजा-सुआ-संवाद खण्ड–राजा रत्नसेन के पूछने पर हीरामन ने बता दिया कि मैं सिंहलद्वीप की पद्मावती का तोता हूँ। सिंहलद्वीप अपने आप में बहुत श्रेष्ठ है और पद्मावती का सौन्दर्य तो अनुपमेय है। यह सुनकर राजा के हृदय में पद्मावती के प्रति प्रेम-भाव जाग्रत हो गया और तोते के मना करने पर भी प्रेम-मार्ग का अनुयायी बन गया।

10. नख-शिख-खण्ड–इस खंड में कवि ने हीरामन तोते के माध्यम से राजा रत्नसेन के समक्ष पद्मावती के नख-शिख (नाखून से लेकर सिर तक) शृंगार का वर्णन किया है।

नोट

11. प्रेम-खण्ड–पद्मावती के नख-शिख-वर्णन को सुनकर रत्नसेन बेहोश हो गया। होश आने पर वह रोने लगा कि मैं तो अमरपुर में पहुँच गया था अब पुनः कहाँ आ गया हूँ? हीरामन तोते ने उसे समझाया कि राज्य के वैभव-सुख को भोगने वाले तुम प्रेम के कठिन मार्ग के पथिक नहीं बन सकते, क्योंकि उसके लिए तो साधना अपेक्षित होती है। राजा के मन में भी यह बात समा गई कि प्रेम-मार्ग पर चलने के लिए मुझे राजसी सुखों का परित्याग कर देना चाहिए।

12. जोगी खण्ड–पद्मावती की अधिप्राप्ति के लिए रत्नसेन ने राज्य छोड़कर योगियों जैसा वेष धारण कर लिया और यात्रा की तैयारी आरम्भ कर दी। ज्योतिषियों ने उसे समझाया भी कि अभी जाने का शुभ मुहूर्त नहीं है, किन्तु रत्नसेन ने यह कहकर उनकी बात नहीं मानी कि प्रेम के मार्ग पर चलने वाला घड़ी-मुहूर्त नहीं देखता। रत्नसेन की माता और पत्नी नागमती ने उसे जाने से रोकने की चेष्टा की किन्तु उनका प्रयत्न निष्फल रहा। उसके साथ सोलह सौ अन्य कुंवर भी हो लिए और वे सब ही राजा के साथ सिंहलद्वीप की ओर चल पड़े।

13. राजा-गणपति संवाद खण्ड–एक महीने तक की निरंतर यात्रा के पश्चात् रत्नसेन अपने साथियों के साथ समुद्र-तट पर पहुँच गया। राजा गणपति ने रत्नसेन के आगमन का समाचार सुना तो वह मिलने आया और रत्नसेन का बड़ा आतिथ्य किया। रत्नसेन ने जब गणपति से समुद्र पार करने के लिए नावें माँगी तो उसने रत्नसेन से समुद्र के मार्ग को भयंकर बताते हुए सिंहलद्वीप न जाने का आग्रह किया। रत्नसेन का उत्तर था कि प्रेम-मार्ग पर पथिक इस प्रकार के विघ्नों की चिन्ता नहीं किया करता।

14. बोहित खण्ड–राजा रत्नसेन को सिंहलद्वीप जाने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ देखकर गणपति ने नावें प्रदान कर दीं और रत्नसेन अपने साथी कुंवरों के साथ रवाना हो गया।

15. सात-समुद्र खण्ड–राजा रत्नसेन सत्य पर स्थिर था जिसके प्रतापस्वरूप वह क्षार-समुद्र, क्षीर समुद्र, उदधि समुद्र, सुरा समुद्र और किलकिला समुद्र को साहसपूर्वक पार करते हुए सातवें समुद्र मानसर में आ पहुँचा। यहां आकर सभी को बड़ा आनन्द अनुभव हुआ।

16. सिंहलद्वीप खण्ड–सिंहलद्वीप पहुँच जाने पर वहाँ के सुन्दर वातावरण को देखकर राजा ने तोते से पूछा कि हे गुरु सुग्गे! हम कौन से सुन्दर स्थान पर आ गए हैं? प्रत्युत्तर में हीरामन ने राजा को सिंहलद्वीप के विषय में बताया। उसने राजा को बताया कि माघ मास की पंचमी को पद्मावती शिव-मन्दिर में दर्शन करने आएगी, तब तुम उसको देख सकते हो। राजा को शिव मन्दिर के समीप छोड़कर हीरामन पद्मावती के महल में चला गया।

17. मंडप गमन खण्ड–राजा के हृदय में पद्मावती विषयक विरह-भाव उद्दीप्त हो उठा। वह बीस सहस्र शिष्यों के साथ शिव-मंडप में पहुँचकर स्तुति करने लगा। तब मन्दिर से एक अस्फुट स्वर सुनाई दिया कि मनुष्य प्रेम द्वारा ही बैकुंठ को प्राप्त कर सकता है। तदन्तर रत्नसेन बाघम्बर पर बैठकर पद्मावती के नाम का बार-बार जाप करने लगा।

टास्क पद्मावत की कथा किस शैली में लिखी गई है?

18. पद्मावती वियोग खण्ड–रत्नसेन के प्रेम के प्रभावस्वरूप पद्मावती का हृदय विचलित होने लगा उसको अज्ञात भाव से ही विरह की अनुभूति होने लगी। यौवन के आगमन पर प्रियतम की अप्राप्ति से खिन्न पद्मावती ने अपने हृदय की खिन्नता अपनी धाय की बतलाई। धाय ने उसे धैर्य रखने का परामर्श दिया और कहा कि यह विरह तभी तक है जब तक तुझको प्रिय की प्राप्ति नहीं होती।

19. पद्मावती-सुआ भेंट खण्ड–पद्मावती की विरहानुभूति की दशा में ही हीरामन तोता उससे जाकर मिला। जिससे पद्मावती को पर्याप्त समाश्वासन मिला। कुशल-क्षेम और हाल चाल पूछने पर हीरामन ने उसको अपना अब तक का पूरा वृत्तान्त सुनाया। यह सुनकर पद्मावती को पहले तो गर्व हुआ कि योगी उसके योग्य नहीं है किन्तु हीरामन के मुख से प्रशंसा सुनकर उसका हृदय द्रवित हो उठा, उसने हीरामन को आश्वासन दिया कि मैं बसन्त-पूजा के बहाने रत्नसेन से मिलूँगी। हीरामन ने यह समाचार रत्नसेन को पहुँचा दिया।

नोट

20. वसंत खण्ड–वसन्त-पंचमी का पर्व आने पर पद्मावती अपनी सखियों के साथ देव-पूजन के लिए आई और देवता से अपने वर के लिए मनौती करने लगी। उससे सखियों ने कहा कि इधर योगियों का एक समूह ठहरा हुआ है। उनका गुरु बत्तीस लक्षणों से ओत-प्रोत कोई राजकुमार प्रतीत होता है। पद्मावती उधर गई तो उसके अनिंद्य सौन्दर्य की आभा से रत्नसेन बेहोश हो गया। पद्मावती ने उसके मस्तक पर चंदन लगाया और फिर उसके हृदय पर चंदन से यह लिखकर लौट गई कि योगी! तुम भिक्षा लेना नहीं जानते। अब तुम्हें सातवें आकाश पर (सत खंडे महल पर) आना पड़ेगा। रात को पद्मावती ने स्वप्न देखा कि सूर्य और चन्द्रमा का मिलन हुआ है, जिसे उसकी सखियों ने एक शुभ स्वप्न बतलाया।

21. राजा रत्नसेन-सती खण्ड–होश में आने पर पद्मावती को न देखकर रत्नसेन को बड़ा दुःख हुआ और वह स्वयं को धिक्कारने लगा। अतः उसने चिता में जलकर मरने का संकल्प किया क्योंकि उसने जिस पद्मावती की प्राप्ति के लिए योग धारण किया था वह उसे उपलब्ध नहीं हुई थी। हनुमान ने शिव को बताया कि आपके मंडप में जाकर राजा जलकर मर रहा है।

22. पार्वती-महेश खण्ड–मंडप में योगी नरेश के जलने की बात सुनकर शिव पार्वती सहित उपस्थित हुए और उससे जलने का कारण पूछा। कारण ज्ञात होने पर पार्वती ने उसकी परीक्षा ली जिसमें रत्नसेन खरा उतरा। शिव ने राजा को आश्वासन देते हुए बताया कि सिंहलगढ़ उसी प्रकार टेढ़ा है जैसे तुम्हारा शरीर। यदि तुम साहसपूर्वक दुर्ग पर चढ़ने का प्रयास करोगे, तो पद्मावती के समीप पहुँचकर कृतकृत्य हो सकते हो। यह तभी संभव है जब तुम प्राणों का मोह त्यागकर इस दिशा में प्रयत्नशील हो।

23. राजा-गढ़-छेंका खण्ड–रत्नसेन को शिवजी ने एक सिद्धि-गुटका भी प्रदान किया। रत्नसेन ने गणेश का स्मरण करके अपने चेलों के साथ गढ़ को घेर लिया। इससे मचे कोलाहल की सूचना सिंहलगढ़-नरेश तक पहुँचाई गई। राजा ने दूत भेजकर योगियों के इस आचरण का कारण पूछा और कहलाया कि योगी यहाँ से लौट जाएँ। रत्नसेन ने उत्तर दिया कि मैं पद्मावती रूपी भिक्षा प्राप्त करने आया हूँ। यह सुनकर राजा क्रुद्ध तो बहुत हुआ किन्तु उसने योगियों को इसलिए नहीं मरवाया कि उसके मंत्रियों ने इसके विरुद्ध परामर्श दिया था। रत्नसेन ने अपनी वियोग-व्यथा से ओत-प्रोत एक चिट्ठी हीरामन के माध्यम से पद्मावती को भेजी। विरह-विदग्धा पद्मावती ने भी एक पत्र रत्नसेन को भेजा और सूचना दी कि अब तो तुम मुझे जीवन की बाजी लगाकर ही प्राप्त कर सकते हो। पद्मावती का यह संदेश पाकर रत्नसेन को मानो पुनर्जीवन की प्राप्ति हुई है वह गढ़ के द्वार खोलकर ऊपर चढ़ गया। चारों ओर शोर मच गया कि गढ़ में चोर घुस आए हैं।

24. गन्धर्वसेन-मंत्री खण्ड–सिंहलगढ़-नरेश गंधर्वसेन ने अपने मंत्रियों से इस विषय में परामर्श किया कि इन योगियों को कैसे दण्ड दिया जाना चाहिए। निश्चय यह हुआ कि योगियों को चोरों की भाँति सूली का दण्ड दिया जाना चाहिए। योगियों के विरुद्ध एक बड़ी सेना भेजकर उन्हें पकड़ लिया गया। प्रेम-पंथ के पथिक योगियों ने अपनी गिरफ़्तारी का विरोध नहीं किया। पद्मावती तो पहले ही रत्नसेन के वियोग में दुःखी थी। जब उसे रत्नसेन को बंधनग्रस्त कराए जाने का हीरामन के माध्यम से समाचार ज्ञात हुआ तो वह बहुत दुःखी हुई। हीरामन उसे समाश्वासन देने लगा।

25. रत्नसेन-सूली खण्ड–बन्दी बनाए गए सभी योगियों को सूली चढ़ाने के स्थान पर लाया गया। सूली के लिए सर्वप्रथम रत्नसेन को चढ़ाने गया तो वह मंसूर की भाँति प्रसन्न था। लोग उसके सौन्दर्य को देखकर चकित हो रहे थे। तभी वहाँ एक भाट के वेश में आए हुए शिवजी ने गंधर्वसेन को बताया कि यदि तुम इसे सूली दोगे तो भयंकर युद्ध छिड़ जाएगा। उन्होंने रण का घंटा बजाया और तुरन्त ही देवों की सेना एकत्रित होने लगी। गंधर्वसेन के क्रुद्ध होने पर शिव जी ने उसको समझाया कि यह जोगी चित्तौड़गढ़ का राजा है और बड़ा ही गुणवान है। इसको हीरामन तोता सिंहलद्वीप बुलाकर लाया है। हीरामन तोते से पूछने पर गंधर्वसेन को रत्नसेन की सत्यता का पता चल गया। उसने रत्नसेन को बन्धन मुक्त कर दिया और पद्मावती तथा रत्नसेन के विवाह की तैयारियाँ होने लगीं।

26. रत्नसेन-पद्मावती विवाह खण्ड–रत्नसेन से विवाह की तैयारियाँ होते देखकर पद्मावती बहुत प्रसन्न हुई। सारा नगर भली-भाँति सजाया गया। रत्नसेन ने अपना योगियों वाला वेष त्यागकर नयी साज-सज्जा धारण की। अत्यन्त उल्लास और आनन्द के वातावरण में उनका विवाह सम्पन्न हो गया।

नोट

27. पद्मावती-रत्नसेन भेंट खण्ड–पद्मावती और रत्नसेन की सात खंडों के ऊपर सोने के लिए सेज सजाई गई जो अतीव मृदुल उपकरणों से विनिर्मित थी। अपने उन्माद सौन्दर्य की हिलोरें लेती हुई पद्मावती रत्नसेन के समीप पहुँची।

28. रत्नसेन-साथी खण्ड–रत्नसेन के साथी उससे मिलने को समुत्सक थे। अतः वह उनकी सभा में गया। रत्नसेन ने अपने साथियों को भी सोलह हजार पद्मिनी नारियों के साथ सुख के अन्य सामान प्रदान करवा दिए।

29. षट्-ऋतु वर्णन खण्ड–पद्मावती ने अपनी सहेलियों को बुलाकर अपना तथा उनका शृंगार किया और सभी नव-विवाहिताएँ अपने-अपने पतियों के समीप काम-युद्धार्थ गईं। उन्होंने छहों ऋतुओं में स्व-पतियों के साथ सुख-भोग किए।

30. नागमती-वियोग खण्ड–रत्नसेन के वियोग में तड़पती नागमती की विवशता का तीसवें खंड में जायसी ने बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। उसका शरीर सूखकर काँटे जैसा हो गया था और उसके मुख से सदैव पी-पी की ध्वनि निकलती रहती है। बारह-मासा के साथ में जायसी ने नागमती की वर्ष के बारहों महीनों में कैसी कातर दशा हो गई थी, इस तथ्य का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है।

नोट्स नागमती वियोग खण्ड हिंदी साहित्य में अद्वितीय है। जायसी ने वर्ष के बारह महीनों में नागमती के विरह की अलग-अलग दशाओं का वर्णन किया है।

31. नागमती-संदेश खण्ड–नागमती स्वपति के वियोग में घूम-घूम कर रोती कलपती रही किन्तु उसको किसी ने भी धैर्य नहीं बंधाया। अंततः एक पक्षी को उस पर दया आ गई और उसने पूछा कि तुम्हें क्या दुःख है। जिसके कारण अर्द्धरात्रि में भी इस प्रकार कलप रही हो। नागमती ने उसे अपनी दयनीय विरहावस्था सुनाने के साथ-साथ यह भी बताया कि उसके पति की माता भी पुत्र-वियोग में उसी प्रकार तड़पकर मर रही है जैसे श्रवणकुमार के वियोग में उसके माता-पिता मर गए थे। वह पक्षी नागमती के वियोग के संदेश को लेकर सिंहलद्वीप आ गया। उसके विरह की आग से वहाँ की वस्तुएँ जलने लगीं। भाग्यवश रत्नसेन भी शिकार खेलता हुआ उधर आ गया और उसने वह वियोग-संदेश सुन लिया। इस संदेश को सुनकर रत्नसेन का अंतर्मन चित्तौड़ को लौटने के लिए व्याकुल हो उठा। उसको उदास देखकर गंधर्वसेन ने उसकी उदासी का कारण पूछा।

32. रत्नसेन-विदाई खण्ड–रत्नसेन ने पद्मावती के पिता को अपनी उदासी का कारण बताया कि कैसे मैंने एक पक्षी से अपनी पत्नी और माता की वियोग-व्यथा का वर्णन सुना है उसे गंधर्वसेन और पद्मावती ने समझाया किन्तु रत्नसेन पर उनका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। हारकर गंधर्वसेन ने रत्नसेन को बहुत-सा द्रव्य देकर पद्मावती को उसके साथ विदा कर दिया। उस अपार द्रव्य को देखकर रत्नसेन का अंतर्मन गर्व से भर गया। उसी समय समुद्र एक विप्र के वेश में उससे दान लेने आया किन्तु रत्नसेन तो लोभ के वशीभूत हो उठा था।

33. देश-यात्रा खण्ड–समुद्र द्वारा याचक के रूप में दान माँगने पर राजा रत्नसेन ने उसकी इच्छापूर्ति नहीं की। परिणाम यह निकला कि समुद्र उससे रुष्ट हो गया और जहाज आधे मार्ग पर ही पहुँच पाए थे कि जोरदार समुद्री तूफान आ गया। वहाँ एक राक्षस माँझी बनकर आया और उसके जहाज को एक गंभीर भंवर में फंसाकर डुबो दिया। रत्नसेन और उसके साथी तितर-बितर हो गए।

34. लक्ष्मी समुद्र खण्ड–समुद्र में डूबने के कारण पद्मावती अचेतावस्था में बहती जा रही थी कि उसको सागर की पुत्री लक्ष्मी ने पकड़ लिया और सचेत कर लिया। संज्ञा को प्राप्त होने पर पद्मावती सती होने का भाग्रह करने लगी किन्तु लक्ष्मी को उसे पर दया आ गई अतः उसने पद्मावती और रत्नसेन का सम्मिलन करा दिया। बहुत से रत्न आदि लेकर वे पुनः चित्तौड़ की ओर चल दिए।

35. चित्तौड़ आगमन खण्ड–रत्नसेन के चित्तौड़ लौटते ही चतुर्दिक आनन्दोल्लास परिव्याप्त हो गया। नागमती की भी प्रसन्नता का पारावार नहीं था। रात्रि समय राजा नागमती के समीप गया।

नोट

36. नागमती-पद्मावती विवाद खंड–सपत्नीजन्य ईर्ष्या भाव के कारण नागमती और पद्मावती में विवाद छिड़ गया तो रत्नसेन ने स्नेह-सिक्त वाक्य कहकर दोनों को शान्त किया।

37. रत्नसेन संतति खण्ड–इस सैंतीसवें खण्ड में नागमती द्वारा नागसेन को पद्मावती द्वारा कंवलसेन को जन्म देने का वर्णन किया गया है।

38. राघवचेतन देश निकाला खण्ड–पद्मावती के साथ उसके मायके से राघवचेतन नामक एक विद्वान् आया था जो रत्नसेन के दरबार में रहता था। रत्नसेन ने उससे रुष्ट होकर उसे चित्तौड़ से निष्कासित कर दिया। राघवचेतन रुष्ट होकर दिल्ली के तत्कालीन सुल्तान अलाउद्दीन से जा मिला।

39. राघवचेतन दिल्ली आगमन खण्ड–दिल्ली जाकर राघवचेतन ने अलाउद्दीन का मन स्त्रियों के रूप की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया। उसने सुल्तान से पद्मिनी स्त्रियों की प्रशंसा की।

40. स्त्री-भेद वर्णन खण्ड–प्रस्तुत चालीसवें खण्ड में राघवचेतन द्वारा सुल्तान अलाउद्दीन को पद्मिनी, चित्रणी, शंखिनी और हस्तिनी जाति की स्त्रियों के लक्षण सुनाए जाते हैं।

41. पद्मावती रूप-चर्चा खण्ड–राघवचेतन ने अलाउद्दीन को चित्तौड़ की रानी पद्मावती की ओर आकृष्ट करने के लिए उसका नख-शिख वर्णन सुनाया जिसे सुनकर अलाउद्दीन बेहोश हो गया। होश में आने पर उसने पद्मावती को प्राप्त करने का निश्चय किया और राघवचेतन को बहुत सा पुरस्कार दिया। अलाउद्दीन ने सरजा के माध्यम से रत्नसेन को यह पत्र भिजवाया कि वह पद्मावती को अलाउद्दीन को सौंप दे।

42. बादशाह-चढ़ाई खण्ड–सरजा से मिले अलाउद्दीन के पत्र को पढ़कर रत्नसेन अत्यधिक क्रुद्ध हुआ और सुल्तान को संदेश भिजवा दिया कि यदि वह चाहे तो आक्रमण कर दे, मैं आक्रमण का मुँह तोड़ उत्तर देने को तैयार हूँ। रत्नसेन के इस समाचार को पाकर सुल्तान ने आक्रमण की तैयारी कर दी। दूसरी ओर रत्नसेन ने भी अपनी सेना तैयार कर ली।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. रानी पद्मावती सिंहलद्वीप के राजा ..... की पुत्री थी।
2. राजा रत्नसेन ..... का राजा था।
3. पद्मावती के तोते का नाम ..... था।
4. रत्नसेन की पहली पत्नी का नाम ..... था।
5. दिल्ली का सुल्तान ..... रानी पद्मावती के रूप-सौंदर्य पर मोहित हो गया था।

43. राजा-बादशाह युद्ध खंड–अलाउद्दीन और रत्नसेन की सेनाएँ एक-दूसरे के सामने डट गईं और उनमें भयंकर युद्ध होने लगा। अलाउद्दीन की विशाल सेना का सामना करने में स्वयं को असमर्थ पाकर रत्नसेन ने अपने दुर्ग की शरण ली। अलाउद्दीन ने किले का घेरा डाल दिया और दुर्ग की ओर तोपों के गोले और तीरों की वर्षा की जाने लगी। भीतर से रत्नसेन ने भी इन आक्रमणों का करारा जवाब दिया। इस प्रकार युद्ध चलते बारह वर्ष के लगभग बीत गए। सुल्तान को दिल्ली लौटने का बुलावा आ गया।

44. राजा-बादशाह मेल खंड–बादशाह ने युद्ध बन्द करके सरजा को सन्धि के लिए प्रेषित किया। सरजा ने छलपूर्वक रत्नसेन को सन्धि के लिए प्रस्तुत करके बादशाह को सन्धि की सूचना भिजवा दी। अलाउद्दीन ने किला देखने की इच्छा व्यक्त की और रत्नसेन ने उसको भोजन पर आमंत्रित कर लिया।

45. बादशाह-भोज खण्ड–इस खण्ड में बादशाह के भोज के लिए बनाई गई विभिन्न प्रकार की वस्तुओं मांस-मछली, चावल, तरकारी आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

46. चित्तौड़गढ़-वर्णन खण्ड–भोजन के उपरान्त बादशाह प्रभात में दुर्ग देखने गया तो वहाँ की समृद्ध बस्ती को देखकर चकित रह गया। गोरा और बादल ने रत्नसेन को समझाया कि वह बादशाह से हेल-मेल न बढ़ाए। किन्तु

नोट

राजा ने उनकी बातों की ओर ध्यान नहीं दिया। भोजन करते हुए अलाउद्दीन पद्मावती की एक झलक पाने को व्याकुल रहा। अंततः राजा के साथ शतरंज खेलते हुए उसने अपने समीप रखे दर्पण में पद्मावती का प्रतिबिम्ब देख लिया और बेहोश हो गया।

47. रत्नसेन बंध खण्ड–भोजन के उपरान्त रत्नसेन, सुल्तान को विदा करने के लिए उसके साथ-साथ दुर्ग के द्वार तक आया तो सुल्तान ने उसे छलपूर्वक बन्दी बना लिया।

48. पद्मावती नागमती-विलाप खण्ड–इस खंड में रत्नसेन को बन्दी बना लिए जाने पर नागमती और पद्मावती द्वारा विलाप करने का मार्मिक वर्णन किया गया है।

49. देवपाल दूती खण्ड–कुंभलनेर का देवपाल नामक नरेश रत्नसेन के प्रति शत्रुता का भाव रखता था। रत्नसेन को बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाने का समाचार पाकर कुमुदिनी नामक दूती को पद्मावती को फुसलाकर कुम्भलनेर ले आने के लिए भेजा। दूती ने पद्मावती को बताया कि वह सिंहलद्वीप की ही है और उसके पिता के पुरोहित की पुत्री है। बाद में जब उसने पद्मावती को फुसलाना चाहा तो उसके मंतव्य को जानकर पद्मावती ने रुष्ट होकर उसे पिटवाकर भगा दिया।

50. बादशाह दूती खंड–सुल्तान अलाउद्दीन ने भी एक नर्तकी को दूती के रूप में पद्मावती के समीप भेजा। यह नर्तकी एक जोगिन के वेश में चित्तौड़ आई और पद्मावती पर अपना प्रभाव जमाने में सफल हो गई, किन्तु अंततः उसका रहस्योद्घाटन हो गया और उसे भगा दिया गया।

51. पद्मावती-गोरा-बादल संवाद खण्ड–स्व-पति के बन्दी बनाए जाने से दुःखी पद्मावती उसकी मुक्ति के लिए बहुत-से शूर-सामन्तों से मिली। अंततः गोरा और बादल ने राजा को छुड़ा लाने का वचन देते हुए तदर्थ पान का बीड़ा खाकर यह उत्तरदायित्व संभाल लिया।

52. गोरा-बादल युद्ध-यात्रा खण्ड–बादल की माता ने बादल को युद्ध में जाने से रोकने का प्रयास किया। किन्तु उसने अपने वीरोचित उत्तरों से माता को समझा-बुझा दिया। बादल का अभी गौना होकर आया था तो उसकी पत्नी ने भी उसे छोड़कर न जाने की प्रार्थना की, किन्तु बादल को उसके संकल्प से विचलित नहीं कर सकी।

53. गोरा-बादल युद्ध खण्ड–गोरा और बादल ने आपस में परामर्श करके छल का प्रत्युत्तर छल से देने का निश्चय किया। उन्होंने सोलह सौ पालकियाँ सज्जित करवाकर उनमें हथियारों से लैस योद्धा बिठा दिए। एक पालकी को पद्मावती के नाम से सजाकर उसमें लोहार बैठा दिया गया और यह कहते हुए दिल्ली की ओर चल पड़े कि रानी पद्मावती दिल्ली जा रही है। दिल्ली पहुँचकर उन्होंने बन्दीगृह के रक्षक को दस लाख मुद्राएँ देकर अपनी ओर मिला लिया और उसके माध्यम से सुल्तान को यह संदेश पहुँचवाया कि पद्मावती आपके पास आने से पूर्व स्वपति से मिलकर उसे दुर्ग की चाबियाँ सौंपने की आज्ञा चाहती हैं। सुल्तान की ओर से यह आज्ञा मिल जाने पर लोहार ने राजा के बन्धन काट दिये और पूर्व-नियोजित कार्यक्रम के अनुसार रत्नसेन बादल की संरक्षता में चित्तौड़ की ओर रवाना हो गया। इस षड्यंत्र का रहस्य खुलने पर शाह की सेना ने रत्नसेन को बन्दी बनाने के लिए पीछा करना चाहा किन्तु बादल का चाचा गोरा अपने साथियों के साथ उसे तब तक आगे बढ़ने से रोके रहा, जब तक कि रत्नसेन चित्तौड़ नहीं पहुँच गया। अंततः गोरा वीरगति को प्राप्त हो गया।

54. बन्धन-मोक्ष, पद्मावती मिलन खण्ड–रत्नसेन के बन्दीगृह से छूट आने की प्रसन्नता में पद्मावती ने बादल के भुजदंडों की पूजा करने के साथ-साथ घोड़ों के पैरों को अपने हाथों से दबाकर अपनी कृतज्ञता और हर्ष प्रकट किया। अवकाश मिलने पर उसने रत्नसेन को देवपाल द्वारा दूती भेजने का समाचार सुना दिया।

क्या आप जानते हैं

पद्मावत की नायिका 'पद्मावती' अलौकिक सत्ता का प्रतीक है तथा नायक रत्नसेन जीवात्मा का प्रतीक है।

नोट

55. रत्नसेन-देवपाल युद्ध खण्ड–रत्नसेन को देवपाल द्वारा दूती भेजे जाने का समाचार पाकर बड़ा क्रोध आया और उस पर आक्रमण कर दिया। वह द्वन्द्व युद्ध में बुरी तरह घायल हो गया किन्तु देवपाल उसके हाथों मारा गया। चित्तौड़ की ओर लौटते हुए रत्नसेन रास्ते में बेहोश हो गया।

56. राजा रत्नसेन बैकुण्ठवास खण्ड–चित्तौड़ आते-आते रत्नसेन का स्वर्गवास हो गया। मरते समय उसने गढ़ की रक्षा का भार बादल को सौंप दिया।

57. पद्मावती-नागमती सती खण्ड–पद्मावती और नागमती दोनों ही साध्वी नारियाँ स्व-पति के शव के साथ सती हो गईं। पति के प्रेम में रंगी हुई वे उससे स्वर्ग में जा मिलीं। तभी बादशाह की सेना ने दुर्ग घेर लिया। चित्तौड़ के योद्धाओं ने युद्ध में वीरगति प्राप्त की जबकि स्त्रियों ने जौहर कर लिया। अलाउद्दीन के हाथ रानी पद्मावती की राख ही लगी।

उपसंहार–पद्मावत की कथा का उपसंहार करते हुए कवि ने इस कथा-सम्बन्धी एक रहस्य का उद्घाटन किया है जिससे पूरी कथा एक अन्योक्ति सिद्ध होती है। इस रहस्योद्घाटन के अनुसार ऊपर जो चौदह भुवन हैं वे मनुष्य के अंदर ही है, तन चित्तौड़ है, मन राजा है, हृदय सिंहल है, बुद्धि पद्मिनी है, गुरु सुआ है, नागमती दुनिया-धंधा है, राघवचेतन शैतान है और अलाउद्दीन माया है। जो इस कथा को सुनता है वह प्रेम की पीर से व्याकुल हो उठता है। अंततः अपनी वृद्धावस्था पर खेद व्यक्त करते हुए कवि ग्रन्थ को समाप्त करता है।

14.2 सारांश (Summary)

सूफ़ी कवि जायसी ने भारतीय पौराणिक कथा का आधार लेकर फ़ारसी की मसनवी शैली में पद्मावत महाकाव्य की रचना की।

पद्मावत महाकाव्य की नायिका पद्मावती सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री थी। पद्मावती के पास एक पालतू तोता (सुआ) था। जो सदैव उसके साथ ही रहता था। एक बार वह तोता उड़कर चित्तौड़गढ़ के राजा रत्नसेन के पास पहुँच गया। तोते ने राजा से सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती के अनुपम सौंदर्य का वर्णन किया। रत्नसेन मन ही मन पद्मावती के सौंदर्य पर मोहित हो गया। पद्मावती के प्रति प्रेमभाव जागृत होने के पश्चात् रत्नसेन अपनी पत्नी नागमती व चित्तौड़गढ़ छोड़कर सिंहलद्वीप के लिए रवाना हो गया। मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाएँ पार करते हुए वह अंततः पद्मावती को प्राप्त कर लेता है। दूसरी ओर दिल्ली का सुल्तान अलाउद्दीन रानी पद्मावती के प्रेम में आसक्त होकर उसे प्राप्त करने हेतु रत्नसेन से युद्ध करता है। युद्ध में रत्नसेन मारा जाता है और अंत में रानी नागमती व रानी पद्मावता रत्नसेन की चिता के साथ सती हो जाती है।

14.3 शब्दकोश (Keywords)

1. नख-शिख वर्णनः इसके अंतर्गत नायिका के नाखून से लेकर सिर तक के सभी शृंगारों का वर्णन किया जाता है। रीति-काल में नख-शिख वर्णन की परंपरा रही है।

2. षट्-ऋतु वर्णनः नायक-नायिका के विशेष संदर्भ में छः ऋतुओं का वर्णन कवि करता है।

14.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. जायसीकृत पद्मावत महाकाव्य का कथा सार लिखिए।

2. पद्मावत की कथा के महत्त्वपूर्ण खंडों की कथा विस्तार से लिखिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. गंधर्वसेन
2. चित्तौड़गढ़
3. हीरामन
4. नागमती
5. अलाउद्दीन

नोट

14.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. पद्मावत–*मलिक मुहम्मद जायसी कृत।*
2. जायसी ग्रन्थावली–*शुक्ल रामचंद्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।*
3. मलिक मुहम्मद जायसी–*बी.सी. पाण्डेय, विनोद प्रकाशन।*

नोट

इकाई 15

सिंहलद्वीप-वर्णन खण्ड : व्याख्या भाग

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
15.1 सिंहलद्वीप-वर्णन खण्डः सप्रसंग व्याख्या
15.2 सारांश (Summary)
15.3 शब्दकोश (Keywords)
15.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
15.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- पद्मावत के सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड का आशय समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

यह पद्मावत का द्वितीय खण्ड है। इस खण्ड में सिंहलद्वीप (पद्मावती की जन्मस्थली) को कवि ने सातों द्वीपों में सर्वश्रेष्ठ चित्रित करते हुए वहाँ की नारियाँ पद्मिनी नारी दिखाई देती हैं। सिंहलद्वीप का शासक गन्धर्वसेन उल्लिखित है। जिसका वैभव स्वर्ग तुल्य है। वहाँ के बागों में आम, कटहल, आदि अनेक प्रकार के वृक्ष लगाए गए हैं। यहाँ सिंहलद्वीप-वर्णन खण्ड की सप्रसंग व्याख्या प्रस्तुत है।

15.1 सिंहलद्वीप-वर्णन खण्डः सप्रसंग व्याख्या

सिंघल दीप कथा अब गावौं। औ सो पदुमिनी बरनि सुनावौं।1।
बरन क दरपन भांति बिसेखा। जेहि जस रूप सो तैसेइ देखा।2।
धनि सो दीप जहं दीपक नारी। औ सो पदुमिनी दइअ अवतारी।3।
सात दीप बरनहिं सब लोगू। एकौ दीप न ओहि सरि जोगू।4।
दिया दीप नहिं तस उजियारा। सरां दीप सरि होइ ना पारा।5।
जंबू दीप कहौं तस नाहीं। पूज न लंक दीप परिछाहीं।6।
दीप कुसस्थल आरन परा। दीप महुस्थल मानुस हरा।7।
सब संसार परथमैं आए सातौं दीप।
एकौ दीप न उत्तिम सिंघल दीप समीप॥2/1॥

शब्दार्थ – बरनि=वर्णन करके। बरन क =वर्णन की। बिसेखा=विशेषता। जस=जैसा। दइअ=दिया है। अवतारी=ईश्वर। सरि=समता। जोगू=योग्य। दिया दीप=काठियावाड़ का समीपवर्ती दीउ नाम का द्वीप। सरां दीप = सरन नामक द्वीप (सुमात्रा)। जंबू दीप = यह सम्भवतः एशिया महाद्वीप का द्योतक है क्योंकि भारतवर्ष इसी द्वीप का एक खंड माना गया है (इसका उल्लेख पुराण आदि ग्रंथों में मिलता है) लंक-दीप = यह वर्तमान लंका का वाचक माना

नोट

जा सकता है। आरन=जंगल। सिंघल दीप=सिंघल का सामान्यतः अर्थ लंका ग्रहण किया जाता है किन्तु यह जायसी द्वारा कल्पित द्वीप है। क्योंकि लंका का तो जायसी ने छठी पंक्ति में पृथक रूप में उल्लेख किया है। दीप महुस्थल= यह भी जायसी द्वारा कल्पित द्वीप है। मानुस हरा=मानवों से रहित।

संदर्भ – इन पंक्तियों में जायसी ने पद्मावती के जन्म-स्थल सिंहलद्वीप को सुन्दरता में अप्रतिम चित्रित किया है।

व्याख्या – अब मैं सिंहलद्वीप की कथा का वर्णन करता हूं और पद्मिनी का वर्णन सुनाता हूं। काव्य-वर्णन की विशेषता दर्पण की भांति होती है, उसमें जिसका जैसा रूप होता है, वह उसमें वैसा रूप देख सकता है। अर्थात् प्रत्येक पाठक अपनी भावनाओं के अनुरूप काव्य-वर्णन का भिन्न-भिन्न अर्थ ग्रहण कर सकता है। वह सिंहलद्वीप धन्य है जहां सौन्दर्य का दीपक की भांति प्रकाश विकीर्ण करने वाली नारियां हैं और ईश्वर ने उन्हें पद्मिनी जाति का बनाया है अथवा जहां ईश्वर ने पहिनी (पद्मावती) को जन्म दिया है। लोग सात द्वीपों का वर्णन किया करते हैं। किन्तु उसके समान एक भी द्वीप नहीं है। दिया नामक द्वीप में उसके समान प्रकाश नहीं है। सरन द्वीप भी उसकी समता करने में असमर्थ है। यदि उसके समान जम्बू द्वीप को बताऊं तो कहना पड़ता है कि वह भी उसके तुल्य नहीं है। लंकाद्वीप उसकी परछाई की भी समता नहीं कर सकता। कुशा या कुशास्थल नामक द्वीप जंगल में है जबकि मरुस्थल नामक द्वीप जनशून्य होने के कारण उसकी बराबरी नहीं कर सकता।

इस संसार में सर्वप्रथम इन्हीं सातों द्वीपों को माना जाता था, या इन्हीं द्वीपों की रचना की गई थी, किन्तु इनमें से एक भी द्वीप सिंहलद्वीप के समान उत्तम नहीं है।– सिंहलद्वीप अनुपमेय है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. इन पंक्तियों में जायसी ने जिन सात द्वीपों का उल्लेख किया है उन्हें कुछ विद्वानों ने द्वीपों के स्थान पर पद्मिनी जाति की नारी के सात अंगों की सुन्दरता का प्रतीक स्वीकार किया है, जो इस दृष्टि से और भी उचित प्रतीत होता है। स्वयं कवि ने ही यह संकेत कर दिया है।

"बरन का दरपन भांति बिसेखा। जेहि जस रूप सो तैसेइ देखा।"

इन द्वीपों के प्रतीकार्थ इस प्रकार हैं–दिया द्वीप = नेत्र। सरन दीप = कान। जम्बू द्वीप = जामुन जैसे काले केश। लंकाद्वीप = कटि प्रदेश। कुरु स्थल द्वीप (पाठान्तर कुंभस्थल द्वीप) = उरोज। कुश द्वीप = गुह्यांग का बालों से युक्त भाग। महुस्थल = गुह्यांग। कवि का अभिव्यंग्यार्थ यह प्रतीत होता है कि सिंहलद्वीप अर्थात् ब्रह्मरंध्र के महत्व की बराबरी नारी के सात द्वीप रूपी सात अंग नहीं कर सकते।

साहित्यिक सौन्दर्य – उपमा, प्रतीप अलंकार।

गंध्रपसेन सुगंध नरेसू। सो राजा यह ताकर देसू। 1।
लंका सुना जो रावन राजू। तेहू चाहि बड़ ताकर साजू। 2।
छप्पन कोटि कटक दर साजा। सबै छत्रपति ओरंगन्ह राजा। 3।
सोरह सहस घोर घोरसारा। सावंकरन बालका तुखारा। 4।
सात सहस हस्ती सिंघली। जिमि कबिलास एरापति बली। 5।
असुपती क सिरमौर कहावा। गजपती क आकुंस गज नावा। 6।
नरपति क कहाव नरिंदू। भुअपती क जग दोसर इंदू । 7।
अइस चक्कवै राजा चहूं खंड भै होइ।
सबै आइ सिर नावहिं सरबरि करै न कोई ॥2/2॥

शब्दार्थ–धगंध्रवसेन=गंधर्वसेन। सुगंध=यशस्वी। ताकर=उसका। चाहि=अधिक। कटक=सेना। दर=दल। ओरंगन्ह=सेवा करना। घोरसारा=अश्वशाला। बालका=बलवान। सावंकरन=श्यामकर्ण अर्थात् काले कानों वाले घोड़ों की जाति विशेष। तुखारा=तुषार देश के घोड़े। कबिलास=स्वर्ग। एरापति= इन्द्र का हाथी। असुपती=अश्वपति। दोसर=दूसरा। इंदू=इन्द्र। चक्कवै= चक्रवर्ती राजा। भै=भय। सरबरि=बराबरी।

संदर्भ–सिंहलद्वीप के नरेश गंधर्वसेन के बल-वैभव का वर्णन किया गया है।

नोट

व्याख्या–उस सिंहलद्वीप का नरेश गंधर्वसेन बड़ा ही यशस्वी राजा है। वह यहां का नरेश है और यह उसका देश है। लंका में जो रावण का राज्य सुना जाता है, गंधर्वसेन का राज्य उससे भी बढ़कर था। उसके यहां छप्पन करोड़ सेना थी और वह सब सिंहासनस्थ नरेशों का भी राजा अर्थात् चक्रवर्ती राजा था। उसकी अश्वशाला में सोलह हजार बलवान घोड़े थे, जो या तो श्यामकर्ण जाति के थे अथवा तुषार देश के थे। (आचार्य शुक्ल ने इस पंक्ति का पाठान्तर 'स्यामकरण अरु बांक तुखारा' ग्रहण किया है), उसके सात हजार सिंहली हाथी थे, जो स्वर्ग के हाथी ऐरावत के समान बलशाली थे। वह अश्वपति राजाओं में सर्वश्रेष्ठ था और ऐसे राजाओं को जो अपने यहां बहुत से हाथी रखते थे अपने समक्ष ऐसे झुकने को विवश कर देता था जैसा– अंकुश के सामने हाथी झुक जाता है। वह नरपतियों में नरेन्द्र कहलाता था और भूपतियों के लिए संसार में दूसरे इन्द्र के समान था।

वह ऐसा चक्रवर्ती नरेश था कि उसका आतंक चारों खण्डों में परिव्याप्त रहता था। देश-देशान्तर के सभी नरेश उसके सामने आकर सिर झुकाते थे और कोई भी उसकी समता नहीं कर सकता था।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. कबिलास=कैलाश, शिवलोक=जायसी शिवलोक में ही इन्द्र को भी मानते हैं, जैसे– "राजा कहै गरव कै हौ इन्द्र? सिवलोक।"

2. आईन-ए-अकबरी में राजाओं के चार भेद माने गए हैं–

(क) अश्वपति, (ख) गजपति, (ग) नरपति, (घ) गढ़पति।

3. असम, व्यतिरेक, उपमा अलंकार।

जबहि दीप निअरावा जाई। जनु कबिलास निअर भा आई।1।
घन अंबराउं लाग चहुं पासा। उठै पुहुमि हुति लाग अकासा।2।
तरिवर सबै मलै गिरि लाए। भै जंग छांह रैनि होइ छाए।3।
मलै समीर सोहाई छाहां। जेठ जाड़ लागै तेहि माहां।4।
ओही छांह रैनि होई आवै। हरिअर सबै अकास दिखावै।5।
पंथिक जौं पहुंचै सहि घामू। दुख बिसरै सुख होई बिसरामू।6।
जिन्ह वह पाई छांह अनूपा। बहुरि न आई सही यह धूपा।7।
अस अंबराउं सघन घन बरनि न पारौं अंत।
फूलै फरै छहूं रितु जानहु सदा बंसत।। 2/3 ।।

शब्दार्थ–निअरावा=समीप आया। कबिलास=कैलास, स्वर्ग। निअर=समीप। अंबराउं=आम का बाग। पुहुमि हुति=पृथ्वी से लेकर। लागै=लगाए गए हैं। ओही=उस। हरिअर=हरा। सहि=सहकारा। घामू=धूप। पंथिक=पथिक। पारौं=पाना। बरनि न पारौं अंत=वर्णन करके अन्त नहीं मिलता।

संदर्भ– यहां कवि जायसी सिंहल के आम के बागों का वर्णन करते हुए पारमार्थिक विश्राम पाने का संकेत कर रहे हैं।

व्याख्या– जब द्वीप के समीप आए तो ऐसा लगता है कि कैलाश समीप आ गया है। चारों ओर घनी अमराइयां लगी हैं वे इतनी विशाल हैं कि ऐसा लगता है मानो पृथ्वी से उठकर आकाश को स्पर्श करना चाहती हों। वहां के सब वृक्ष ऐसे सुरभित हैं मानो मलय गिरि से लाए गए हों। उनकी छाया इतनी सघन है कि संसार में उन्हीं के कारण रात्रि होती है। उस छाया में मलय वायु सुहावनी लगती है। वहां जेठ के महीने में भी जाड़ा रहता है। उस छाया में रात्रि सी हो आती है अर्थात् सघन छाया के कारण रात्रि जैसा अंधकार रहता है और वृक्षों की हरीतिमा के कारण आकाश भी हरा दिखलाई पड़ता है। वहां जो कोई भी मुसाफिर धूप सहकर पहुंचता है वह अपने ताप-जन्य दुःख को भूलकर आराम पा जाता है। जिसको एक बार वह छाया उपलब्ध हो जाती है, उसे फिर यहां आकर धूप नहीं सहन करनी पड़ती है।

वह आम का बाग इतना सघन है कि उसका वर्णन करके अन्त नहीं पाया जा सकता–उसकी सघनता वर्णनातीत है। वह छहों ऋतुओं में पुष्पित-फलित होता है और वहां सदैव वसन्त ऋतु ही छायी रहती है।

नोट

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. डॉ. त्रिगुणायत के शब्दों में "यह सम्पूर्ण अवतरण पूर्ण रहस्यात्मक है। यहां पर उस रहस्यात्मक लोक का वर्णन किया गया है जिसकी साधना में रहस्यवादी लगे रहते हैं। यह रहस्यलोक भावमूलक भी है और योगपरक भी। भावना की दृष्टि से इसे हम कवि की रहस्यपूर्ण भावमयी कल्पना मानते हैं योगी की दृष्टि से यह सहस्त्रारि का वर्णन है जो निश्चय ही बड़ा रहस्यपूर्ण है।"

2. 'जिन्ह पाई.... यह धूपा' में स्पष्ट रहस्यात्मक संकेत किया गया है।

3. उत्प्रेक्षा, संबंधातिशयोक्ति अलंकार।

फरे आंब अति सघन सुहाए। औ जस फरे अधिक सिर नाए।1।
कटहर डार पींड सों पाके। बड़हर सोउ अनूप अति ताके।2।
खिरनी पाकि खांड असि मीठी। जाबुं जो पाकि भंवर असि डीठी।3।
नरिअर फरे फरी खुरहुरी। फुरी जानु इन्द्रासन पुरी।4।
पुनि महु चुवैसो अधिक मिठासू। मधु जस मीठ पुहुप जस बासू।5।
और खजहजा आव न नाऊं। देखा सब रावन अंबराऊं।6।
लाग सबै जस अंब्रित साखा। रहै लोभाइ सोइ जोइ चाखा।7।
गुआ सुपारी जायफर सब फर फरे अपूरि।
आस पास घनि इंबिली औ घन तार खजूरि ॥2/4॥

शब्दार्थ – जस=जैसे। फरे=फले। कटहर=कटहल। पीड=तना। बड़हर=बड़हल। ताके=उसके। पाकि=पकी हुई। असि=जैसी। जांबु=जामुन। डीठी=दिखाई देती है। नरिअर=नारियल। खुरहुरी=एक बेल-विशेष। फुरी=फलो सें लदी। महु=महुआ। पुहुप=पुष्प। खजहजा=खाने योग्य। अंब्रित=अमृत। गुआ=एक तरह की सुपारी (यदि इसे गावा का अपभ्रष्ट रूप माना जाए तो अर्थ होगा अमरूद)। (शुक्ल जी ने इसका पाठान्तर लवंग स्वीकार किया है)। इंबिली=इमरी। तार=ताड़।

संदर्भ – सिंहलद्वीप के सघन बागों का वर्णन किया गया है।

व्याख्या – वहां के आमों के अत्यधिक सघन बाग फलों से युक्त हैं और वे जितनी अधिक मात्रा में फले हुए हैं उनकी डालियाँ उतनी ही अधिक झुकी हुई हैं। कटहल के वृक्ष शाखाओं से लेकर तनों तक फलों से लदे हुए थे। वहां के बड़हल के फल भी इस प्रकार अनोखे थे। खिरनियां पककर खांड जैसी मीठी हो गई थीं और जामुनों का रंग पकने पर भौंरो जैसा काला प्रतीत होता था। वहां के बागों में नारियल के वृक्ष और खुरहरी की बेलें भी फलों से युक्त थीं और वे बाग शोभा में इन्द्र-कानन जैसे प्रतीत होते थे। वहां के वृक्षों से जो पके महुए चू रहे थे वे अत्यधिक मीठे थे। उनमें से पुष्पों जैसी सुगन्ध आती थी जबकि वे शहद जैसे मीठे थे। वहां पर और भी इतनी प्रकार की मेवाएं थीं कि उनके नाम तक नहीं याद आते। इतने प्रकार के फल और मेवाएं तो रावण के ही बाग में देखी जा सकती हैं। शाखाओं पर लगे हुए फल और मेवाएं अमृत जैसी मीठी थीं। उन्हें जो भी चख लेता था, उनके प्रति वही मोहित हो उठता था।

वहां पर गुआ नामक सुपारी (अथवा पाठभेद के अनुसार लौंग और सुपारी) जायफल और नाना प्रकार के बहुत से फल लगे हुए थे। इन बागों के आस-पास इमली, ताड़ और खजूर के घने वृक्ष लगे हुए थे।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. प्रथम पंक्ति पर 'नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति गुणिनो जना' का प्रभाव है।

2. नाम परिगणनात्मक शैली में वृक्षों और फलों का वर्णन किया गया है।

3. उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकार।

बसहिं पंखि बोलहिं बहु भाषा। करहिं हुलास देखि कै साखा।1।
भोर होत बासहिं चुहचुही । बोलहिं पांडुक एकै तुही।2।
सारौ सुवा सो रहचह करहीं। गिरहिं परेवा और करबरहीं।3।
पिउ पिउ लागे करैं पपीहा। तुही तुही कह गुडुरू खीहा।4।

नोट

कुहू कुहू कोइल करि राखा। औ भिंगराज बोल बजु भाषा।5।
दही दही कै महरि पुकारा। हारिल बिनवै आपनि हारा।6।
कुहकहिं मोर सोहावन लागा। होइ कोराहर बोलहिं कागा।7।
जावंत पंखि कहे सब बैठे भरि अंबराउं।
आपनि आपनि भाषा लेहिं दइअ कर नांउ॥2/5॥

शब्दार्थ – पंखि=पक्षी। हुलास=उल्लास। भोर=प्रभात। बासहिं=बोलते हैं। चुहचुही=फुल सुंघनी। पांडुक=फाख्ता। एकै तुही=एक तू ही है। सारौ=मैना, सारिका। सुवा=तोता। रहचह करहीं=चहचहाते हैं। परेवा=कबूतर। करबरहीं=गुटरंगू की आवाज करते हैं। गुडुरू=एक पक्षी विशेष। खीहा= खीझता। भिंगराज=भृंगराज। जांवत=जितने। महरि=ग्वालनि। कोराहर=कोलाहल। दइअ=ईश्वर। नाउं=नाम।

व्याख्या – सिंहलद्वीप के बागों में नाना प्रकार के पक्षी बसते और तरह-तरह की बोलियां बोलते हैं वहां के वृक्षों की हरी-भरी और फलों से लदी शाखाओं को देखकर वे उल्लास व्यक्त करते हैं। प्रभात होते ही चुहचुही बोलने लगती है। पांडुक पक्षी 'एकै तुही' की ध्वनि निकालता है। मैना और तोता चहचहाते हैं। लोटन कबूतर जमीन पर धूल में लोटते और गुटरगूं करते हैं। पपीहा पक्षी पिउ-पिउ की बोली बोलता है। जबकि गुडुरू पक्षी तुही-तुही की ध वनि करता हुआ खीझता है। कोयल कुहू-कुहू की बोली बोलती है जबकि भृंगराज पक्षी बहुत सी बोलियां बोलता है। महरी (ग्वालिन) चिड़िया दही-दही की आवाज लगाती है और हारिल अपनी हालत का निवेदन करता है। कुहुकते हुए मोर बड़े ही मनभावा प्रतीत होते हैं। कौए बोलते हैं तो उनकी आनज में कोलाहल होने लगता है।

कवि कहता है कि मैंने उपर्युक्त जिन पक्षियों का नामोल्लेख किया है वे सब अमराई अर्थात् जहां बहुत से बाग लगे हुए हैं, में बैठे रहते हैं और अपनी-अपनी भाषा में उस ईश्वर के नाम का जाप करते रहते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. पक्षियों की बोली को सुनकर अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुसार श्रोता भिन्न-भिन्न अर्थ लगा सकते हैं। चूंकि जायसी का झुकाव आध्यात्मिकता की ओर है, अतः उन्हें पक्षी ईश्वर का नाम-स्मरण करते प्रतीत होते हैं।

2. पक्षियों के वर्णन में नाम-परिगणनात्मक शैली का आश्रय लिया गया है।

3. अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश और उत्प्रेक्षा अलंकार।

पैग पैग पर कुआं बावरी। साजी बैठक औ पावंरी।1।
औरु कुड बहु ठांवहिं ठांऊ। सब तीरथ और तिन्हके नाऊं।2।
मढ़ मंडप चहुं पास संवारे। जपा तपा सब आसन मारे।3।
कोई रिखेस्वर कोइ सन्यासी। कोइ रामजन कोइ मसवासी।4।
कोइ ब्रह्मचर्ज पंथ लागे। कोइ दिगम्बर आछहिं नांगे।5।
कोइ सरसुती सिद्ध कोइ जोगी। कोइ निरास पंथ बैठ बियोगी।6।
कोइ महेसुर जंगम जती। कोइ एक परखै देबी सती।7।
सेवरा खेवरा बानपरस्ती सिध साधक अवधूत।
आसर मारि बैठ सब जारि आतमा भूत॥2/6॥

शब्दार्थ – पैग पैग=कदम-कदम। बैठक=बैठने का स्थान, बेंचें। पांवरी=सीढ़ियाँ। कुंड=तालाब। ठांवहिं ठांऊ=स्थान-स्थान पर। मढ़=मठा। जपा तपा= जपी और तपस्वी। रिखेस्वर=महान ऋषि। मसवासी=एक माह तक व्रत रखने वाला। दिगम्बर=नंगा, जो वस्त्र न पहनते हों, जैन धर्म का एक संप्रदाय। सरसुती=सरस्वती साधु। आछहिं नांगे=नंगा रहता है। निरास=किसी से कुछ आशा न रखने वाले। महेसुर=शिवोपसक। जंगम=एक प्रकार का शैव साधु। जती=शक्ति का उपासक। सेवरा=श्वेताम्बर धारी जैन साधु। खेवरा=जैन-साधु-विशेष। बानपरस्ती=वानप्रस्थ।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने सिंहलद्वीप में स्थल-स्थल पर बने हुए कुएं-तालाब और तपस्वियों का वर्णन किया है।

नोट

व्याख्या – कदम-कदम पर कुएं और बावडियां बनी हुई हैं। उनमें अर्थात् कुओं के चारों ओर चौकियां और बावड़ियों में नीचे उतरने के लिए तथा कुंओं की जगत पर चढ़ने के लिए सीढ़यां बनी हुई हैं स्थान-स्थान पर बहुत से कुंड अर्थात् जलाशय बने हुए हैं। वे सब तीर्थ हैं और उनके नाम भी तीर्थों के आधार पर हैं। चारों ओर मठ और मण्डप शोभायमान हैं। वहां जप और तप करने वाले साधु आसन लगाकर बैठे हुए हैं। उनमें से कोई ऋषीश्वर है तो कोई संन्यासी है, कोई राम का भक्त है तो कोई दिशाओं को ही वस्त्र मानकर नंगा रहने वाला दिगम्बरी (जैन) साधु है। कोई सरस्वती-साधक है, तो कोई योगी है कोई वियोगी बनकर संसार की समस्त आशाओं को त्यागकर साधु हो गया है। कोई महेश्वर-पंथ का अनुयायी है तो कोई जंगम शैव है, कोई यती है तो कोई साधना द्वारा शक्ति की पूजा करता है।

श्वेताम्बर जैन साधु, क्षपणक जैन साधु, वानप्रस्थी, सिद्ध, साधक और नाथपंथी साधु (अवधूत) आदि नाना भांति के ईश्वर के उपासक आसन मारकर बैठे हुए हैं और साधना के कष्टों द्वारा अपने शरीर और मन को तपाकर शुद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – मसवासी साधु डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार–"मथुरा की कंकाली टीले से प्राप्त एक जैन शिलालेख में तपस्विनी विजयश्री जैन श्राविका को एक मास का उपवास करने वाली कहा गया है गरुड़ पुराण में अध्याय 122 में मासोपवास वृत्त का विधान है इसके अनुसार यह व्रत आश्विन शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक रखा जाता है। महाभारत में भी मासोपवास करने वाले जोगी का उल्लेख है।

जंगम – यह लिंगायत साधुओं का एक वर्ग है जो विविध घंटियों से युक्त एक लम्बा-सा चोलना पहनते हैं और उन घंटियों को बजाते चलते हैं यह शिव के उपासक होते हैं।

निरास वियोगी – इसका संकेत उन सूफी संतो की ओर भी हो सकता है जो ईश्वार के वियोग में साधनालीन रहते हैं, और गोस्वामी तुलसीदास द्वारा निर्दिष्ट ऐसे साधुओं के विषय में भी हो सकता है, जिनके लिए उन्होंने कहा है– "नारि मुई गृह संपति नासी, मूंड मुंडाय भये संन्यासी।"

मानसरोदक देखिअ काहा। भरा समुंद अस अति अवगाहा।1।
पानि मोति अस निरमर तासू। अंब्रित बानि कपूर सुबासू।2।
लंक दीप कै सिला अनाई। बांधा सरवर घाट बनाई।3।
खंड खंड सीढ़ी भईं गरेरी। उतरहिं चढ़हिं लोग चहुं फेरी।4।
फूला कंवल रहा होइ राता। सहस सहस पंखुरिन्ह कर छाता।5।
उलथहिं सीप मोति उतिराहीं। चुगाहिं हंस और केलि कराहीं।6।
कनक पंखि पैरहिं अति लोने। जानहु चित्र संवारे सोने।7।
ऊपर पाल चहूं दिसि अंब्रित फर सब रूख।
देखि रूप सरवर कर गइ पिआस औ भूख॥2/7॥

शब्दार्थ–मानसरोदक=मानसर नामक तालाब। अस=ऐसा। अवगाहा=गंभीर, अथाह। पानि=जल। निरमर=निर्मल। तासू=उसका। अंब्रित=अमृत। बानि=जैसा। सुबासू=सुगंधित। अनाई=अंगाई। गरेरी=घुमावदार। छाता=छत्ता। राता=लाल। उथलहिं=उलटते। उतिराहीं=तैरते। केलि=क्रीड़ा। लोने=सुन्दर। पाल=किनारा।

संदर्भ – सिंहलद्वीप के मानसर यश मानसरोदक नामक तालाब का वर्णन।

व्याख्या – मानसरोवर का तो देखना ही क्या? वह तो इतना विस्तृत और गहरा है मानों समुद्र भरा हुआ हो। उसका जल मोती की भांति स्वच्छ है। मिठास की दृष्टि से उसका जल अमृत-तुल्य है जबकि उसमें कपूर की जैसी सुगन्धि आती रहती है। इसके सरोवर के घाटों में निर्माण के लिए लंकादीप से शिलाएं मंगाई गई हैं। उनके खंड-खंड में घुमावदार सीढ़ियाँ बनी हुई हैं जिन पर लोग चारों ओर उतरते-चढ़ते रहते हैं। अर्थात् घुमावदार सीढ़ियाँ होने के कारण जब लोग उतरते-चढ़ते हैं तो चारों ओर को फिरते जाते हैं। मानसरोवर में लाल रंग के सहस्त्रदल कमल खिले हुए हैं। सीपियों के उलट जाने से तालाब में मोती तैरने लगते हैं, जिन्हें चुगते हुए हंस नाना प्रकार की क्रीड़ाएं करते हैं। सुनहरे पंखों वाले अत्यधिक सुन्दर अन्य पक्षी भी तालाब में तैरते रहते हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है मानों वे सोने के द्वारा संभालकर बनाए गए हैं।

नोट

तालाब के ऊपर चारों ओर ऊंचे किनारे बने हुए हैं और उन पर अमृत-तुल्य मीठे फलों से युक्त वृक्ष लगे हुए हैं। तालाब की सुन्दरता देखकर देखने वालों की भूख और प्यास मिट जाती है।

साहित्यिक सौन्दर्य – उपमा और उत्प्रेक्षा।

पानि भरइ आवहिं परिहारीं। रूप सुरूप पदुमिनी नारीं।1।
पदुम गंध तेन्ह अंग बसाहीं। भंवर लागि तेन्ह संग फिराहीं।2।
लंक सिंधिनी सारंग नैनी। हंसगामिनी कोकिल बैनी।3।
आंवहि झुंड सो पांतिहि पांती। गवन सोहाइ सी भांतिहि भांती।4।
केस मेघावरि सिर ता पाईं। चमकहिं दसन बीजू की नाईं।5।
कनक कलस मुख नंद दिपाहीं। रहस कोड सो आवहिं जाहीं।6।
जासौं वै हेरहिं चख नारा। बांक नैन जनु हनहिं कटारी।7।
मानहु मैन मुरति सब अछरीं बरन अनूप।
जेन्हिकी ये पनिहारी सो रानी केहि रूप॥2/8॥

शब्दार्थ – सुरूप=सुन्दरता में। पदुम=पद्म। तेन्ह=उनके। लंक=कमर। सारंग=हिरणी। पांतिहि पांती=पंक्तियों में। गवन=जाना। मेघावरि=काली घटा। सिर ता पाईं=सिर से लेकर पैरों तक। दसन=दांत। बीजु=बिजली। नाईं=तरह। मुरति=मूर्ति। दिपाहीं=चमकना। रहस=आनन्द। कीड=क्रीड़ा। चख=आंखें। जनु=मानों। मैन=कामदेव। अछरीं=अप्सरा।

संदर्भ – सिंहलद्वीप की पनहारियों का वर्णन।

व्याख्या – जायसी वर्णन करते हैं कि मानसरोदक पर जो पनहारियाँ जल भरने के हेतु आती हैं, सुन्दरता और आकृति की दृष्टि से पद्मिनी जाति की स्त्रियां हैं। उनके शरीरांगों में कमल जैसी सुगन्धि बसी हुई है अतः गंध- लोभी भ्रमर उनके साथ-साथ उड़ते-फिरते हैं उनकी कटि सिंहनी जैसी क्षीण है जबकि उनके नेत्र मृगियों जैसे है। उनकी गति हंसों की गति के तुल्य है जबकि उनकी आवाज कोकिला जैसी मधुर हैं ये पनहारिया झुंडों में पंक्ति बनाकर आती हैं और उनका जल भर कर जाना भी अत्यधिक शोभायमान प्रतीत होता है। उनके मेघ घटाओं के समान केश सिर से लेकर पैरों तक विकीर्ण रहते हैं और उनके दांत बिजली के समान चमकीले होते हैं। उनके मुख चन्द्रमा के समान शोभायमान हैं जबकि उनके शरीरों पर स्वर्ण-कलश सुशोभित हैं वे आनन्दपूर्वक क्रीड़ाए करती हुई आती-जाती हैं। वे नारियां जिसकी ओर अपने नेत्रों से देखती हैं उसे मानों अपने तिरछे नैनों की कटारी से मार डालती हैं–उनके कटाक्षों से उसका हृदय बिंध जाता है।

वे सब पनहारियाँ कामदेव की मूर्तियां प्रतीत होती हैं और उनका रूप-रंग अप्सराओं के तुल्य है। जिस रानी की ऐसी पनहारियां हों, न जाने वे रानियां स्वयं कितनी सुन्दर होंगी।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. भंवर लागि तेन्ह संग फिराहीं में भ्रम अलंकार।

2. मानहु मैंने.... अनूप में उत्प्रेक्षा अलंकार।

3. चमकहीं दसस बीजुकी नाईं में उपमा अलंकार।

4. लंक सिंहनी सारंग नैनी में रूपक अलंकार।

टिप्पणी – पद्मिनी जाति की नारियों के शरीरांगों से कमल-गंध आने की कवि रूढ़ि है। स्त्रियों के चार-भेदों पद्मिनी, चित्रणी, शंखिणी और हस्तिनी में से पद्मिनी जाति की नारियां सर्वोत्तम स्वीकार की जाती हैं।

ताल तलावरि बरनि न जाहीं। सूझइ वार पार तेन्ह नाहीं।1।
फूले कुमुद केत उजिआरे। जानहुं उए गगन मंह तारे।2।
उतरहिं मेघ चढहिं लै पानी। चमकहिं मंछ बीजु की बानी।3।
पैरहिं पंखि सो संगहि संगा। सेत पीत राते बहु रंगा।4।
चकई चकवा केलि कराहीं। निसि बिछुरहिं और दिनहिं मिलाहीं।5।

नोट

कुरलहिं सारस भरे हुलासा। जिअन हमार मुअहिं एक पासा।6।
केंवा सोन ढेर बग लेदी। रहे अपूरि मीन जल भेदी।7।
नग अमोल तेन्ह तालन्ह दिनहिं बरहिं जनु दीप।
जो मरजिआ होइ तहं सो पावइ वह सीप॥2/9॥

शब्दार्थ–तलावरि=तलैया। कुमुद=कमल। केत=श्वेत कमल। उए= निकले। बीजु=बिजली। मंछ=मछली। बानी=तरह। राते=लाल। केलि=क्रीड़ा। मुअहिं=मरेंगे। केंवा=जल-पक्षी विशेष। सोन=कलहंस। ढेक=एक तरह का बगुला। बग=बगुला। लेदी=छोटी जल मुर्गाबी। अपूरि=भरे रखना। मरजिआ=गोताखोर।

संदर्भ – सिंहलद्वीप के ताल-तलैयों का वर्णन।

व्याख्या– सिंहलद्वीप में इतनी अधिक संख्या में ताल-तलैये हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी संख्या का वार-वार (सीमा, ओर-छोर) नहीं समझ पड़ता। उनमें कुमुद और श्वेत कमल खिले हुए शोभायमान हो रहे हैं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश में (तालाब का नीला जल) तारे निकले हुए हैं। उन तालाबों में बादल उतरते हैं और जल भरकर ऊपर उड़ जाते हैं। तालों के जल में उछलती मछलियां बिजली की भांति चमकती रहती हैं उनमें श्वेत, पीले और लाल रंग के बहुत से पक्षी साथ-साथ तैरते रहते हैं। उनमें चकवा और चकवी क्रीड़ाएं करते रहते हैं, जो रात्रि को बिछुड़कर दिवस में पुनः मिल जाते हैं। समस्त पक्षियों के जोड़े उल्लास मग्न होकर बोलते हैं और यह कहते प्रतीत होते हैं कि हमारा जीवन ही उत्तम है क्योंकि हम प्रेमी-प्रेमिका साथ-साथ जीते-मरते हैं जल के अन्य भी अनेक प्रकार के जीव जैसे–केवा, सोन, ढेक, बग और लेदी आदि तथा जल का रहस्य जानने वाली मछलियों से सिंहलद्वीप के ताल-तलैया भरपूर हैं।

इन तालाबों में अपार बहुमूल्य नग हैं, जो उनके जल में दिन के दीपक की भांति चमकते रहते हैं– उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो दीपक जल रहे हैं। हां वे गोताखोर उन सीपों को प्राप्त कर सकते हैं जिनमें रत्न होते हैं, जो अपने प्राणों को हथेली पर रखकर तालाबों के जल में गोता लगाते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. जानंहु उए गगन महं तारे में अनुप्रास अलंकार

2. 'उतरहिं मेघ चढहिं लै पानी' में मानवीकरण अलंकार

3. 'चमकहिं मंछ बीजु की बानी' में उपमा अलंकार

4. 'नग अमोल .... जनु दीप' में उत्प्रेक्षा अलंकार

अन्तिम पंक्तियों में कवि का व्यंग्यार्थ यह है कि वह ही साधक जो प्रेम-मार्ग की साधना में अपने प्राणों की चिन्ता नहीं करता, ईश्वर के प्रेम-रूपी मोतियों को प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

क्या आप जानते हैं जायसी की योग-साधना सूफ़ी मत से प्रभावित है जबकि कबीर नाथ-सिद्ध परंपरा के कवि माने जाते हैं।

पुनि जो लाग बहु अंब्रित वारी। फरीं अनूप होइ रखवारी।1।
नवरंग नीबू सुरंग जंभीरा। औ बादाम बद अंजीरा।2।
गलगल तुरंज सदाफर फरे। नारंग अति राते रस भरे।3।
किसमिस सेब फरे नौ पाता। दारिवं दाख देखि मन राता।4।
लागि सोहाई हरपारेउरी। ओनइ रही केरन्ह की घउरी।5।
फरे तूत कमरख औ निउंजी। राय करौंदा बैरि चिरउंजी।6।
संखदराउ छोहारा डीठे। औरु खजहजा खाटे मीठे।7।
पानी देहिं खंडवानी कुअंहि खांड बहु मेलि।
लागीं घरी रहट की सींचहिं अंब्रित बेलि॥2/10॥

नोट

शब्दार्थ – अंब्रित वारी=अमृत तुल्य मीठे फलों का बाग। फरीं=फलयुक्त। जंभीरा=नींबू की जाति का खट्टा-मिट्ठा फल। बद=बेदाना। गलगल=एक प्रकार का रसीला नींबू। तुरंज=चकोतरा। सदाफर=शरीफा। नारंग=नारंगी। राते=लाल। दारिवं=अनार। नौ=नए। राता=लाल। दाख=अंगूर। हरपारेउरी=कमरख की जाति का फल जो खट्टा होता है। ओनइ=झुक रही है। केरन्ह=केला। तूत=शहतूत। निउंजी=लीची। राय करौंदा= बड़ी जाति का करौंदा। संखदराउ=एक खट्टा फल। खजहजा=मेवे। खंडवानी=शर्बत। घउरी=गुच्छा। घरी=घड़ियां।

संदर्भ – सिंहलद्वीप के बागों में लगे नाना प्रकार के फलों के वृक्षों का वर्णन है।

व्याख्या – सिंहलद्वीप के ताल-तलैयों के चारों ओर आस-पास अमृत-तुल्य मीठे फलों की वाटिकाएं सुशोभित हो रही हैं। वे पूर्ण रूप से फलों से लदी हुई हैं और उनकी रखवाली की जा रही है। इन बागों में नारंगी, नींबू, सुन्दर जंभीर, बादाम बेदाना, अंजीर, गलगल, चकोतरा और शरीफा आदि फल लगे हुए हैं। इनके साथ ही गहरे लाल रंग की रसभरी नारंगियां लगी दिखाई दे रही हैं किशमिश और सेब नये पत्तों के साथ फले हुए हैं। अनार और दाखों को देखकर मन प्रसन्न हो उठता है। इन वाटिकाओं में हरपारेउरी शोभायमान हो रही है और केले के फलों की गाहरे झुकी हुई है। शहतूत, कमरख, लीची, रायकरौंदा, सन्तरा, छुहारा और खजहजा शोभायमान हो रहे हैं।

इन वृक्षों के फलों को सरस बनाने के उद्देश्य से कुंओं के जल में बहुत-सी खांड घोलकर, उस मीठे पानी से वृक्षों की सिंचाई की जाती है। वहां रहटें लगी हुईं हैं जिनकी घड़ियों (बाल्टियां, हो सकता है पहले रहटों में मिट्टी के धड़े ही लगाए जाते थे) से अमृतमयी लताओं अथवा अमृततुल्य मीठे फलों वाली लताओं की सिंचाई की जाती है।

साहित्यिक सौन्दर्य – कवि का रुझान वृक्षों के नाम परिगणित कराने की ओर रहा है।

पुनि फुलवारी लागि चहु पासा। बिरिख बेधि चंदन भै बासा।1।

बहुत फूल फूली घन बेली। केवरा चंपा कुंद चंबेली।2।

सुरंग गुलाल कदम और कूजा। सुगंध बकौरी गंधप पूजा।3।

नागेसरि सदबरग नेवारी। औ सिंगारहार फुलवारी।4।

सोन जरद फूली सेवरी। रूप मंजरी औ मालती।5।

जाही जूही बकचुन लावा। पुहुप सुदरसन लाग सोहावा।6।

बोलसिरी बेइलि औ करना। सबहि फूल फूले बहु बरना।7।

तेन्ह सिर फूल चढ़हि वै जेन्ह माथें मनि भागु।

आछहिं सदा सुगंध भे जनु बंसत और फाग ॥2/11॥

शब्दार्थ – चहुं पासा=चारों ओर। घन बेली=सघन लताएं। केवरा=केतकी की जाति का सुगन्धित पुष्प जिसके अर्क को पानी आदि में डाला जाता है। कूजा=एक प्रकार का ग्रीष्म ऋतु में फूलने वाला गुलाब। गंध्रप=गन्धर्वसेन। बकौरी=गुलबकावली। नागेसरि=नागकेशरि। सदबरग=गेंदा या गेंदा से मिलता-जुलता पुष्प। नेवारी=नव मल्लिका। सोन-जरद=सोन जुही, एक प्रकार का पीला फूल। सेवती=एक प्रकार का गुलाब। जूही=एक प्रकार की चमेली। रूप मंजरी= लाल रंग की चमेली जैसा फूल जो सदाबहार रहता है। बेइलि=बेला। सुदरसन=एक बड़े आकार का श्वेत पुष्प।

संदर्भ – सिंहलद्वीप की वाटिकाओं का वर्णन।

व्याख्या – फिर वहां चारों ओर जो फुलवारियां लगी हुई हैं। वृक्षों में प्रविष्ट करके चंदन की सुगन्ध व्याप्त हो गई है। घनवेली, केवड़ा, चम्पा, कुन्द, चमेली बहुत से फूलों से फूली हुई है। लाल गुलाब, कदम्ब, कुब्जक और सुगन्धित गुलवकावली से राजा गंधर्वसेन पूजा करते हैं। नागकेसर, गेंदा, नेवारी, हारसिंगार, सोन सेवती, रूपमंजरी, मालती, जाही, जूही आदि के फूलों के समूह लगे हैं। सुदर्शन का पुष्प सुशोभित हो रहा है। मौलश्री, बेला और करना आदि सभी फूल नाना रंगों के फूले हुए हैं।

ये पुष्प उन्हीं के शीश पर चढ़ा करते हैं जिनके मस्तक से सौभाग्य की मणि होती है अर्थात् जो अत्यधिक सौभाग्यवान होते हैं। ये सदैव सुगन्धि विकीर्ण करते रहते हैं, जिससे वहां सदैव वसंत ऋतु और फाग जैसी स्थिति रहती है।

नोट

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. सुरंग गुलाल– गंधर्व पूजा, इस पंक्ति का संबंध डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने नरेश गंधर्वसेन की पूजा के पुष्पों से जोड़ा है, जबकि इसका यह अर्थ अधिक उचित रहेगा कि गंधर्व-पूजा की सामग्री है।

2. आछहिं.... और फागु में उत्प्रेक्षा अलंकार।

सिंघल नगर देखु पुनि बसा। धनि राज असि जाकरि दसा।1।

ऊंची पंवरी ऊंच अवासा। जनु कबिलास इन्द्र कर बासा।2।

राऊ रांक सब घर घर सुखी। जो देखिअ सो हंसता मुखी।3।

रचि रचि राखे चदंन चौरा। पोते अगर मेद औ केवरा।4।

सब चौपारिन्ह चदंन खंभा। ओठंघि सभापति बैठे सभा।5।

जनहु सभा देवतन्ह कै जुरी। परी द्रिस्टि इन्द्रासन पुरी।6।

सबै गुनी पंडित और ग्याता। संसकिरत सबके मुख बाता।7।

अैहिक पंथ सवांरहिं जस सिवलोग अनूप।

घर घर नारि पदुमिनी मोहहिं दरसन रूप॥2/12॥

शब्दार्थ – जाकरि=जिसकी। पंवरी=सीढ़ी। अवास=आवास, महल। राऊ=राजा। रांक=निर्धन। हंसता मुखी=प्रसन्न चित्त। चौरा=चबूतरे। पोते=पुताई की है। अगर=अगरु। मेद=एक सुगन्धित द्रव्य जो कस्तूरी की भांति किसी पशु की नाभि से निकलता था। ओठंघि=पीठ टिकाकर। चौपारिन्ह=चौपाल।

संदर्भ – सिंहलद्वीप के ऊंचे महलों और चौपालों आदि का वर्णन।

व्याख्या – तदनन्तर भली प्रकार बसा हुआ सिंहलनगर दिखाई पड़ता है। यह नगर इतना सुन्दर है कि जिस राजा की ऐसी स्थिति है वह धन्य है। यहां ऊंची-ऊंची पौड़िया और द्वार हैं तथा ऊंचे भवन हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो यह इन्द्र का निवास स्थान कैलास (इन्द्रपुरी) है। यहां के राजा और रंक सभी सुखी हैं जिसे भी देखिए वहीं प्रसन्न चित्त दिखाई देता है। यहां के भवनों के बाहर चंदन के चबूतरे बने हुए हैं जो अगर, मेद और गोरोचन से सिंचित (सुवासित) रहते हैं। समस्त चौपालों में चंदन के स्तंभ लगे हुए हैं और उनमें आयोजित होने वाली सभाओं में उन स्तम्भों से पीठ टिकाकर सभापति बैठते हैं। यहां के निवासियों की सभा देखने में देव तुल्य प्रतीत होती है और नगर इन्द्र की पुरी जैसा दिखलाई देता है। यहां के निवासी बड़े ही गुणवान विद्वान और ज्ञानी हैं और सभी के मुख से संस्कृत में बातें निकलती हैं। यहां के निवासी अपने इहलोक या सांसारिक मार्ग को संवारते रहते हैं। अथवा यहां के भवन इस प्रकार सजे हुए हैं, मानो शिवलोक के भवन हों। यहां घर-घर में पद्मिनी जाति की स्त्रियाँ है जिनकी सुन्दरता मन को मोहित कर लेती है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'औहिक पंथ संवारहि' के स्थान पर शुक्ल जी ने 'अस कै मंदिर संवारे' पाठ ग्रहण किया है। इस पंक्ति का डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने यह अर्थ किया है। "वहां मार्ग इस प्रकार संवारे गए हैं, जैसे शिवलोक में सुन्दर होते हैं," जबकि शुक्ल द्वारा गृहीत पाठ का अनर्थ होगा–

2. "सिंहल नगर के भवन (मन्दिर) इस प्रकार सजे हुए हैं, मानो अनुपम कविलोक हो।

3. 'ऊंची पौरी..... बासा' तथा सब 'चौपारहिं ..... पुरी' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

4. 'घर .... घर', 'रचि..... रचि' में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार।

5. 'तस कै.... अनूप' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

पुनि देखिअ सिंघल की हाटा। नवौ निद्धि लछिमी सब बाटा।1।

कनक हाट सब कुंहकुंह लीपी। बैठ महाजन सिंघल दीपी।2।

रचे हंथोड़ा रूपइं ढारी। चित्र कटाउ अनेग संवारी।3।

रतन पदारथ मानिक मोती। हीर पंवार सो अनबन जोती।4।

सोन रूप सब भएउ पसारा। धवलसिरी पोतहिं घर बारा।5।

औ कपूर बेना कस्तूरी। चंदन अगर रहा भरिपूरी।6।

नोट

जेइं न हाट एहि लीन्ह बेसाहा। ताकहं आन हाट कित लाहा।7।

कोई करै बेसाहना काहू केर बिकाइ।

कोई चला लाभ सौं कोई मूर गवाइं॥2/13॥

शब्दार्थ – हाटा=बाजार। बाटा=रास्ते। कनक हाट=शर्राफा। कुहंकुहं=कुंकुम। सिंघल दीपी= सिंहलद्वीप के। हंथोड़ा=कड़े। रुपंइ=चांदी को। अनेग=उनके। सोन रूप= सोना चांदी। पवांर=पन्ना। अनबन=अद्वितीय। पसारा=फैला हुआ। धवलसिरी=श्वेत रोली। बेना=खश, उशीर। बेसाहा= सौदा खरीदना। आन=दूसरा। लाहा=लाभ। आन=दूसरी। बिकाइ=बिक्री। मूर=मूलधन, पूंजी।

संदर्भ – सिंहलद्वीप के बाजारों का वर्णन।

व्याख्या – तदनन्तर सिंहल नगर के बाजार देखने योग्य हैं। इन बाजारों के भागों में अर्थात् मार्ग के दोनों ओर नव निधियाँ और लक्ष्मी (वैभव, धन) दिखाई पड़ती है। यहां के नकक-हाट की अर्थात् सोने-चाँदी के बाजार या शर्राफे की दुकानें कुंकम से लिपी रहती हैं। जिनपर सिंहलद्वीप के महाजन बैठते हैं। वे चांदी को ढालकर हाथों के कड़े बनाते हैं और उनके अनेक प्रकार के चित्रों और कटाइयों से सुसज्जित करते हैं। सोने और चांदी का यहां व्यापक प्रसार रहता है और समस्त घरद्वार श्वेत-रोली से पुते रहते है। यहां, रत्न, पदार्थ, मणिक, मोती, हीरे और पन्ने तरह-तरह की ज्योति विकीर्ण करते हुए रखे रहते हैं। यहां सर्वत्र कपूर, खस, कस्तूरी, चंदन और अगर आदि की सुगंधि प्रसारित रहती है। जिसने इस बाजार में व्यवसाय अर्थात् लेन-देन या खरीद-फरोख्त न की उसे अन्य किसी बाजार में कहां लाभ हो सकता है?

इस बाजार में कोई क्रय करता है और कोई अपनी वस्तुओं को विक्रय करता है। इस क्रय-विक्रय में कोई तो लाभार्जन कर लेता है जबकि कोई अपनी पूंजी या मूलधन से भी हाथ धो बैठता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – इन पंक्तियों में समासोक्ति अलंकार के माध्यम से जायसी ने इस व्यंग्यार्थ की व्यंजना कराई कि इस दुनियां रूपी बाजार में आकर कुछ प्राणी तो पुण्य-कृत्यों रूपी लाभार्जन करते हैं जबकि दूसरे अपने कुकर्मों के माध्यम से पापी बनकर अपनी पिछली स्थिति को भी बिगाड़ लेते हैं।

2. समासोक्ति, अनन्योपमा अलंकार।

पुनि सिंगार हाट धनि देसा। कइ सिंगार तहं बैठी बेसा।1।

मुख तंबोर तन चीर कुसुंभी। कानन्ह कनक जराऊ खुंभी।2।

हाथ बीन सुनि मिरिग भुलाहीं। नर मोहहिं सुनि पैगु न जाहीं।3।

भौंह धनुक तहं नैन अहेरी। मारहिं बान सान सौ फेरी।4।

अलक कपोल डोल हंसि देहीं। लाइ कटाख मारि जिउ लेहीं।5।

कुच कंचुक जानहुं जुग सारी। अचंल देहिं सुभावहिं। ढारी।6।

केत खेलार हारि तेन्ह पासा। हाथ झारि होई चलहिं निरासा।7।

चेटक लाइ हरहिं मन जौ लहि गथ है फेंटा।

सांठि नाठि उठि भए बटाऊ ना पहिचान न भेंट॥2/14॥

शब्दार्थ – सिंगार हाट= वेश्याओं का बाजार। धनि=धन्य है; धनवान। कइ=करके। बेसा=वेश्या। तंबोर=पान। कुसुंभी-रंगाचीर=साड़ी। कानन्ह=कानों में। खुंभी=कान का आभूषण विशेष। बीन=बीणा। पैगु न जाहीं=एक कदम भी आगे नहीं जाते। धनुक=धनुष। अहेरी=बहेलिए, शिकारी। सान सौं फेरी=शान पर तीव्र करके। अलक=घुंघराले बाल। कटाख=कटाक्ष। जुग=दो। सारी=गोटा। ढारी=ढलका। केत=कितने ही। तेन्ह=उनके। चेटक=जादू-टोना। गथ=पूंजी। फेंट=कमर में। सांठि नाठि=सम्पत्ति नष्ट होने पर, धन न रहने पर। बटाऊ=मार्ग का यात्री।

संदर्भ – सिंहल नगर के वेश्या-बाजार का वर्णन।

व्याख्या – तदन्तर मैं वहां के वेश्या-बाजार का वर्णन करता हूं जो धन्य है (शुक्ल जी ने 'धनि के स्थान पर 'भल' पाठ ग्रहण किया है जो अधिक उचित प्रतीत होता है।) जहां वेश्याएं शृंगार करके बैठी रहती हैं। उनके मुख

नोट

में तम्बाकू सुशोभित रहते हैं। जबकि वे शरीर पर कुसुम्भी रंग के वस्त्र धारण करती है। उनके कानों में रत्न-जड़ित खुंशी शोभायमान रहती है। उनके हाथों में वीणाएं रहती हैं जिन पर वे इतनी मधुर राग-रागनियां गाती हैं कि मृग तक मोहित हो जाते हैं– अपनी सुधि-बुधि भूल जाते हैं। मनुष्य तो उन्हें सुनकर ऐसे मोहित हो जाते हैं कि एक कदम तक आगे नहीं बढ़ पाते। उनके नेत्र अहेरियों जैसे हैं जबकि भृकुटियां धनुष-वत् कुटिल हैं। भौंहों रूपी धनुष पर चढ़ाकर उनके नेत्र-रूपी शिकारी शान पर चढ़ाए हुए तीव्र दृष्टि-रूपी बाणों का प्रहार करते हैं। उनके कपोलों पर घुंघराले केश मंडराते रहते हैं। उधर से गुजरने वालों की ओर वे विहंस कर देखती हैं और कटाक्षों के प्रहार से उनकी जान ले लेती हैं–गंतुक उन पर जी-जान से फिदा हो जाते हैं। उनके कंचुकी में कसे हुए उरोज मानो दो गोटें होती हैं जिनपर से वे सुन्दर ढंग से अपना आँचल खिसका देती हैं। कितने ही खिलाड़ी इन पासों से खेलकर हार चुके हैं और अपनी पूंजी को गंवाकर लौट जाते है।

इन वेश्याओं का स्वभाव यह है कि जब किसी की गांठ में सम्पत्ति होती है तब वे जादू-टोना करके उसके मन को हर लेती हैं, जबकि गांठ की पूंजी नष्ट होने पर उस व्यक्ति के प्रति उनका व्यवहार उस राहगीर की भांति होता है जिससे जान-पहचान नहीं होती–अथवा यदि होती भी है तो क्षण भर की होती है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'धनि' के स्थान पर 'भल' पाठान्तर इस दृष्टि में उपयुक्त प्रतीत होता है कि जायसी जैसे संत द्वारा वेश्या-हाट को धन्य कहकर प्रशंसा करना अनुचित प्रतीत होता है।

2. केत खिलार– 'निरासा' के माध्यम से कवि का अभिव्यंग्य यह है कि बहुत से मूर्ख मनुष्य सांसारिक प्रलोभनों में फंसकर अपने पुण्यों को गंवा बैठने के कारण अंततः इस संसार से निराश होकर कूच करते हैं।

3. 'भौहं मनुष्य.... केरी' में सांगरूपक अलंकार।

4. 'कुचं कंचुक.... सारी' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

5. 'केत खिलारी..... निरासा' में समासोक्ति अलंकार।

लै लै बैठ फूल फुलहारी। पान अपूरब धरे संवारी।1।
सोंधा सबै बैठु लै गांधी। बहुल कपूर खिरौरी बांधी।2।
कतहूं पंडित पढ़हि पुरानू। धरम पंथ कर करहिं बखानू।3।
कतहूं कथा कहै कछु कोई। कतहूं नाच कोड भलि होइ।4।
कतहूं छरहटा पेखन लावा। कतहूं पाखंड काठ नचावा।5।
कतहूं नाद सबद होइ भला। कतहूं नाटक चेटक कला।6।
कतहुं काहु ठग बिद्या लाई। कतहुं लेहिं मानुस बौराई।7।
चरपट चोर धूत गंठिछोरा मिले रहहिं तेहि नांच।
जो तेहि नाचं सजग भा अगुमन गथ ताकर पै बांच।।2/15।।

शब्दार्थ– फुलहारी=मालिनें। सोंधा=एक प्रकार की गंध। खिरौरी=टिकिया। छरहटा=बहेलिया। गांधी=इत्र बेचने वाले गांधी। पाखंड=आडम्बर करने वाले। काठ=कठपुतली वाला। चेटक कला= जादू की कलाएं। बौराई=पागल कर देना। गंठिछोरा=गांठ खोल लेने वाला, गिरहकट। ओहि=उस। चरपट=चालाक। अगुमन=पहले से। बांच=बच पाती है। पथ=पूंजी।

संदर्भ– सिंहल नगर के बाजारों में कवि ने मालिन, गंधी, नट-बाजीगर, गिरहकट आदि का वर्णन किया है।

व्याख्या– सिंहल नगर के बाजारों में मालिनें फूल ले-लेकर बैठी रहती हैं और अनोखे पान सजाकर रखती हैं। इत्र बेचने वाले या गंधी नाना प्रकार की सुगन्धियां लेकर बैठते हैं और कपूर से भली प्रकार सुगन्धित करके कत्थे की सुगन्धित टिकियां रखे हुए हैं। कहीं पर पंडित पुराणों आदि धार्मिक ग्रंथों का पाठ कर रहे हैं तो कहीं अन्य धर्मों के आचार्य अपने धर्म का वर्णन कर रहे हैं। कहीं पर कोई कुछ कथा कह रहा है, तो कहीं पर उत्तम नाच-कूद हो रहा है। कहीं पर बहेलिया पक्षी पकड़कर ला रहा है, तो कहीं पर नाटक और जादू के खेल हो रहे हैं। कहीं पर किसी ने ठगी-विद्या लगा रखी है– अर्थात् वह लोगों को ठग रहा है तो कहीं पर कोई किसी मनुष्य को बावला बनाकर लूट रहा है।

नोट

इस नाच-नाटक आदि में चालाक, चोर, धूर्त और गिरहकट मिले रहते हैं जो दर्शकों की पूंजी हर लेते हैं। वहां उन्हीं की पूंजी सुरक्षित रह पाती है जो पहले से ही सावधान रहते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. 'कतहुं चिरहंटा पंखी लावा' शुक्ल जी ने यह पाठ ग्रहण किया है जिसका अर्थ ऊपर दिया हुआ है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल और डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने इसका पाठान्तर यह दिया है–

"कतहुं छरहटा पेखन लावा।"

जिसका अर्थ है कहीं ऐन्द्रजालिक (छरहटा) अपना खेल या तमाशा दिखा रहे हैं।

2. इन पंक्तियों में समासोक्ति अलंकार है जिसके माध्यम से कवि ने इस ओर इंगित किया है कि जो लोग इस जगत में पहले से ही सचेत रहते हैं, माया रूपी वंचकों द्वारा उनकी पुण्य-रूपी पूंजी ठगी जाने से बच जाती है।

पुनि आइअ सिंघल गढ़ पासा। का बरनौं जस लाग अकासा।1।
तरहिं कुरुंम बासुकि कै पीठी। ऊपर इन्द्रलोक पर डीठी।2।
परा खोह चहुंदिसि तस बांका। कांपै जांघि जाइ नहिं झांका।3।
अगम असूझ देखि डर खाई। परै सो सप्त पतारन्ह जाई।4।
नव पंवरी बांकी नव खंडा। नवहुं जो चढ़ै जाइ ब्रह्मंडा।5।
कंचन कोट जरे कौसीसा। नखतन्ह भरा बीजू अस दीसा।6।
लंका चाहि ऊंच गढ़ ताका। निरखि न जाइ दिस्टि मन थाका।7।
हिअ न समाइ दिस्टि नहिं पहुंचै जानहु ठाढ़ सुमेरु।
कहं लगि कहौं उंचाई ताकरि कहं लगि बरनौं फेरु॥2/16॥

शब्दार्थ– जस=जैसे। तरहिं=ताल में, नीचे। कुरुंम=कच्छप, कछवा। डीठी=दृष्टि। खोह=खाई। परै=भरी जाए। सप्त पतारन्ह=सातवें पाताल। पंवरी=पौड़िया, पोल। नखतन्ह=तारे। बीजु=बिजली। दीसा=दिखाई देता है। दिस्टि=दृष्टि। ताकरि=उसकी। फेरु=घेरा। कोट=गढ़।

संदर्भ – प्रस्तुत पंक्तियों में जायसी ने सिंहलद्वीप स्थित सिंहल नगर में बने सिंहलगढ़(दुर्ग) का वर्णन किया है।

व्याख्या – अब मैं सिंहलगढ़ का वर्णन करता हूं अथवा अब हम सिंहलगढ़ के समीप आते हैं। (कवि ने यह वर्णन ऐसे किया है जैसे कोई गाइड दर्शकों को नाना वस्तुओं के विषय में बताया करता है)। आकाश को स्पर्श करने वाले इस दुर्ग का मैं क्या वर्णन करूं। इस दुर्ग की नींव तो नीचे की ओर वासुकी नाग और कच्छप की पीठ पर स्थित है, जबकि ऊपर की ओर यह इन्द्रलोक से लगा दृष्टिगत होता है। इसके चारों ओर बड़ी बांकी खाई खुदी हुई हैं वह इतनी नीची है कि नीचे की ओर देखते हुए यह भय लगता है कि यदि इसमें गिरे तो गिरकर सातवें पाताल में जा पहुचेंगे। नौ पौड़िया दुर्ग में (द्वार) और नौ ही मंजिले हैं जो इन नौ खंडों पर चढ़ने में सफल हो जाता है वह ब्रह्माण्ड में पहुँच जाता है। यह दुर्ग स्वर्ण-निर्मित है और उसमें नग और शीशे जड़े हुए हैं। यह ऐसा जाज्वल्यमान प्रतीत होता है मानो नक्षत्रों से परिपूर्ण बिजली हो। यह किला लंका की अपेक्षा ऊंचा है। इसकी ऊंचाई देखी नहीं जाती। इसकी ओर देखने पर दृष्टि और मन थक जाते हैं।

यह दुर्ग इतना अधिक ऊंचा है कि इसकी उच्चता हृदय में नहीं समाती और न वहां तक दृष्टि ही पहुँच पाती है यह ऐसा लगता है मानो विशालकाय सुमेरू पर्वत हो। इसकी ऊंचाई और घेरे का मैं कहां तक वर्णन करूं– अर्थात् वह वर्णनातीत है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. जायसी के इस वर्णन में हठयोग की साधना की स्पष्ट छाप है। "नव पंवरी .... ब्रह्मण्डा"– से जायसी का अभिप्राय यह है कि जो साधक कुंडालिनी हो नव-खंडों के पार से जाकर दशम द्वार या ब्रह्माण्ड में पहुँचा देता है, वही योग-साधना की चरम उपलब्धि को प्राप्त करता है।

2. शरीर-रूपी दुर्ग के नव-द्वार निम्नांकित स्वीकार किए जाते हैं– 2 कान, 2 आंख, 2 नसिका छिद्र, 1 मुख, 1 मलेन्द्रिय और 1 मूत्रेन्द्रिय। इनके अतिरिक्त दसवां छिद्र या द्वार ब्रह्मरन्ध्र माना जाता है। कबीर ने कहा भी है–

"दस द्वारे कौ पींजरा, तामें पंछी पौनु।
रहिबे को आचरज महा, उड़ै तो अचरजु कौनु।"

नोट

3. कुछ टीकाकारों ने नव-द्वारों से नौ इन्द्रियों का अभिप्राय ग्रहण किया है। जो इस दृष्टि से अनुपयुक्त है कि पाचं कर्मेन्द्रियों और पांच ज्ञानेन्द्रियों में से कौन सी एक इन्द्री को छोड़ा जाना चाहिए।

4. 'का बसी ..... अकांक्षा' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

5. 'कंचन ..... दीसा' में उपमा अलंकार।

6. 'नव पंवरी ..... ब्रह्माण्ड' समासोक्ति अलंकार।

7. पूरी पंक्तियों में अतिशयोक्ति अलंकार।

निति गढ़ बांचि चलै ससि सूरू। नाहिं त बाजि होइ रथ चूरू।1।

पंवारी नवौ बज्र कइ साजी। सहस सहस तंह बैठे पाजी।2।

फिरहिं पांच कोटवार सो भंवरी। कांपैं पांय चंपत वै पंवरी।3।

पंवरिहि पंवरि सिंह गढ़ि काढ़े। डरपहिं राय देखि तेन्ह ठाड़े।4।

बहु बनान वै नाहर गढ़े। जनु गाजहिं चाहहिं सिर चढ़े।5।

टारहिं पूंछ पसारहिं जीहा। कुंजर डरहिं कि गुंजरि लीहा।6।

कनक सिला गाढ़ि सीढ़ी लाई। जगमगाहिं गढ़ ऊपर ताईं।7।

नवौ खंड नच पंवरीं औ तंह बज्र केवार।

चारि बसेरें सों चढ़ै सत सौं चढ़ै जो पार ॥2/17॥

शब्दार्थ – बांचि=बचकर। सुरू = सूर्य। नांहि त=नहीं तो। बाजि=घोड़ा, टकराकर। कइ=की। पाजी=पैदल। भंवरी=चक्कर लगाना। कोटवार=कोतवाल। राय=राजा। चंपत=गुजरते, पार करते। गढ़ि=दुर्ग। बनान=प्रकार से। गाजहिं=गरजेंगे। जीहा=जीभ। कुंजर=हाथी। लीहा=पकड़ा। गुंजरि=गरजकर। गढ़ि=बनाकर। ताईं= तक। चारि बसेरें=सूफी मत की चार अवस्थाओं रूपी चार पड़ाव–शरीअत, तरीकत, हकीकत, मारिफत। केवार=पांच शासक, कोटपाल।

संदर्भ – सिंहलगढ़ का वर्णन।

व्याख्या – सिंहलगढ़ की ऊंचाई का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा नित्यप्रति इस दुर्ग से बचकर निकलते हैं नहीं तो इससे टकराकर उनके रथ चूर-चूर हो जाएं। उसके नवों द्वार हीरा (वज्र) से सजे हुए हैं अथवा इसके नौ द्वार वज्र-तुल्य कठोर हैं और उन पर एक-एक हजार सैनिक (रक्षा के लिए) बैठे रहते हैं। वहां पांच कोतवाल चक्कर लगाते रहते हैं अतः इन द्वारों को पार करते हुए भय से कदम डगमगाने लगते हैं और पैर कांपने लगते हैं। प्रत्येक पंवरी पर सिंहों के चित्र खिंचे रहते हैं जिन्हें खड़े देखकर (साक्षात् सिंह समझकर) राजा भी डर जाते हैं ये सिंह इस प्रकार बनाए गए हैं कि उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो ये गरजकर सिर पर चढ़ जाएंगे। ये पूंछ उठाकर जिह्वा बाहर निकाले हुए हैं अतः उन्हें देखकर हाथियों को यह भय लगता है कि वे गरजकर उन पर टूट पड़ेंगे। स्वर्ण-शिला से बनाकर सीढ़ी लगाई हुई है, जो दुर्ग के ऊपरी भाग तक जगमगाती रहती हैं।

इस दुर्ग के नौ मंजिलों में नौ पौड़ियां या द्वार हैं, जिन पर वज्र के किवाड़ लगे हुए हैं। इस पर चढ़ने में तभी सफलता मिल सकती है जब सत्य का आज्रय लेकर चार पड़ाव (बसेरे) डालते हुए चढ़ा जाए।

नोट्स सूफ़ी साधक, साधना के चार पड़ाव–शरीअत, तरीकत, हक़ीक़त, मारिफ़त के माध्यम से ईश्वर (अल्लाह) के करीब जाता है। उसके अनुसार हक़ (अल्लाह) को पाने के यही रास्ते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. जायसी ने इन पंक्तियों में सांगरूपक अलंकार के माध्यम से सिंहलगढ़ पर चढ़ाई को हठयोग की साधना का स्थानापन्न चित्रित किया है हां रूपक का पूर्णतः निर्वाह नहीं हो पाया है। हठयोग की साधना में मानव पिंड को ही ब्रह्माण्ड माना जाता है– उनकी मान्यता है कि जो ब्रह्माण्ड में है वही पिंड में है। इस कल्पना के आधार पर वे कुंडलिनी को सुषुम्ना नाड़ी से होकर मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि चक्रों में होते हुए ब्रह्मांध्र

नोट

तक ले जाते हैं। जायसी ने इन षट्-चक्रों के स्थान पर नौ द्वारों का उल्लेख किया है। उन्होंने काम-क्रोध, लोभ मद और मोह को पांच कोतवाल दिखाया है जो जीवात्मा रूपी पथिक को दुर्ग-रूपी ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट नहीं होने देते।

पाजी– सूफी मत के अनुसार मनुष्य और परमात्मा के बीच एक सहस्त्र पर्दे हैं। यहां एक-एक पाजी एक-एक पर्दे का प्रतीक है।

चारि बसेरे– सूफी साधना के चार पड़ावों शरीअत, तरीकत, हकीकत और मारिफत के अनुरूप ही नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत दशाएं होती हैं, जिन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है–

1. नासूत– यह मनुष्य की साधारण अवस्था होती है। इसमें साधक को शरीअत के कायदे-कानूनों को मानना पड़ता है।

2. मलकूत– इस अवस्था में साधक का मन भौतिक इच्छाओं से ऊपर उठ जाता है इसमें साधक को तरीबत की सहायता लेनी पड़ती है।

3. जबरूत– इसमें साधक को आध्यात्मिक शक्ति मिल जाती है। इसमें वह हकीकत से परिचित हो जाता है। उसे ईश्वरीय ज्ञान उपलब्ध हो जाता है और उससे मिलने के व्यवधान नष्ट हो जाते हैं।

4. लाहूत– इस चौथी अवस्था में साधक राग से अतीत होकर परमात्मा में लीन हो जाता है।

2. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने इन पंक्तियों का निम्नाकित हठयोगिक अर्थ दिया है।

"इस शरीर रूपी गढ़ में सूर्य और चन्द्रमा अलग-अलग रहते हैं। यदि उनका मिलन हो जाए तो उनका स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो जाए (होय बाजि रथचूर) नवों चक्र वज्र के समान दुर्भेद्य है। उनके द्वार पर सशस्त्र-सहस्त्र दुष्ट मनोविकार बाधक रूप में रहते हैं। वह साधक को चक्र भेदन नहीं करने देते। अतः उस साधना मार्ग में चरण रखते हुए भय लगता है और बड़े संभलकर पैर रखने पड़ते हैं। हर चक्र की अधिष्ठात्री कोई-न-कोई देवी है। उनका सिंह साधक को चक्र-भेदन में अग्रसर नहीं होने देता, ऐसा लगता है कि गरजकर सिर पर चढ़ बैठेंगे। उनके डर से साधक अपनी साधना से परांग मुख होने लगता है। अज्ञान रूपी हाथी उन सिंहों को देखकर डर जाते हैं। उस गढ़ तक सोने की सीढ़ियां बनी हुई हैं। सुषुम्ना का रंग योग ग्रन्थों में स्वर्णिम बताया गया है। इसीलिए कनक सीढ़िया कहा गया है इस शरीर रूपी सिंहलगढ़ में नौ चक्र हैं। इन चक्रों के नौ द्वार हैं। वे द्वार वज्र के समान दुर्भेद्य हैं। जो साधक चार पड़ावों प्रत्याहार, ध्यान, धारण, समाधि के क्रम से सत्य के सहारे साधना करता है वही सिद्धि प्राप्त कर लेता है।"

चारि बसेरे– चारि बसेरे का सूफी-साधना-परक अर्थ ऊपर दिया गया है। डॉ. त्रिगुणायत के शब्दों में इसका योगपरक अर्थ इस प्रकार है–

"योगपरक अर्थ लेने में यहां पर चार प्रकार के योगों की व्यंजना की जाएगी उनके नाम हैं– हठयोग, मंत्रयोग, लययोग और राजयोग।

वेदान्त की दृष्टि से यहां पर साधन-चतुष्ट्य की ओर संकेत माना जाएगा।

3. 'निति गढ़ ..... चूरु' में सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार।

4. 'फिरहिं पांच ..... साजी' में रूपक अलंकार।

5. 'जनु गाजहिं ..... चढ़े' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

नवौं पंवरि पर दसौं दुआरू। तेहि पर बाज राज घरिआरू।1।
घरी सो बैठि गनै घरिआरी। पहर पहर सो आपनि बारी।2।
जबहिं घरी पूजी वह मारा। घरी घरी घरिआर पुकारा।3।
परा जो डांड जगत सब डांडा। का निचिंत मांटी कर भांडा।4।
तुम्ह तेहि चाक चढ़े होइ कांचे। आएहु फिरै न थिर होई बांचे।5।
घरी जो भरै घटै तुम आऊ। का निचिंत सोवहि रे बटाऊ।6।
पहरहि पहर गजर निति होई। हिआ निसोगा जाग न सोई।7।
मुहमद जीवन जल भरन रंहट घरी की रीति।
घरी सो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति॥2/18॥

नोट

शब्दार्थ – दसौं दुआरू=दशम द्वार, ब्रह्मरन्ध्र। राज घरिआरू= राजा का घंटा। घरिआरी=घंटा बजाने वाला। पूजी=पूरी हुई। डांडा=दण्डित किया। डांड=घड़ियाल बजाने का डंडा। तेहि चाक= उस समय-रूपी चक्र पर। निचिंत=निश्चिंत। मांटी कर भांडा=मिट्टी का बर्तन अर्थात् मानव शरीर। थिर=स्थिर। बांचे=बचाता है। आऊ=आयु। गजर=आठ घड़ी या एक पहर (3 घंटे) व्यतीत होने पर जोर से घड़ियाल बजाया जाता था उसी को गजर कहते हैं। राजदरबारों में आठ घड़ी या एक पहर के बाद पहरा बदल जाता था। ढरी=खाली हो गई। गा बीति= व्यतीत हो गया।

संदर्भ – नव-पौढ़ियों के वर्णन के उपरान्त प्रस्तुत पंक्तियों में जायसी ने दशम-द्वार या ब्रह्मरंध्र का वर्णन किया है।

व्याख्या – शरीर रूपी दुर्ग में नव पंवरियों के उपरान्त दसवां द्वार है। उस पर राजा का घंटा बजता है। घंटा बजाने वाला बैठा घड़ियां गिनता रहता है और अपनी बारी (पाली, घड़ियाल बजाने की ड्यूटी) के प्रत्येक पहर के उपरान्त जोर से घड़ियाल बजाता है– अथवा वह पहरे वालों को अपनी-अपनी बारी आने की सूचना देता है। जब उसकी बारी की आठ घड़ियां (एक प्रहर) पूरी हो जाती है तो वह घड़ियाल को कुछ देर तक निरंतर बजाता है जिससे घड़ियाल से घड़ी-घड़ी की ध्वनि निकलने लगती हैं। घड़ीयाल पर डंडे की चोट पड़ने से आवाज निकलती है कि उसने सारे संसार को एक घड़ी से दंडित कर दिया है (उसकी आयु एक घड़ी कम कर दी है) फिर मिट्टी के बर्तन की भांति नश्वर जीवन निश्चित क्यों है?– अर्थात् वे हरि-स्मरण में शीघ्रता क्यों नहीं करते। अरे नश्वर प्राणियों! तुम कुम्हार के चक्र रूपी चाक पर कच्ची मिट्टी की भांति चढ़े हुए हो। इस संसार में तुम लौट आने (मरने) के लिए आए हो, यहां स्थिर नहीं रह सकते (कुम्हार के चक्र पर भी मिट्टी स्थिर नहीं रहती) ज्यों-ज्यों घड़ी समाप्त होती जाती है उसी अनुपात में तुम्हारी आयु घटती जाती है। अरे जीवन-मार्ग के पथिक तू निश्चिंत होकर क्यों सो रहा है? नित्यप्रति प्रत्येक पहर के उपरान्त गजर बजता रहता है। घड़ियाल पर देर तक चोंटे लगती जाती हैं। किन्तु तेरा हृदय ऐसा शोकरहित है (शुक्ल जी ने इसका पाठान्तर बंजर ग्रहण किया है जो अधिक उपयुक्त है) कि तू उसे सुनकर भी नहीं जागता। 'बंजर' पाठ ग्रहण करने पर अर्थ होगा कि तेरा हृदय ऐसा वज्र-तुल्य है कि तू इस चेतावनी को सुनकर भी नहीं जागता।

कवि मलिक मुहम्मद जायसी कहते हैं कि मनुष्य का जीवन रहट की घरियाओं की भांति भरता-ढलता रहता है। जैसे रहट की घरियाएं भरकर आती हैं और ढल जाती हैं (खाली हो जाती हैं) उसी प्रकार जीवन जगत् में आता है और समाप्त हो जाता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'जबहिं घरी पूजी-प्राचीन काल में आजकल जैसी घड़ियां नहीं थीं। पहले जल से भरी नांद या बड़े बर्तन में एक ऐसी कटोरी डाल दी जाती थी, जिसके तले में छिद्र होता था। एक व्यक्ति उस कटोरी को देखता रहता था कि वह जल में भरकर कब डूबती है। जैसे ही तल में छिद्र में से आने वाले पानी के कारण वह कटोरी भर कर डूबती थी, यह मान लिया जाता था कि एक घड़ी समय समाप्त हो गया है और इस तथ्य की सूचना घड़ियाल बजाकर दी जाती थी।

2. 'पहर ..... पहर' तथा 'घरी ..... घरी' में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार।

3. 'घरी ..... घरी' तथा 'डांड और डांडा' में यमक अलंकार।

4. 'का निचिंत ..... भांडा' में रूपक अलंकार।

5. 'मुहम्मद..... रीति' में उपमा अलंकार।

टास्क रहस्यात्मक सन्दर्भ में सिंहलगढ़ के प्रतीकार्य स्पष्ट कीजिए।

गढ़ पर नीर खीर दुइ नदी। पानी भरहिं जैसे दुरुपदी।1।
औरु कुंड एक मोंतीचूरू। पानी अंब्रित कीच कपूरू।2।
ओहि क पानि राजा पै पिया। बिरिध होइ नहिं जौ लहि जिआ।3।
कंचन बिरिख एक तेहि पासा। जस कलपतरु इंद्र कबिलासा।4।

नोट

मूल पतार सरग ओहि साखा। अमर बेलि को पाव को चाखा।5।
चांद पात और फूल तराईं। होइ उजिआर नगर जंह ताईं।6।
वह फर पावै तपि कै कोई। बिरिध खाइ नव जोबन होई।7।
राजा भए भिखारी सुनि वह अंब्रित भोग।
जेइं पाबा सो अमर भा ना किछु व्याधि न रोग॥2/19॥

शब्दार्थ – नीर खीर=जल और दूध, इड़ा और पिंगला। दुरुपदी=द्रौपती। अंब्रित=अमृत। ओहि क=उसका। बिरिध=वृद्ध। जौ लहि=तब तक। कंचन=सोना(स्वर्ण)। बिरिख=वृक्ष। चांद पात=चांदी के पत्ते। फूल तराईं=तारे फूल हैं। फर=फल।

संदर्भ–सिंहलद्वीप की नीर-क्षीर की नदियां, मोतीचूर कुंड, कंचन-वृक्ष आदि के माध्यम से योग-साधना का वर्णन।

व्याख्या–उस गढ़ पर जल और दूध की दो नदियां हैं (इड़ा और पिंगला नामक नाड़ियां हैं)। द्रौपदी (कुंडलनी) जैसी नदियां वहां पानी भरती हैं अथवा उनमें द्रौपदी के अक्षय चीर की भांति अक्षय जल भरा रहता है। वहां एक मोतीचूर नामक कुंड है। उसका पानी अमृत तुल्य और कीचड़ कपूर जैसी है। उसका जल लेने का अधिकार मात्र राजा का होता है। उस पानी को पी लेने वाला जब तक जीवित रहता है कभी वृद्ध नहीं होता। उसके समीप ही एक स्वर्ण-वृक्ष है, जो इन्द्र के कैलास के कल्पतरु के तुल्य है। उस वृक्ष की जड़ पाताल में है जबकि शाखाएं स्वर्ग तक फैली हुई हैं। उस पर छाई हुई अमर बेल को कौन पाता है और कौन चख सकता है? उस वृक्ष के चन्द्रमा रूपी पत्ते हैं और तारों रूपी फूल हैं। उसका प्रकाश वहां तक फैला रहता है, जहां तक यह नगर है। उसके फल को तपस्या करके ही प्राप्त किया जा सकता है, उसे यदि कोई वृद्ध भी खा लेता है तो उसे नवजीवन (नवयौवन) की प्राप्ति हो जाती है।

उस अमृत-भोग के विषय में सुनकर राजा राज-पाट छोड़कर भिखारी बन गए हैं, उसे जो भी प्राप्त कर लेता है वही अमर हो जाता है और उसको किसी प्रकार की मानसिक या शरीरिक बीमारी नहीं रहती।

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने इन पंक्तियों का हठयोगपरक अर्थ किया है– "इस शरीर रूपी गढ़ में दो आत्मा रूपी नदियां प्रमुख हैं– प्राप्त आत्मा और प्राप्तव्य आत्मा। द्रौपदी के सदृश जीव शक्ति (कुंडलिनी) सुषुम्ना रज्जु के द्वारा ब्रहांरध्र रूपी कुण्ड में पानी भरती है। वहां ब्रह्मरंध्र रूपी मोतीचूर का कुण्ड है। उसका पानी अमृत-तुल्य है। वहां जो चन्द्र तत्व है उससे अमृत झरा करता है। उस ब्रह्मरंध्र के अमृत को कोई राजयोगी ही पान कर पाता है। उसको पान करने वाले जब तक जीवित रहते हैं तब तक वृद्ध नहीं होते। उस ब्रह्मरंध्र के समीप सुषुम्ना का कंचन वृक्ष है। वह इन्द्रलोक के कल्पतरु के सदृश है (व्यंजना है कि जिस तरह से कल्पवृक्ष मनुष्य की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करता है उसी प्रकार सुषुम्नर साधना मनुष्य की सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण कर देती है।) उस सुषुम्न रूपी की जड़ मूलाधार में रहती है और सहस्त्रार रूपी स्वर्ग में उसकी शाखाएं रहती है। सुषुम्ना की बेल अमर है उसकी सिद्धि कोई बिरला व्यक्ति ही पा सकता है। सहस्त्रार में जो चंद्र तत्व है मानों वह उस वृक्ष के पत्ते हैं और सहस्त्रदल के ज्योतिकण उस सुषुम्ना रूपी वृक्ष के फूल हैं। उससे सम्पूर्ण ब्रह्मरंध्र ज्योतिर्मय रहता है। उस ब्रह्मरंध्र के अमृतफल को कोई तपस्या करके प्राप्त करता है। वृद्ध उसे यदि खा ले तो युवा हो जाए।

उस ब्रह्मरंध्र के अमृत को प्राप्त करने के लिए राजा भी भिखारी हो गए। जिसने उसे प्राप्त किया वही अमर हो गया। उसे कोई व्याधि और रोग नहीं सताते।"

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने इन पंक्तियों का निम्नांकित आध्यात्मिक संकेत बताया है– "इस छन्द में हठयोग के तत्वों की ओर कुछ इस प्रकार संकेत ज्ञात होता है– यह मानव शरीर ही गढ़ है। यथा–

"गढ़ तस बांक जैसि तोरि काया। परखि देखु ओहि कै छाया"

इस काया-गढ़ में नीर तथा क्षीर नाम की नदियां इड़ा तथा पिंगला नाड़ियां है। मोती-चूर्ण का कुंड सुषुम्ना है। कंचन-वृक्ष अमृत वल्ली है, जो पाताल (मूलाधार चक्र) से लेकर आकाश (सहस्त्रार) तक फैली हुई है। उसी का प्रकाश समस्त कायागढ़ में होता रहता है–काया की समस्त चेतना उसी का परिणाम है। इस अमृत वल्ली का फल आत्मानुभव है जिसका सेवन करने में जरा मरण का भय नहीं रहता है। इस अमृत-फल को तप के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है इसको प्राप्त करने के लिए भर्तृहरि जैसे राजा भिखारी बने। इसको प्राप्त करने के लिए अनन्तर प्राणी को किसी प्रकार की शारीरिक, मानसिक व्याधियां कष्ट नहीं पहुंचा सकती हैं।"

नोट

2. सम्पूर्ण छन्द में समासोक्ति अलंकार।

3. 'परिहारी ..... दूरपदी' में उपमा अलंकार।

4. 'पानी .... अमृत' में रूपक अलंकार।

5. 'कंचन बिरिछ कबिलासा' में उपमा अलंकार।

6. 'चांद .... तराई' में रूपक अलंकार।

गढ़ पर बसहिं चारि गढ़पती। असुपति गजपति और नरपती।1।
सब क धौरहर सोनै साजा। औ अपने अपने घर राजा।2।
रूपवंत धनवंत सभागे। परस पखान पंवरि तेन्ह लागे।3।
भोग बेरास सदा सब माना। दुख चिंता कोउ जरम न जाना।4।
मंदिर मंदिर सब के चौपारी। बैठि कुंवर सब खेलहिं सारी।5।
पांसा ढरै खेल भलि होई। खरग दान सरि पूज न कोई।6।
भांट बरनि कहि कीरति भली। पावहिं हस्ति घोर सिंघली।7।
मंदिर मंदिर फुलवारी चोवा चंदन बास।
निसि दिन रहै बंसत भा छहु रितु बारहु मास॥2/20॥

शब्दार्थ–चारि=चार। असुपति=अश्वपति। धौरहर=महल। परस पखान=पारस पत्थर। पंवरि=ड्यौढ़ी। बेरास=विलास। सारी=पांसे का खेल। खरग=तलवार। सरि पूज न कोई=कोई समता नहीं कर सकता। भांट=चारण, भाट। सिंघली=लंका के। मंदिर मंदिर=भवन-भवन में। रितु=ऋतु। बारहु मास=बारह महीनें।

संदर्भ–सिंहलगढ़ के चार गढ़पतियों के वैभव का वर्णन।

व्याख्या–गढ़ पर चार अधिकारी-गढ़पति, अश्वपति, गजपति और नरपति रहते हैं। सभी के सोने के महल बने हुए हैं और वे भी अपने-अपने घर के राजा हैं। वे सभी बड़े ही सुन्दर, धनवान और सौभाग्यवान हैं और उनकी ड्यौढ़ियों में पारस पत्थर लगे हुए हैं। वे सदैव भोग विलास करते हैं और उन्होंने जीवन में दुःख तथा चिन्ता का कोई नाम तक नहीं जाना है। सभी के भवनों के बहिर्भाग में चौपालें बनी हुई हैं, जहां बैठकर कुंवर सार-पासे खेलते हैं। पासों को डालकर सुन्दर खेल खेला जाता है। खड्ग-संचालन और दान देने में उनकी कोई बराबरी नहीं कर सकता। भाट लोग उनकी कीर्ति का भली प्रकार वर्णन करते हैं और उनसे पुरस्कार-स्वरूप घोड़े तथा सिंहली हाथी प्राप्त करते हैं।

प्रत्येक भवन में फुलवारी लगी हुई है तथा चोवा और चन्दन की सुगन्धि फैली रहती है। उनके भवनों में षट्-ऋतुओं और बारहों-मासों में अहिर्निश बसन्त ऋतु छाई रहती है।

साहित्यिक सौन्दर्य–1. 'खरग ..... कोई' में अनन्वयोपमा अलंकार।

2. प्रथम पंक्ति में वृत्यनुप्रास, 'चोवा ..... चंदन' में छेकानुप्रास अलंकार।

टिप्पणी– प्राचीन काल में राजकुमार और राजकुमारियों के खेल के सदंर्भ में सार-पासे का बहुधा उल्लेख मिलता है।

पुनि चलि देखा राज दुआरू। महिं घूंबिअ पाइअ नहिं बारू।1।
हस्ति सिंघली बांधे बारा। जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा।2।
कवनौ सेत पीत रतनारे। कवनौ हरे धूम औ कारे।3।
बरनहि बरन गगन जस मेघा। औ तिन्ह गगन पीठ जनु ठेंघा।4।
सिंघल के बरने सिंघली। एकेक चाहि सो एकेक बली।5।
गिरि पहार पब्बै गहि पेलहिं। बिरिख उपारि झारिमुख मेलहिं।6।
मात निमत सब गरजहि बांधे। निसि दिन रहहिं महाउत कांधे।7।
धरती मार न अंगवै पावं धरत उठ हालि।
कुरुंभ टूट फन फाटे तिन्ह हस्तिन्ह की चालि॥2/21॥

नोट

शब्दार्थ – दूआरू=द्वारा। महिं=अन्दर। घूंबिअ=घूमकर। बारू=द्वार। बारा=द्वार पर। जनु=मानो। कवनौ=कोई। धूम=धूप के रंग के। रतनारे=लाल। बरन=रंग। ठेंघा=टिका हुआ। पब्बै=पर्वत। गहि=पकड़कर। पेलहिं=ठेल देते हैं। बिरिख=वृक्ष। उपारि=उखाड़ कर। मात=मतवाले। निमत=मदहीन। अंगवै= अंगीकार कर ली, मान ली। कुरूंम=पृथ्वी के नीचे स्थित महाकच्छप। तिन्ह=उन।

संदर्भ–सिंहल-नरेश के राज-द्वार पर बंधे हाथियों का वर्णन।

व्याख्या–तदनन्तर चलकर राजद्वार को देखिए। ऐसा द्वार सारी पृथ्वी पर घूमने अर्थात् चक्कर लगाने पर भी नहीं मिल सकता। राजद्वार पर सिंहली हाथी बंधे हुए हैं। वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो सजीव या साक्षात् पर्वत हों। उन हाथियों में से कोई श्वेत रंग का है तो कोई पीला, कोई लाल है तो कोई हरा, कोई धूप जैसे रंग का है तो कोई काला है। उनके रंग आकाश के बादलों जैसे हैं। वे इतने ऊंचे हैं कि ऐसा प्रतीत होता है मानो उन्होंने आकाश को अपनी पीठों पर टिकाया हुआ है। यह वर्णन सिंहल के सिंहली हाथियों का है। उनमें एक से बढ़कर एक बलवान हैं। वे गिरि पहाड़ और पर्वतों को पकड़कर ठेल देते हैं तथा वृक्षों को उखाड़कर उन्हें झगड़ते हुए अपने मुख में दबा लेते हैं। वे सब चाहे मदोन्मत्त हों यहा मदहीन, राजद्वार पर बंधे हुए गरजते रहते हैं और महावत उनके कंधों पर रात-दिन बैठे रहते हैं।

इन विशालकाय हाथियों के भार को पृथ्वी भी सहन नहीं कर पाती और उनके पांव रखते ही हिल उठती है। इन हाथियों के चलने के बोझ से महाकच्छप की पीठ टूट गई जबकि शेषनाग के फन फट गए।

साहित्यिक सौन्दर्य–1. 'हस्ति .... पहारा' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

2. 'बरनहिं ..... मेघा' में उपमा अलंकार।

3. 'औ तिन्ह .... ठेंका' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

4. 'गिरि पहार ..... मेलहि' में अतिशयोक्ति अलंकार।

5. 'धरती भार ..... की चाली' में अत्युक्ति अलंकार।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित काव्यांशों में प्रयुक्त अलंकार बताइए–

1. कंचन कोट जरे कौसीसा! नखतन्ह भरा बीजू अस दीसा।
   (अ) उत्प्रेक्षा (ब) यमक (स) उपमा
2. फिरहिं पांच कोटवार सो भंवरी कापै पांय चंपत वै पंवरी।
   (अ) रूपक (ब) अनुप्रास (स) यमक
3. जबहीं घरी पूजी वह मारा। घरी-घरी घरियार पुकारा।
   (अ) उत्प्रेक्षा (ब) यमक (स) अतिशयोक्ति
4. गिरि पहार पब्बे गहि पेलहिं। बिरिख उपारि झारिमुख मेलहिं।
   (अ) उपमा (ब) अनुप्रास (स) अतिशयोक्ति

पुनि बांधे रजबार तुरंगा। का बरनौं जस उन्हके रंगा।1।
लील समुंद्र चाल जग जानै। हांसुल भंवर किआह बखानै।2।
हरे कुरंग महुअ बहुभांती। गर्र कोकाह बोलाह सो पांती।3।
तीख तुखार चांड और बांके। तरपहिं तबहि तायन बिनु हांके।4।
मन तें अगुमन डोलहिं बागा। देत उसास गगन सिर लागा।5।
पावहिं सांस समुंद पर धावहिं। बूड़ न पावं पार होइ आवहिं।6।
थिर न रहहिं रिस लोह चबाहीं। भांजहिं पूंछि सीस उपराहीं।7।
अस तुखार सब देखे जनु मन के रथवाहा।
नैन पलक पहुंचावहिं जहं पहंचा कोउ चाहा॥2/22॥

नोट

शब्दार्थ – रजबार=राजद्वार। लील=नीले। समुंद्र=बादामी। हांसुल=कुम्मैत। भंवर=मुश्की। किआह=लाल व कल छौंहें। कुरंग=लाख जैसे रंग के। महुअ=महुए के रंग के। गर्र=लाल और श्वेत का मिश्रण। कोकाह=श्वेत। बोलाह=जिसके गर्दन और पूंछ के बाल पीले हों। चांड= प्रचंड। तायन=चाबुक। सांस=इशारा। लोह= लगाम में लगा मुंह का लोहा। रथवाह=रथ खींचने वाले। अगुमन=आगे। रिस=क्रोध में। बूड़=डूबना। तुखार=तुखार देश के घोड़े।

संदर्भ–सिंहल-नरेश के राजद्वार पर बंधे अश्वों का वर्णन।

व्याख्या–तदनन्तर राजद्वार पर बंधे घोड़े देखिए। उनके जैसे सुन्दर रंग हैं, उनका क्या वर्णन करूं? उनमें कोई नीले और कोई बादामी रंग का है जिनकी तीव्रगति से सारा संसार परिचित है। उनमें से कुछ अश्व कुम्मैत, मुश्की और कोकाह जाति के हैं, कुछ अश्व हरे, लाल और महुए के रंग के हैं और कुछ गर्दन और पूंछ के श्वेत बालों वाले घोड़े हैं। तुखार देश के तुखारी घोड़े बड़े ही तेज, प्रचण्ड और बलवान हैं। वे बिना चाबुक हिलाए ही बिना हांके ही भागने के लिए व्यग्र रहते हैं। बाग हिलाने पर वे मन से भी अधिक तीव्र गति से दौड़ते हैं और उछाल लेते ही अपना सिर ऊंचा उठाकर आकाश से लगा लेते हैं (अर्थात् दुपाए खड़े हो जाते हैं) अथवा उनकी बाग हिलाने पर मनुष्य सांस भी नहीं ले पाता कि वे आकाश से बातें करने लगते हैं। इशारा पाने पर वे समुद्र पर भी दौड़ जाते हैं। उनकी टांपें (तीव्रगति के कारण) जल में डूबती नहीं हैं अपितु वे पार निकल आते हैं। वे अपने स्थान पर जरा भी स्थिर नहीं रहते और क्रोध में लगाम के लोहे को चबाने लगते हैं। जब वे दौड़ते हैं तो अपनी पूंछों को मोड़कर सिर पर कर लेते हैं।

तुखार देश के ये घोड़े देखने में ऐसे प्रतीत होते हैं मानों मन रूपी रथ के वाहक हों अर्थात् उनकी गति मन जैसी तीव्र है। वे नेत्रों के पलक झपकते ही इच्छित गंतव्य स्थान पर पहुंचा देते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. इन पंक्तियों से जायसी की घोड़ों विषयक बहुज्ञता का परिचय मिलता है।

2. 'अस तुखार .... रथुवाहु' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

3. 'नैन .... चाह' में अतिशयोक्ति अलंकार।

राजसभा पुनि दीख बईठी। इंद्रसभा जनु परि गइ डीठी।1।

धनि राजा अस सभा सवांरी। जानहु फूलि रही फुलवारी।2।

मुकुटबंध सब बैठे राजा। दर निसान निति जेन्ह के बाजा।3।

रूपवंत मनि दिपै लिलाटा। मांथें छात बैठ सब पाटा।4।

मानहु कंवल सरोवर फूलै। सगा क रूप देखि मन भूलै।5।

पान कपूर मेद कस्तूरी। सुगंध बास भरि रही अपूरी।6।

मांझ ऊंच इंद्रासन साजा। गंध्रबसेनि बैठ जहं राजा ।7।

छत्र गगन लहि ताकर सूर तवै जसु आपु।

सभा कंवल जिमि बिगसै मांथे बड़ परतापु॥2/23॥

शब्दार्थ–बईठी=बैठी हुई। डीठी=नजर में, दृष्टि में। अस=ऐसी। मुकुटबध= मुकुट बांधे हुए। दर=द्वार। निसान=नगाड़े। छात=छत्र। मेद= सुगन्धित द्रव्य। अपूरी=पूर्ण। लहि=तक। तवै= तपता। जसु=यश। आपु=स्वयं। जिमि=तरह। बिगसै=होती है। परितापु=प्रताप, तेज।

संदर्भ – गंधर्वसेन के राज-दरबार का वर्णन।

व्याख्या – इसके पश्चात् (आगे चलने पर) राज सभा बैठी दृष्टिगत होती है। उसे देखकर ऐसा लगता है मानो इन्द्रसभा पर नजर पड़ गई हो। वह राजा धन्य है जिसकी ऐसी सुसज्जित सभा है। उसमें बैठे प्रसन्न वदन नरेशों को देखकर ऐसा लगता है मानों फुलवारी खिली हुई हो। उसमें सभी नरेश मुकुट बांधकर बैठे हैं। इनके द्वारों पर सदैव दुदुंभि या नगाड़े बजते रहते हैं। ये राजा बड़े ही रूपवान हैं और उनके मस्तकों पर मणियां सुशोभित रहती हैं। इनके मस्तकों पर मुकुट हैं और ये सभी सिंहासनों पर बैठे हैं। ऐसा लगता है मानों तालाब में कमल खिले हुए हैं। राज सभा की सुन्दरता देखकर मन सब कुछ भूल जाता है। राज-सभा में पान, कपूर, मेद और कस्तूरी की सुगन्धि पूर्णतया परिव्याप्त है।

नोट

मध्य में एक ऊंचा सिंहासन सुशोभित है जो इन्द्रासन जैसा है। उस पर गंधर्वसेन नरेश बैठा हुआ है।

राजा गंधर्वसेन का छत्र आकाश तक है। वह ऐसा तेजस्वी है जैसे स्वयं सूर्य ही तप रहा हो। राजसभा के सदस्य राजा मानो कमल हैं जो सूर्य-रूपी गंधर्वसेन को देखकर प्रमुदित हो रहे हैं। उसका मस्तक बड़ा ही प्रतापशाली है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'राज सभा.... गई डीठी' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

2. 'धनि राजा.... फुलवारी' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

3. 'मानहुं कवंल..... भूलै' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

4. 'सभा कमल जिमि बिगसै' में उपमा अलंकार।

साजा राज मंदिर कबिलासू। सोने कर सब पुहुमि अकासू।1।
सातखंड धौराहर साजा। उहै संवारि सकै अस राजा।2।
हीरा ईंट कपूर गिलावा। औ नग लाइ सरग लै लावा।3।
जावंत सबै उरेह उरेहे। भांति भांति नग लाग उबेहे।4।
भा कटाव सब अनबन भांति। चित्र होत गा पांतिहि पांती।5।
लाग खंभ मनि मानिक जरे। जनहु दिया दिन आछत बरे।6।
देखि धौरहर कर उंजियारा। छपि गे चांद सूर और तारा।7।
सुने सात बैकुंठ जस तस साजे खंड सात।
बेहर बेहर भाठ तेन्ह खंड खंड ऊपर जात॥2/24॥

शब्दार्थ–कबिलासू=कैलास। पुहुमि=पृथ्वी। धौराहर=श्वेत महल, धवल गृह। उहै= उसको। अस=ऐसा। गिलावा=गारा। लै=तक। उरेहे=चित्रित किए। कटाव=नक्काशी। अनबन भांति=अनेक प्रकार से। आछत=होते हुए भी। जस= जैसे। तस=तैसे। बेहर बेहर=पृथक्-पृथक्। उंजियारा=उजाला। बरे=जल रहे हैं।

संदर्भ–गंधर्वसेन के राजमहल का वर्णन।

व्याख्या–दुर्ग में गंधर्वसेन का कैलास की भांति राजमहल सुशोभित है, जिसकी पृथ्वी अर्थात् फर्श तथा आकाश अर्थात् दीवारें और छतें स्वर्ण-निर्मित हैं। उसका धवलगृह सतखंडा है। कोई गंधर्वसेन जैसा राजा ही अपने महल को इस प्रकार सम्भाल सकता है। यह राजमहल कपूर के गारे में हीरे रूपी ईटों को चिनकर बनाया गया है और उसमें नग जड़ते हुए उसे ऊंचाई की दृष्टि से स्वर्ग तक ले जाया गया है अर्थात् वह गगनचुम्बी है। जितने भी प्रकार के चिह्न हो सकते हैं वे सभी इसमें चित्रित किए गए हैं और उसमें तरह-तरह के नग लगाए गए हैं। उसमें नाना प्रकार की पच्चीकारी की गई है और चित्रों की पंक्तियां बनाई गई हैं। उसमें जो स्तम्भ लगे हुए हैं उनमें मणि-माणिक जड़े हुए हैं। वे इतने चमकीले हैं कि उनके कारण ऐसा प्रतीत होता है मानो दिवस में दीपक जल रहे हैं। इस धवलगृह का प्रकाश या चमक को देखकर चांद, सूर्य और तारे (लज्जावश) फीके पड़ गए हैं।

15.2 सारांश (Summary)

कवि ने सिंहलद्वीप के नगर बाग-बगीचे हाट-बाजार, फल-फूल आदि का सुंदर मनोहर चित्र अंकित किया है। नगर की सुंदर नारियों को कवि ने पद्मिनी कहा है सिंहलद्वीप के दुर्ग में नौ द्वारों की चर्चा की है। सिंहलगढ़ की ऊंचाई आकाश को छूने वाली है और उस पर चढ़ाई के मार्ग में ये नौ द्वार हैं जिनके माध्यम से सफलता प्राप्त की जो सकती है। सिंहलगढ़ पर चढ़ाई को कवि ने हठ योग के स्थानापन्न चित्रित किया है।

15.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **दसौंदुआरूः** दशम द्वार, ब्रह्मरंध्र।
2. **पखानः** पारस पत्थर।

नोट

3. कबिलासू: कैलास, स्वर्ग, हिमालय की एक चोटी जिसे शिव का निवास-स्थल माना गया है।

4. पुहुमि: पृथ्वी।

15.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. नवौ खंड नच पंवरी औ तहं बज्र केवार।
चारि बसेरें सों चढ़ै सत सौं चढ़ै जो पार।।
पद में दुर्ग के नौ पड़ावों से कवि का क्या आशय है? स्पष्ट कीजिए।

2. सिंहलद्वीप वर्णन खंड की योजना के माध्यम से जायसी का आशय स्पष्ट कीजिए।

3. सिंहलद्वीप वर्णन-खण्ड में सूफी मत के प्रभाव को लक्षित कीजिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. (स) 2. (अ) 3. (ब) 4. (स)

15.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. पद्मावत–*मलिक मुहम्मद जायसी कृत।*
2. जायसी ग्रन्थावली–*शुक्ल रामचंद्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।*
3. मलिक मुहम्मद जायसी–*बी.सी. पाण्डेय, विनोद प्रकाशन।*

नोट

इकाई 16

पद्मावत–नागमती वियोग-खंड: व्याख्या भाग

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
16.1 नागमती वियोग-खण्ड
16.2 सारांश (Summary)
16.3 शब्दकोश (Keywords)
16.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
16.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- पद्मावत में वर्णित नागमती वियोग खण्ड के वैशिष्ट्य को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

रत्नसेन के वियोग में तड़पती नागमती की विवशता का तीसवें खंड में जायसी ने बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। उसका शरीर सूखकर काँटे जैसा हो गया था और उसके मुख से सदैव पीउ-पीउ की ध्वनि निकलती रहती थी। बारह-मास के साथ नागमती की वर्ष के बारहों महीनों में कैसी कातर दशा हो गई थी, इस तथ्य का जायसी ने बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है।

16.1 नागमती वियोग-खण्ड

नागमती चितउर पथ हेरा। पिउ जो गए फिरि कीन्ह न फेरा।1।
नागरि नारि काहुं बस परा। तेइं बिमोहि मोसौं चितु हरा।2।
सुवा काल होइ लै गा पीऊ। पिउ नहिं लेत लेत बरु जीऊ।3।
भएउ नरायन बावन करा। राज करत बलि राजा छरा।4।
करन बान लीन्हेउ कै छंदू। भारथ भएउ झिलमिल आनंदू।5।
मानत भोग गोपीचंद भोगी। लै उपसवा जलंधर जोगी।6।
लै कान्हहि भा अकरुर अलोपी। कठिन बिछोउ जिअै किमि गोपी।7।
सारस जोरी किमि हरी मारि गएउ किन खग्गि।
झुरि झुरि पांजरि धनि भईं बिरह कै लागी अग्नि॥30/1॥

शब्दार्थ–चितउर=चित्तौड़। हेरा=देखने लगी। फेरा=लौटना। नागरि=चतुर स्त्री। बिमोही=मोहित करके। बस=वश में। बावन करा=विष्णु का वामन अवतार द्वारा छल करना और राजा बलि को पाताल भेजना। करन=राजा कर्ण। भारथ=महाभारत। झिलमिल=कवच। उपसवा=समीप ले गया। अकरुर=अक्रूर, जो श्रीकृष्ण को गोकुल से मथुरा लिवा ले गए थे। किमि=कैसे। पांजरि=पिंजर, हड्डियों का ढांचा। झुरि=सूखकर।

नोट

संदर्भ–इससे पूर्ववर्ती खण्डों में कवि ने रत्नसेन और पद्मावती संबधी वृत्तान्त का चित्रण किया है। प्रस्तुत खण्ड में वह कथानक को चित्तौड़ की ओर मोड़ता है और विरहिणी नागमती की विरहावस्था का वर्णन करता है।

व्याख्या–कवि कहता है कि उधर चित्तौड़ में नागमती रत्नसेन के प्रत्यागमन के मार्ग की ओर देखती हुई उसके लौटने की प्रतीक्षा करती रहती थी और सोचती रहती थी कि मेरे प्रियतम यहां से एक बार क्या गए कि उन्होंने लौटकर आने का नाम तक नहीं लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी चतुर नारी के वशीभूत हो गए हैं और उसने उनको मोहित करके, उनके हृदय को मेरी ओर से अपहृत कर लिया है– उनके हृदय से मुझको भुलाकर, उनके हृदय में वह स्वयं बस गई है। वह तोता (हीरामन) मेरे लिए काल तुल्य बनकर मेरे प्रियतम को मुझसे विलग करके अपने साथ लिवा गया है। उस तोते को मेरे प्रियतम को नहीं ले जाना चाहिए था चाहे उसके स्थान पर वह मेरी जान ले लेता। वह तोता तो मेरे प्रति उसी प्रकार छली सिद्ध हुआ है, जैसे राजा बलि के साथ वामन ने छल किया था (उनको स्वर्ग के स्थान पर पाताल भेज दिया था)। उसने इन्द्र की भांति छल करते हुए कर्ण से उसके अमोघ वाणों को छलपूर्वक लेने के तुल्य मेरे पति को छलपूर्वक विमुक्त किया है और जैसे महाभारत के युद्ध में कर्ण को संत्रस्त देखकर इन्द्र प्रसन्न हुआ था, वह भी उसी प्रकार प्रसन्न हो रहा होगा। राजा गोपीचन्द्र राजसी वैभवों के उपभोग में निमग्न रहते थे, किन्तु जिस प्रकार उनको जालधर योगी अपने साथ लिवा ले गए थे, उसी प्रकार राजसी भोगों में लिप्त मेरे प्राणेश्वर को हीरामन लिवा ले गया है। वह तोता मेरे प्रियतम को अपने साथ ले जाकर उसी प्रकार विलुप्त हो गया है, जैसे श्रीकृष्ण को अक्रूर अपने साथ मथुरा ले गए थे और अब मुझ विरहिणी का जीवित रहना उसी प्रकार दुष्कर हो गया है, जैसे कृष्ण के वियोग में गोपियों का जीवन दूभर हो गया था।

नागमती अंतर्विलाप-सा करते हुए कहने लगी कि अरे तोते! तूने हमारी सारसों जैसी जोड़ी को भंग किया है, इससे अच्छा तो यह रहता कि तू खड्ग द्वारा मेरी हत्या कर देता। अब तो मेरी काया में ऐसी विरहाग्नि सुलगी रहती है कि उसमें जलकर मेरा शरीर झूर-झूर हो उठा है। उसमें रंचमात्र भी सत्त्व नहीं बचा है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. बावन करा– एक पौराणिक कथा के अनुसार राजा बलि महादानी थे और उन्होंने स्वर्ग का राज्य प्राप्त करने की कामना से 99 यज्ञ पूर्ण कर लिए थे। यदि उनका एक यज्ञ और निर्विघ्न पूरा हो जाता तो वे स्वर्ग के राजा बन जाते। देवताओं में इस तथ्य को लेकर खलबली मच गई क्योंकि राजा बलि का दैत्य-कुल से सम्बन्ध था। देवों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर विष्णु ने वामन का रूप धारण करके राजा बलि से ढाई पग भूमि की मांग की थी और राजा बलि द्वारा इस मांग को स्वीकार कर लेने पर एक कदम में आकाश, दूसरे में पाताल को नाप लिया था। उनका तीसरा कदम सम्पूर्ण पृथ्वी से बढ़कर था अतः राजा बलि स्वयं भी लेट गए थे कि आप मेरे शरीर को भी नापकर अपना कदम पूरा कीजिए। इस प्रकार विष्णु ने राजा बलि के साथ छल करके बलि को पाताल का राजा बना दिया था। इस विषय में एक कहावत भी प्रसिद्ध है।

"मन चाही ना होति है प्रभु चाही तत्काल।
बलि चाहा था स्वर्ग को भेजि दिया पाताल।"

2. करन बान लीन्हेउ कै छंदू– महाभारत संबंधी एक प्रसंग के अनुसार सूर्य-पुत्र कर्ण का जन्म दिव्य कवच और कुंडलों के साथ हुआ था। इसके साथ ही उसके पास पांच अमोघ बाण भी थे जिनसे कर्ण दुर्योधन की ओर से युद्ध करते हुए पांचों पांडव-भ्राताओं को मारना चाहता था। अर्जुन के पिता इन्द्र इस बात को सोचकर बड़े दुःखी थे और उन्होंने अंततः छल का आश्रय लिया कि एक ब्राह्मण के वेश में कर्ण से उसके कवच-कुंडल और अमोघ बाणों को दान के रूप में मांग लिया और महादानी कर्ण ने इन वस्तुओं को प्राणधिक मूल्यवान होते हुए भी इन्द्र को सौंप दिया। दान के भार से इन्द्र का रथ जब आकाश की ओर नहीं उड़ सका तो इन्द्र को एक अमोघ बाण कर्ण को देने के लिए विवश होना पड़ा। कर्ण संतुष्ट था कि इस बाण से मैं अपने प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन की हत्या कर दूंगा, किन्तु श्रीकृष्ण की चाल के कारण कर्ण को अपने इस अमोघ बाण को भी भीमसेन और हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच पर छोड़ने को विवश होना पड़ा था और वह स्वयं अर्जुन के हाथों मारा गया था। नागमती का अभिप्राय यह है कि मेरे पति का महत्व मेरे लिए उसी प्रकार प्राणाधिक था, जैसे कर्ण के लिए उसके बाणों और कवच का था।

साहित्यिक सौन्दर्य – दृष्टांत और रूपक अलंकार।

पिउ बियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा तस बोलै पिउ पीऊ।1।
अधिक काम दगधै सो रामा। हरि जिउ लै सो गएउ पिय नामा।2।

नोट

बिरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीज भीजि तन चोली।3।
सखि हिय हेरि हाथ मैन मारी। हहरि परान तजै अब नारी।4।
खिन एक आव पेट मंह स्वांसा। खिनहि जाइ सब होइ निरासा।5।
पौनु डोलावहिं सींचहिं चोला। पहरक समुझि नारि मुख बोला।6।
प्रान पयान होत केइं राखा। को मिलाव चारित्र कै भाखा।7।
आह जो मारी बिरह की आगि उठी तेहि हांक।
हंस जो रहा सरीर मंह पांख जरे तन थाक॥30/2॥

शब्दार्थ – बाउर=बावला। तस=उस प्रकार। दगधै=जलाता। रामा=स्त्री। मैन=कामदेव। हहरि=हाथ छोड़कर। खिन=क्षण। पहरक=एक पहर। समुझि=होश में आकर। पयान=गमन। चात्रिक=चातकी।

संदर्भ–नागमती की वियोगावस्था का वर्णन किया गया है।

व्याख्या–कवि कहता है कि अपने प्राणेश्वर के वियोग में पद्मावती बावली-सी हो गई और उसके मुख से सदैव पपीहे की भांति पिउ-पिउ की ध्वनि निकलती रहती थी। उस रमणी को काम अत्यधिक प्रपीड़ित करने लगा। हीरामन मानों उसके प्रियतम के रूप में उसके प्राणों को ही अपहृत कर ले गया था। उसे ऐसा विरह-रूपी बाण लगा हुआ था कि वह हिल-डुल भी नहीं सकती थी और रक्त के पसीजने के कारण उसकी चोली सदैव गीली रहती थी। उसको देखकर सखियां सोचने लगीं कि अब यह नारी कामदेव द्वारा परास्त की जा चुकी है– इस पर कामदेव ने विजय प्राप्त कर ली है और कांप-कांपकर अपने प्राण छोड़ देगी। उसे एक क्षण के लिए श्वास आता था और उसके उदर में स्पन्दन होता था, किन्तु क्षण भर में ही वह श्वास निकल जाता था जिससे उसकी समस्त सखियां निराश हो उठती थीं। उसको बेहोश हुई देखकर सखियां उस पर पंखे से हवा करते हुए, उसकी चोली पर जल छिड़कने लगीं, तब कहीं जाकर एक प्रहर के बाद नागमती कुछ सचेत हुई और यह समझते हुए कि मैं अपनी परेशान सखियों से घिरी हुई हूं, उसके मुख से कुछ शब्द निकले। वह कहने लगी कि अपने प्राणेश्वर के वियोग में मेरे उड़ते हुए प्राण-पखेरुओं को किसने और क्यों उड़ने से रोक दिया है। अब मुझ चातकी का स्वप्रियतम-रूपी मेघ से कौन सम्मिलन करायेगा?

कवि कहता है कि विरहिणी नागमती ने जब आह भरी तो उसकी आह के साथ-साथ आग निकलने लगी। उस विरहाग्नि के कारण नागमती के शरीर में जीव रूपी जो हंस विद्यमान था उसके पंख जल उठे जिससे वह उड़ नहीं सका– उसका आत्मा-रूपी हंस पंख जल जाने के कारण उड़ने में असमर्थ होकर उसके शरीर में ही रह गया।

साहित्यिक सौन्दर्य – उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा अलंकार।

पाट महादेइ हिएं न हारू। समुझि जीउ चित चेतु संभारू।1।
भंवर कंवल संग होइ न परावा। संवरि नेह मालति पंह आवा।2।
पीउ सेवाति सौं जैस पिरीती। टेकु पियास बांधु जिय थीती।3।
धरती जैस गंगन के नेहा। पलटि भरै बरखा रितु मेहा।4।
पुनि बसंत रितु आव नवेली। सो रस सो मधुकर सो बेली।5।
जनि अस जीउ करसि तूं नारी। दहि तरिवर पुनि उठहिं संभारी।6।
दिन दस जल सूखा का नंसा। पुनि सोइ सरवर सोई हंसा।7।
मिलहिं जो बिछुरै साजना गहि गहि भेंट गहंत।
तपनि मिरगिसिरा जे सहहिं अद्रा ते पलुहंत॥30/3॥

शब्दार्थ–पाट महादेई=महारानी की पदवी वाली पटरानी। चेतु संभारू= होश सम्हाला। परावा=दूसरा। संवरि नेह=प्रेम का स्मरण करके। सेवाति=स्वाति नक्षत्र। पिरीती=प्रेम। टेकु=आश्रम। थीति=स्थिति। पियास=पिपासा, प्रियतम की आशा। जिय थीती=जीवन रूपी धरोहर। नेहा=प्रेम। मेहा=वर्षा। जनि=नहीं। सरवर=सरोवर। दहि=जलकर। गहंत=ग्रहण करना। मिरगिसिरा=मृगशिरा नामक नक्षत्र। अद्रा= आर्द्रा नामक नक्षत्र। पलुहंत=पल्लवित, हरे-भरे। नंसा=नाश।

संदर्भ–नागमती की विरह अनुभूतियों का वर्णन किया गया है।

नोट

व्याख्या–नागमती को समाश्वासन देते हुए उसकी सखियां कहने लगीं कि हे रानी। आप इस प्रकार हिम्मत मत हारिए अपितु हृदय में सोच-विचार कर अपने चैतन्य की रक्षा कीजिए अर्थात् अपने होश-हवास मत खोइये। हे महारानी! आप यह विश्वास रखिए कि जिस प्रकार भ्रमर कमल के समीप जाकर भी अंततः मालती के प्रेम का स्मरण करके उसके समीप लौट आता है उसी प्रकार आपके प्राणेश्वर भी पद्मावती-रूपी कमल के पास जाकर भी अंततः आपके समीप लौट आएंगे। सुप्राणेश्वर रूपी स्वाति-नक्षत्र के प्रति आपका जैसा दृढ़ प्रेम-भाव है, उसको ध्यान में रखते हुए अपनी काम-पिपासा को वशवर्तिनी रखिए, और प्रियतम के लौटने की आशा का सहारा लेकर अपने हृदय में धैर्य धारण रखिए। जिस प्रकार पृथ्वी आकाश के प्रेम भाव में निमग्न रहती है तो आकाश उसको वर्षा ऋतु में जल से ओत-प्रोत कर देता है– उस पर स्नेह की वर्षा करता है, उसी प्रकार तुम भी अंततः स्व-पति का स्नेह प्राप्त करोगी। इसी प्रकार तुम्हारे जीवन में पुनः वही वसन्त ऋतु आएगी, जिसमें समस्त प्रकार के सुख-भोग, होंगे, और तुम्हारे पति-रूप भ्रमर द्वारा लता-रूप तुम्हारा मकरन्द पान किया जाएगा। हे महारानी! आप अपना हृदय इस प्रकार क्यों दुखी और खट्टा कर रही हैं। आप यह सोचकर धैर्य क्यों नहीं धरा करतीं कि ग्रीष्म ऋतु में दग्ध हुए वृक्ष वसन्त ऋतु के आगमन से पुनः हरे हो उठते हैं– उनमें नयी नयी कोंपल फूट पड़ती हैं। यदि दस दिवस तक जल सूख भी जाता है, अर्थात् यदि आपका स्व-पति से कुछ दिनों के लिए मिलन नहीं भी हो पाता है, तो क्या हुआ, क्योंकि बाद में तो वही सरोवर और वे ही हंस होंगे अर्थात् तुम्हारा मिलन होकर ही रहेगा।

हे महारानी आप इस तथ्य को भी विस्मृत मत कीजिए कि वियोग के पश्चात् मिलन की आशा बहुत अधिक बढ़ जाया करती है और बिछुड़े हुए पति बड़े ही उल्लासपूर्वक मिलते और आलिंगन करते हैं– वे ही आर्द्रा नक्षत्र की घोर वर्षा में पल्लवित पुष्पित हुआ करते हैं– उन्हीं पर पति-प्रेम की घोर वर्षा हुआ करती है।

साहित्यिक सौन्दर्य– रूपक, अर्थान्तरन्यास और उपमा अलंकार।

चढ़ा असाढ़ गंगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।1।
धूम स्याम धौरे घघ धाए। सेत धुजा बगु-पांति देखाए।2।
खरग बीज चमक चहुं ओरा। बुद बान बरिसै घन घोरा।3।
अद्रा लाग बीज भुइं लेई। मोहि पिय बिनु को आदर देई।4।
ओनै घटा आई चहुं फेरी। कंत उबारु मदन हौ घरी।5।
दादुर मोर कोकिला पीऊ। करहिं बेझ घूट रहै न जीऊ।6।
पुख नछत्र सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नादं मंदिर को छावा।7।
जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्ब।
कंत पियारा बाहिरें हम सुख भूला सर्व॥30/4॥

शब्दार्थ–गाजा=गरजने लगे। दुंद=युद्ध। धूम=धुंए के रंग के। धौरे=श्वेत। धुजा=ध्वजा। बगु=बगुला। बीज=बिजली। ओनै=झुक आई, उमड़ उठी। फेरी=ओर। उबारु=रक्षा करो। दादुर=मेढ़क। बेझ=वेध, निशाना लगाना। पुख=पुष्प, नक्षत्र। नांह=पति। मन्दिर=भवन। गारौं= गौरव।

संदर्भ–नागमती की विरहावस्था का वर्णन किया गया है।

व्याख्या–आषाढ़ का महीना आया तो आकाश में बादलों की गर्जन होने लगी, जो नागमती को ऐसी प्रतीत हुई कि विरह ने युद्ध की तैयारी की है और उसकी सेना ने कूंच का नगाड़ा बजाया है। धुमैले, काले और भूरे रंग के बादल आकाश में दौड़ने लगे और उनमें उड़ती हुई बगुलों की पंक्तियां उनकी ध्वजाओं जैसी प्रतीत होने लगीं। खड्ग रूपी बिजली चारों ओर चमकने लगी और वर्षा की बूंद रूपी बाणों की घनघोर वर्षा होने लगी। आर्द्रा नक्षत्र के लगते ही बिजली चमककर भूमि को छूने लगी। नागमती सोचने लगी कि ऐसे विरहोत्तेजक वातावरण में प्रियतम की अनुपस्थिति में मुझको कौन समादर देगा– अर्थात् मेरी कुछ भी पूछ नहीं रही है जबकि पति के यहां होने पर ऐसे उन्मादक वातावरण में वे अवश्य ही काम के लिए मेरी मनुहार करते। चारों ओर उमड़ी हुई घटाएं पृथ्वी पर झुकी-सी प्रतीत होती हैं, जिन्हें देखकर मेरी कामोत्तेजना और भी अधिक बढ़ उठी है। हे प्राणनाथ! आप शीघ्र ही आकर मेरी रक्षा कीजिए क्योंकि मुझको कामदेव की सेना ने घेरा हुआ है। मेंढक, मयूर और कोयल के शब्द तो मुझे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मेरे हृदय को बेधे डाल रहे हैं, और मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। अब तो पुष्प नक्षत्र सिर पर आ गया

नोट

है जो इस बात का द्योतक है कि और अधिक वर्षा होगी। मेरे तो पति भी यहां नहीं हैं अतः मेरे भवन पर छप्पर कौन छवाएगा।

स्व-प्रियतम की स्मृति में निमग्न होते हुए नागमती रुदन करने लगी कि हे प्राणेश्वर जिन स्त्रियों के पति उनके घर में हैं वे गर्व और गौरव की भावना से अभिभूत हैं, जबकि आपके परदेश में होने के कारण मेरा पति-प्रेम संबंधी गर्व और गौरव तो मिट्टी में मिल ही गया है, मैं अपने समस्त प्रकार के सुखों को भी भूल चुकी हूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. जायसी के वियोग-वर्णन की यह विशेषता ही कही जाएगी कि उनकी नागमती अपने रानीपन को भूलकर किसी सामान्य नारी की भांति यह कहकर विषादमग्न हो उठती है कि इस घोर वर्षा-काल में, पति की अनुपस्थिति में मेरे भवन पर कौन छप्पर डालेगा।

2. सांगरूपक अलंकार।

सावन बरिस मेह अति पानी। भरनि भरई हौं बिरह झुरानी।1।
लागु पुनर्बसु पीउ न देखा। भै बाउरि कहं कंत सरेखा।2।
रकत क आंसु परे भुई टूटी। रेंगि चली जनु बीर बहूटी।3।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियर भुइं कुसुंभि तन चोला।4।
हिय हिंडोल जस डोलै मोरा। बिरह झुलावै देइ झंकोरा।5।
बाट असूझ अथाह गंभीरा। जिउ बाउर भा भवै भंभीरा।6।
जग जल बूड़ि जहां लगि ताकी। मोर नाव खेवक बिनु थाकी।7।
परबत समुंद अगम बिच बन बेहड़ घन ढंख।
किमि करि भेटौं कंत तोहि ना मोहि पावं न पंख॥30/5॥

शब्दार्थ–अति पानी=अत्यधिक। भरनि=मूसलाधार वृष्टि। पुनर्बसु=नक्षत्र, विशेष। बाउरि=बावली। सरेखा=समान। रकत=रुधिर। असूझ=जहां कुछ दिखाई न दे। ताकी=देखना। खेवक=मल्लाह। बूड़ि=डूबना। ढंख=ढाक। किमि करि=किस प्रकार। बेहड़=कठिन।

संदर्भ–बारहमास-वर्णन में नागमती की विरहावस्था का वर्णन किया गया है।

व्याख्या–बारहमास-वर्णन के अंतर्गत विरहिणी नागमती की विरहावस्था का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं कि सावन के महीने में जोरदार वर्षा होने लगी। एक ओर तो मूसलाधार वृष्टि हो रही थी जबकि बेचारी नागमती विरहाग्नि में झुलसती जा रही थी। नागमती सोचने लगी कि पुनर्वसु नामक नक्षत्र लग गया है किन्तु मैं अब तक स्व-पति के दर्शन प्राप्त करने में असफल रही हूं। यह सोच-सोचकर मैं बावली हो चुकी हूं कि न जाने मेरे चतुर प्रियतम कहां रह रहे हैं– अथवा यह कि प्रियतम के समान और कौन सुखदायक हो सकता है। मेरे नेत्रों से रक्त के आंसू भूमि पर टूट-टूटकर गिरते रहते हैं, जो ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो बीर बहूंटियां रेंग रही हों। मेरी सखियों ने अपने-अपने प्रियतमों के साथ हिंडोले डाले हुए हैं। वसुन्धरा पर चारों ओर हरितिमा छाई हुई है जबकि उन्होंने भी कुसुम्भी रंग के चोले धारण किए हुए हैं। सखियों को अपने प्रियतमों के साथ हिंडोलों पर झूलते देखकर मेरा हृदय भी विरह-भाव के हिंडोले पर झूमने लगता है और विरह मुझको झोंटे और झंकोरे देता हुआ इस झूले पर झुला रहा है। झंकझोर-झंकझोर कर झुला रहा है। झूलने वाले को ठीक प्रकार से झोंटे न देकर इस प्रकार के झोंटे देना कि वह झूले से गिर जाए झंकोरे देना कहलाता है। मुझे अपने पति से सम्मिलन का मार्ग बड़ा ही असूझ, अथाह और अत्यधिक गंभीर लग रहा है और मेरा हृदय बावला होकर भंभीरी की भांति घूम रहा है। जहां तक भी पृथ्वी दिखाई पड़ती है, वह जल में डूबी हुई है। ऐसे घनघोर-वर्षा काल में जहां चारों ओर पानी-ही-पानी दृष्टिगत होता है मेरी जीवन रूपी नौका को पार लगाने वाला मल्लाह, पति के अभाव में और कौन हो सकता है।

स्व-प्रियतम को संबोधित करती हुई नागमती कहने लगी कि हे प्राणनाथ मेरे और तुम्हारे मध्य अनेक अगम्य पर्वत और समुद्र तथा बीहड़ वनों और सघन ढाक के वनों का अन्तराल (दूरी) है। मैं आपसे कैसे आकर मिलूं क्योंकि न तो मेरे पैर ही हैं और न पंख ही हैं जिनकी सहायता से मैं उड़कर आपसे आ मिलूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. दोहे में व्यक्त विरह-भाव बड़ा ही मार्मिक और करुणोत्तेजक है।

2. 'भरनि ..... झुरानो' में विरोधाभास अलंकार।

नोट

3. 'रेंगि ..... बहूटी' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

4. 'हिय .... मोरा' में उपमा अलंकार।

5. 'मोर .... थाकी' में रूपक अलंकार।

भर भादौं दूभर अति भारी। कैसें भरौं रैनि अंधियारी।1।

मंदिल सून पिय अनतै बसा। सेज नाग भै धै धै डसा।2।

रहौं अकेलि गहें एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी।3।

चमकि बीज घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा।4।

बरिसै मघा झंकोरि झंकोरी। मोर दुइ नैन चुवहिं जसि ओरी।5।

पुरबा लाग पुहुमि जल पूरी। आक जवास भई हौं झूरी।6।

धनि सूखी भर भादौं माहां। अबहूं आइ न सींचति नाहां।7।

जल थल भरे अपूरि सब गंगन धरति मिलि एक।

धनि जोबन औगाह मंह दे बूड़त पिय टेक॥ 30/6॥

शब्दार्थ–दूभर=कठिन। रैनि=रात्रि। मंदिल=भवन। अनतै=अन्यत्र। तरासा=त्रस्त करता है। ओरी=छप्पर के सिरे से टपकती बूंद। पुहुमि=पृथ्वी। मघा और पुरवा=नक्षत्रों के नाम हैं। नाहां=पति। औगाह=अवगाह, अगाध जल।

संदर्भ–वर्षा ऋतु में नागमती अपने प्राणनाथ का स्मरण कर रही है।

व्याख्या–विरहिणी नागमती के लिए भाद्र माह की झर की लड़ी अर्थात् निरन्तर वर्षा अतीव कष्टकर सिद्ध हो रही है। वह इस चिन्ता में दुःखी है कि इस महीने की अंधेरी रात्रियों को मैं कैसे व्यतीत करूं। मेरा गृह सुनसान है क्योंकि मेरे पति कहीं अन्यत्र रह रहे हैं। पति के वियोग के कारण मेरी शैया मुझ पर नागिन बन कर बार-बार काटने दौड़ती-सी प्रतीत होती है। हे प्राणनाथ! तुम्हारी अनुपस्थिति में मैं अपनी चारपाई अथवा पलंग की पाटी पकड़े पड़ी रहती हूं। आपके आने की प्रतीक्षा में मेरे नेत्र फटे के फटे रह जाते हैं जबकि मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो उठता है। बार-बार बिजली चमकती है जबकि बादल अपनी गर्जना से मुझे त्रस्त करते हैं। विरह तो काल-रूप होकर मेरे जीवन को हड़पना चाहता है। मघा नक्षत्र में घनघोर वर्षा हो रही है– वर्षा के झोंके पर झोंके आते रहते हैं और मेरे नेत्रों से भी आसुंओं की ऐसी झड़ी लगी रहती है, मानों ओलती टपक रही हो (वर्षा के उपरान्त छप्परों के सिरों से जो बूंदें टपकती रहती हैं उन्हें अलीगढ़ के समीपवर्ती भागों में ओलवाती कहते हैं) मघा नक्षत्र के बाद पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र लग गया है, जिसमें और भी अधिक वर्षा होने के कारण पृथ्वी जल से परिपूर्ण हो उठी है। मेरा शरीर विरहाग्नि में उसी प्रकार सूखा जा रहा है जैसे वर्षा-काल में आक और जवासा सूख जाते हैं। हे नाथ आपकी स्त्री भरे भादों के महीने में सूखती जा रही है आप अब भी आकर इसको सींचते क्यों नहीं हो– इसे अपनी उपस्थिति-रूपी जल से सूखने से बचा लीजिए।

हे प्राणेश्वर! भर-भादों के महीने में इतनी घनघोर वर्षा हुई कि चारों ओर जल ही दिखाई पड़ता है तथा पृथ्वी और आकाश मिलकर एक हो गए हैं। आपकी प्रियतमा यौवन-रूपी अगाध जल में डूबती जा रही है, आप इस डूबती को शीघ्र ही आकर सहारा क्यों नहीं देते।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. वर्षा-ऋतु में आक और जवासे के पत्रहीन हो जाने का अर्थात् सूखने का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने भी किया है।

"अर्क जवास पात बिन भयऊ।"

2. पुनरुक्ति, विरोधाभास अलंकार।

लाग कुआर नीर जग घटा। अबहुं आउ पिउ परभुमि लटा।1।

तोहि देखे पिउ पलहै काया। उतरा चित्त फेरि करु माया।2।

उए अगस्ति हस्ति घन गाजा। तुरै पलानि चढ़े रन राजा।3।

चित्रा मिंत मीन घर आवा। कोकिल पीउ पुकारत पावा।4।

नोट

स्वाति बुंद चातिक मुख परे। सीप समुंद्र मोंति लै भरे।5।
सरवर संवरि हंस चलि आए। सारस कुररहिं खंजन देखाए।6।
भए अवगास कास बने फूले। कतं न फिरे बिदेसहि भूले।7।
बिरह हस्ति तन सालै खाइ करै तन चूर।
बेगि आइ पिय बाजहु गाजहु होइ सदूर॥30/7॥

शब्दार्थ – परभुमि=दूसरे देश में। लटा=अनुरक्त। पलुहै=पुष्पित। माया=दया। उए=निकलने पर। हस्ति=हाथी। तुरै=घोड़ा। पलानि=भाग गए। अवगास=स्थान, मैदान। सालै=कष्ट देता है। बाजहु=गरजो। सदूर=सिंह।

संदर्भ–कुवार के महीने में विरहिणी नागमती की हृदयगत भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है।

व्याख्या–कवि वर्णन करता है कि अब कुवार का महीना लग गया और जगत से पानी की मात्रा कुछ कम हो गई तो विरहिणी नागमती कातर स्वर में याचना करने लगी कि अरे मेरे परदेशी प्रियतम! तुम अब भी लौट आओ। हे प्राणेश्वर! मेरा यह सूखकर अस्थिपंजर मात्र शरीर आपको देखकर ही पुनःहरा-भरा हो उठेगा। आपका मेरी ओर से इस प्रकार मन क्यों फिर गया है, आप मुझ पर पुनः अनुकम्पा कीजिए। अगस्त्य तारे के उदय होने पर हस्ति नक्षत्र मेघ-गर्जन करने लगा है अथवा मेघरूपी हाथी गर्जने लगे हैं और राजाओं ने अपने अश्वों पर सवार होकर युद्धों की तैयारी कर दी हैं– भाव यह है कि अब तो आने-जाने के मार्ग खुल गए हैं, अतः यदि आप वर्षा के जल के कारण नहीं आ पा रहे थे तो अब तो आ जाइए। हे प्राणेश्वर अब तो चित्रा नक्षत्र का स्वामी(मित्र) चन्द्रमा मीन राशि में आ गया है तथा कोयल भी पिउ-पिउ पुकारती हुई अपने स्वामी को पुकारती हुई उसको प्राप्त कर चुकी है– भाव यह है कि जब चित्रा का सम्मिलन चन्द्रमा से और कोयल का सम्मिलन अपने प्रियतम से हो चुका है तो फिर आप भी मुझसे आकर क्यों नहीं मिलते। यही नहीं चातक के मुख में भी स्वाति-नक्षत्र की बूंदे पड़ गई हैं और सीपी का मुख भी स्वाति-नक्षत्र की बूंदे पड़ने के कारण मोती से भर गया है। पुराने सरोवरों को याद करते हुए वे हंस पुनः उन सरोवरों में लौट आए हैं जो वर्षाकाल में उनको छोड़ गए थे। सारस के जोड़े कुलेलें करने लगे हैं जबकि खंजन पक्षियों के भी जोड़े दिखाई पड़ने लगे हैं। जब सभी ओर मिलन की व्याप्ति है तो फिर आप भी आकर मुझसे क्यों नहीं मिलते हो। सभी ओर मैदानों में कास के वन फूल उठे हैं, फिर भी न जाने मेरे पति विदेश में रहते हुए मुझको भूलकर अभी तक क्यों नहीं लौटे हैं।

हे प्राणनाथ! विरह-रूपी हाथी मेरे शरीर को चूर-चूर करके कष्ट दे रहा है। आप शीघ्र ही शार्दूल के रूप में मेरे समीप आकर गर्जना क्यों नहीं करते, जिससे मुझे विरह-रूपी हाथी से छुटकारा मिल सके– शार्दूल-रूपी आपके आते ही विरह-रूपी हाथी डरकर पलायन कर जाएगा।

साहित्यिक सौन्दर्य – सांगरूपक अलंकार।

कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल हौं बिरहैं जारी।1।
चौदह करा कीन्ह परगासू। जानहूं जरें सब धरति अकासू।2।
तन मन सेज करै अगिडाहू। सब कहं चांद मोहिं होइ राहू।3।
चहूं खंड लागै अंधियारा। जौं घर नाहिंन कंत पियारा।4।
अबहुं निठुर आव एंहि बारा। परब देवारी होइ संसारा।5।
सखि झूमक गावहिं अंग मोरी। हौं झूरौं बिछुरी जेहि जोरी।6।
जेहि घर पिउ सो मुनिवरा पूजा। मो कहं बिरह सवति दुख दूजा।7।
सखि मानहिं तेवहार सब गाइ देवारी खेलि।
हौं का खेलौं कंत बिनु तेहिं रही छार सिर मेलि॥30/8॥

शब्दार्थ – जारी=जलना। करा=कला। अकासू=आकाश। परगासू=प्रकाश। अगिडाहू=अग्निदाह। नाहिंन=नहीं है। झूमक=एक गीत विशेष। अंग मोरी=अंगों को मोड़कर। बिछुरी=बिछुड़ी। सवति=सौत। मानहिं=मानती है। छार सिर मेलि=सिर में धूल डाल रही हूं।

नोट

संदर्भ–नागमती के विरह का वर्णन किया गया है।

व्याख्या–कार्तिक के महीने में दिवाली के त्यौहार पर नागमती की विरह-व्यथा के और भी बढ़ जाने का वर्णन करते हुए कवि कहता है कार्तिक के महीने में शरद-चन्द्र की उज्ज्वलता अर्थात् चांदनी व्याप्त रहने लगी। विरहाकुल नागमती सोचती है कि एक ओर तो समस्त जगत में शीतलता परिव्याप्त है जबकि मैं विरह-अग्नि में झुलसी जा रही हूँ। चन्द्रमा अपनी चौदह-कलाओं से युक्त होकर चमक रहा है, किन्तु मुझे ऐसी अनुभूति होती है मानो चन्द्रमा की चांदनी में पृथ्वी और आकाश दग्ध हो रहे हैं। मेरे शरीर, अंतर्मन और शैया सभी में अग्निदाह-सा प्रतीत होता है। सारे संसार को ही चन्द्रमा की सुशीतलता आनन्दकर है जबकि मुझको राहू के समान कष्टकर सिद्ध हो रही है। मुझे तो चारों ही खंड़ों में अंधकार छाया लगता है, क्योंकि मेरे प्राणेश्वर गृह में विद्यमान नहीं हैं। अरे निष्ठुर प्रियतम! तुम अब भी एक बार लौटकर आ जाओ। क्योंकि सम्पूर्ण जगत् में दिवाली का त्यौहार मनाया जा रहा है। मेरी समस्त सखियां अपने अंगों को मरोड़ती हुई उल्लासपूर्वक झूमक गा रही हैं, क्योंकि मेरी जोड़ी बिछुड़ी होने के कारण, प्रियतम से बिछोह के कारण मैं आनन्दित होने के स्थान पर विरह में झुलसती-झुरती रहती हूं। जिन नारियों के गृह में उनके पति हैं वे मुनियों की पूजा कर रही हैं जबकि मेरे अंतर्मन में दुहरे कष्ट साल रहे हैं– एक ओर तो मुझको प्रियतम से बिछोह का दुःख मारे डालता है। जबकि उसके साथ ही सपत्नी (सौत) का दुःख तो मुझे मारे ही डाल रहा है।

मेरी समस्त सखियां (तथा अन्य नारियां) हंसते-खेलते हुए दिवाली का त्यौहार मना रही हैं, जबकि अपने प्रियतम के अभाव में मैं इस प्रकार की खुशियां कैसे मना सकती हूं, अतः अपने सिर में धूल डाल रही हूं– मेरा दुःख पराकाष्टा को पहुँचा हुआ है क्योंकि तभी व्यक्ति ऐसा आचरण करता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकार।

अगहन देवस घटा निसि बाढ़ी। दूभर दुख सो जाइ किमि काढ़ी।।।
अब धनि देवस बिरह भा राती। जरै बिरह ज्यों दीपक बाती।2।
कांपा हिया जनावा सीऊ। तौ पै जाइ होइ संग पीऊ।3।
घर घर चीर रचा सब काहूं। मोर रूप रंग लै गा नाहूं।4।
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूं फिरै, फिरै रंग सोई।5।
सियरि अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलगि सुलगि दगधै भै छारा।6।
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोबन जरम करै भसमंतू।7।
पिय सौं कहेहू संदेसरा ऐ भंवरा ऐ काग।
सो धनि बिरहें जरि गई तेहिक धुआं हम लाग॥30/9॥

शब्दार्थ–दूभर=कठिन। किमि=कैसे। काढ़ी=निकालना, दूर करना। देवस=दिन। हिया=हृदय। पीऊ=पति। पलटि न बहुरा=लौटकर नहीं आया। सियरि=ठंडी। सीऊ=सीत। बहुरा=लौटा।

संदर्भ–नागमती की विरहाकुल मनोव्यथा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या–अगहन के महीने में जब दिन छोटे और रातें लम्बी हो गईं तो विरहिनी नागमती की व्यथा और भी अधिक बढ़ गई क्योंकि वह समझ नहीं पाती थी कि पति के विछोह के असह्य दुःख को कैसे दूर किया जाए– लम्बी रातों का काटना उसके लिए और भी अधिक कष्टकर हो गया था। अब तो विरह के कारण नागमती को दिवस भी रात्रि जैसा कष्ट कर प्रतीत होता था और वह वियोग में दीपक की वर्तिका की तरह तिल-तिल करके जलती रहती थी। शीत के कारण उसका हृदय विकंपित रहने लगा था और यह कम्प तभी दूर हो सकता था जबकि उसके प्राणेश्वर उसके समीप होते। प्रत्येक घर में नारियों ने शरद काल के अनुरूप नए-नए वस्त्रों की रचना कर ली थी, किन्तु नागमती ऐसा भी नहीं कर सकी क्योंकि वह सोचती थी कि मेरे तो रूप और रंग को मेरे प्राणेश्वर ही अपने साथ ले गए हैं– भाव यह है कि उसकी खाने-पहनने की ओर अभिरुचि ही नहीं रह गई थी। वह बार-बार सोचती थी कि मेरे पति यहां से किसी ऐसी अशुभ घड़ी में गए हैं कि एक बार जाकर उन्होंने लौटने का नाम तक नहीं लिया है। यदि वे अब भी लौट आएं, तो सुहावने दिवस लौट आएंगे। शीत आग बनकर उस विरहिणी के अंतर्मन को निरन्तर दग्ध करता रहता था और वह विरहाग्नि में सुलग कर जलकर राख हो चुकी थी। उसके अंतर्मन में टीस थी कि मेरी विरहावस्था के दुःख से मेरे प्रियतम सर्वथा अनभिज्ञ हैं और उसकी इस अज्ञानता के कारण ही मेरा यौवन और जीवन जलकर भस्म होते जा रहे हैं– निस्तार होते जा रहे हैं।

नोट

विरहिणी नागमती भ्रमर और कागों को संबोधित करते हुए कहने लगी कि हे भ्रमरों! अरे कागों! तुम मेरे प्रियतम के समीप पहुंचकर उन्हें यह संदेश (सूचना) पहुंचा देना कि आपकी प्रियतमा वियोगाग्नि में दग्ध हो-होकर मर गई है, और उसका धुआं लगने के कारण ही हमारे शरीर काले पड़ गए हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. प्रस्तुत पंक्तियों के अन्त में नियोजित दोहे की आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि समीक्षकों ने मुक्त-कंठ से सराहना की है, क्योंकि इसमें विरहिणी नायिका की मनोव्यथा साकार हो उठी है।

2. नागमती के शरीर में लगी विरहाग्नि के धुएं से भ्रमरों और कागों का काला होना इस तथ्य का व्यंजक है कि वह विरहाग्नि में शीघ्र ही जलकर विरहयातना से छुटकारा नहीं पा गई है अपितु लम्बे अंतराल तक घुट-घुट कर, सुलग-सुलग कर जलती रहती है। धुंआ तभी तक अधिक निकला करता है जब तक आग भभक कर जल नहीं उठती।

3. विरोधाभास और हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

पूस जाड़ थरथर तन कांपा। सुरुज जड़ाइ लंक दिसि तापा।1।
बिरह बाढ़ि भा दारुन सीऊ। कंपि कंपि मरौं लेहि हरि जीऊ।2।
कंत कहां हौं लागौं हियरें। पंथ अपार सूझ नहि नियरें।3।
सौर सुपेती आवै जूड़ी। जानहुं सेज हिवंचल बूड़ी।4।
चकई निसि बिछुरै दिन मिला। हौं निसि बासर बिरह कोकिला।5।
रैनि अकेलि साथ नहि सखी। कैसें जिऔं बिछोही पंखी।6।
बिरह सैचान भंवै तन चांड़ा। जीयत खाइ मुएं नहिं छांड़ा।7।
रकत ढरा मांसू गरा हाड़ मए सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई आइ समेटहु पंख ॥30/10॥

शब्दार्थ–सुरुज=सूर्य। जड़ाइ=जाड़े से पीड़ित होकर। हियरें=हृदय से। नियरें=समीप। हिवंचल=हिमाचल, बर्फ में। बूड़ी=डूबी। बासर=दिन। पंखी=पक्षिणी, चिड़िया। सैचान=बाज। भंवै=चक्कर काटता हैं। मुएं=मरने पर। चांड़ा=भंयकर। ढरा=ढल गया। गरा=गल गया। ररि मुई=मर गई है।

संदर्भ–विगत छन्द की भांति प्रस्तुत पंक्तियाँ भी जायसी के वियोग वर्णन की बड़ी ही मार्मिक पंक्तियां हैं, जिनमें विरहिणी नागमती की पूस के महीने में होने वाली दुर्दशा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या–कवि कहता है कि पूस के महीने में ठंडक इतनी अधिक बढ़ गई कि सभी नर-नारी थर-थर कांपने लगे। यही नहीं स्वयं सूर्य भी जाड़े से पीड़ित होकर लंका की ओर तापने लगा (आग सेकने को तापना कहते हैं) अर्थात् वह उत्तरायण से दक्षिणायन हो गया। बेचारी नागमती की विरह-व्यथा और भी बढ़ गई और उसको शीत भयंकर प्रतीत होने लगी। अपने प्रियतम को स्मरण करते हुए वह सोचने लगी कि उनके अभाव में मैं कांप-कांप कर मरी जा रही हूं और जाड़ा तो मेरी जान लेकर ही पीछा छोड़ेगा। हे प्राणनाथ! आप कहां हो? यदि आप यहां होते तो मैं आपके कंठ से लगकर इस मारक शीत से परित्राण पा सकती थी। आपके और मेरे मध्य तो असीम असूझ मार्ग की दूरी है, आप कहीं समीप भी तो नहीं हैं जिससे मैं ही आकर आपसे मिल लेती। मुझे तो अब ऐसी जूड़ी आने लगी है कि कई-कई रजाइंया ओढ़ने पर भी मेरे अंतर्मन का जाड़ा नहीं मिट पाता। अपनी शैया मुझे इतनी ठंडी प्रतीत होती है, मानों उसको बर्फ में डुबो दिया गया है। मुझसे तो चकई बहुत अच्छी होती है जो अपने प्रियतम से रात्रि को बिछुड़कर उससे प्रातःकाल मिल जाती है। इसके सर्वथा मैं अहिर्निशि आपके वियोग में कोयल की भांति तड़पती रहती हूं। रात्रि में मैं अकेली रह जाती हूं। मेरे साथ कोई सखी तक नहीं होती, ऐसी दशा में मैं वियोगिनी पक्षिणी क्योंकर जीवित रह सकती हूं? हे प्राणनाथ! विरह-रूपी भयंकर बाज मुझ पक्षिणी के चतुर्दिक चक्कर काट रहा है। यह मुझको जीवित ही खाना चाहता है और मरने पर तो मुझे किसी प्रकार भी नहीं छोड़ेगा।

सारस-सारसी की अटूट जोड़ी की भांति साथ निभाने की याचना करती हुई नागमती स्व-प्राणेश्वर को संबोधित करते हुए कहती है कि हे प्राणनाथ! मेरे शरीर का सम्पूर्ण रुधिर ढुलक गया है। मेरे शरीरांगों का मांस गल गया है जबकि मेरी हड्डियां सूखकर शंख जैसी निष्प्राण-नीरस हो गई हैं, और आपकी पत्नी सारसी की भांति आपका नाम रटते-रटते मर रही है– आप इतनी कृपा तो कीजिए कि उस मरी हुई के पंखों को समेट दीजिए।

नोट

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'रक्त ..... पंख' में व्यक्त मार्मिक विरह की जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है। 2. उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार।

लागेउ मांह परै अब पाला। बिरहा काले भएउ जड़काला।1।
पहल पहल तन रुई जो झांपै। हहलि अधिकौ हिय कांपै।2।
आइ सूर होइ तपु रे नाहां। तेहि बिनु जाड़ न छूटै माहां।3।
एहि मास उपजै रस मूलू। तूं सो भंवर मोर जोबन फूलू।4।
नैन चुवहिं जस मांहुट नीरू। तेहि जल अंग लाग सर चीरू।5।
टुटहिं बुंद परहिं जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला।6।
केहिक सिंगार को पहिर पटोरा। गिंय नहिं हार रही होइ डोरा।7।
तुम्ह बिनु कंता धनि हरुई तन तिनुवर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै चहै उड़ावा झोल ॥30/11॥

शब्दार्थ–अब पाला=जाड़े का समय। जड़काला=जाड़ा। पहल पहल= शरीर का प्रत्येक पहलू। झोल=राख। हहलि-हहलि=थरथराना, कंपकंपी छूटना। मांहा=माघ का महीना। रस मूलू=वनस्पतियों में रस उत्पन्न होने का मूलकारण अर्थात् वसन्त। माहुंट=माहौट, माह की वर्षा। पटोरा=रेशमी वस्त्र। गियं=गर्दन में। हरुई=हल्की। तिनुवर=तिनके के समान। झापै=छिपाना।

संदर्भ–नागमती की विरहावस्था का वर्णन किया गया है।

व्याख्या–माघ का महीना लग गया है और पाला पड़ गया है। विरहावस्था में तो जाड़ा काल बन गया है। शरीर के प्रत्येक पहलू को रूई से ढकने पर प्रयत्न करने पर हृदय और भी थर-थर कांपने लगता है। अथवा जाड़ा इतना अधिक है कि जब शुरू-शुरू में रूई के वस्त्रों से भी शरीर को ढकने का प्रयत्न करते हैं तो वस्त्रों के ठंडे होने के कारण शरीर और भी अधिक कांपने लगता है। अरे प्रियतम! तुम मेरे समीप सूर्य बनकर आ तपिए– अर्थात् यदि आप मेरे समीप आ जाओगे तो मुझे सूर्य के समान सुखद प्रतीत होंगे। तुम्हारे अभाव में मेरा यह माघ महीने का शीत नहीं छूट सकता। इसी माह में वनस्पतियों में रस का उद्रेक होता है अर्थात् उनमें रस पड़ना प्रारम्भ होता है। तुम ही वह भ्रमर हो जो मेरे यौवन-रूप का उपभोग कर सकता है। मेरे नेत्रों से माघ महीने की वर्षा अर्थात् माहौट की भांति वर्षा की -सी झड़ी लगी रहती है– अश्रुपात होता रहता है। आंसुओं से भीगे हुए ठंडे वस्त्र मुझको बाणों की तरह चुभते और रिसते रहते हैं। तुम्हारे अभाव में मुझे माहौट की वर्षा की बूंदें ओलों की भांति कष्टकर प्रतीत होती हैं, जबकि विरह-रूपी पवन के झोंकों के कारण मेरी व्यथा और भी बढ़ जाती है– भाव यह है कि हवा के झोंकों के कारण ओले और भी अधिक जोर से लगा करते हैं, उसी प्रकार आपके विरह में मुझे माघ की वर्षा की बूंदें और भी अधिक संतापित करती हैं। अब मैं किसके लिए शृंगार करूं और किसके हेतु स्वयं को रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित करूं? मैं अपनी ग्रीवा में हार भी नहीं धारण कर सकती क्योंकि मेरी गर्दन सूख-सूखकर डोरे जैसे हो गई है। **डॉ. अग्रवाल** के अनुसार – "मेरे कंठ में हार नहीं रहा। मैं उस हार का डोरा मात्र हो गई हूं।"

हे प्राणनाथ! आपके विरह में सूख-सूखकर मैं अत्यधिक हल्की रह गई हूं और मेरा शरीर तिनकों के ढेर के तुल्य हो गया है। इस पर भी विरह की आग मुझको जलाकर राख की भांति उड़ाने को तत्पर है।

साहित्यिक सौन्दर्य – रूपक और उपमा अलंकार।

फागुन पवन झंकोरै बहा। चौगुन सीउ जाइ किंमि सहा।1।
तन जस पियरे पात भा मोरा। बिरह न रहै पवन होइ झोरा।2।
तरिवर झरै झरै बन ढांखा। भइ अनपत्त फूल फर साखा।3।
करिन्ह बनाफति कीन्ह हुलासू। मो कंह भा जग दून उदासू।4।
फाग करहि सब चांचरि जोरी। मोहिं जिय लाइ दीन्हि जसि होरी।5।
जौं पै पियहि जरत अस भावा। जरत मरत मोहि रोस न आवा।6।
रातिहु देवस इहै मन मोरें। लागौं कंत थार जेउं तोरें।7।

नोट

यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाउ।

मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरै जहं पाउ ॥ 30/12॥

शब्दार्थ – किंमि= कैसे। छार=राख। पियर=पीला। झोरा=झकझोरना। ढांखा=वृक्ष। पात=पत्र। अनपत्त=पत्रहीन। बनाफति=वनस्पतियां। भा=हो गया है। चांचरि=शृंगारपरक स्वांग। जसि=जैसे। मकु=शायद।

संदर्भ–पूर्ववत्।

व्याख्या–हे प्राणेश्वर फागुन के महीने में हवा झकझोरों के साथ प्रवाहित हो रही है, जिसमें शीत का प्रकोप चौगुना हो उठा है, उसे मैं अकेली और विरहिणी किस प्रकार सहन करूं? मेरी काया पत्ते के तुल्य हो गई है। विरह के कारण यह पीले पत्ते जैसा शरीर भी सुरक्षित नहीं रह पाएगा, क्योंकि विरह के झकझोरे उसे तोड़ डालेंगे अर्थात् मेरे प्राणांत होने की आशंका है। अब सभी वृक्षों के पत्तें झड़ने लगे हैं, ढाक-वनी के ढाकों के भी पत्ते झड़ रहे हैं। जितनी भी लताएं हैं वे फल-फूल और पत्रों से शून्य हो गई हैं। हां अब वनस्पतियों से नई कोंपलें फूटने लगी हैं मानो वे इन कोंपलों के द्वारा अपना उल्लास व्यक्त कर रही हैं। एक ओर तो लताएँ हैं जो अपने प्रियतम बसन्त से मिलकर नवोल्लास से परिपूर्ण हो चुकी हैं, दूसरी ओर विरहिणी मैं हूं, जो आपके न लौटने के कारण और भी अधिक उदास हो उठी हूं। मेरी सभी सखियां चांचरि जोड़कर फाग मना रही हैं। सखियों को स्व-प्रियतमों के साथ रास-रंग मनाते देखकर मेरे अंतर्मन में विरह की आग इस प्रकार भड़क उठती है मानो उसमें होली जला दी गई हो। हे नाथ! यदि आपको मेरा इस प्रकार विरह की आग में जलना अच्छा लगता (भाता) है, तो मैं सहर्ष इस प्रकार जलते हुए मर जाऊंगी और मुझको क्रोध नहीं आएगा। हे प्रियतम मैं तो अहर्निशि यही सोचती रहती हूं कि तुम्हारे थाल जैसे हृदय से लग जाऊं– अथवा मैं स्वयं को तेरे समक्ष उस प्रकार भोग रूप में प्रस्तुत करूं, जैसे उपभोक्ता (खाने वाले को) थाल में सामग्री सज्जित करके प्रदान की जाती है।

हे प्राणेश्वर! मेरी अभिलाषा तो यह है कि मैं आपकी वियोगाग्नि में अपने शरीर को जलाकर राख कर दूं और पवन से निवेदन करूं कि वह मुझको उड़ा ले जाए। ऐसा करने पर शायद मेरी राख उस मार्ग पर भी गिर पड़े जहां पर आप अपने चरण रखेंगे– भाव यह है कि मैं तो राख बन कर भी आपके चरण चूमना चाहती हूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. चांचरि उस शृंगार-प्रधान नृत्य-गान को कहते हैं जिसकी योजना विशेषतः फागुन के महीने में होती है।

2. 'तन ..... मोरा' में उपमा अलंकार।

3. 'लागौं ..... तोरें में उपमा अलंकार।

4. दोहे में अभिलाषा-संचारी की बड़ी ही मनोरम व्यंजना की गई है।

चैत बसंता होइ धमारी। मोहि लेखें संसार उजारी।1।

पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौ बन ढारै।2।

बूड़ि उठे सब तरिवर पाता। भीज मंजीठ टेसू बन राता।3।

मौरैं आंब फरैं अब लागे। अबहुं संवरि घर आउ सभागे।4।

सहस भाव फूली बनफती। मधुकर फिरे संवरि मालती।5।

मो कहं फूल भए जस कांटे। दिस्टि परत तन लागहिं चांटे।6।

भर जोबन एहु नारंग साखा। सावा बिरह अब जाइ न राखा।7।

घिरिनि परेवा आव जस आइ परहु पिय टूटि।

नारि पराएं हाथ है तुम्ह बिनु पाव न छूटि ॥ 30/13॥

शब्दार्थ – धमारी=एक राग विशेष। लेखें=लिए। उजारी=बीरान। पंच सर=पंच बाणों वाला अर्थात् कामदेव। रकत=रक्त। सगरौ=सारा। बूड़ि=डूब। राता=लाल। मौरैं=बौर से लदे। फरैं=फलों से युक्त होना, फलना। संवरि=याद करके। बनफती=वनस्पती। मधुकर=भ्रमर। सोवा=तोता। घिरिनि परेवा=लोटन कबूतर। नारि=स्त्री।

संदर्भ – पूर्ववत्

नोट

व्याख्या–अपने परदेशी प्रियतम को स्मरण करती हुई नागमती कहती है कि चैत्र का महीना आ गया है जिसमें चारों ओर धमार का आयोजन हो रहा है। चारों ओर उल्लास और आनन्द छाया हुआ है जबकि मेरे लिए तो यह संसार प्रियतम के अभाव में वीरान और सुनसान लग रहा है। जब कोयल पंचम स्वर में कुहुकती है तो उसकी बोली मेरे हृदय में कामदेव के बाणों की भांति लगती है और मेरे रुधिर के आसुंओं से सम्पूर्ण वन ओत-प्रोत हो गया है– वसंत-ऋतु में कोयल का रुदन उपयुक्त नहीं लगता यहां यही अर्थ अधिक उचित है कि नागमती के रक्त पूर्ण आंसू सारे वन में ढुलकते रहते हैं, अन्यथा इन पंक्तियों का अधिकांश टीकाकारों ने यह अर्थ किया है– "कोयल अपने पंचम राग में विरह के कारण पिउ-पिउ रटती हुई कामदेव के पंचबाण मारती है और रक्त के आंसू रोकर सारे वन में गिराती है (डॉ. वा. शरण अग्रवाल)। "कोयल अपने पंचम स्वर में विरह के कारण पिउ-पिउ रटती हुई कामदवे के पंचबाण मारती है और रक्त के आंसू रोकर सारे वन में गिराती है।" (राकेश)। इन दोनों ही अर्थों में कोयल द्वारा कामदेव को बाण मारने का अभिप्राय ग्रहण किया गया है, जबकि कवि का अभिव्यंग्यार्थ यह है कि कोयल की कुहुक सुनकर नागमती के हृदय पर काम-बाणों का प्रहार होता है– उसकी कामोत्तेजना बढ़ उठती है। उन रुधिरमय आंसुओं में भीगकर वृक्षों के पत्ते लाल हो उठे हैं, जबकि मंजीठ और टेसू उनमें भीगकर लाल हो गए हैं। हे सभागे प्राणेश्वर! अब तो बौर आए हुए आम्रवृक्षों पर फल भी लगने लगे हैं, अतः आप भी मुझको याद करके घर क्यों नहीं लौट आते। वसुन्धरा की समस्त वनस्पतियाँ सहस्रों रूपों में पुष्पित हो उठी हैं और भ्रमर अपनी मालती की स्मृति करके उसके चक्कर काटने लगा है। हे नाथ! आपके अभाव में मेरे लिए पुष्प भी कंटक तुल्य बन गए हैं और जब मैं पुष्पों को देखती हूं तो मेरे शरीर में उसी प्रकार का कष्टानुभव होने लगता है, जैसा चांटे (चपत) मारने पर हुआ करता है। मेरे इस नारंगी के वृक्ष रूपी शरीर में यौवन भर उठा है, नारंगी वृक्ष पर नारंगिया आने की भांति मेरी शरीर-लता भी यौवन से परिपूर्ण है(स्तन-रूपी फल लगे हुए हैं) किन्तु अब विरह-रूपी तोता इसको कुतरे डाल रहा है और मुझसे उसकी रक्षा नहीं हो पा रही है– भाव यह है कि आप स्वयं ही किसी प्रकार इसकी रक्षा कीजिए।

हे प्रियतम! आप मुझसे अचानक ही उस प्रकार आ मिलिए जैसे लोटन कबूतर अचानक ही आकाश से टूटकर अपनी प्रियतमा से आ मिलता है। तुम्हारी स्त्री (अथवा मेरी नाड़ी) अब विरह-रूपी पर-पुरुष के हाथों फंसी हुई है, इसको आपके अतिक्ति और कौन छुड़ा पाएगा।

साहित्यिक – 1. दोहे की अंतिम पंक्ति में नियोजित "नारि पराए हाथ है"– बड़ी ही अर्थगर्भित है। इसके द्वारा नागमती प्रकारान्तर से इस तथ्य का आश्रय लेती है कि शायद मेरा पति ईर्ष्या से ही शीघ्र लौट आए कि उसकी स्त्री पर कोई अन्य व्यक्ति अधिकार करना चाहता है।

2. 'नारि' शब्द का श्लेष से 'नाड़ी' अर्थ लेने पर इन पंक्तियों का भाव यह है कि अब मेरी नाड़ी छूटने वाली है, मेरी नाड़ी यमराज के अधिकार में है अतः आप शीघ्रातिशीघ्र आकर मेरी प्राण-रक्षा कीजिए।

3. उपमा, रूपक और श्लेष अलंकार।

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोला चीर चंदन भौ आगी।1।
सूरुज जरत हिवंचल ताका। बिरह बजागि सौहं रथ हांका।2।
जरत बजागिनि होउ पिय छांहां। आइ बुझाउ अंगारन्ह माहां।3।
तोहि दरसन होइ नारी। आइ आगि सों करु फुलवारी।4।
लागिउं जरे जरे जस भारू। बहुरि जो भूं जसि तजौं न बारू।5।
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ होइ बिहराई।6।
बिहरत हिया करहु पिया टेका। दिस्टि दवंगरा मेरवहु एका।7।
कंवल जो बिगसा मानसर छारहिं मिलै सुखाइ।
अबहुं बेलि फिरि पलुहै जौं पिय सींचहु आइ ॥30/14॥

शब्दार्थ – हिवंचल=हिमाचल। बजागि=वज्राग्नि। सौहं=सम्मुख। भारू=भाड़ा। बहुरि=दुबारा। बिहराई=बिखर जाना, फैल जाना। टेका=सहारा। दिस्टि दवंगरा=दृष्टि रूपी दौंगरा अर्थात् हल्की वर्षा। मेरवहु=मिलओ, प्रदान करो। छारहिं=राख।

संदर्भ–विरहिणी नागमती के हृदय में उठने वाली भावनाओं का वर्णन किया गया है।

नोट

व्याख्या–कवि वर्णन करता है कि बैसाख का महीना आ जाने के कारण चारों ओर भयंकर ताप पड़ने लगा है। विरहिणी नागमती को चन्दनी चीर और चोला आग जैसा दाहक प्रतीत होता है। वह सूर्य जो इससे पूर्व लंका की ओर चला गया था। अब तपते हुए हिमाचल की ओर ताकने (देखने) लगा है और उसने मेरी बिरह-रूपी वज्राग्नि की ओर अपने रथ को हांक दिया है अथवा सूर्य जलता हुआ हिमाचल की ओर जाना चाहता था (वहां तो वह नहीं गया) विरह की वज्राग्नि में तपती हुई मेरी ओर ही उसने रथ हांक दिया है (मैं और तपने लगी)। हे प्रियतम! मैं विरह-रूपी वज्राग्नि में प्रज्ज्वलित हो रही हूं आप इससे मेरी रक्षा कीजिए – मुझे अपने सम्मिलन की छाया प्रदान कीजिए। मैं विरहाग्नि के अंगारों में झुलसी जा रही हूं, इनसे आप मेरी रक्षा कीजिए अपने आगमन-रूपी जल से इन अंगारों को बुझाइए। आपकी पत्नी आपके दर्शनों से ही सुशीतल हो सकती है। वे प्राणनाथ! शीघ्र ही आइए और मुझको अंगारों से फुलवाड़ी में परिणत कर दीजिए। आपके विरह की आग में मैं सदैव भाड़ की तरह जलती रहती हूं और यदि आप मुझको फिर भी जलाएंगे तो भी आपका द्वार (बारू) न छोडूंगी। अथवा जिस प्रकार भाड़ की आग में भूने जाने पर जौ की बौहरिया (भुने हुए जौ को लोक शब्दावली में बौहरी कहते हैं) जिस प्रकार तीव्र ताप के कारण बार-बार उछल-उछल कर भी बालू में ही आ गिरती है– तप्त बालू को नहीं छोड़ती– उसी प्रकार मैं भी आपके द्वारा नाना प्रकार के कष्ट-संताप दिए जाने पर भी आपका साथ नहीं छोड़ सकती। हे प्रिय! मेरा सरोवर-रूपी हृदय नित्यप्रति घटता जा रहा है– जैसे गर्मी से तालाब का जल सूखता जाता है उसी प्रकार विरह ताप के कारण मेरे हृदय की भावनाएं शुद्ध-नीरस होती जा रही हैं। स्थिति यहां तक आ पहुंची है कि मेरा हृदय पूर्णतः सूखकर छिन्न-भिन्न हो उठा है जैसे सूखे हुए तालाब का तल (मिट्टी) अनेक खण्डों में विभक्त हो जाती है। हे प्राणेश्वर! मेरे फटते हुए हृदय को सहारा दीजिए और अपनी दृष्टि-रूपी दौंगरे से उसके छिन्न-भिन्न टुकड़ों को मिलाकर एक कर दीजिए।

हे नाथ! वह कमल जो मेरे हृदय-रूपी मानसरोवर में खिला हुआ था– अर्थात् मेरा प्रफुल्लित हृदय– आपके दर्शन-रूपी जल के अभाव में सूख-सूखकर मिट्टी में मिल रहा है। उसकी सूखी हुई बेल (कमलनाल) अब भी पुनः हरी-भरी हो सकती है यदि आप उसको अपनी दृष्टि-रूपी जल (वर्षा) से सींचने की अनुकम्पा करेंगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. जायसी ने देशज शब्दों का बड़ा ही सार्थक प्रयोग किया है। प्रस्तुत पंक्तियों में प्रयुक्त दवंगरा शब्द ऐसा ही है। वर्षा होने से पूर्व ग्रामों में तालाब पूर्णतः सूख जाते हैं और उनकी चिकनी मिट्टी सूखकर बड़े-बड़े टुकड़ों में विभक्त हो जाती है, जिनको लोक शब्दावली में 'कीलें' कहते हैं। जब हल्की-सी भी वर्षा होती है और तालाब में ढुलककर पानी भर जाता है तो ये टुकड़े मिलकर एक हो जाते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में नागमती भी स्वपति से दृष्टि-रूपी दौंगरे की याचना करती है जिससे उसके भग्न हुए हृदय के टुकड़े मिलकर एक हो जाएं।

2. रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा और सांगरूपक अलंकार।

जेठ जरै जग बहै लुवारा। उठै बवंडर धिकै पहारा।1।
बिरह गाजि हनिवंत होइ जागा। लंका डाह करै तन लागा।2।
चारिहुं पवन झंकोरै आगी। लंका डाहि पलंका लागी।3।
दहि भइ स्याम नदी कालिंदी। बिरह कि आगि कठिन असि मंदी।4।
उठै आगि औ आवै आंधी। नैन न सूझ मरौं दुख बांधी।5।
अधजर भई मांसु तन सूखा। लागेउ बिरह काग होइ भूखा।6।
मांसु खाइ अब हाड़न्ह लागा। अबहुं आउ आवत सुनि भागा।7।
परबत समुंद्र मेघ ससि दिनअर सहि न सकहिं सुनि भाग।
मुहमद सती सराहिअै जरै जो अस पिय लागि॥30/15॥

शब्दार्थ–लुवारा=लू। धिकै=दहकने लगे। गाजि=गरजकर। हनिवंत=हनुमान। डाह=जलाना। कालिंदी=यमुना। दिनअर=दिनकर, सूर्य। जरै=तपना।

संदर्भ–ज्येष्ठ के महीने में नागमती को अनुभव होने वाली विरहाग्नि का वर्णन किया गया है।

व्याख्या–ज्येष्ठ के महीने में सारी पृथ्वी जलने लगी। आंधी के बवंडर उठने लगे और तीव्र ताप के कारण पहाड़ भी दहकने लगे। विरह हनुमान की भांति गर्जन करते हुए जागृत हो गया और लोगों के (नागमती के) शरीरों को लंका की भांति दग्ध करने लगा। चारों पवन अपने झोंकों से इस विरह की आग को विवर्धित करने लगे और उससे

नोट

लंका ही नहीं अपितु पलका तक जल उठी। इस विरहाग्नि में जलकर ही यमुना नदी का जल काला हो गया है। विरह की अग्नि धीमी-धीमी सुलगती आग की तरह अत्यधिक दुस्सह हुआ करती है। आग भड़क उठी है, जबकि अंधड़ भी चल रहा है। नागमती कहती है कि ऐसे में मुझको हाथों-हाथ नहीं दिखाई पड़ रहा है और इस दुःख में ग्रस्त होकर मैं मरी जा रही हूं। विरहाग्नि में जलकर मैं अधमरी (अधजली) हो उठी हूं और मेरे शरीर का सारा मांस सूख गया है। विरह-रूपी काग मेरे मांस को उसी प्रकार खाए डालता है, जैसे बुभिक्षित कौआ मांस पर झपटा करता है। विरह-रूपी कौवे ने मेरे मांस का भक्षण करने के पश्चात् अब मेरी हड्डियों को खाना आरम्भ कर दिया है। हे प्राणनाथ! आप अब भी आकर मुझे जीवित बचा लीजिए क्योंकि यह आपके आने का नाम सुनते ही भाग खड़ा होगा।

नागमती की यह विरहाग्नि जो ज्येष्ठ माह की लुओं के रूप में प्रकट हो रही है, इसको पर्वत, समुद्र, बादल, चन्द्रमा और सूर्य में से कोई भी नहीं सहन कर सकता। कवि मलिक मुहम्मद जायसी कहते हैं कि सती-साध्वी नागमती की सराहना करनी चाहिए जो अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा में इस विरहाग्नि को सहन कर रही है।

साहित्यिक सौन्दर्य 1. 'लंका डाहि पलंका' – इस पंक्ति का **डॉ. वासुदेवशरण** ने यह अर्थ दिया है कि 'वह अग्नि लंका को जलाकर अब पलंग में लग गई'– जो इस दृष्टि से अनुपयुक्त है कि इस पंक्ति में जायसी ने 'लंका छोड़कर पलंका जा पहुंचने' की लोकोक्ति का प्रयोग किया है और इसका भाव है कि वह दूर-दूर तक फैली हुई है।

2. उपमा और रूपक अलंकार।

क्या आप जानते हैं जायसी ने नागमती की वियोग अवस्था का बारह मासा शैली में वर्णन किया है।

तपै लाग अब जेठ असाढ़ी। भै मोकहं यह छाजनि गाढ़ी।1।
तन तिनुवर भा झूरौं खरी। मैं बिरहा आगरि सिर परी।2।
सांठि नाहिं लगि बात को पूंछा। बिनु जिय भएउ मूंज तन छूंछा।3।
बंध नाहिं और कंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई।4।
ररि दूबरि भई टेक बिहूनी। थंभ नाहि उठि सकै न थूनी।5।
बरसहिं नैन चुअहिं घर माहां। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छांहां।6।
कोरे कहां ठाट नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा।7।
अबहूं दिस्टि मया करु छान्हिन तजु घर आउ।
मंदिल उजार होत है नव कै आनि बसाउ॥30/16॥

शब्दार्थ–भै=हो गई। मोकहं=मेरे लिए। छाजनि=छूत का एक रोग विशेष। तिनुवर=तिनके के समान। आगरि=अर्गला। सांठि नांहि=गांठ की पूंजी नष्ट हो गई है। बंध=भाई, बंधु। कंध=कंधा। मूंज=एक विशेष प्रकार की घास। टेक=आश्रम, सहारे की लकड़ी। ररि=रटकर। थंभ=स्तंभ, खम्बा। थूनी=छप्पर को साधने के लिए लगाई जाने वाली लकड़ी जो दीवार में गाड़कर बंडेरा में फंसा दी जाती है (बंडेरा उस मोटी बल्ली को कहते हैं जिस पर दो पहलू छप्पर का मध्य भाग टिका रहता है)। दिस्टि=दृष्टि। मया=दया। मंदिल=मंदिर, भवन। नव कै= नया करके। छाजन=छप्पर।

संदर्भ–नागमती द्वारा विरह में अपने प्राणेश्वर का स्मरण किया गया है।

व्याख्या–नागमती अपने परदेशी प्रियतम को याद करते हुए कहती है कि प्राणेश्वर अब मेरे शरीरांगों में विरह जेठ-अषाढ़ की तरह तपने लगा है और यह तपन मेरे शरीर को छाजन (एक रोग विशेष) की तरह व्यथित करने लगा है। मेरा शरीर सूख-सूखकर कांटा हो गया है और मैं खड़ी झूरती रहती हूं। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है मानो विरह की खान (आगरी) ही मेरे सिर पर टूट पड़ी है। अब मेरी गांठ में पूंजी नहीं है अर्थात् मेरा पति-रूपी धन मुझसे दूर है अतः मेरी बात कौन पूछेगा। अपने प्रियतम के अभाव में मेरा शरीर मूंज की भांति निस्सार हो गया है (मूंज के बान से चारपाई बुनी जाती है)। इस समय न तो कोई मेरा बंधु-बांधव है और न ही कोई कंधा अर्थात् सहारा देने वाला है। मेरे मुंह से शब्द ही नहीं निकल पाते अतः मैं किसको रोकर बातें सुनाऊं। रो-रोकर मैं अत्यधिक दुर्बल हो गई

नोट

हूं और सभी प्रकार के आश्रयों से विहीन हूं। जब पति-रूपी स्तंभ ही न हो तो जीवन-रूपी छप्पर थूनियों (छोटे-छोटे सहारों) पर कैसे टिका रह सकता है। मेरे नेत्रों से अविरल रूप में आसुंओं की वर्षा होती रहती है जो घर में ही टपकते रहते हैं। हे नाथ! आपके अभाव में न तो मेरे भवन पर छप्पर (छाजन) ही है और न छाया ही है। अब कौन है जो नए ठाठ सजाएगा अथवा "अरे, कौन कहां अब नया साज सजाएगा?" हे नाथ आपके अभाव में तो अब वस्त्र अथवा छप्पर कुछ भी तो अच्छा नहीं लगता।

हे प्राणेश्वर! आप अब भी मेरी ओर अपनी कृपा दृष्टि कीजिए और उस स्थान को छोड़कर जहां पर आप किसी अन्य को आश्रय प्रदान कर रहे हैं, अर्थात जिस स्त्री के जीवन-रूपी घर में आपने अपनी उपस्थिति-रूपी छान छायी हुई है, से छोड़कर मेरे समीप लौट आइए आपकी पत्नी का यह शरीर-रूपी घर उजाड़ होता जा रहा है आप आकर इसको नए रूप में बसा लीजिए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. इन पंक्तियों का **डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल** ने निम्नांकित अर्थ दिया है–

"अब जेठ-आषाढ़ी तपने लगी है। मेरे लिए छाजन दुखदायी हो गई है। इसका तान या फैलाव सिमटकर ढेर हो गया है। मैं उसके नीचे खड़ी सूखती हूं। उसकी अर्गला निकल गई है और द्वार खोलने वाले के सिर पर आ गिरती है। इसमें सेंठे नहीं लगे पत्ते का तो कहना ही क्या? डोरी के न रह जाने (लपेट खुल जाने) से मूंज की ताने छूंछी हो गई हैं। बंद भी नहीं रहे और दीवार (कंध) भी कोई नहीं है। धुड़िया (बॉक) भी नहीं है। किससे रोकर व्यथा कहूं? यह दुपलिया छान (दूबरि) अपने स्थान से सरक कर (ररि) टेक विहीन हो गई है। इसमें जो थंभ था वह नहीं रह गया। सहारे के लिए थूनी भी नहीं लग सकती। इसके ऊपर धुंआ निकलने के लिए जो धमाले या धूमनेत्र बने थे, वे पानी बरसने पर अब घर में ही टपकते हैं। हे कत, तुम्हारे बिना अब छाजन छांह नहीं करती। पूरे बांस (कोरे) कहां हैं जिनसे छान को नया बनाया जाए? हे कंत, तुम्हारे बिना छाजन नहीं छाई जा सकती।

अब भी कृपा दृष्टि करो और बिजन छोड़ो, घर में आओ। यह राज मंदिर उजाड़ हो रहा है, आकर नया बसाओ।"

2. उपमा और रूपक अलंकार।

नोट्स कवि जायसी रानी नागमती की विरह दशा के वर्णन में एक पतिव्रता साधारण स्त्री का रूप चित्रित करते हैं। नागमती वियोग के माध्यम से वह साधारण भारतीय स्त्री की चिंता व्यक्त करते हैं, जिसका पति बाहर है वह बरसात में घर की छाजन कैसे ठीक करे!

रोइ गंवाएउ बारह मासा। सहस सहस दुख एक एक सांसा।1।
तिल तिल बरिस बरिस बरु जाई। पहर पहर जुग जुग न सिराई।2।
सो न आउ पिउ रूप मुरारी। जासों पाव सोहाग सो नारी।3।
सांझ भए झुरि झुरि पंथ हेरा। कौनु सो घरी करै पिउ फेरा।4।
दहि कोइल भै कंत सनेहा। तोला मांस रहा नहिं देहा ॥30/17॥

शब्दार्थ–गंवाएउ=खो दिया। सहस=सहस्त्र। सिराई=ठंडा। हेरा=देखा। दहि= जलकर। पाव लागि= चरण स्पर्श करने के लिए। चेरी=दासी। निसरी=निकलकर। गरा=गल गया। झांखि=पछता गया। पांखि=पक्षी।

संदर्भ–नागमती ने अपने प्रियतम के वियोग में किस प्रकार बारह महीने व्यतीत किए उसी विरह का वर्णन यहां किया गया है।

व्याख्या–कवि कहता है कि पीछे वर्णित रीति से विरहिणी नागमती ने रो-रोकर बारह महीने जैसे-तैसे व्यतीत किए। उसकी एक-एक सांस में भी उसको हजारों प्रकार का दुःखानुभव होता था। उसके लिए एक-एक क्षण का समय काटना वर्षों की भांति लम्बा हो गया था। इसी प्रकार एक-एक पहर की कालावधि युगों के समान लम्बी प्रतीत होती थी। फिर भी उसका कृष्ण की भांति सुन्दर पति लौटकर नहीं आया था जिससे उसको सौभाग्यवती कहलाने का

नोट

सुअवसर मिल सकता। संध्या होते ही वह बड़ी उत्सुकतापूर्वक पति के प्रत्यागमन के मार्ग की ओर देखने लगती थी और सोचती रहती थी कि न जाने वह शुभ घड़ी कब आएगी जब उसके पति उसके समीप आएंगे। वह अपने प्रियतम के प्रेम में जलकर कोयल की भांति काली पड़ गई थी और उसके शरीर में एक तोला तक मांस अवशिष्ट नहीं बचा था। उसके शरीर में रक्त भी शेष नहीं बचा था और विरह ने उसके शरीर को गला दिया था। उसके शरीर का रुधिर उसके आंसुओं के रूप में रत्ती-रत्ती की मात्रा तक शरीर से निकल गया था। बड़े ही कातर स्वर में वह कहने लगी कि हे प्राणेश्वर मैं हा! हा! खाते हुए आपके चरणों में गिरती हूं। आप अपने उस स्नेह-संबंध को पुनः जोड़ लीजिए जो इस समय आपने तोड़ रखा है।

कवि कहता है कि इस प्रकार एक वर्ष तक नाना प्रकार से विलाप करती हुई नागमती अंततः झख मारकर रह गई अर्थात् उसकी अभिलाषा सफल नहीं हो पाई। उसने स्व-पति के विषय में लोगों से घर-घर जाकर, पूछताछ की और जब उनसे कुछ भी पता न चला तो वह हारकर वन के पक्षियों से पूछने के लिए राजमहल से निकल पड़ी।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'हा! हा! खाना', लोक-जीवन में दीनता की चरमावस्था होती है।

2. श्लेष, पुनुरुक्तिप्रकाश अलंकार।

टास्क बारहमासा वर्णन शैली से आप क्या समझते हैं? इसकी परंपरा का उल्लेख कीजिए।

भई पुछारि लीन्ह बनबासू। बैरिनि सवति दीन्ह चिल्हवांसू।1।
कै खर बान कसै पिय लागा। जौं घर आवै अबहुं कागा।2।
हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तहं पठवौं कौनु परेवा।3।
धौरी पडुक कहु पिय ठाऊं। जौ चित रोख न दोसर नाऊं।4।
जाहि बया गाहि पिय कंठ लवा। करे मेराउ सोई गौरवा।5।
कोइलि भई पुकारत रही। महरि पुकारि लेहु रे दही।6।
पियरि तिलोरि आव जलहंसा। बिरहा पैठि हिंए कत नंसा।7।
जेहि पंखी कहं अढ़वौं कहि सो बिरह कै बात।
सोई पंखि जाइ डहि तरिवर होइ निपात ॥30/18॥

शब्दार्थ – पुछारि=मोरनी, पूछने वाली। सवति=सौत। चिल्हवांसू=चिड़ियां फंसाने का एक फन्दा। खर=तीव्र। परेधा=पक्षी। पंडुक=पीला। चित रोख=एक पक्षी। रोख=रोष। दोसर नांऊ= किसी दूसरे का नाम लेना। गहि=पकड़कर। मेराउ=मिला। महरि=ग्वालिन नामक चिड़िया। तिलोरि=तेलिया मैना। कत नंसा=नीलकंठ, काटना और नाश करना। अढ़वौं=आज्ञा देना, काम में नियुक्त करना। डहि=जल। निपात=पत्रहीन।

संदर्भ–नागमती द्वारा पति की खोज का वर्णन।

व्याख्या–स्वपति की खोज में घर से निकली नागमती का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि अब वह विरह में व्याकुल होकर मोरनी बनकर बन-बन में मारी-मारी फिर रही थी। उसको उसकी सौत (पद्मावती) ने चिड़िया फंसाने के जाल रूपी विरह में फंसा रखा था। विरह की तीव्रता उसको जलाए डालती थी, जो उसके हृदय में तीव्र बाण की भांति चुभ रहा था। कौवे को बैठा देखकर वह उससे कह उठती थी कि अरे कौवे! यदि आज मेरे प्रियतम घर लौट रहे हों तो तू उड़ जा। मैं लम्बे समय से हारिल बनी हुई स्व-प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा कर रहीं हूं और अब किसी पक्षी को संदेश देकर अपने प्राणेश्वर के समीप प्रेषित करूं। नागमती धौरी और पंडुक चिड़ियों से कहने लगी कि अरी तुम्हीं मुझको प्रियतम का स्थान बता दो। यदि मेरे प्रियतम अपने हृदय में मुझसे रुष्ट हुए हैं तो फिर मेरे लिए दूसरा स्थान ही कौन-सा है? हे बया पक्षी! तू ही जाकर मुझको कंठ से लगाने वाले प्रियतम को लिवा ला। मेरे लिए तो उसी पक्षी का गौरवपूर्ण स्थान रहेगा जो मेरा स्व-प्रियतम से सम्मिलन कराएगा। मैं तो अपने प्रियतम को कोयल बनकर पुकारती हूं। कवि कहता है कि वह नारी ग्वालिन नामक चिड़िया की तरह दही लो, दही लो चिल्लाती फिरती थी

नोट

अथवा नागमती यह कहते हुए कि मैं विरहाग्नि में जली जा ही हूं, दया के लिए (महरि) पुकारती फिर रही थी। बिना किसी ओर ध्यान दिए, एक वृक्ष पर तिलौरी, मैना पक्षी और सरोवर में हंस क्रीड़ा करते रहे। नागमती के हृदय में तो अब विरह-रूपी नीलंकठ का निवास हो गया है जो बराबर उसके शरीर को कचोटता रहता है।

कवि कहता है कि विरह-दग्धा नागमती जिस किसी भी वृक्ष के समीप पहुंचकर उस पर बैठे हुए पक्षियों को अपनी विरह-व्यथा सुनाने का प्रयास करती थी, उसकी विरहाग्नि की लपटों से वही पक्षी जल जाता था और वृक्ष पत्रहीन हो जाते थे।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. प्रस्तुत पंक्तियों के **डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल** ने दो अर्थ दिए हैं उनमें से एक इस प्रकार है–

"पूछने वाली बनकर उसने बनवास लिया कि पक्षियों से प्रिय का समाचार पूछूंगी पर कोई पक्षी वहां पहुंचता ही नहीं क्योंकि, बैरिन सौत ने पक्षियों को फंसाने के लिए चिल्हवासं लगा रखे हैं। इतने पर भी कोई कौवा यदि घर पहुंच जाता है, तो प्रियतम, (भी उसी षड्यंत्र में मिलकर) तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर उसकी ओर खींचने लगता है। अथवा पहली दो पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार होगा– "पूछने वाली बनकर उसने वनवास लिया। बैरिन सौत ने पति को छल फंदे में फंसा रखा है (या अपने चुहल में फंसा रखा है)। प्रियतम ने पहले अपनी कंचन काया को तपाकर उत्तम बना लिया और अब उसको कसौटी पर कस कर देख रहा है। अब भी वह घर लौट आए तो क्या बिगड़ा?"

2. उस मार्ग पर चलती-चलती मैं थक गई हूं। अब संदेशा पाने के लिए वहां किस पक्षी (या संदेश वाहक) को भेजूं।

3. श्वेत और पीली पड़ी हुई अब मेरे लिए प्रिय का ही ठांव है। यद्यपि चित्त में रोष है, फिर भी दूसरा नाम नहीं जानती।

4. जो जाकर आए, प्रिय को कंठ पकड़कर ले आए और मुझसे मिला दे, वही गौरवशाली (बड़े पद वाला) है।

5. आम की गुठली की कोइली (पपैया) जैसी बनकर मैं पुकारती रही। मेरी सास जी को बुलाओ। हाय मैं जली। पियरी और तिलौरी आती है, तो मेरा जी (हंस) जलता है। विरह हृदय में घुलकर क्यों मुझे काट और मार रहा है?

जायसी की श्लेषार्थक शब्दावली द्वारा विविध वस्तुओं का नाम गिनाने की शैली इन पंक्तियों में भी है।

6. मुद्रा, श्लेष और अतिशयोक्ति अलंकार।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. अषाढ़ का महीना आते ही ..... शुरू हो गई।
2. भादों के महीने में वर्षा होने के बाद भी नागमती ..... से सूख गई है।
3. जब नागमती की सखियाँ दीवाली मना रही हैं तब पति की अनुपस्थिति में वह अपने ..... में धूल डाल रही है।
4. नागमती कहती है कि ..... पक्षी मेरी विरह की अग्नि से जलकर काला हो गया है।

कुहुकि कुहुकि जसि कोइलि रोई। रकत आंसु घुंघुची बन बोई।1।
पै करमुखी नैन तन राती। को सिराव बिरहा दुख ताती।2।
जहं जहं ठाढ़ि होइ बनबासी। तहं तहं होइ घुंघुचिन्ह कै रासी।3।
बुंद बुंद महं जानहुं जीऊ। कुंजा गुंजि करहिं पिउ पिऊ।4।
तेहि दुख डहे परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे परभाते।5।
राते बिंब भए तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गोहूं।6।
देखिअ जहां सोइ होई राता। जहां सो रतन कहै को बाता।7।

ना पावस ओहि देसरें ना हेवंत बसंत। नोट

ना कोकिल न पपीहरा केहि सुनि आवहि कंत॥30/19॥

शब्दार्थ–राती=लाल। करमुखी=काले मुंह की। सिराव=शीतल करे। रासी=ढेर। कुंजा=क्रौंच पक्षी। गुंजि=गूंजकर। डहे= जल गए। परास=पलाश अथवा फरास के वृक्ष। निपाते=पत्रहीन। बूड़ि=डूब। गोंहू=गेहूं। परवर=परवल। ओहि=उस।

संदर्भ–नागमती की विरहावस्था का वर्णन।

व्याख्या–विरहिणी नागमती की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि नागमती वनों में कोयल की भांति कुहुक-कुहुक कर अर्थात् हूकें भरती हुई, रुदन करती फिर रही थी और उसके रुधिरमय अश्रु लाल रंग की घुंघचियों के रूप में चारों ओर बिखर गए थे। विरहाग्नि में सुलगते रहने के कारण उसका मुख काला पड़ गया था जबकि उसके नेत्र तथा शरीर लाल रंग के हो रहे थे। रक्ताश्रुओं में भीगने के कारण शरीर का लाल हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है। वह विरह की जिस तीव्र अग्नि में जल रही थी उसको शीतल करने वाला कोई भी नहीं था। वह वन में जहां कहीं भी जाकर खड़ी हो जाती थी वहीं पर उसके नेत्रों से गिरे रक्ताश्रुओं के कारण घुंघचियों का ढेर-सा लग जाता था, उसके आसुंओं की एक-एक बूंद मानो जान ही टपकी पड़ रही थी, इसीलिए प्रत्येक कुंज में से 'पिउ-पिउ' की अनुगूंज उठ रही थी। उसके दुःख में विदग्ध होकर पलाश-वृक्ष पत्रहीन हो गए थे। (परास का प्रयोग फरास के वृक्ष के लिए भी माना जा सकता है, जिसको पत्ते नहीं आते) और फिर प्रातः काल लाल-लाल पुष्पों से लदकर ऐसे प्रतीत होते थे, मानो नागमती के रक्त में डूबने के कारण ही उनके फूल लाल रंग के हो गए हैं। बिम्बफल भी नागमती के रुधिर में डूबकर लाल हो गए, जबकि परवल पक कर पीले पड़ गए और गेंहू का हृदय फट गया। जिस किसी को भी और जहां कहीं भी देखिए, वही लाल दिखाई पड़ता था– अथवा नागमती जिस किसी पर भी अपनी दृष्टि डालती थी, वही लाल हो जाता था– इसलिए जहां रत्नसेन रूपी लाल विद्यमान था, वहां इस बात को जाकर कौन कहता?

अपने प्रियतम के वियोग में कलपती हुई नागमती कहने लगी कि मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा प्रियतम जिस देश में निवास कर रहा है उस देश में न तो वर्षा-ऋतु होती है और न हेमंत और वसंत ऋतु का ही अस्तित्व है। वहां पर कोयल और पपीहे भी नहीं होते। यही कारण है कि मेरे प्राणेश्वर न तो ऋतुओं के प्रभाव-स्वरूप मुझको याद करके लौट पाते हैं और न कोयल और पपीहे की आवाज से ही उनको यह याद आती है कि मेरी वियुक्ता पत्नी मुझको इसी प्रकार तड़प-तड़प कर याद कर रही होगी।

साहित्यिक सौन्दर्य–1. वियोगियों के लिए तीन ही ऋतुएं कवियों ने अधिक संतापदायक सिद्ध की हैं– वर्षा, हेमन्त और वंसत। अतः नागमती सोचती है कि उस देश में, जहां मेरा पति निवास करता है, ये ऋतुएं होती ही नहीं हैं। इसी प्रकार कोयल और पपीहा भी बिछुड़े प्रियतम की स्मृति दिलाने के लिए प्रसिद्ध हैं। नागमती अपने अंतर्मन को यह सोचकर समाश्वासन देना चाहती है कि जब ये बातें वहां होती नहीं हैं, तो मेरे प्रियतम को मुझ वियुक्ता की स्मृति आ ही कैसे सकती है?

2. उत्प्रेक्षा अलंकार।

16.2 सारांश (Summary)

रत्नसेन के घर छोड़कर चले जाने के पश्चात् उसकी विवाहिता नागमती चित्तौड़गढ़ में अकेली हो जाती है। पति की विरह में उसे प्रकृति भी दुखदायी प्रतीत होती है। जो सावन उसे सुख देता था, आज वहीं उसे जला रहा है। जायसी नागमती के आंसुओं की तुलना भादों मास की वर्षा से करते हैं। रानी नागमती को एक साधारण स्त्री की तरह अपने घर की चिंता सता रही है कि मेरा घर नहीं है। मेरे घर की छाजन (मिट्टी की दीवारों पर डाली गई फूस की छत) ठीक नहीं है। वर्षा होते ही घर टपकने लगेगा। नागमती अपने प्रिय को संबोधित करके कहती है कि हे कंत जहाँ तुम हो उस देश में क्या ऋतुएं नहीं होतीं जो तुम्हें मेरा ध्यान आए और तुम घर लौट आओ।

नोट

16.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **धमारीः** एक राग विशेष।
2. **बारहमासा वर्णनः** इसके अंतर्गत कविगण साल के बारह महीनों की अलग-अलग दशाओं का वर्णन करते हैं।
3. **माघ-पूसः** हिंदी महीनों के नाम, जिनमें सर्दी अपने चरम पर होती है।

16.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'नागमती वियोग वर्णन हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है।' स्पष्ट कीजिए।
2. नागमती वियोग वर्णन की विशेषताएँ बताइए।
3. 'जायसी नागमती के वियोग वर्णन के माध्यम से नागमती को राजसी वैभव से हटाकर एक साधारण स्त्री के रूप में चित्रित करने में सफल रहे हैं' नागमती वियोग वर्णन के आधार पर समझाइए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. बादलों की गर्जना
2. विरहाग्नि
3. सिर
4. काग

16.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. पद्मावत–*मलिक मुहम्मद जायसी कृत।*
2. जायसी ग्रन्थावली–*शुक्ल रामचंद्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।*
3. मलिक मुहम्मद जायसी–*बी.सी. पाण्डेय, विनोद प्रकाशन।*

नोट

इकाई 17

पद्मावत–गोरा-बादल युद्ध खंडः व्याख्या भाग

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
17.1 गोरा-बादल युद्ध खण्डः सप्रसंग व्याख्या
17.2 सारांश (Summary)
17.3 शब्दकोश (Keywords)
17.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
17.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- पद्मावत में वर्णित गोरा-बादल की कथा से परिचित होंगे।

प्रस्तावना (Introduction)

महाराजा रत्नसेन दिल्ली सुल्तान द्वारा छल से बन्दी बना लिए गए। उन्हें कैद से छुड़ाने के लिए गोरा और बादल ने आपस में परामर्श करके छल का प्रत्युत्तर छल से देने का निश्चय किया। उन्होंने सोलह सौ पालकियाँ सज्जित करवाकर उनमें हथियारों से लैस योद्धा बिठा दिए। एक पालकी में पद्मावती के नाम से सजाकर लोहार बैठा दिया गया और यह कहते हुए दिल्ली की ओर चल पड़े कि रानी पद्मावती दिल्ली जा रही है। दिल्ली पहुँचकर उन्होंने बन्दीगृह के रक्षक को दस लाख मुद्राएँ देकर अपनी ओर मिला लिया और उसके माध्यम से सुल्तान को यह सन्देश पहुँचवाया कि पद्मावती आपके पास आने से पूर्व स्वपति से मिलकर उसे दुर्ग की चाबियाँ सौंपने की आज्ञा चाहती है। सुल्तान की ओर से यह आज्ञा मिल जाने पर लोहार ने राजा के बन्धन काट दिये और पूर्व-नियोजित कार्यक्रम के अनुसार रत्नसेन बादल की संरक्षता में चित्तौड़ की ओर रवाना हो गया। उस षड्यंत्र का रहस्य खुलने पर शाह की सेना ने रत्नसेन को बन्दी बनाने के लिए पीछा करना चाहा किन्तु बादल का चाचा गोरा अपने साथियों के साथ उसे तब तक आगे बढ़ने से रोकता रहा जब तक कि रत्नसेन चित्तौड़ नहीं पहुँच गया। अंततः गोरा वीरगति को प्राप्त हो गया।

17.1. गोरा-बादल युद्ध खण्ड : सप्रसंग व्याख्या

मंते बैठे बादिल औ गोरा। सो मत कीज परै नहिं भोरा।1।
पुरुख न करहिं नारि मति कांची। जस नौसाबैं कीन्ह न बांची।2।
हाथ चढ़ा इसिकंदर बरी। सकति छांड़ि कै भै बंदि परी।3।
सजग जो नाहिं काह बर कांधा। बधिक हुते हस्ती गा बांधा।4।
देवन्ह चलि आई असि आंटी। सुजन कंचन दुर्जन भा मांटी।5।
कंचन जुरै भए दस खंडा। फुटि न मिलै मांटी कर भंडा।6।
जस तुरुकन्ह राजहिं छर साजा। तस हम साजि छड़ावहिं राजा।7।
पूरुख तहां करै छर जहं बर कीन्हें न आंट।
जहां फूल तहां फूल होइ जहां कांट तहां कांट॥ 53/1॥

नोट

शब्दार्थ–मंते=सलाह करने के लिए। भोरा=भूल, धोखा। कांची=कच्ची। नौसाबैं=नौशाबा। इसिकंदर=सिकन्दर। हुते=होते हुए। गा बांधा=बन्दी बनाना। आंटी=परम्परा। भंडा=बरतन। छर=छल। साजा=किया है। आंट=पूरा करना।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियां गोरा-बादल युद्ध खण्ड की आरंभिक पंक्तियां हैं। इससे पूर्ववर्ती खण्ड में कवि इस तथ्य का वर्णन कर चुका है कि शाह अलाउद्दीन की कैद से अपने पति को छुड़ाकर लाने का उत्तरदायित्व पद्मावती गोरा और बादल को सौंप चुकी। इन पंक्तियों में गोरा और बादल यह मंत्रणा करते दिखाए गए हैं कि चूंकि शाह अलाउद्दीन द्वारा रत्नसेन को छलपूर्वक बन्दी बनाया गया था अतः हमें भी अलाउद्दीन के साथ छल करते हुए राजा को कैद से छुड़ाना चाहिए।

व्याख्या–कविवर जायसी वर्णन करते हैं कि गोरा और बादल ने बैठकर मंत्रणा की। वे सोचने लगे कि हमें कोई ऐसी मंत्रणा (युक्ति) करनी चाहिए कि उसमें धोखा न खाना पड़े। पुरुषों को ऐसी कच्ची बुद्धि नहीं रखनी चाहिए जैसी कच्ची बुद्धि स्त्रियों की हुआ करती है। क्योंकि जिस प्रकार नौशावा ने कच्ची बुद्धि से काम लिया था उसके कारण वह बच नहीं सकी थी। सिकन्दर उसके हाथ पड़ गया था। किन्तु उसकी कच्ची बुद्धि के कारण उसके चंगुल से छूट ही नहीं गया था अपितु उसको सिकन्दर का बन्दी होना पड़ा था। यदि कोई व्यक्ति असावधान हो तो उसके कंधों के बल का क्या लाभ है?–भाव यह है कि बलवान व्यक्ति भी यदि सावधान नहीं रहता तो वह ताकत के होते हुए भी चक्कर में पड़ जाता है। उदाहरण के लिए हाथी अत्यधिक बलवान होते हुए शिकारी द्वारा बन्धन ग्रस्त कर लिया जाता है। इस प्रकार की बहुत-सी उक्तियां देवों से ही चली आई हैं कि सज्जन सोने के समान होते हैं और दुर्जन मिट्टी के घड़े के समान। सोना अनेक टुकड़े होने पर भी जुड़ जाता है किन्तु मिट्टी का घड़ा एक बार टूट जाने पर फिर नहीं जुड़ पाता। जैसा तुर्कों ने राजा के साथ छल किया है वैसा ही छल करके हमको राजा को उनके बन्धन से छुड़ाना चाहिए।

पुरुष उस स्थान पर छल किया करता है जहां उसकी शक्ति उसका साथ नहीं दिया करती। जहां पुष्प हों वहां पुष्प बनकर रहना चाहिए और जहां कांटें हों वहां कांटा बनकर रहना चाहिए। भाव यह है कि भले लोगों के साथ भला जबकि दुष्टों के साथ दुष्टतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'नारि मति कांची' से गोरा बादल का संकेत पद्मावती के उस कथन से है जिसमें उसने जोगिन बनकर बन्दी गृह से रत्नसेन को छुड़ा लाने की बात कही थी–

"पिय जहं बन्दी जोगिन होइ धावौं,
हौं होइ बंदि पियहि मोंकरावौं।"

पद्मावती, गोरा और बादल तीनों प्राणियों द्वारा रत्नसेन को बन्धन से मुक्त कराने के उपाय के संदर्भ में गोरा बादल को पद्मावती की यह मति कच्ची प्रतीत होती है वह स्वयं योगिनी के वेश में दिल्ली जाए।

2. जस नौसावैं कीन्ह न बांची– इस पंक्ति में उस अंर्तकथा का उल्लेख जिसका निजामीकृत सिकन्दरनामा में उल्लेख मिलता है। सिकन्दरनामा के अनुसार नौशावा बुर्द देश की अविवाहित रानी थी। वह उसके यहां वेश बदलकर दूत के रूप गया था। रानी सिकन्दर को पहचान गई थी किन्तु इस प्रकार पहचानकर भी सिकन्दर को छोड़ दिया था। बाद में सिकन्दर ने इस रानी पर अधिकार करके उसको अपने अधीन मित्र बनाया था।

3. "हाथ चढ़ा .... बन्दी परी" – इस पंक्ति का मूल तात्पर्य यह है कि जैसे नौशावा ने हाथ पड़े सिकन्दर को छोड़ दिया था उसी प्रकार अलाउद्दीन भी दुर्ग में आने पर रानी पद्मावती के कब्जे में आ गया था, किन्तु तब इसने उसको उसी प्रकार छोड़ दिया था या दुर्ग में निकल जाने दिया था जैसे नौशावा ने सिकन्दर को निकल जाने दिया था।

4. बधिक हुते हस्ती गा बांधा– **डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल** ने इस संदर्भ में निम्नांकित लोककथा (पंचतंत्र के आधार पर) दी है।

"किसी प्रदेश में बहुत से चूहे बिल बनाकर रहते थे। वहां से हाथियों का राजा झुंड के साथ पानी पीने के लिए निकला। बहुत से चूहे कुचल गए। जो बचे उन्होंने एक उपाय सोचा और जाकर हाथियों के राजा से कहा, आप हम पर दया कीजिए तो हम भी किसी दिन आपकी सेवा करेगें ताल पर जाने के लिए कोई दूसरा मार्ग चुन लें। उसने यह बात मान ली। कभी एक राजा ने अपने बहेलिए को हाथी पकड़ने का आदेश दिया। उन्होंने हाथियों के राजा को

नोट

झुंड के साथ पकड़ लिया और मोटे रस्सों से पेड़ से बांध दिया। तब हाथियों के राजा ने चूहों के पास समाचार भेज कर उन्हें बुलवाया और बन्धन से मुक्ति पाई।"

5. 'पुरुख .... बांची' में दृष्टांत अलंकार।

6. 'सजग जो ..... बांधा' में दृष्टांत अलंकार।

7. 'सुजन ..... मांटी' में उपमा अलंकार।

8. 'कंचन ..... भंडा' में लोकोक्ति अलंकार।

9. 'जस तुरुकन्ह ..... राजा' में उदाहरण अलंकार।

10. दोहे में इस लोकोक्ति का प्रयोग किया गया है– Tit for tat अथवा जैसे को तैसा व्यवहार करना चाहिए।

सोरह सौ चंडोल संवारे। कुंवर संजोइल कै बैसारे।1।
साजा पदुमावति क बेवानू। बैठ लोहार न जानै भानू।2।
रचि बेवान तस साजि संवारा। चहुं दिसि चंवर करहिं सब ढारा।3।
साजि सबै चंडोल चलाए। सुरंग ओढ़ाए मोंति तिन्ह लाए।4।
भै संग गोरा बादिल बली। कहत चले पदुमावति चली।5।
हीरा रतन पदारथ झूलहिं। देखि बेवान देवता भूलहि।6।
सोरह सै संग चलीं सहेली। कंवल न रहा औरु को बेली।7।
रानी चली छड़ावै राजहिं आपु होइ तेहि ओल।
बतिस सहस संग तुरिअ खिंचावहि सोरह सै चंडोल॥11/2॥

शब्दार्थ–चंडोल=एक प्रकार की पालकी जो हाथी के हौदे अथवा अंबारी के आकर की होती थी और उसको चार आदमी उठाकर ले जाते थे। संजोइल=सजाकर। बैसारे=बिठाए। बेवानू=विमान, रथ। न जानै भानू= इस बात का रहस्य सूर्य भी नहीं जानता था। तस=उस प्रकार का। ढारा=डुबाना। सुरंग ओढ़ाइ= लाल वस्त्रों से ढककर। बतिस सहस=बत्तीस हजार।

संदर्भ–गोरा और बादल को पद्मावती की यह युक्ति तो अच्छी नहीं लगी कि वह योगिनी के वेष में जाकर राजा रत्नसेन को अलाउद्दीन के बंदीगृह से छुड़ा कर लाएं। हां उन्होंने यह निश्चय किया कि जब अलाउद्दीन ने रत्नसेन को धोखे से बन्दी बनाया है तो हमें भी उसके साथ धोखे का व्यवहार करना चाहिए। इस बात का निश्चय करके उन्होंने सोलह सौ पालकियां सजाकर उनमें सरदारों को गुप्त रीति से बिठाया, तथा एक पालकी जिसमें लोहार बैठा हुआ था, उसके विषय में यह प्रचार करते हुए कि इसमें बैठकर पद्मावती दिल्ली जा रही है, वे दिल्ली की ओर चल पड़े। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने इसी तथ्य का वर्णन किया है।

व्याख्या–कवि जायसी कहते हैं कि सोलह सौ पालकियां सजाई गईं और उनमें राजपूत सरदारों को शस्त्रों से सज्जित करके बिठाया गया। पद्मावती के लिए भी एक विमान तैयार किया गया और उसमें एक लोहार को इतनी गुप्त रीति से बिठाया गया कि स्वयं सूर्य को भी इस बात की भनक नहीं मिल सकी कि उसमें लोहार बैठा है– भाव यह है कि जब सर्वज्ञ सूर्य को भी इस भेद का ज्ञान न हो सका तो किसी अन्य व्यक्ति को इस तथ्य का ज्ञान होने का प्रश्न नहीं उठता। वह विमान उसी प्रकार सज्जित किया गया था जैसा पद्मावती का विमान सज्जित होना चाहिए और उस पर चारों ओर से चंवर ढाले जा रहे थे। इस प्रकार पालकियों और विमान को सजाकर उन्हें दिल्ली की ओर रवाना कर दिया गया। उनके ऊपर लाल पर्दे पड़े हुए थे और उन पर मोती टंके हुए थे। उन पालकियों और विमानों के साथ-साथ गोरा और बादल चलने लगे और वे यह प्रचार करते जा रहे थे कि पद्मावती दिल्ली जा रही है। पद्मावती के विमान में हीरा, मोती और उत्तम रत्न लटक रहे थे, जिनकी शोभा को देखकर देवता भी मोहित हो उठते थे। यह भी प्रचार किया गया कि पद्मावती के साथ उसकी सोलह हजार सखियां भी जा रही हैं। जब पद्मावती ही न रही तो फिर उसकी सखियां ही (चित्तौड़ में) रुककर क्या करतीं? जब कमल ही न रहा तो दूसरी बेल या लताएं उस (फुलवाड़ी) में ठहरकर क्या करतीं?

नोट

गोरा और बादल यह कहते जाते थे कि रानी पद्मावती स्वयं को बन्धक रखकर राजा को छुड़ाने के लिए जा रही है। वह अपने साथ बत्तीस हजार घोड़े और सोलह सौ चंडोल ले जा रही है।

साहित्यिक सौन्दर्य–1. जायसी ने चंडोल का स्त्रियों की बढ़िया सवारी के रूप में वर्णन किया है।

2. 'सुरंग ओढ़ाइ मोंति तिन्ह लाए'– के संदर्भ में डॉ. अग्रवाल ने स्पष्ट किया है कि – "चंडोल के ऊपर कीमती ओहार ओढ़ाने की प्रथा थी जिसमें मोतियों की झालरें लगी रहती थीं। चित्रावली में भी वर्णन है।

"अपुरब एक ओहार सुहावा।
बिबिध भांति कै आनि ओढ़ावा।
झूलहिं चहुं दिसि झालर मोती।
छिटकि रही जग जगमग जोती।"

3. 'बैठ लोहार .... भानू' में अतिशयोक्ति अलंकार।

4. 'हीरा ..... भूलहिं' में अतिशयोक्ति अलंकार।

5. 'कंवल .... बेली' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

राजा बंदि जेहि की सौंपना। गा गोरा ता पहं अगुमना।1।
टका लाख दस दीन्ह अंकोरा। बिनती कीन्ह पाय गहि गोरा।2।
बिनवहु पातसाहि पहं जाई। अब रानी पदुमावति आई।3।
बिनै करै आई हौं ढीली। चितउर की मो सिउं है कीली।4।
एक घरी जौं अग्यां पावौं। राजहिं सौंपि मंदिल कहं आवौं।5।
बिनवहु पातसाहि के आगें। एक बात दीजै मोहिं मांगे।6।
हते रखवार आगें सुलतानी। देखि अंकोर भए जस पानी।7।
लीन्ह अंकोर हाथ जेइं जाकर जीव दीन्ह तेहि हांथ।
जो वहु कहै सरै सो कीन्हे कनउड़ झार न मांथ॥53/3॥

शब्दार्थ–अगुमना=आगे होकर। टका=टका नामक चांदी का रुपया जो उस काल में चला करता था। अंकोरा=भेंट, रिश्वत। ढीली= दिल्ली। कीली=पुराने ढंग के तालों में लगने वाली कीली या मेखनुमा चाबी। मंदिल=भवन। आगें=अत्यंत क्रोधी। अंकोर=घूस। सरै सो कीन्हे=वह करते ही बनता है। कनउड़=कनौड़ा, अहसानमन्द।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में कविवर जायसी ने इस तथ्य का वर्णन किया है कि उन पालकियों और विमान के आगे जाकर गोरा शाह अलाउद्दीन के रक्षकों से मिला और उनको दस लाख टके की भेंट देकर यह प्रार्थना की कि आप शाह से जाकर यह निवेदन कीजिए कि चित्तौड़ के दुर्ग की चाबी देने के लिए रानी पद्मावती महाराजा रत्नसेन से एकांत में भेंट करना चाहती है।

व्याख्या–कवि मलिक मोहम्मद जायसी वर्णन करते हैं कि राजा रत्नसेन जिस बन्दीगृह में था, गोरा उस बन्दीगृह के मालिक से मिला और उसको दस लाख टके की भेंट (रिश्वत) प्रदान की। यह भेंट देकर उसने उसके चरण पकड़कर विनती की कि आप बादशाह के समीप जाकर यह निवेदन कीजिए की रानी पद्मावती आ गई हैं और वह आपके सम्मुख यह प्रार्थना करती हैं कि मैं दिल्ली में आ पहुंची हूं। हां, चित्तौड़ के दुर्ग की चाबी मेरे पास है। यदि एक घड़ी के लिए आपकी आज्ञा मिल जाए तो मैं उस चाबी को रत्नसेन को सौंपकर आपके महल में आ जाऊं। गोरा ने बन्दीगृह के रक्षक से मनुहार करते हुए कहा कि मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मुझको यह बात मांगे दीजिए– अर्थात् मेरी प्रार्थना स्वीकार करके शाह अलाउद्दीन से यह आज्ञा प्राप्त कर लीजिए कि रानी राजा से घड़ी भर के लिए मिल सके। कवि जायसी कहते हैं कि शाह के रक्षक आग के बने हुए थे, किन्तु उस रिश्वत को देखकर वे पानी हो गए।

रिश्वत के दुष्प्रभाव का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जिसने जिसके हाथ से रिश्वत ले ली उसने उसके हाथ में अपने प्राण दे दिए समझना चाहिए– अभिप्राय यह है कि रिश्वत लेकर व्यक्ति रिश्वत देने वाले के हाथों अपनी

नोट

जान बेच देता है। उससे वही करते बनता है जो रिश्वत देने वाला चाहता है। जो एहसान से दबा हुआ हो वह एहसान करने वाले की गर्दन नहीं काट सकता। अभिप्राय यह है कि उससे रिश्वत देने वाले का अहित करते नहीं बनता और वह उसकी इच्छापूर्ति के लिए विवश हो जाता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. रिश्वत की दुष्प्रथा भेंट आदि के रूप में प्राचीन काल से ही प्रचलित रही है। कवि जायसी ने प्रस्तुत पंक्तियों में अलाउद्दीन के पहरेदारों को रिश्वतखोर चित्रित किया है।

2. 'कनउड़ झार न माथ' में इस लोकोक्ति का प्रयोग किया गया है कि जो जिसका दबैल है वह उसे हलाल नहीं कर सकता।

3. प्रस्तुत पंक्तियों से गोरा की कूटनीतिज्ञता पर भी प्रकाश पड़ता है। वैसे वह क्षत्रिय है किन्तु अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए अलाउद्दीन के पहरेदारों के समक्ष गिड़गिड़ाना अनुचित नहीं समझता।

4. 'हते .... जस पानी' में उपमा अलंकार।

5. दोहे में लोकोक्ति अलंकार।

क्या आप जानते हैं 'टका लाख दस दीन्ह अंकोश। बिनती कीन्ह पाय गहि गोरा'। इन पंक्तियों के माध्यम से जायसी ने तत्कालीन समाज में रिश्वतखोरी की ओर इशारा किया है। गोरा द्वारा बंदीगृह के दरबान को भेंट स्वरूप मुद्रा देना रिश्वत का ही रूप है।

लोभ पाप कै नदी अंकोरा। सत्तु न रहै हाथ जस बोरा।1।
जहं अंकोर तहं नेगिन्ह राजू। ठाकुर केर बिनासहिं काजू।2।
भा जिउ घिउ रखवारन्ह केरा। दरब लोभ चंडोल न हेरा।3।
जाइ साहि आगें सिर नावा। ऐ जग सूर चांद चलि आवा।4।
औ जावंत संग नखत तराई। सोरह सै चंडोल सो आई।5।
चितउर जेति राज कै पूंजी। लै सो आई पदुमावति कूंजी।6।
बिनति करै कर जोरें खरी। लै सौंपौं राजहिं एक घरी।7।
इहां उहां के स्वामी दुहूं जगह मोहि आस।
पहिलें दरस देखावहु तौ आवौं कबिलास॥53/4॥

शब्दार्थ – सत्तु=सत्य, आचरण। अंकोर=भेंट करके, डूबकर। नेगिन्ह=सेवकों। ठाकुर केर=स्वामी का। बिनासहिं=बिगाड़ते हैं। घिउ=घी, पिघल जाना। चांद चलि आवा=पद्मावती रूपी चन्द्रमा आ गया है। जावंत=जितनी। नखत तराई=नक्षत्रों और तारों रूपी सखियां। जेति=जितनी। आस=आशा। कूंजी=चाबी। कबिलास=स्वर्ग, महल।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में कविवर जायसी ने शाह अलाउद्दीन के रिश्वतखोर रक्षकों द्वारा उससे जाकर यह प्रार्थना करने का वर्णन किया है कि चन्द्रमा रूपी पद्मावती अपनी नक्षत्र और तारों रूपी सखियों के साथ दिल्ली आ पहुंची है और एक घड़ी के लिए स्व-पति से मिलकर उसको दुर्ग की चाबियां सौंप देने की आज्ञा चाहती है।

व्याख्या–कवि कहता है लोभ और रिश्वत पाप की नदी है– भाव यह है कि रिश्वत की नदी लोभ से उत्पन्न होकर पाप की ओर बहती है। इस नदी में कोई प्राणी जैसे ही अपना हाथ डुबाता है उसका सत्याचरण खंडित हो जाता है। जहां घूस चलती है वहां नौकर-चाकरों का ही राज हो जाता है और वे मालिक का कार्य बिगाड़ने लगते हैं– रिश्वतखोर कर्मचारी विविध कार्यों को रिश्वत लेने के आधार पर ही देखते हैं, उन्हें न्याय-अन्याय की चिन्ता नहीं रहती। बन्दीगृह के रक्षकों का हृदय गोरा की भेंट (रिश्वत) पाकर घी की तरह पिघल गया। धन के लोभ के वशीभूत होकर उन्होंने चंडोलों की तलाशी नहीं ली। उन्होंने बादशाह के सम्मुख जाकर प्रणाम करते हुए कहा कि हे जगत् के सूर्य! चन्द्रमा रूपी पद्मावती चलकर आपके समीप आ पहुंची। उसके साथ बहुत-सी नक्षत्रों और तारों रूपी उसकी सखियां भी सोलह-सौ चंडोलों में दिल्ली आ पहुंची हैं। चित्तौड़ राज्य की जितनी पूंजी है, उस सरकारी खजाने की चाबी

नोट

पद्मावती के पास है। वह हाथ जोड़े खड़ी होकर आपसे प्रार्थना करती है कि यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं घड़ी भर के लिए राजा से मिलकर, चाबियों को स्व-पति को सौंप आऊं।

पद्मावती के द्वारा प्रेषित प्रार्थना का वर्णन करते हुए बन्दीगृह का रक्षक आगे कहने लगा कि हे सुल्तान! पद्मावती ने निवेदन किया है कि जो मेरे लिए यहां अर्थात् पृथ्वी और वहां के अर्थात् परलोक के स्वामी हैं और दोनों ही लोकों में मुझको जिनकी आशा थी, पहले मुझे उनके अर्थात् मेरे पति के दर्शन करा दें तो फिर मैं आपके महल में आऊं। श्री शिरेफ साहब ने यहां-वहां के स्वामी का अलाउद्दीन परक अर्थ लिया है जिसके अनुसार पद्मावती की प्रार्थना का उन्होंने यह अभिप्राय ग्रहण किया है कि हे शाह! आप ही मेरे इस लोक तथा परलोक के स्वामी हैं। आप मुझको मेरे पूर्व पति के एक बार दर्शन करा दीजिए जिससे मैं उनको दुर्ग की चाबी सौंपकर शीघ्र ही आपके समीप आ सकूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. रिश्वत को लोभ और पाप की नदी बताना सर्वथा उचित है।

2. रिश्वतखोर कर्मचारियों द्वारा राज्यकार्य पहले से ही बिगाड़े जाते रहे हैं और अब भी बिगाड़े जाते हैं। धन के लोभ में बहुत से कर्मचारी अपने देश के गुप्त रहस्य दूसरे देशों के जासूसों को बता देते हैं। रिश्वतखोर कर्मचारियों वाले शासन में रहने वाले लोग उस प्रकार की व्यवस्था के लिए शासन को ही दोष दिया करते हैं।

3. दोहे में 'इहां-उहां के स्वामी' का श्री शिरेफ साहब द्वारा अलाउद्दीन परक अर्थ करना उचित नहीं प्रतीत होता। उसकी संगति इस दृष्टि से तो किन्हीं अंशों में बैठती है कि वह अलाउद्दीन को मूर्ख बनाने के लिए इस प्रकार की बातें कह रही है (वास्तव में पद्मावती तो आई ही नहीं थी, ये बातें तो गोरा द्वारा सुझाने पर कही गई थीं)। किन्तु एक हिन्दू रानी के मुख से इस प्रकार की बातें शोभा नहीं देतीं, इसीलिए तो **डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल** ने इनका सम्बन्ध राजा रत्नसेन के साथ स्थापित किया है। हमारी धारणा यह है कि गोरा द्वारा सुझाई गई बातों का संबंध यदि अलाउद्दीन से भी जोड़ लिया जाए तो अनुचित नहीं है। इसके साथ ही यह तथ्य भी विस्मृत नहीं करना चाहिए कि यह उक्ति षड्यंत्र का अंश है, अतः–

"Everything is fair in love and war"

की उक्ति के अनुसार इनका संबंध अलाउद्दीन से जोड़ना ही संगत है।

4. 'लोभ पाप.... अंकोरा' में रूपक अलंकार।

5. 'भा जिउ ..... केरा' में उपमा अलंकार।

6. 'ऐ जग .... आबा' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

7. दोहे में वृत्यानुप्रास अलंकार।

अग्यां भई जाउ एक घरी। छूंछि जो घरी फेरि बिधि भरी।1।
चलि बेवान राजा पहं आवा। संग चंडोल जगत गा छावा।2।
पदुमावति मिस हुत जो लोहारू। निकसि काटि बंदि कीन्ह जोहारू।3।
उठेउ कोपि जब छूटेउ राजा। चढ़ा तुरंग सिंघ अस गाजा।4।
गोरा बादिल खांडा काढ़े। निकसि कुंवर चढ़ि चढ़ि भए ठाढ़े।5।
तीख तुरंग गंगन सिर लागा। केहु जुगुति को टेकै बागा।6।
जौं जिउ ऊपर खरग संभारा। मरनिहार सो सहसन्हि मारा।7।
भई पुकार साहि सौं ससियर नखत सो नाहिं।
छर कै गहन गरासा गहन गरासे जाहिं॥53/5॥

शब्दार्थ–अग्यां=आज्ञा। छूंछि=निस्सार, व्यर्थ। मिस=बहाने से। हुत=था। काटि बंदि=बन्धन काटकर। जोहारू=प्रणाम। सिंघ अस=शेर की भांति। गाजा=गर्जना का। काढ़े=निकाल लिए। जुगुति=युक्ति, उपाय। बागा=लगाम। मरनिहार=करने वाले ने। सहसन्हि=सहस्त्रों को। ससियर=चन्द्रमा। नखत=नक्षत्र। छर कै=छल करके। गरासा=ग्रसा।

नोट

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में जायसी ने इस तथ्य का वर्णन किया है कि शाह अलाउद्दीन ने अपने रिश्वतखोर अधिकारी की प्रार्थना सुनकर यह आज्ञा प्रदान कर दी की पद्मावती एक घड़ी के लिए स्व-पति से मिल कर उसको चाबी दे सकती है। यह आज्ञा मिलने पर विमान में बैठे लोहार ने राजा की हथकड़ियां और बेड़ियां काट डालीं।

व्याख्या–कवि कहता है कि शाह अलाउद्दीन की ओर से यह आज्ञा दे दी गई कि जाओ एक घड़ी के लिए राजा से मिल आओ। इस प्रकार जो घड़ी रीति या निस्सार थी वह शाह की आज्ञा द्वारा फिर से भर गई– भाव यह है कि उस एक घड़ी का अत्यधिक महत्त्व था। इस आज्ञा को पाकर वह विमान जिसमें पद्मावती के रूप में एक लोहार बैठा हुआ था राजा रत्नसेन के समीप लाया गया और उस विमान के साथ-साथ वे चंडोल भी लाए गए जिनके विषय में यह कहा गया था कि उसमें पद्मावती की सखियां बैठी हुई हैं। कवि कहता है कि उस विमान में पद्मावती के बहाने से जो लोहार बैठा हुआ था, उसने विमान में से निकल कर राजा रत्नसेन की हथकड़ी और बेड़ियां काट दीं और राजा को प्रणाम किया। कवि कहता है कि बन्धनमुक्त होने पर राजा रत्नसेन क्रोध करते हुए उठ कर खड़ा हो गया और वह घोड़े पर सवार होकर सिंह के समान गर्जना करने लगा। गोरा और बादल ने भी अपने-अपने खांडे निकाल लिए तथा चंडोलों से निकल-निकल कर सभी सामंत या कुमार भी अश्वों पर सवार हो गए। तीव्रगामी अश्वों के सिर आकाश को छूने लगे। किस उपाय द्वारा और कैसे कोई उनको बाग पकड़कर रोक सकता था? – भाव यह है कि वे घोड़े इतने बलशाली और तेज थे कि लगाम कसने का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था और वे आकाश की ओर उड़े जा रहे थे। जब कोई योद्धा अपने जीवन का मोह त्यागकर तलवार संभालता है तो वह मरते हुए भी हजारों को मार जाता है। कवि की इस उक्ति का संकेत इस तथ्य की ओर है कि गोरा और बादल के साथ आए हुए वे कुमार अपने मन में मरण-व्रत लेकर आए थे। उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगाने का निश्चय कर रखा था। यही कारण है कि उनमें से एक-एक योद्धा मुस्लिम सेना के हजारों सैनिकों के तुल्य था।

राजा रत्नसेन और उसके सैनिकों को इस प्रकार सज्जित होते देखकर चारों ओर यह पुकार मच गई कि विमान और चंडोलों में पद्मावती रूपी चन्द्रमा तथा तारिकाओं रूपी उसकी सखियां नहीं आई हैं, अपितु जिनको हमने छलपूर्वक ग्रहण में ग्रसा था अर्थात् रत्नसेन को छलपूर्वक बन्दी बनाया था वे अब हमको ग्रहण लगाकर अर्थात् छल द्वारा उल्लू बनाकर जा रहे हैं अथवा सूर्य-रूप शाह अलाउद्दीन को छल से ग्रहण ने ग्रस लिया है और राजपूत छल द्वारा बन्दी रत्नसेन को छुड़ाए लिए जा रहे हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. गोरा और बादल द्वारा छल का जवाब छल से देने में अच्छी सूझबूझ दिखाई जाती है।

2. 'मरनिहार सो सहसन्हि मारा' के द्वारा जायसी ने इस तथ्य की ओर संकेत कर दिया है कि गोरा और बादल के साथ आए योद्धा सामान्य योद्धा नहीं थे अपितु उन सहस्त्र भटों जैसे थे, जिनमें से एक-एक योद्धा हजारों वीरों के समान होता है।

3. राजा रत्नसेन के बन्दीगृह से छूटते समय सिंह की भांति गरजने की कल्पना प्रसंग की भयंकरता की दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होती क्योंकि उसे छलपूर्वक बन्धन मुक्त कराया गया था। फिर भी शत्रु की राजधानी में रत्नसेन की सिंह गर्जना उसके अप्रतिम वीरत्व की परिचायक है।

4. 'छूंछि ..... भरी' में वृत्यानुप्रास अलंकार।

5. 'चढ़ा..... गाजा' में उपमा अलंकार।

6. 'तीख ..... लागा' में अतिशयोक्ति अलंकार।

7. दोहे में रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

8. अन्तिम पंक्ति में वृत्यानुप्रास अलंकार।

नोट्स कवि ने गोरा-बादल द्वारा सुल्तान अलाउद्दीन से छल किए जाने की योजना करके महाभारत काल से चली आ रही 'युद्ध और प्रेम में छल' की परंपरा का निर्वाह किया है और इसी आधार पर **जायसी** गोरा-बादल के छल को सूझ-बूझ मानते हैं।

नोट

लै राजहिं चितउर कहं चले। छूटेउ मिरिग सिंघ कलमले।1।
चढ़ा साहि चढ़ि लागि गोहारी। कटक असूझ पारि जग कारी।2।
फिरि बादिल गोरा सौं कहा। गहन छूट पुनि जाइहि गहा।3।
चहुं दिसि आइ अलोपत भानू। अब यह गोइ इहै मैदानू।4।
तूं अब राजहिं लै चलु गोरा। हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा।5।
दहुं चौगान तुरुक कस खेला। होइ खेलार रन जुरौं अकेला।6।
तब पावौं बादिल अस नाऊं। जीति मैदान गोइ लै जाऊं।7।
आजु खरग चौगान गहि करौं सीस रन गोइ।
खेलौं सौंहं साहि सों हाल जगत महं होई ॥53/6॥

शब्दार्थ – मिरिग=हिरण। कलमले=कुलबुलाए, खलबली मची। गोहारी=पुकार। कटक=दल। यहुं असूझ=जहां कुछ समझ में न आए या दिखाई न दे। छूटेउ मिरिग=डॉ. अग्रवाल के शब्दों में असंख्य तुर्कों के बीच में राजा मृग के समान असहाय था। उसके छूटते ही बड़े-बड़े तीसमारखां तुर्कों में खलबली पड़ गई अथवा मृग जाति का एक हाथी जिसकी आंखें बड़ी-बड़ी होती हैं। राजा रूपी हाथी के छूटने से तुर्क रूपी शेरों में खलबली पड़ गई। गहा=पकड़ा। अलोपत=लुप्त करते हुए। गोइ=छिप लेगा। जुरौं भा जोरा=संग्राम करूंगा। खेलार=खिलाड़ी। चौगान=एक खेल विशेष। गोइ=गेंद। हाल=गोल करने का स्थान।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में इस तथ्य का वर्णन किया गया है कि यह ज्ञात होने पर कि गोरा और बादल छलपूर्वक राजा रत्नसेन को बन्दीगृह से छुड़ा कर लिए जा रहे हैं, सुल्तान की सेना उसको पुनः बन्दी बनाने के लिए निकल पड़ी।

व्याख्या–कवि कहता है कि गोरा-बादल और उनके साथी राजा रत्नसेन को बन्धनमुक्त करके, उसको साथ लेकर चित्तौड़ की ओर चल पड़े। रत्नसेन रूपी मृग के दूर जाने पर सिंह रूपी अलाउद्दीन कुलबुलाने लगा अथवा रत्नसेन रूपी मृग जाति के हाथी के छूटने पर तुर्क रूपी शेरों में खलबली मच गई। सेना को तैयार होने का आदेश देते हुए स्वयं शाह भी आक्रमण के लिए तैयार हो गया। उसकी असंख्य सेना के कारण सारे संसार में अंधकार व्याप्त हो गया। अभिप्राय यह है कि उसकी असंख्य सेना के चलने के कारण उड़ी हुई धूल ने आकाश को अन्धकारपूर्ण कर दिया। तब घूमकर गोरा बादल के समीप आकर कहने लगा कि हम स्वामी को जैसे-तैसे ग्रहण-रूपी सुल्तान की कैद से छुड़ाकर लाए थे जबकि वह ग्रहण अब पुनः लगना चाहता है–

भाव यह है कि सुल्तान राजा को पुनः बन्दी बनाना चाहता है। सूर्य-रूप अलाउद्दीन हमें घेरता चला आ रहा है। अब यह मेरा सिर ही मेरे लिए गेंद के तुल्य होगा जबकि यह युद्ध-क्षेत्र मेरे लिए खेल का मैदान होगा। हे गोरा तू यहां से राजा को सुरक्षित चित्तौड़ की ओर ले जा, जबकि अब मैं पीछे की ओर लौट कर शाह की सेना से भिड़ूंगा। अब मुझे यह देखना है कि तुर्क-सैनिक और उनका बादशाह युद्ध-रूपी चौगान को किस प्रकार खेलते हैं। मैं खिलाड़ी बनकर शाह अलाउद्दीन से संग्राम में अकेला भिड़ूंगा– भाव यह है कि मुझे युद्ध रूपी चौगान में शाह अलाउद्दीन को परास्त करना है।

गोरा बादल को समझाते हुए आगे कहने लगा कि आज मैं तलवार रूपी चौगान का बल्ला हाथ में लेकर युद्ध-क्षेत्र में शत्रु के सिर की गेंद बनाऊंगा। मैं शाह अलाउद्दीन के सामने पड़कर उसके साथ युद्ध-रूपी चौगान खेलूंगा, तभी संसार में हलचल मचेगी– मेरी कीर्ति छाएगी। मैं इस संसार को हाल बनाना चाहता हूं– भाव यह है कि जैसे हाल में गेंद जाने पर खिलाड़ी की प्रशंसा होती है उसी प्रकार मैं भी शीश रूपी गेंद को हाल में पहुंचा कर अर्थात् उसको काटकर कीर्ति प्राप्त करूंगा।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. **गोइ लै जाऊं**– गेंद को विपक्षी खिलाड़ियों से बचाकर हाल पर गोल करने के स्थान तक ले जाना।

हाल– चौगान के मैदान के दोनों ओर बने गुमटीनुमा खम्भे, जिनके बीच में से गेंद निकलने पर गोल हुआ स्वीकार किया जाता था।

नोट

2. **'हाल जगत महं होइ'–** के विषय में डॉ. 'अग्रवाल ने यह टिप्पणी दी है– "इसका यह भी संकेत है कि मेरे इस खेल का हाल या अन्तिम छोर यह संसार होगा। मुझे अपने मस्तक रूपी गेंद से उसके पार तक खेलना है।"

3. **चौगान–** चौगान के खेल के विषय में डॉ. राजपाल शर्मा ने अपने 'हिन्दी वीर काव्य' में 'सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति' शीर्षक शोध प्रबन्ध में निम्नांकित विवरण दिया है।

"कवि केशव-प्रदत्त विवरण से मध्यकाल में चौगान के अधोलिखित स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है– खेल के मैदान की लम्बाई सवा कोस होती थी। केशव के अनुसार इसके दोनों सिरों पर हाल बने होते थे जबकि भूषण ने उन्हें मीनारों की संज्ञा प्रदान की है। ब्लौखमैन ने आईन-ए-अकबरी का अनुवाद करते हुए हालों को क्रीड़ा-क्षेत्र के सिरों पर लगे हुए दो-दो खम्भों का द्योतक बताया है, जिसके बीच में गेंद निकाल देने पर गोल हो जाता था। प्रतीत होता है कि भूषण ने मुस्लिम शैली पर बने हुए हालों को ही मिनारें कहकर अभिहित किया है, जो कदाचित हालों के लिए उस समय दूसरा प्रचलित शब्द था।

विभिन्न रंगों की (केशव ने काली, पीली, नीली और हरे रंग की छड़ियों का उल्लेख किया है) छड़ियां (हाकी स्टिक जैसी) लिए हुए अश्वारोही खिलाड़ी दो दलों में विभक्त हो जाते थे। गेंद जिस किसी खिलाड़ी की पहुंच में आ जाती थी वही उसे छड़ी मार कर हाल (गोल) की ओर ले जाने की चेष्टा करता था। जबकि विपक्षी उसके प्रयास को विफल करते हुए गेंद को दूसरी ओर ले जाने की चेष्टा करते थे। इस खेल की तीव्र गति के कारण अश्व और सवार सम्भवतः शीघ्र ही थकान अनुभव करने लगते थे, अतः प्रति बीस मिनट के पश्चात् दो पुराने खिलाड़ियों का स्थान नवीन खिलाड़ी ग्रहण कर लेते थे। यह पता अवश्य चलता है कि चौगान में दस से अधिक खिलाड़ी नहीं होते थे।

4. 'छुटेउ.... कलमले' में रूपक अलंकार।

5. चहुं ..... भानू' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

6. 'अब ..... मैदानू' में रूपक अलंकार।

7. 'दहुं ..... खेला' में रूपक अलंकार।

8. दोहे में सांगरूपक।

टास्क गोरा-बादल को जायसी ने किस रूप में चित्रित किया है?

तब अंकम दै गोरा मिला। तूं राजहिं लै चलु बादिला। 1।
पिता मरै जो सारें साथें। मींचु न देइ पूत के मांथे। 2।
मैं अब आउ भरी औ भूंजी। का पछितांउ आइ जौं पूजी। 3।
बहुतन्ह मारि मरौं जौं जूझी। ताकहं जनि रोवहु मन बूझी। 4।
कुंवर सहस संग गोरैं लीन्हें। औरु बीर संग बादिल दीन्हें। 5।
गोरहि समदि बादिला गाजा। चला लीन्ह आगें कै राजा। 6।
गोरा उलटि खेत भा ठाढ़ा। पुरुखन्ह देखि चाउ मन बाढ़ा। 7।
आउ कटक सुलतानी गंगन छपा मसि मांझ।
परत आव जग कारी होत आव दिन सांझ॥ 53/7॥

शब्दार्थ–अंकम दै=आलिङ्गन करके। सारें=रक्षा करना। साथें=साथ वालों की। मीचु=मृत्यु। भरी=पूरी की। भूंजी=भोगा। जूझी=युद्ध करते हुए। जनि=नहीं। बूझी=समझ कर। समदि=बिदा करके। पुरूखन्ह=पूर्वज को (गोरा बूढ़ा था अतः चितौड़ के वीरों का पुरखा ही था)

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में कविवर जायसी ने इस तथ्य का वर्णन किया है कि गोरा ने गले मिलकर बादल को राजा के साथ चित्तौड़ जाने के लिए विदा कर दिया और स्वयं शाह अलाउद्दीन की सेना का सामना करने के लिए रुक गया।

नोट

व्याख्या–जायसी वर्णन करते हैं कि तदन्तर गोरा ने बादल को अपने गले से लगाकर कहा कि हे बादल! तू तो राजा को लेकर चित्तौड़ चला जा। सार्थ की रक्षा करते हुए पिता चाहे मारा जाए, किन्तु वह पुत्र के मस्तक पर संकट नहीं आने देता (इस पंक्ति का अभिप्राय यह है कि गोरा चाचा होने के कारण यह नहीं चाहता है कि उसके जीवित रहते हुए उसके भतीजे बादल का बाल भी बांका हो, इसीलिए वह हठ करके बादल को चित्तौड़ भेजना चाहता है)। मैंने अब अपनी पूरी आयु प्राप्त कर ली है और अनेक प्रकार के भोग भी भोग लिए हैं, अतः यदि मेरी आयु समाप्त भी हो जाती है अर्थात् यदि मैं युद्ध में मारा भी जाता हूं तो भी पश्चाताप की कोई बात नहीं है। यदि मैं युद्ध में मारा भी जाऊंगा तो भी अपार तुर्क सैनिकों को मार कर मरूंगा– यह सोचकर तुम मेरे लिए अपने मन में विलाप मत करना।

कवि कहता है कि गोरा ने बादल को इस प्रकार समझा-बुझाकर अपने साथ एक हजार सैनिक रख लिए तथा अन्य वीरों को बादल के साथ कर दिया। गोरा के साथ अन्तिम भेंट करके बादल गर्जने लगा और राजा को अपने आगे करके चित्तौड़ की ओर चल पड़ा। गोरा पीछे की ओर लौटकर शाह अलाउद्दीन की सेना के सम्मुख अड़ गया। उसे देखकर वीर पुरुषों के हृदय में युद्ध का चौगुना उत्साह बढ़ गया

शाह अलाउद्दीन की सेना की विशालता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उसके चलने से उड़ी धूल के कारण आकाश अंधकार से ढक गया। संसार में काली घटा घिरी आ रही थी और दिन में ही संध्या होती जा रही थी। इस प्रकार का अन्धकार छाता जा रहा था जैसे संध्या के समय हुआ करता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. पिता मरै– मांथे– के संदर्भ में इस तथ्य का परिज्ञान आवश्यक है कि गोरा और बादल का संबंध चाचा और भतीजे का है।

2. दोहे में अतिशयोक्ति अलंकार।

होइ मैदान परी अब गोई। खेल हाल दहुं काकरि होई।1।
जोबन तुरै सो रानी। चली जीति अति खेल सयानी।2।
लट चौगान गोइ कुच साजी। हिम मैदान चली लै बाजी।3।
हाल सो करै गोइ लै बाढ़ा। कूरी दुहूं बीच कै काढ़ा।4।
भए पहार दुवौ वै कूरी। दिस्टि नियर पहुंचत सुठि दूरी।5।
ठाढ़ बान अस जानसुं दोऊ। सालहिं हिए कि काढ़ै कोऊ।6।
सालहिं तेहि न जासु हियं ठाढ़े। सालहिं तासु चहै ओन्ह काढ़े।7।
मुहमद खेल पिरेम का घरी कठिन चौगान।
सीस न दीजै गोई जौं हाल न होइ मैदान॥53/8॥

शब्दार्थ–गोई=गेंद। हाल=गेंद को कुड़ियों के बीच से निकाल देना, गोल, जीत, आनंद। दहुं=न जाने। काकरि=किसका। जौबन तुरै=यौवन रूपी घोड़ा। चौगान=चौगान नामक खेलने की छड़ी। कूरी=फारसी हाल के लिए यह संस्कृत परम्परा का शब्द था। नियर=समीप। सुठि दूरी=बहुत दूर। अस=समान। बान=बाण, धुनकी मूठ। घरी=खेल की एक पाली का समय। सालहिं=कष्ट देता है।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में मलिक मोहम्मद जायसी ने ऐसी श्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग किया है कि इन पंक्तियों के चौगान खेलपरक, शृंगार परक तथा युद्ध परक तीन अर्थ निकलते हैं। इन तीनों अर्थों के लिए हम **डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल** के ऋणी हैं, जिन्होंने इन पंक्तियों के निम्नांकित प्रकार के अर्थ दिए हैं–

चौगानपरक अर्थ–1. अब गेंद मैदान में आकर पड़ी है। खेल में न जाने हाल किसका होगा (विजय किसकी रहेगी)?

2. जीवन में भरी वह रानी तुरंग पर चढ़ी है। खेल में अति सयानी वह जीतकर चली है(या जीतने के लिए खेल आरम्भ किया है)।

3. वक्षस्थल पर लोटती हुई, लट चौगान के खेल का बल्ला है। गेंद कुच के समान सजाई है। वह रानी उमंग से मैदान में बाजी लेने चली है।

नोट

4. जो गेंद लेकर बढ़ता है और उसे दोनों खम्भों के बीच से निकालता है, वही हाल करता है। उसी की विजय होती है।

5. खेल के मैदान के अन्त में बनी दोनों कूरियां पहाड़ के समान हो गईं जो देखने में पास लगती थीं पर वहां तक पहुंचने में दूर थीं।

6. वे दोनों कूरियां बाण की तरह खड़ी थीं। वे खिलाड़ियों का हृदय व्यथित कर रही थीं कि कोई उनके बीच से गेंद निकाल कर दिखाए।

7. वे कूरी रूप बाण जिसके हृदय पर हैं उसे नहीं सालते, उसका हृदय सालते हैं जो उनके बीच से गेंद निकालना चाहता है।

8. (मुहम्मद) यह खेल प्रेम से मिलकर खेलने का है। चौगान के खेल की एक घड़ी की अवधि बड़ी कठिन होती है।

9. जब तक गेंद के साथ सार भी न दिया जाए, मैदान में जीत नहीं होती।

अपने उपर्युक्त अर्थ की निष्पत्ति के लिए डॉ. अग्रवाल ने इन पंक्तियों में प्रयुक्त शब्दों के चौगान परक अर्थ इस प्रकार दिए हैं–

1. **मैदान–** वह खेली हुई भूमि जहां चौगान किया जाता है। अबुलफ़ज़ल ने भी इसी शब्द का प्रयोग किया है। चौगान का खेल हिन्दू युग में वाजिवा ह्याली विनोद कहा जाता था। इसमें दोनों दलों में आठ-आठ खिलाड़ी होते थे। हाल करे तोरणद्वय, चौगान या मैदान को वाह्याली हेंगुर या डंडे को गेद्दिका (या गेडिका) गेंद को कन्दुक कहा गया है। लकड़ी के गोले पर चमड़ा मढ़कर इसकी गेंद बनाई जाती थी। डंडा चमड़े से मढ़ा जाता था। वह अग्रभाग में मढ़े हुए बेंत से बनता था और छह फुट लम्बा होता था। गोई=गेंद। फारुसी गूय, इसके लिए प्राचीन शब्द गोटा और कंदुक थे। हाल-चौगान के मैदान के अन्त में दोनों ओर दो गुमटनुमा खंभे, आजकल की भाषा में गोल। उनके बीच से गेंद मारकर निकालने पर बाजी होती थी। उन्हीं का भारतीय नाम कूरी था। गोल होना=खेल में जीत होना। हाल करना (पृ.-4)= गोल करना। लारेन्स विनयन कृत कोर्ट पेन्टर्स आव दी ग्रांड मुगल्स पुस्तक के पृष्ठ 18 के सामने फलक 7 पर छपे शाहजादी हुमा गूयबाजी करदन' चित्र में राजकुमारी घोड़े पर चढ़कर सिरे पर मुड़ी हुई लकड़ी से गेंद छीनती हुई चौगान खेल रही है। मैदान के दोनों सिरों पर गूमटनुमा दो-दो खम्भे हैं जिनमें से बाईं ओर के दोनों साफ हैं, दाहिनी ओर का एक कुछ टूटा हुआ चित्र में बचा है। सूर ने भी चौगान के प्रसंग में मैदान, गोइ, और हाल का उल्लेख किया है।

2. **चौगान–** चौगान के खेल का डंडा या बल्ला भी चौगान कहलाता था। अंग्रेजी पोलो स्टिक। लट चौगान=छाती पर झूलती हुई लट की भांति मुड़ा हुआ बल्ला। दो अलक भुंवगिनी तेहि पर लोटा। हेंगुरि एक खेल दुई गोटा। वहां चौगान के बल्ले को हेंगुरि कहा गया है और उसकी तुलना रोमावली तक झूमती हुई लट से की गई है। 5721 2 में अलक को अंकुश कहा गया है। बाजी (1) बाजी=खेल-खेल में अपनी बारी। (2) घोड़ा-रानी अपना घोड़ा मैदान में दौड़ाने लगी। हिय=हृदय से उत्साहपूर्वक।

3. **हाल सो करै=**दे. पं. 1, हाल करना, हाल जीतना, हाल होना, ये तीनों प्रयोग प्राचीन साहित्य में मिलते हैं, जो अब गोल शब्द के साथ प्रचलित हैं। कूरी=फारसी हाल के लिए यह संस्कृत परम्परा का शब्द था। पछाहीं बोली में कूड़ी शब्द हाल या गोल के अर्थ में अभी तक प्रचलित है।

4. **भए पहार–** दोनों कूरियों तक गेंद पहुंचना अति दुस्साध्य हो गया। पहार=अति कठिन कार्य, दुष्कर कार्य। दिस्टि नियर पहुंचत सुठिरी–अबुलफ़ज़ल ने चौगान के मैदान की नाप का उल्लेख नहीं किया। बदायूनी के अनुसार अकबर ने आगरा के पास नगरचीं नामक स्थान में चौड़ाई 200 गज (हाकी के मैदान से तिगुनी) होती है। दोनों ओर की कूरियां एक-दूसरे से 250 गज की दूरी पर रहती हैं।

5. **ठाढ़ बान अस-बान–**शब्द के यहां दो अर्थ हैं– बाण और धुनने की मुठिया। कूरी या हाल की गुमाटियां मैदान में बाण-सी चुभी हुई लगती हैं। शृंगार पक्ष में दोनों स्तन बाण या मुठिया के समान हैं।

6. **घरी–** माताप्रसाद जी ने इसका पाठ 'खरी' किया है। अर्थ की दृष्टि 'खरी' पाठ समीचीन है और वही मूल ज्ञात होता है। आईन के अनुसार चौगान के खेल में प्रत्येक दो खिलाड़ी एक घड़ी (24 मिनट) तक खेलकर हट जाते थे और दूसरे खिलाड़ी उनकी जगह ले लेते थे। इस समय प्रत्येक खिलाड़ी आठ से दस मिनट तक खेल कर बदल

नोट

जाता है। चौगान– अबुलफजल ने इस खेल का विशेष वर्णन दिया है। बादशाह को इस खेल का बहुत शौक है। यह खेल मैदान में खेला जाता है। इसमें एक साथ दस खिलाड़ी से अधिक नहीं होते, किन्तु और बहुत से खिलाड़ी तैयार बैठे रहते हैं। जब एक घड़ी बीत जाती है तो दो खिलाड़ी सुस्ताने चले जाते हैं और उनकी जगह दो नए खिलाड़ी आ जाते हैं। चौगान के बल्ले से गेंद को मारते हुए मैदान के बीच के हाल की ओर ले जाते हैं। खेल के इस ढंग को हिन्दी में 'रोल' कहते हैं। दूसरा ढंग 'बेला' कहलाता है।

शृंगारपरक अर्थ– डॉ. अग्रवाल ने इन पंक्तियों का निम्नांकित शृंगारपरक अर्थ दिया है–

1. हृदयरूपी मैदान में कुच-रूपी गेंद पड़ी थी। काम-क्रीड़ा में आज हाल (विभिन्न कामदशाएं) किसका होगा अथवा, हाल का आनन्द का अनुभव किसे प्राप्त होगा?

2. वह रानी यौवन के तुरंग पर चढ़ी हुई काम-क्रीड़ा में अति चतुर विजय के लिए चली।

3. उसकी एक लट चौगान के बल्ले के समान झूम रही थी। दोनों कुच गेंद के समान थे। वह हृदय रूपी मैदान में बाजी खेलने चली (कामदशा करने चली)।

4. जो कुच रूपी गेंद से आरंभ करता है और इन दोनों कूरियों को बीच में करके खींचता है वही हाल (आनन्द) करता है।

5. वे दोनों स्तन पर्वत की चोटियों के समान थे। वे दृष्टि के निकट किन्तु हाथ की पहुंच के दूर थे। दोनों स्तन धुनकी की मुठिया की भांति उठे थे।

6. कामातुरों के हृदय में कसक उत्पन्न करते थे कि कोई उनको खींचे।

7. जिसके हृदय पर वे स्तन थे उसे तो न सालते थे, पर उसे व्यथित कर रहे थे, जो उन्हें भींचना चाहता था।

8. मुहम्मद– प्रेम की क्रीड़ा घड़ी भर के लिए भी चौगान की भांति कठिन है।

9. इस मार्ग में जब तक गेंद के समान सिर भी न दिया जाए आनन्द के स्थान में असली सुख नहीं मिलता।

10. इस पद में जायसी ने चौगान और गेंद के खेल को शृंगार या प्रेम का रूपक मानकर कल्पना की है। कवि ने इस कथानक में आध्यात्म प्रेम का ही वर्णन किया है।

युद्धपरक अर्थ–

1. युद्ध के लिए मैदान में रानी गुप्त रीति से उतरी थी। रण में हलचल किसके साथ रहेगी।

2. यौवन में भरी हुई वह घोड़े पर सवार थी। खेलने में चतुर वह जीत कर जा रही थी।

3. वह अपना घोड़ा लिए हुए रणक्षेत्र में आयी। उसके लिए चौगान का खेल जाता रहा, उसने कुचों की शोभा छिपाली।

4. जो योद्धा उसके सिर को गेंद की तरह लेकर बढ़ता है और दोनों दलों के बीच से उसको निकाल ले जाता है वही जंग में हाल (हलचल या यश) करता है।

5. रण क्षेत्र में वे दोनों एक दूसरे के लिए चट्टान के समान हो गए। देखने में पास-पास थे पर अंत तक पहुंचते हुए अतिदूर तक विस्तृत थे।

6. दोनों ऐसे जान पड़ते थे कि बाण (गोले) तैयार हों। कोई भी यदि उन बाणों को खींचकर छोड़ देगा तो वे हृदय सालने लगेंगे।

7. जिस वीर के पास वे बाण थे वे उसको नहीं सालते थे। पर जिसका लक्ष्य करके उन्हें खींचा जाता था, उसे सालते थे।

8. (मुहम्मद) प्रेम का खेल खेलो। चौगान-रूपी युद्ध की तो एक घड़ी भी कठिन है।

9. जब तक गोलों की तरह सिर भी न दिया जाय, रणभूमि में हलचल नहीं होती (यश नहीं मिलता)।

10. पूरी चौपाइयों में श्लेष अलंकार।

11. पूरी पंक्तियों में सांगरूपक।

12. 'सालहिं .... काढ़े' में विरोधाभास अलंकार।

नोट

फिरि आगें गोरैं तब हांका। खेलौं आजु करौं रन साका।1।
हौं खेलौं धौलागिरि गोरा। टरौं न टारा बाग न मोरा।2।
सोहिल जैस इंद्र उपराहीं। मेघ घटा मोहि देखि बिलाहीं।3।
सहसौं सीसु सेस सरि लेखौं। सहसौं नैन इंद्र भा देखौं।4।
चारिउ भुजा चतुर्भुज आजू। कंस न रहा औरु को राजू।5।
हौं होइ भीवं आजु रन गाजा। पाछें घालि दंगवै राजा।6।
होइ हनिवंत जमकातरि ढाहौं। आजु स्यामि संकरें निरबाहौं।7।
होइ नल नील आजु हौं देउं समुंद महं मेंड़।
कटक साहि कर टेकौं होइ सुमेरु रन बेंड़॥53/9॥

शब्दार्थ–फिरि=घूमकर, लौटकर। हांका=गर्जना की। साका=विशेष पराक्रम। सोहिल=अगस्त्य तारा। इन्द्र उपराहीं=वर्षा समाप्त हो जाती है। बिलाहीं=छिप जाऊंगा। साहसौं=हजारों। सेस=शेषनाग। सरि लेखौं=समान दिखाई दूंगा। चतुर्भुज=भुजाओं वाले विष्णु का रूप। भीवं=भीमसेन। दंगवै=दंगव या दुंगपति नामक राजा। स्यामि=स्वामी को। सैकरें=संकट से। निरबाहौं=निर्वाह करूंगा, छुटकारा दिलाऊंगा। मेंड़=रोक लगाना। बेंड़=आड़ा डंडा।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में जायसी ने शाह अलाउद्दीन की सेना का सामना करते समय वीर गोरा की दर्पोक्तियों का वर्णन किया है।

व्याख्या–कवि जायसी वर्णन करते हैं कि तदन्तर अर्थात् बादल को चित्तौड़ की ओर रवाना करके गोरा ने पीछे की ओर मुड़कर अर्थात् शाह अलाउद्दीन की सेना का सामना करते हुए वीरगर्जना करके कहा कि मैं आज युद्ध-स्थल में साका का खेल दिखाऊंगा अर्थात् विशेष पराक्रम प्रदर्शित करूंगा। आज मैं युद्धस्थल में हिमालय की भांति अडिग होकर युद्ध का खेल खेलूंगा और किसी के भी द्वारा हटाने की चेष्टा करने पर पीछे की ओर नहीं हटूंगा और अपने अश्व की बाग को नहीं मोडूंगा अर्थात् मेरा घोड़ा आगे ही बढ़ता जाएगा वह पीछे की ओर नहीं हटेगा। मैं सोहिल के समान अर्थात् अगस्त्य तारे की भांति वृष्टि के देवता इन्द्र के ऊपर रहूँगा। मुझको देखकर ही शत्रु की मेघों के समान सेनाएं पीछे हट जाएंगी। अब मैं स्वयं को युद्धस्थल में हजार फण वाले शेषनाग के तुल्य समझूंगा अर्थात् अपने एक नहीं अपितु हजार शीश समझूंगा और दो नेत्रों के स्थान पर इन्द्र के हजार नेत्रों की भांति शत्रु की सेना को देखूंगा। आज मैं स्वयं को चतुर्भुज विष्णु के समान समझूंगा। शाह अलाउद्दीन को अपनी वीरता पर अभिमान है किन्तु उसको यह नहीं भूलना चाहिए कि जब बलशाली कंस का ही अस्तित्व नहीं रहा है तो अन्य किसी के जीवित बचने का प्रश्न ही नहीं उठता। आज मैं कुन्ती-पुत्र भीमसेन की भांति राजा दंग को पीछे रखकर युद्ध करने की भांति, राजा रत्नसेन को अपने पीछे रखते हुए युद्ध करूंगा। मैं हनुमान के रूप में अहिरावनपुरी में लगी हुई जमकातरों को ढहा दूंगा और अपने स्वामी को संकट से पार लगाऊंगा।

युद्धस्थल में वीर गर्जना करते हुए गोरा आगे कहने लगा कि मैं आज नल-नील बनकर युद्धरूपी सागर में मेंड़ (दीवार) बांध दूंगा और सुमेरु पर्वत के रूप में अडिग रहकर शाह की सेना को रोक लूंगा।

साहित्यिक सौन्दर्य – वीर गोरा की दर्पोक्तियों से संबंधित इन पंक्तियों में जायसी ने अनेक अंतर्कथाओं का उल्लेख किया है, जिनमें से मुख्य ये हैं–

1. भीमसेन द्वारा राजा दंग की रक्षा किया जाना।
2. इन्द्र के समान हजार आंखों से देखना।
3. हनुमान की भांति अहिरावण के दुर्ग में लगी जमकातरों को तोड़कर स्वामी की रक्षा करना।
4. नल और नील द्वारा समुद्र पर मेंड़ या पुल बनाना।

इन चारों अंतर्कथाओं को संक्षेप में आगे दिया जा रहा है।

1. भीम और दंग– यद्यपि डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने विभिन्न शब्दों के पाठ-शोधन तथा प्राचीन आख्यानों को देने में भागीरथ प्रयत्न किया है तो भी उनके ज्ञान की भी सीमाएं रही हैं। उदाहरण के लिए वे प्रस्तुत पंक्तियों में आए भीवं और दंगवै राजा का ठीक अर्थ नहीं समझ पाए हैं और उन्होंने इस पंक्ति का यह अर्थ दिया है–

नोट

"द्रंगपति राजा को पीछे डालकर मैं भीम बनकर आज रण में गरजूंगा।" उन्होंने जो शब्दार्थ और टिप्पणियां दी हैं उनमें भीवं को उन्होंने गुजरात के राजा भीमदेव द्वितीय चालुक्य का वाचक बताते हुए कहा है–

"भीम (1173-1241) ने मोहम्मदगोरी के चित्तौड़ पर आक्रमण के समय वहां के राजा की सहायता की थी और गोरी की सेना को परास्त किया था। दंगवै-द्रंगपति-दंगवै।

इस संदर्भ में डॉ. राजपाल शर्मा की 15-1-77 के दैनिक हिन्दुस्तान में 'लोकवाणी' शीर्षक के अंतर्गत छपी शोधात्मक टिप्पणी को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता। जिससे इस संबंध में नई सूचनाएं मिलती हैं–

"जायसी ने पद्मावत में कुंती-पुत्र भीम द्वारा पाटन-नरेश दंग को शरण प्रदान करके उसकी रक्षा में श्रीकृष्ण सहित 33 करोड़ देवों से युद्ध करने की लोककथा का अनेक बार उल्लेख किया है और युद्ध में अहुंठो (साढ़े तीन) वज्र एकत्र होते दिखाए हैं। **आचार्य शुक्ल** की जायसी ग्रंथावली में इन शब्दों के शुद्ध पाठ नहीं मिलते। उसमें अहुठौ का पाठ आठौ है जबकि दंगलै को उन्होंने 'डूंगवै' मानकर उसका टीका किया है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने इन शब्दों के शुद्ध पाठ तो दिए हैं किन्तु दंगवै और भीव के अर्थों में उन्होंने खींचातानी की है। दंगवै को उन्होंने संस्कृत में द्रंगपति से जोड़ते हुए उसका अर्थ दुर्गपति या राजा किया है जबकि भीवं का संबंध उन्होंने गुजरात नरेश 'भोलो भीम' स्वीकार करते हुए भोलो भीम द्वारा किसी चित्तौड़ नरेश की रक्षा में युद्ध करने का अभिप्राय ग्रहण किया है। इस पंक्ति का परवर्ती टीकाकारों ने जैसे – डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत (पद्मावत का शास्त्रीय भाष्य) तथा डॉ. विजयेन्द्र स्नातक (काव्य पारिजात नामक काव्य-संकलन की पाद टिप्पणियों) ने डॉ. अग्रवाल की ही भांति अर्थों की उद्धरणा कर दी है।

वास्तव में जायसी ने इस संदर्भ में उस लोक कथा का आश्रय लिया है जो अवध में डंगव-पर्व और ब्रज प्रदेश में 'दंगलीला' के नाम से प्रचलित रही है। दंगलीला के अनुसार तिलोत्तमा नामक अप्सरा को दुर्वासा ने यह शाप दिया था कि वह घोड़ी बन जाए और उसकी शाप से मुक्ति तभी हो सकेगी जब साढ़े तीन वज्र एकत्र हो जाएंगे। घोड़ी बनी तिलोत्तमा को राजा दंग ने पकड़ लिया था और श्रीकृष्ण की ओर से युद्ध की चुनौती मिलने पर उसको द्रौपदी की प्रेरणा से भीम ने शरण प्रदान की थी। पांडव और कौरव सेना का श्रीकृष्ण सहित तैंतिस कोटि देवों से जो युद्ध हुआ था। उसमें श्रीकृष्ण का सुदर्शन चक्र और भीमसेन की गदा जब आकाश में आपस में टकराए तो उन्हें हनुमान ने छुड़ाने की चेष्टा की थी। चक्र, गदा और हनुमान ये तीनों वज्र आकाश से नीचे गिरते हुए (हनुमान ने उनको अपनी भुजाओं में भर रखा था) जब श्रीकृष्ण ने अपनी अर्द्ध वज्र-तुल्य जंघा पर संभाले थे, तो साढ़े तीन वज्र एकत्र हो जाने के कारण अप्सरा शापमुक्त होकर स्वर्ग की ओर उड़ गई थी।

2. इन्द्र की हजार आंखें– एक पौराणिक अनुमान के अनुसार इन्द्र को गौतम-पत्नी अहिल्या के साथ संभोग करने के कारण गौतम मुनि ने सहस्र-भग हो जाने का शाप दिया था किन्तु इन्द्र के द्वारा बहुत अनुनय-विनय करने पर सहस्र-भगों के स्थान पर सहस्र नेत्र हो जाने की छूट दे दी थी।

3. राम और लक्ष्मण को लंका से उसका पुत्र 'अहिरावण' चुराकर पातालपुरी ले गया था। उसके दुर्ग में जमकातर लगी होने के कारण राम-लक्ष्मण को वहां से छुड़ाकर लाना असंभव-सा था किन्तु हनुमान ने उसको तोड़कर अपने स्वामियों का उद्धार किया था। तुलसीदास के शब्दों में–

"पैठि पताल तोरि जमकातर,
अहिरावण के भुजा उखारे।"

4. 'सोहिल ..... बिलाहीं' में दृष्टांत अलंकार।

5. 'सहसौं ..... देखौं' में रूपक अलंकार।

6. 'हौं हौंई ..... राजा' में रूपक अलंकार।

7. दोहे में रूपक अलंकार।

ओनै घटा चहुं दिसि तहि आई। चमकहिं खरग बान झरि लाई। 1।
डोलै नाहिं देव जस आदी। पहुंचे तुरुक बादि कहं बादी। 2।
हाथन्ह गहे खरग हिरवानी। चमकहिं सेल बीज की बानी। 3।
सजे बान जानहुं ओइ गाजा। बासुकि डरै सीस जनि बाजा। 4।

नोट

नेजा उठा डरा मन इंदू। आइ न बाज जानि कै हिंदू।5।
गोरैं साथ लीन्ह सब साथी। जनु मैमंत सुंड बिनु हाथी।6।
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्ही। आवत अनी हांकि सब लीन्ही।7।
रुंड मुंड सब टूटहिं सिउ बकतर औ कुंडि।
तुरिउ होहिं बिनु कांधे हस्ति होहिं बिनु सुंडि॥53/10॥

शब्दार्थ–ओनै=झुक गई। झरि=झड़ा। आदी=आरंभ में। कहं बादी= युद्ध करने के लिए। हिरवानी= हेरात की बनी तलवार। सेल= पूर्ण लोहे का बना बरछा या भाला। बीज की बानी=बिजली की तरह। नेजा=भाला। इंदू=इन्द्र। मैमंत=मस्त हाथी। उठौनी कीन्ही=धावा बोला। अनी=सेना। हांकि लीन्ही=ग्वाले की तरह उनको पीछे से मार-मारकर बढ़ाया। रुंड=धड़। मुंड=कटा हुआ सिर। सिउं=साथ। बकतर=लोहे की कड़ियों का बना कवच। कुंडि=सिर की रक्षा के लिए पहना जाने वाला शिरस्त्राण जो आजकल के हेलमेट जैसा होता था। तुरिअ=घोड़ा।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में जायसी ने गोरा की वीरता का वर्णन करते हुए यह दिखाया है कि गोरा ने अपने सैनिकों की टुकड़ी के साथ शाह अलाउद्दीन की सेना पर धावा बोलकर उसे तितर-बितर कर डाला था।

व्याख्या–कविवर जायसी कहते हैं कि शाह अलाउद्दीन की घटा की भांति उमड़ी हुई सेना चारों दिशाओं में फैलती हुई चली आ रही थी। उस सेना के खड्ग चमक रहे थे जबकि बाणों की झड़ी लगी हुई थी। जिस प्रकार देवता राक्षसों के सम्मुख विचलित नहीं हुए थे उसी प्रकार गोरा भी विचलित नहीं हुआ और उससे युद्ध करने के लिए तुर्क सेना वहां आ पहुंची। अथवा **डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल** के शब्दों में – "गोरा आदी नामक जिन की भांति आगे था (जायसी में आदी शब्द दो अर्थों में आया है। (1) बिल्कुल, एकदम, नितान्त (614)। मता न जानसि बालक आदी। (2) आदी नामक विशिष्ट पहलवान या वीर जिसे अमीर हम्जा ने वश में किया था। उनके हाथों में हेरात के बने खड्ग विद्यमान थे और उनके हाथों में लगे हुए सेल बिजली की तरह चमक रहे थे। उन्होंने जो बाण सजा रखे थे वे इस प्रकार गर्जना कर रहे थे कि उनसे बासुकि नाग को यह भय प्रतीत हो रहा था कि कहीं वे उसके शीश में न आ लगे। जब शाह अलाउद्दीन के सैनिकों ने नेजा उठाए तो उन्हें देखकर इन्द्र भयभीत हो उठा। उसे भय था कि कहीं मुझको हिन्दू समझकर तुर्क सैनिक इन नेजाओं को मेरे सिर में न बजा दें। गोरा ने अपने साथ अपने सभी साथियों को ले लिया जो बिना सूंड वाले हाथियों की भांति मस्त हो रहे थे। उन सभी ने पहले ही मिलकर शाह अलाउद्दीन की सेना पर धावा बोल दिया और शाह अलाउद्दीन की सेना को पीछे की ओर खदेड़ दिया।

दोनों सेनाओं में जो भयंकर युद्ध होने लगा उसमें योद्धाओं के बख्तर और शिरस्त्राणों के सहित उनके धड़ और शीश कट-कट कर गिरने लगे। इतना भयंकर युद्ध होने लगा कि घोड़े बिना कंधों के और हाथी बिना सूंडों के होने लगे।

साहित्यिक सौन्दर्य–1. प्रस्तुत पंक्तियों में जायसी ने तत्कालीन युद्धों में प्रयुक्त होने वाले विविध अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख किया है। इनमें से हम बान शब्द के विषय में **डॉ. राजपाल शर्मा** के शोध-ग्रंथ 'हिन्दी वीर काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति' में बान संबंधी यह विवरण देना चाहते हैं जो इस संदर्भ में एक नये अर्थ का उद्घाटन करता है।

"कुहुक या बान– कवि सूदन ने कुहुक या बान के चलाने के समय कुह-कुह का शब्द होने के साथ-साथ दिशाओं में चकाचौंध फैला जाना निश्चित किया है, तथा कवि जान ने उससे हाथी की पाखर में आग लग जाने का उल्लेख किया है, जिससे स्पष्ट होता है कि कुहुक-बान एक प्रकार का आग्नेयास्त्र होता था। हमें छत्र प्रकाश में दी गई यह टिप्पणी उपयुक्त प्रतीत होती है कि बान एक प्रकार का मिट्टी का नल होता था जिसकी लंबाई बीस इंच के लगभग और व्यास लगभग तीन इंच होता था। इसमें बारूद भरकर मिट्टी की डाट लगा दी जाती थी और बारूद से पलीता लगा रहता था। इसके साथ बांस की सात-आठ फुट लम्बी छड़ भी लगी रहती थी जो बान चलाते समय फाड़ दी जाती थी। पलीते के द्वारा आग के पहुंचते ही यह बान शत्रु-सेना में गिरकर चक्कर काटने लगता था। बांस की फटी हुई छड़ भी उसी के वेग से घूमती थी। जिसकी मार बड़ी घातक होती थी। इन बाणों के उड़ते समय उनसे कुह-कुह शब्द निकलता था। विलियम इरविन ने भी कुहुक-बान को राकेट बताते हुए मत व्यक्त किया है कि उनसे संहार तो अधिक नहीं होता था किन्तु शत्रु-सेना में बड़ी अव्यवस्था फैल जाती थी, क्योंकि उनसे हाथी घोड़े बहक (बिदक) उठते थे।"

'सजे बान जानहुं ओइ गाजा। बासुकि डरै सीस जनु बाजा।' बान का डॉ. शर्मा द्वारा प्रदत्त विवरण ही समीचीन है।

नोट

2. सेल – यह पूर्णतया लोहे का बना बरछा या भाला होता था। आल्हा खंड की निम्नांकित पंक्ति से यह बड़ा वजनी सिद्ध होता है–

सोलह मन को सेल सनीचर सो कडिया ने दियो चलाय।

3. 'औने ..... लाई' में सांगरूपक अलंकार।

4. 'डोलै ..... आदी' में उपमा अलंकार।

5. 'चमकहिं ..... बानी' में उपमा अलंकार।

6. 'सजे बान ..... बाजा' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

7. 'नेजा ..... हिंदू' में अतिशयोक्ति अलंकार।

8. गोरै ..... हाथी' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

ओनवत आव सैन सुलतानी। जानहुं पुरवाई अतिवानी।1।
लोहैं सैन सूझ सब कारी। तिल एक कतहुं न सूझ उघारी।2।
खरग पोलाद निरंग सब काढ़े। हरे बिज्जु अस चमकहिं ठाढ़े।3।
कनक बानि गजबेलि सो नांगी। जानहुं काल करहिं जिउ मांगी।4।
जनु जमकात करहिं सब भवां। जिउ लै चहहिं सरंग उपसवो।5।
सेल सांप जनु चाहहिं डसा। लेहिं काढ़ि जिउ मुख बिख बसा।6।
तिन्ह सामुहं गोरा रन कोपा। अंगद सरिस पाउ रन रोपा।7।
सुपुरुस भागि न जानै भएं भीर भुइं लेइ।
असि बर गहें दुहूं कर स्यामि काज जिउ देइ॥53/11॥

शब्दार्थ–ओनवत=उमड़ती, झुकती। अतिवानी=बहुत जोरदार। सूझ= दिखाई देती थी। उघारी=प्रकाश। निरंग=म्यान से। गजबेलि=एक प्रकार का लोहा। पोलाद=फौलाद। बिज्जु=बिजली। जिउ मांगी=जान मांगना। भवां=चक्कर काटना। उपसवां=समीप पहुंचना। मुख बिख बसा=नोकें विष में बुझी हुई हैं। असि=तलवार। बर=श्रेष्ठ। सरिस=समान। स्यामि काज= स्वामी के लिए।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने शाह अलाउद्दीन की उमड़ती हुई चली आने वाली सेना और उसके शस्त्रास्त्रों का वर्णन किया है।

व्याख्या–जायसी कहते हैं कि शाह अलाउद्दीन की सेना उमड़ती चल रही थी, मानो प्रचंड पुरुवा हवा के साथ मेघमालाएं उड़ती चली आ रही थीं। उन सैनिकों के पास जो शस्त्रास्त्र थे और लोहे के बने हुए जो कवच धारण कर रखे थे उसके कारण वह सेना काली दिखाई पड़ती थी और तिलभर भी स्थान ऐसा नहीं था जहां वह उघाड़ी दिखाई देती हो अर्थात् जहां अंधकार के स्थान पर प्रकाश दिखाई देता हो। सभी ने निरंग फौलाद की तलवारें म्यानों से निकाल रखी थीं। म्यान से निकली हुई तलवारें हरे रंग की बिजली के समान चमक रही थी। गजबेल लोहे की बनी हुई उन नंगी तलवारों में सोने जैसी चमक थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो काल उन तलवारों के रूप में अपने हाथ फैलाकर लोगों की जान मांग रहा हो। युद्धस्थल में जो अनेक जमकातें घूम रही थीं वे ऐसी प्रतीत होती थी। मानों प्राण लेकर स्वर्ग जाना चाहती थीं। सांप के समान प्रतीत होने वाले सेल मानो डसने के लिए तत्पर थे। उनके मुहं पर विष लगा हुआ था। अर्थात् उनकी नोकें विष से बुझाई हुई थीं। जिससे वे तुरन्त ही प्राण हर लेते थे। कविवर जायसी कहते हैं कि इस प्रकार के शस्त्रों से सज्जित सेना के सम्मुख वीर गोरा क्रुद्ध होकर अड़ गया। उसने युद्धस्थल में अपना पैर अंगद के समान जमा दिया अर्थात् जिस प्रकार रावण की सीमा में अंगद द्वारा जमाए हुए पैर को कोई रावण-योद्धा डिगा नहीं सकता था, उसी प्रकार शाह अलाउद्दीन की सेना उसको युद्धस्थल से डिगा नहीं पा रही थी।

कवि जायसी कहते हैं कि सच्चे वीर पुरुष युद्ध से भागना नहीं जानते। संकट के समय वह युद्धस्थल में खेल सम्भाल लेता है– संकट के समय युद्धस्थल में अडिग रहता है। सच्चा वीर अपने स्वामी का कार्य सिद्ध करते हुए अपने दोनों हाथों में तलवार लेकर अपने प्राण न्यौछावर कर देता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – गजबेलि के विषय में डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल की यह टिप्पणी अवलोकनीय है–

एक प्रकार का ताप दिया हुआ लोहा। पुराने सिकलीगारों के अनुसार लोहा पांच प्रकार का बताया जाता था–

नोट

1. सकेला – कच्चा और पक्का लोहा मिला हुआ, वह तलवार जो नरम और कड़े लोहे के मेल से बनाई जाए।

2. खेड़ी – सकेले से उतराकर मुलायम लोहा।

3. नानपारचा – खेड़ी से मिलता हुआ लोहा।

4. गजबेल – फौलाद से कुछ नरम लोहा।

5. फौलाद – अत्यंत उत्तम तपाया हुआ लोहा। गजबेल और फौलाद में इतना ही अंतर है कि फौलाद का जौहर बड़ा और साफ होता है गजबेल का जौहर छोटा और अस्पष्ट होता है। गजबेल नाम संभवतः इसलिए पड़ा कि इस लोहे से हाथी की सिक्कड़ या जंजीर बनाई जाती थी।

6. 'ओनवंत ..... अतिवानी' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

7. 'लोहैं .... उघारी' में अतिशयोक्ति अलंकार।

8. 'हरे .... ठाढे' में उपमा अलंकार।

9. 'जानहुं .... मांगी' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

10. 'जनु .... उपसवां' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

11. 'सेल सांप .... डसा' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

भै बगमेल सेल घन घोरा। औ गज पेल अकेल सो गोरा।1।

सहस कुंवर सहसहुं सत बांधा। भार पहार जूझि कहं कांधा।2।

लागे मरै गोरा के आगें। बाग न मुरै घाव मुख लागें।3।

जैस पतंग आगि धंसि लेहीं। एक मुएं दोसर जिउ देहीं।4।

टूटहिं सीस अधर धर मारे। लोटहिं कंध कबंध निनारे।5।

कोई परहिं रुहिर होइ राते। कोइ घायल घूमहिं जस मांते।6।

कोई खुर खेह गए झरि भोगी। झसम चढ़ाइ परे जनु जोगी। 7।

घरी एक भा भारथ भा असवारन्ह मेल।

जूझि कुंवर सब बीते गोरा रहा अकेला ॥53/12॥

शब्दार्थ–बगमेल=मिलाकर घोड़ों का पंक्तियों में चलना। मुएं=मरने पर। दोसर=दूसरा। कबंध=धड़। निनारे=अलग-अलग। रुहिर=रुधिर। खेह=धूल। जनु जोगी=मानो जोगी हों।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में कविवर जायसी ने गोरा के साथी सैनिकों के भयंकर युद्ध का वर्णन किया है जिसमें वे सभी योद्धा मारे जाते हैं और गोरा अकेला शेष बचता है।

व्याख्या–कवि कहता है कि शाह अलाउद्दीन की ओर से घुड़सवार सेना ने एक साथ धावा बोलते हुए सेलों का प्रहार किया जबकि इधर से गोरा ने भी अपना हाथी ठेल दिया अर्थात् शत्रु सेना की ओर बढ़ा दिया। उसके साथ कुल एक हजार सैनिक थे किन्तु उन सभी ने सत बांधा हुआ था अर्थात् अपने स्वामी पर प्राण न्यौछावर करने का प्रण ले रखा था। उनके कंधों पर शाही सेना से युद्ध करने का पहाड़ सा बोझ विद्यमान था। वे योद्धा गोरा के आगे बढ़कर अपने प्राण देने लगे– शाही सेना से युद्ध करते हुए मारे जाने लगे उनके मुख पर घाव लग जाने की दशा में भी उनके घोड़ों की बागें नहीं मुड़ती थीं– अर्थात् उन्होंने युद्ध स्थल से पलायन नहीं किया था। वे युद्ध की आग में पतिंगों की भांति घुसकर युद्ध कर रहे थे और एक के मारे जाने पर तुरन्त ही दूसरा आगे बढ़कर अपने प्राण दे रहा था। जब इन वीरों के सिर कटकर अलग गिर जाते थे तब भी उनके धड़ शत्रुओं से युद्ध करते रहते थे और तदन्तर उनके सिर और धड़ भूमि पर लोटने लगते थे। उनमें से कोई खून से लथपथ होकर गिर जाते थे जबकि दूसरे घायल होकर मतवालों के समान घूमने लगते थे। कोई-कोई योद्धा घोड़ों की रासों से लगी धूल फिर से लग जाने के कारण भस्म लगाए योगी से प्रतीत हो रहे थे।

कवि जायसी कहते हैं कि एक घड़ी तक भयंकर युद्ध होता रहा। सवारों के मध्य बगमेल भिड़न्त हुई। इस युद्ध में गोरा के पास के जितने भी वीर थे वे सब एक-एक करके मारे गए और गोरा अकेला रह गया।

नोट

साहित्यिक सौन्दर्य–1. खंडों द्वारा युद्ध करने का आल्हाखंड में इस प्रकार उल्लेख किया है–

"कटि-कटि मुंड परैं धरती पर उठि-उठि रूंड करैं तलवारि।"

2. सत बांधने का अभिप्राय यह प्रतिज्ञा करने से है कि हम अंतिम श्वास रहने तक शत्रु का मुकाबला करेंगे।

3. 'भार .... कांधा' में रूपक अलंकार।

4. 'जैस .... देहीं' में दृष्टांत अलंकार।

5. 'कोइ खुर ..... जोगी' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. शाह अलाउद्दीन से युद्ध करने वाली सेना का नेतृत्व ..... नामक योद्धा कर रहा था।
2. सुल्तान अलाउद्दीन से युद्ध के समय राजा ..... बंदी था।
3. शाह अलाउद्दीन के पास भेजी गई पालकी में पद्मावती के स्थान पर ..... को बिठाया गया था।
4. लोहार द्वारा रत्नसेन की बेड़ियाँ काटने के पश्चात् ..... रत्नसेन को सुरक्षित लेकर चित्तौड़गढ़ पहुँचा।
5. युद्ध में ..... वीरगति को प्राप्त हुआ।

गोरैं देख साथ सब जूझा। आपन काल नियर भा बूझा।1।
कोपि सिंघ सामुहं रन मेला। लाखन्ह सौं नहिं मुरै अकेला।2।
लई हांकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसें सिंघ बिडारै घटा।3।
जेहि सिर देइ कोपि करवारू। सिउं घोरा टूटै असवारू।4।
टूटहिं कंध कबंध निनारे। मांठ मंजीठि जानु रन डारे।5।
खेलि फागु सेंदुर छिरिआवै। चांचरि खेलि आगि रन धावै।6।
हस्ती घोर आइ जो ढूका। उठै देह तिन्ह रुहिर भभूका।7।
भै अग्यां सुलतानी बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगें लिए पदारथ साथ ॥53/13॥

शब्दार्थ–साथ=साथी। विनियर=समीप। सामुहं=सामने। मुरै=मुड़ता था। ठटा=समूह। बिडारै=विदीर्ण कर देता है। करबारू=तलवार। सिउं=सहित। असवारू=घुड़सवार। मांठ=मटका। छिरिआवै=छिड़कना। ढूका=झुका। भभूका=लपट। बेगि=शीघ्र। तिन्ह=उनके। रुहिर= रुधिर।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में अकेले गोरा द्वारा ही शाह सेना में खलबली मचा देने का वर्णन किया गया है।

व्याख्या–कवि कहता है कि जब गोरा ने यह देखा कि उसके सभी साथी युद्ध में मारे जा चुके हैं तो उसको अपनी अंतिम घड़ी समीप दिखाई देने लगी। वह वीर सिंह क्रुद्ध होते हुए शत्रु सेना के सम्मुख युद्ध में पिल पड़ा। वह अकेला होते हुए भी शाही सेना के लाखों योद्धाओं द्वारा पीछे नहीं हटाया जा पा रहा था। उसने हाथियों के झुंड को अपने सामने इस प्रकार हांक लिया जैसे कि सिंह हाथियों की घटा अर्थात् समूह को विदीर्ण कर तितर-बितर कर डालता है। वह क्रोध करके जिस किसी भी योद्धा के सिर पर अपनी तलवार का प्रहार करता था वह घुड़सवार अपने घोड़े के साथ कट मरता था। उसके रूंड और मुंड कटकर पृथक् हो जाते थे और ऐसा प्रतीत होता था मानों युद्धस्थल में मंजीठ के मटके लुढ़काए हुए हैं। वह युद्धस्थल में फाग खेलकर सिंदूर (गुलाल) छिड़कता प्रतीत हो रहा था, अथवा चांचर खेलकर युद्धरूपी आग की ओर दौड़ रहा था। हाथी अथवा घोड़ा जो भी उसकी ओर आ झुकता था उसी के शरीर से इस प्रकार रक्त की फुहार निकलने लगती थी जैसे आग की लपटें निकला करती हैं। कवि कहता है कि गोरा के इस प्रकार भयंकर रीति से युद्ध करने से शाही आज्ञा हुई कि जैसे बने तैसे इसको शीघ्र ही कब्जे में करना चाहिए क्योंकि आगे-आगे रत्नसेन पद्मावती रूपी पदार्थ को साथ लेकर चित्तौड़ की ओर चला जा रहा है।

नोट

साहित्यिक सौन्दर्य–1. कवि ने युद्ध की होली के साथ अच्छी तुलना की है।

2. 'लई .... घटा' में दृष्टांत अलंकार।

3. 'जोहि ..... असवारू' में अतिशयोक्ति अलंकार।

4. 'मांठ .... डारे' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

5. 'खेल ..... रन धावैं' में रूपक अलंकार।

6. दोहे में रूपकातिशयोक्ति।

सबहि कटक मिलि गोरा छेंका। गुंजर सिंघ जाइ नहिं टेका।1।
जेहिं दिसि उठै सोइ जनु खाबा। पलटि सिंघ तेहिं टायन्ह आवा।2।
तुरुक बोलावहिं बोलहिं बाहां। गोरैं मींचु धरा मन माहां।3।
मुए पुनि जूझि जाज जगदेऊ। जियत न रहा जगत महं केऊ।4।
जनि जानहु गोरा सो अकेला। सिंघ की मोंछ हाथ को मेला।5।
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा। मुएं पार कोई घिसियावा।6।
करै सिंघ हठि सौंही डीठी। जब लगि जिअै देह नहिं पीठी।7।
रतनसेनि तुम्ह बांधा मसि गोरा के गात।
जब लगि रुहरि न धोवौं तब लगि होउं न रात ॥53/14॥

शब्दार्थ–छका=घेर लिया। गुंजर=गरजता हुआ। टायन्ह=जगह। मींचु=मृत्यु। केउं=कोई भी। जनि=नहीं। धरावा=पकड़ा जाना। घिसियावा=घसीटता। डीठी=दृष्टि। मुएं=मर जाने पर। मसि=कालौंच, कलंक।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में शाह अलाउद्दीन की सेना द्वारा घेर लिए जाने पर वीर गोरा की इस वीर दर्पोक्ति का चित्रण किया गया है कि तुर्कों द्वारा राजा रत्नसेन को बन्दी बनाए जाने का कलंक गोरा को लगा हुआ है। जिसको वह अपना रक्त बहाकर अर्थात् अपने प्राण देकर धो डालना चाहता है।

व्याख्या–कवि वर्णन करता है कि शाह अलाउद्दीन की पूरी सेना ने मिलकर गोरा को घेर लिया, किन्तु वह गरजता हुआ सिंह किसी के भी रोके नहीं रुक पा रहा था। वह जिस किसी भी दिशा की ओर उठ खड़ा होता था मानो उस दिशा को खा डालता था और लौटकर पुनः अपने स्थान पर आ जाता था। तुर्क उसको ललकारते थे तो उनकी ललकार का उत्तर वह अपनी भुजाओं से देता था। उसने समझ लिया था कि अब मेरा अन्तिम समय निकट आ पहुंचा है। वह सोचने लगा कि इस संसार में आकर कौन रहता है क्योंकि जाज और जगदेव जैसे योद्धा भी युद्ध में मर चुके हैं, अतः संसार में कोई जीवित नहीं रहता है। उस गोरा को अकेला नहीं समझना चाहिए क्योंकि इतना साहस किसको होता है कि वह सिंह की मूंछों को हाथ लगाए– भाव यह है कि जिस प्रकार कोई शेर की मूंछों को छूने का साहस नहीं कर सकता। उसी प्रकार तुर्क सैनिकों में से भी किसी की हिम्मत उसके समीप पहुंचने की नहीं पड़ रही थी। जब तक सिंह जीवित रहता है उसको कोई पकड़ नहीं सकता। हां मृत्यु हो जाने की दशा में जिसकी भी इच्छा हो वही उसको खींचे फिर सकता है। शेर तो जब तक जीवित रहता है वह हठपूर्वक नजर से नजर मिलाता है–सामने की ओर ही देखता है तथा कभी पीठ नहीं दिखाता। तुर्क सेना को ललकारते हुए गोरा कहने लगा कि अरे तुर्कों तुमने मेरे स्वामी राजा रत्नसेन को बन्दी बनाया था, उसका कलंक मेरे शरीर को लगा हुआ है– अर्थात् मेरे लिए यह कलंक की ही बात थी कि मेरे जीवित रहते हुए मेरे स्वामी को बन्दी बना लिया गया था। जब तक इस कलंक को मैं अपने खून से नहीं धो देता तब तक मेरा मुख उज्ज्वल नहीं हो सकता।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. जगदेव के विषय में **डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल** ने श्री मैथिलीशरण गुप्त के साक्ष्य पर परिशिष्ट में जो लम्बी कहानी दी है, उसका रूप यह है–

धार (उज्जैन) के परमार राजा उदयादित्य सो रहे थे। उनकी दो रानियों के दो पुत्र हुए– पहले बड़ी रानी के और कुछ समय पश्चात् छोटी रानी के। हां बड़ी रानी की दासी ने सोते हुए राजा को जगाना उचित न समझा था अतः उन्हें छोटी रानी के पुत्र होने की सूचना पहले मिली और छोटी रानी का पुत्र ही उत्तराधिकारी बनाया गया। उसी रानी के पुत्र का नाम जगद्देव या जगदेव था।

नोट

जगदेव को छोटी रानी ने ईर्ष्यावश अपने राज्य से भी निकलवा दिया और वह पाटन के सिंहराज जस सिंह के सामन्त के रूप में उनके आश्रय में रहने लगा। जगदेव ने अपनी तपस्या से दुर्गा को प्रसन्न करके यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि वह जब चाहेगा तब उसकी सहायता करेगी। इस वरदान का लाभ उठाने का अवसर भी आ पहुंचा। हुआ यह कि सिंहराज की छोटी रानी पर शिव का एक भैरव आसक्त होकर उससे रमण के लिए आया करता था। सुहागरात्रि को सिंहराज जैसे ही इस रानी के महल में गए उस भैरव ने राजा को परास्त करके पलंग के नीचे दबा दिया और रानी के साथ रमण किया। यह क्रिया नित्यप्रति चलने लगी। राजा सिंहराज ने दरबार में आना छोड़ दिया तो जगदेव उनके महल में पहुँचा। बहुत पूछने पर सिंहराज ने जगदेव को सारी बात बतायी तो दुर्गा के वरदान का लाभ उठाते हुए जगदेव ने उस भैरव को मार भगाया।

उस भैरव ने जाकर रोते हुए देवी से प्रार्थना की कि जब तक मैं जगदेव कि सिर की गेंद बनाकर न खेलूंगा तब तक मुझको शान्ति न मिलेगी। उसकी इच्छा पूर्ति के लिए देवी ने चारिणी के रूप में जगदेव से उसका शीश मांगा। जगदेव ने अपना-शीश काट दिया और उसकी पतिव्रता रानी ने उसको थाल में रखकर उस चारिणी को सौंप दिया। हां अंततः उसके धड़ में से पुनः शीश निकल आया था और जगदेव जीवित हो गया था।

सरजा बीर सिंघ चढ़ि गाजा। आइ सौहं गोरा के बाजा।1।
पहलवान सो बखाना बली। मदति मीर हमजा और अली।2।
मदति अयूब सीस चढ़ि कोपे। राम लखन जिन्ह नाउं अलोपे।3।
और ताया सालार सो आए। जिन्ह कौरौ पंडौ बंदि पाए।4।
लिंधउर देव धरा जिन्ह आदी। और को माल बादि कहं बादी।5।
पहुंचा आइ सिंघ असवारू। जहां सिंघ गोरा बरियारू।6।
मारेसि सांगि पेट महं धंसी। काढ़ेसि हुमुकि आंति भुइं खसी।7।
भांट कहा धनि गोरा तू भोरा रन राउ।
आंति सौंति करि कांधे तुरै देत है पाउ।।53/15।।

शब्दार्थ–सौहं=सामने। बलिमदति = बलवान। अलोपे = मिटा दिया। कौरौं पड़ौ = कौरव, पाण्डव। बरियारू = बलशाली। सांगि = सांग नामक एक लोहे का हथियार। हुमुकि = जोर लगाकर। भोरा राउ = भोल भीमदेव नामक चालुक्य राजा। सैंति कर = इकट्ठी करके।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में जायसी ने इस तथ्य का वर्णन किया है कि वीर गोरा का तुर्क सेना का अन्य कोई योद्धा तो मुकाबला नहीं कर रहा था, किन्तु वीर सरजा ने उस पर सांग का ऐसा प्रहार किया कि उसकी आंतें बाहर निकल आईं। फिर भी गोरा ने हार नहीं मानी और वह अपनी आंतों को एक हाथ से इकट्ठी करके पुनः घोड़े पर सवार हो गया।

व्याख्या–कवि कहता है कि वीर सरजा जो सिंह पर सवार होकर गरजता था, गोरा के सामने आकर उससे भिड़ गया। वह अत्यधिक बलशाली और पहलवान कहा जाता था। उसको अमीर हमजा और अली की मदद भी मिली हुई थी। उसकी मदद के लिए अयूब सिर पर चढ़ा हुआ क्रुद्ध जान पड़ता था – भाव यह है कि अत्यधिक क्रुद्ध अयूब भी उसकी मदद के लिए निकट ही था। वह इतना अधिक बलवान था कि उसने राम और लक्ष्मण का यश भी फीका कर दिया था। सरजा की सहायता के लिए वह ताया सालार भी आया हुआ था जिसने कौरव और पांडव जैसे वीरों को अपने बंधन में डाल लिया था। जिसने लिंधउर देव और आदी जैसे वीरों को पकड़ कर वश में कर लिया था। वीर सरजा इतना अधिक बलवान था कि और कौन ऐसा योद्धा था जो उसके जोड़ का स्वीकार किया जा सकता था। सिंह पर सवार होकर सरजा वहां आ पहुंचा जहां पर सिंह के समान वीर गोरा विद्यमान था। उसने आते ही गोरा पर सांग का प्रहार किया जो उसके पेट में फंस गई तदन्तर उसने जोर लगाकर सांग को खींच लिया जिससे गोरा की आतें निकलकर धरती पर आ गिरीं।

युद्धस्थल में गोरा के पराक्रम को देखने वाले भाट ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि हे गोरा! तू धन्य है। तू युद्ध स्थल में भोला भीम के समान है। क्योंकि तू अपनी आतों को समेटकर और उनको अपने कन्धे पर डाल कर घोड़े पर सवार हो रहा है।

साहित्यिक सौन्दर्य–इन पंक्तियों में आए वीरों के विषय में **डॉ. अग्रवाल** ने निम्नांकित टिप्पणियां दी हैं–

नोट

1. मीर हमजा–मीर हमजा मुहम्मद साहब के चाचा थे, जिनकी वीरता की बहुत-सी कल्पित कहानियां पीछे जोड़ी गईं। (शुक्लजी), सोलहवीं शती में दास्तान अमीर हमजा की बड़ी प्रसिद्धि थी। अकबर ने इस पर आश्रित चौदह सौ चित्र कपड़े पर बनवाए थे जिसमें सौ से ऊपर अभी तक बच गए हैं।

2. अली–मुहम्मद साहब के चचाजात भाई और दामाद, मुसलमानों के चौथे खलीफ़ा थे। ये वीरता के उपमान हैं। इन्हें शेरे शरज : अर्थात् कुपित सिंह कहा जाता है।

3. अयूब–बाइबिल में इन्हें जॉब कहा गया है (हिब्र इयोब)। शैतान ने सन्देह किया और उसे इनकी परीक्षा लेने की अनुमति मिली। हजरत अयूब पर अनेक विपत्तियां आईं, सम्पत्ति नष्ट हो गई, शरीर भी व्याधिग्रस्त हो गया। पर उन्होंने ईश्वर के प्रति कृतज्ञता का भाव न छोड़ा। अन्त में उनके दिन बहुरे।

4. लिंधउर देव–लंधौर देव नामक एक कल्पित हिन्दू राजा जिसे अमीर हमजा ने जीतकर अपना मित्र बनाया था। अमीर हमजा दास्तान में यह बड़े डील डौल का और बड़ा भारी वीर कहा गया है।

5. आदी–लिंधउर देव के समान आदी भी अमीर हमजा का एक बली सैनिक था जिसके चरित्र का वर्णन दास्तान अमीर हमजा में मिलता है। जैसे लिंधउर देव वारंगल के हिन्दू राजा प्रतापरुद्र देव थे, वैसे ही बहुत संभव है कि आदी भी चित्तौड़ के विक्रमादित्य उपाधि धारी हिन्दू राजा के आधार पर कल्पित कर लिया गया हो।

6. 'राम लखन ..... अलोपे' में अत्युक्ति अलंकार।

7. 'ओ ताया .... पाए' में अत्युक्ति अलंकार।

8. 'जहां सिंह .... बरियारू' में रूपक अलंकार।

9. अंतिम पंक्तियों में वृत्यानुप्रास अलंकार।

कहेसि अंत अब भा भुइ परना। अंत सो तंत खेह सिर भरना।1।
कहि कै गरजि सिंघ अस धावा। सरजा सारदूर पहं आवा।2।
सरजैं कीन्ह सांगि सौं घाऊ। परा खरग जनु परा निहाऊ।3।
बज्र सांगि ओ बज्र के डांडा। उठी आगि सिर बाजत खांडा।4।
जानहुं बजर बजर सौं बाजा। सब हीं कहा परी अब गाजा।5।
दोसर खरग कुंडि पर दीन्हा। सरजै धरि ओड़न पर लीन्हा।6।
तीसर खरग कंध पर लावा। कांध गुरुज हत घाव न आवा।7।
अस गौरैं हठि मारा उठी बजर की आगि।
कोइ न नियरें आवै सिंघ सदूरहि लागि॥53/16॥

शब्दार्थ–भुइ परना=मरकर जमीन पर गिरता है। तंत=तत्व। खेह=धूल। सारदूर=महासिंह। निहाऊ=लोहे का घन। डांडा=डंडा। खांडा=तलवार। बजर=बज्र। गाजा=बिजली। ओढ़न=ढाल। गुरूज=गुर्ज, गदा। नियरें=समीप।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों के कवि ने वीर गोरा द्वारा सरजा पर भयंकर प्रहार करने का वर्णन किया है।

व्याख्या–कवि कहता है कि गोरा ने अपने मन में विचार कर लिया कि अब तो मुझको मर कर पृथ्वी पर गिरना ही है। जीवन का अन्तिम तत्व ही यह है कि वह अंततः मिट्टी में मिल जाता है। इस प्रकार कहकर गोरा ने गर्जना करते हुए सिंह की तरह धावा बोला और वहां आ पहुंचा जहां सरजा रूपी महासिंह विद्यमान था। उसने सरजा पर सांग का प्रहार किया। उसका खड्ग सरजा के इस प्रकार लगा जैसे लोहे का घन बज उठा हो–भाव यह है कि जैसे घन की चोट भयंकर होती है उसी प्रकार गोरा ने भयंकर रूप में सांग का प्रहार किया था। वह सांग फौलाद की बनी हुई थी और उसका डंडा भी फौलाद का बना हुआ था। सरजा के शीश पर गोरा का खांडा लगा तो उससे आग की चिनगारियां छिटकने लगीं। ऐसा प्रतीत होता था मानो बज्र से बज्र टकरा रहा है और सभी यह कहने लगे कि अब गाज गिरने वाली है। उसने अपने खड्ग का दूसरा प्रहार सरजा की कुंडी (सिर पर धरे लौह-कवच) पर किया, इस प्रहार को सरजा ने अपनी ढाल पर संभाल लिया अर्थात् इस प्रहार को ढाल पर लेते हुए उस प्रहार को बचा लिया। गोरा ने अपने खड्ग का तीसरा प्रहार सरजा के कन्धे पर किया। चूंकि सरजा के कंधे पर गुर्ज था अतः उसको फर्क नहीं आया।

कविवर जायसी कहते हैं कि गोरा सरजा पर हठपूर्वक बड़े जोर-जोर से प्रहार कर रहा था। ये प्रहार इतने प्रचण्ड

नोट

थे कि उनसे वज्र की जैसी आग उत्पन्न हो रही थी। सिंह रूपी गोरा और शार्दूल रूपी सरजा के समीप आने का कोई भी योद्धा साहस नहीं कर पा रहा था।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. मरते हुए गोरा की अप्रतिम वीरता का अच्छा वर्णन है।

2. कहि कै ..... धावा' में उपमा अलंकार।

3. 'सरजा ..... आवा' में रूपक अलंकार।

4. 'परा ..... निहाऊ' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

5. 'जानहुं .... गाजा' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

6. दोहे में रूपक अलंकार।

तब सरजा गरजा बरिवंडा। जानहुं सेर केर भुअडंडा।1।
कोपि गुरुज मेलेसि तस बाजा। जनहुं परी परबत सिर गाजा।2।
ठाठर टूट टूट सिर तासू। सिउं सुमेरु जनु टूट अकासू।3।
धमकि उठा सब सरग पतारू। फिरि गै डीठि भवां संसारू।4।
भा परलौ सबहूं अस जाना। काढ़ा खरग सरग नियराना।5।
तस मारेसि सिउं घोरैं काटा। धरती फाटि सेस फन फाटा।6।
अति जौं सिंघ बरिअ होइ आई। सारदूर सौं कवनि बड़ाई।7।
गोरा परा खेत महं सिर पहुंचावा बान।
बादिल लै गा राजहिं लै चितउर नियरान ॥53/17॥

शब्दार्थ–बरिवंडा=बलशाली। **भुअडंडा**=भुजदंड। **मेलेसि**=मारा। **ठाठर**=ठठरी, **अस्थि-पंजर रसरग**=आकाश। **डीठि**=दृष्टि। **भवां**=चकित। **परलौ**=प्रलय। **नियराना**=समीप पहुंचा। **सिउं**=सहित। **बरिअ**=बलवान। **कवनि**=कौन-सी। **बान**=टेक, प्रतिज्ञा।

संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने सरजा के हाथों अंततः वीर गोरा के मारे जाने का वर्णन किया है।

व्याख्या–कवि जायसी कहते हैं कि तब अर्थात् गोरा द्वारा एक के पश्चात् एक प्रहार किए जाने पर बलशाली सरजा गरज उठा। उसके भुजदंड शेर के समान बलशाली थे। उसने क्रुद्ध होकर गोरा पर गुर्ज का प्रहार किया। वह गुर्ज गोरा के इस प्रकार लगा जैसे पर्वत पर गाज (बिजली) गिरी हो। उस गुर्ज की मार से गोरा के सिर के साथ-साथ उसका अस्थि-पंजर भी टूट गया। ऐसा प्रतीत होता था जैसे सुमेरु पर्वत के साथ आकाश भी टूट पड़ा हो।

17.2 सारांश (Summary)

जायसी ने गोरा-बादल को वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया है। वे पद्मावती के विश्वास-पात्र हैं। जायसी ने गोरा-बादल माध्यम से छल पूर्वक रत्नसेन को छुड़ाने की योजना कर युद्ध की रीति में छल को उचित ठहराते हैं। इस खण्ड में गोरा-बादल सोलह सौ पालकियाँ सजाकर सुल्तान अलाउद्दीन से मिलने दिल्ली जाते हैं किन्तु पालकियों में सुल्तान की शर्त के अनुसार रानी पद्मावती न होकर सैनिक बिठाए गए। पद्मावती की पालकी में लोहार को बिठाया जो दिल्ली पहुंचकर अवसर पाते ही रत्नसेन की बेड़ियाँ काट देता है और बादल रत्नसेन को लेकर चित्तौड़गढ़ की ओर चल देता है। अंत में गोरा को युद्धभूमि वीरगति प्राप्त होती है।

17.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **गातः** शरीर, देह, यौवन।
2. **हिरवानीः** हेरात की बनी तलवार।

नोट

17.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. गोरा-बादल युद्ध खण्ड की कथा संक्षेप में लिखिए।

2. गोरा एवं शाह अलाउद्दीन की सेना के बीच युद्ध का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. गोरा-बादल 2. रत्नसेन 3. लोहार 4. बादल
5. गोरा

17.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. पद्मावत–*मलिक मुहम्मद जायसी कृत।*

2. जायसी ग्रन्थावली–*शुक्ल रामचंद्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।*

3. मलिक मुहम्मद जायसी–*बी.सी. पाण्डेय, विनोद प्रकाशन।*

नोट

इकाई 18

भ्रमरगीत–सप्रसंग व्याख्या

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
18.1 उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण के वचन
18.1.1 कुब्जा के वचन उद्धव के प्रति
18.1.2 उद्धव का ब्रज में जाना
18.2 सारांश (Summary)
18.3 शब्दकोश (Keywords)
18.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
18.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- भ्रमरगीत के पदों की व्याख्या करने एवं भ्रमरगीत के प्रसंगों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

श्रीकृष्ण के द्वारका चले जाने के पश्चात् कृष्ण गोप-गोपियों से अलग हो गए। द्वारका में उनके मित्र उद्धव ज्ञानी हैं। वे कृष्ण से तर्क-वितर्क के आधार पर निर्गुण ब्रह्म के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हैं। कृष्ण सगुण की महत्ता समझाने हेतु उद्धव को गोकुल भेजते हैं। उद्धव के जाने से पूर्व श्रीकृष्ण नंद एवं गोकुल वासियों के प्रति कुछ संदेश देते हैं। उद्धव गोकुल पहुंचकर गोप-गोपियों को ज्ञान और योग की बातें समझाते हैं। सूरदास ने गोपियों और उद्धव के वार्तालाप के लिए भ्रमर को माध्यम बनाया है। गोपियाँ भ्रमर के माध्यम से उद्धव से तर्क-वितर्क करती हैं और अंततः उद्धव गोपियों के द्वारा सगुण के पक्ष में दिए गए अकाट्य तर्कों के सम्मुख नतमस्तक हो जाते हैं।

18.1 उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण के वचन

पहिले करि परनाम नंद सों समाचार सब दीजो।
और वहाँ वृषभानु गोप सों जाय सकल सुधि लीजो।।
श्रीदामा आदिक सब ग्वालन मेरे हुतो भेटियो।
सुख संदेश सुनाय हमारो गोपिन को दुख मेटियो।
मंत्री इक बन बसन हमारे ताहि मिले सचु पाइयो।
सावधान ह्वै मेरे हूतो ताही माथ नवाइयो।
सुन्दर परम किसोर बयक्रम चंचल नयन विसाल।
कर मुरली सिर मोर पंख पीतांबर उर बनमाल।।
जरि डरियो तुम सघन बनन में ब्रजदेवी रखवार।
वृन्दाबन सो बसत निरन्तर कबहूँ न होत नियार।

उद्धव प्रति सब कही स्यामजू अपने मन की प्रीति। नोट
सूरदास किरपा करि पठए यहै सकल ब्रजरीति॥1॥

शब्दार्थ–परनाम=प्रणाम नमस्कार। मेरे हुतो=मेरी तरफ से। सचु=सुख। निरन्तर=सदैव, हमेशा। नियार=अलग। किरपा=कृपा।

प्रसंग–श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोकुलवासी उनके वियोग में दुःखी हो गये। नन्द, यशोदा, ग्वाल और गोपियों, सभी को उनका विरह सताने लगा। गोपियाँ कृष्ण से प्रेम करती थीं उनकी वेदना अपेक्षाकृत अधिक थी। उधर श्रीकृष्ण को भी मथुरा में गोपियों की याद आती रहती थी। गोपियों के प्रेम का उन पर प्रभाव था। कृष्ण के एक मित्र उद्धव थे। वे ज्ञान मार्ग के सिद्धान्तों के समर्थक थे। श्रीकृष्ण जी ने उसके ज्ञान के गर्व को चूर करने के उद्देश्य से उन्हें गोकुल भेजना चाहा। इससे एक तो गोपियों को ढाँढ़स मिलेगा और दूसरे उद्धव के ज्ञान पर प्रेम का प्रभाव होगा। इसलिए उन्होंने उद्धव को अपनी प्रेमी गोपियों के पास अपना संदेश देकर भेजा। प्रसंगतः कुछ बातें नन्द आदि के लिए भी कहीं। प्रस्तुत पद में कृष्ण उद्धव जी को समझाते हुए कह रहे हैं कि आपको गोकुल में जाकर क्या-क्या करना है।

व्याख्या–पहले आप नन्द जी से प्रणाम कीजिए। नन्द एक तो श्रीकृष्ण के पिता हैं अतएव पूज्य हैं और दूसरे वहाँ के राजा हैं और सबसे अधिक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। उन्हें प्रणाम करना स्वाभाविकता तथा औपचारिकता दोनों की दृष्टि से उपयुक्त है। उसके पश्चात् (प्रणाम के पश्चात्) उन्हें सब समाचार दीजिये। सब समाचार से तात्पर्य यह है कि पहले तो यह बतलाना कि आप कौन हैं? उद्धव कृष्ण के सखा हैं, उनके अतरंग मित्र हैं। दूसरे कृष्ण की व्यस्तता के कारण; राज्य कार्य की जटिलता आदि के कारण गोकुल आने की असमर्थता। तीसरे नन्द आदि की यह कठोरता की बात कि फिर उनकी सुधि ही न ली (कहियो नंद कठोर भए)। उसके पश्चात् वृषभान गोप के पास जाकर सबका समाचार लेना। वृषभान की राजी-खुशी नंद के यहाँ से भी पूछकर प्राप्त हो सकती थी। परन्तु उनके यहाँ जाकर सुधि लेने को सूर ने रहस्य रखा है। वह रहस्य यह है कि वृषभानु की पुत्री राधा वहाँ मिलेगी। स्वाभाविक है कि वृषभानु के घर जाने पर राधा की स्थिति सुख-दुःख आदि की दशा तथा कृष्ण विरह के प्रभाव आदि की दशा-का पता चला ही जाएगा। यही निहित भाव यहाँ प्रतीत होता है। श्रीदामा आदि जो ग्वाल हैं उनको मेरी ओर से भेंटना। यहाँ पर श्रीदामा का तो नाम ले दिया। आदिक में उनके वे सखा जानने चाहिए जिनका सूर ने उल्लेख "रैता, पैता, मना, मनसुखा" आदि नामों से किया है। इसके पश्चात् गोपियों की बारी आती है। गोपियों का हमारा सुख-संदेश सुनाकर उनके दुःख को दूर करना। गोपियाँ विरह व्यथित होंगी उन्हें जब यह पता चलेगा कि श्रीकृष्ण उनके प्रिय उनकी सतत स्मृति संजोये हुए हैं तो उन्हें सुख मिलेगा। विरही को जब यह पता चल जाता है कि उसका प्रिय भी उसकी याद में तड़प रहा है तो उसे बड़ा सुख मिलता है, कुछ संतोष प्राप्त होता है कि मेरी तरह वह भी जल रहा है। गोपियों के प्रसंग में राधा के लिए पूर्णतः संकेत करते हैं और उसे अपना मंत्री (नागरी प्रचारिणी सभा में प्रकाशित सूरसागर में मित्र पाठ हैं। मित्र से भी संकेत स्पष्टतः राधा के लिए ही है) कहते हुए उद्धव को समझाते हैं। पुनः गोकुल में आपको हमारा एक मंत्री (राधा) मिलेगा। उससे मिलकर आपको सुख मिलेगा। वहाँ का वातावरण देखकर आप आनन्दित होंगे। सावधान होकर मेरी ओर से आप उसे स्नेह और स्मरणवश माथा झुकाना। राधा का रूप वर्णन करते हुए कहते हैं वह परम सुन्दर है। वयक्रम के अनुसार किशोरावस्था है (शैशव बाल्य फिर किशोर आती है।) उनके नेत्र विशाल और चंचल हैं। हाथ में मुरली, सिर पर मोर पंख और गले में वनमाला है। आप घने वनों में डरना नहीं वहाँ पर ब्रजदेवी रखवाली करने वाली है फिर डर की कोई बात नहीं। यह सदैव वृन्दावन में रहती है उससे कभी भी अलग नहीं जाती। इस प्रकार श्रीकृष्ण जी ने उद्धव के प्रति अपने मन के प्रेम को कह दिया। सूरदास जी कहते हैं कि कृपा करके ब्रजवासियों को सुख देने के लिए उद्धव को भेज दिया। ब्रज में उनकी इस प्रकार की रीति रही है।

विशेष–प्रस्तुत पद्य में उस पंक्ति का अर्थ विचारणीय है जिसमें 'मंत्री' शब्द आया है। मंत्री से तात्पर्य राधा से है; राधा ही कृष्ण का वेश बनाकर वहाँ रहती थी। राधा वस्तुतः कृष्ण की प्रतीक्षा करते हुए, उनके विरह में दग्ध हुई कृष्णमय हो गई थी। वह कृष्ण का वेश बनाकर रहती थीं इसके दो कारण हैं। प्रथम तो यह कि ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं– रसरूप और ऐश्वर्य रूप। उद्धव ने कृष्ण को ऐश्वर्य रूप में देखा है। श्रीकृष्ण रसरूप को प्रधानता देते हैं अतः 'ताहि मिले सचु पाइयों कहते हैं और अपने अंश रूप, दूसरे रूप–रसरूप का दर्शन उद्धव को गोकुल में ही कराते हैं। ऐसी मान्यता कृष्ण भक्ति के समर्थकों की है क्योंकि वे राधा को कृष्ण का अविभक्त अंग मानते हैं।

'मंत्री' शब्द का राधा की ओर संकेत करने में दूसरा प्रबल तर्क स्वयं सूरदास के कथन द्वारा सामने आता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भ्रमरगीत के कुछ पद लिये हैं और कुछ पद नहीं लिए। उन अवशिष्ट पदों में से दो पदों

नोट

में इस बात का वर्णन आता है कि उद्धव जी ने श्रीकृष्ण जी को यह बतलाया कि मैंने वहां आपके इसी रूप के दर्शन किये हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ पठनीय हैं–

ब्रज में एक अंचभौ देख्यौ।
मोर मुकुट पीतांबर धारे, तुम गाइनि संग देख्यौ।
गोप बाल संग धावत तुम्हरें तुम घर-घर प्रति जात।
दूध दही अरु मही लै ढारत, चोरी माखन खात।

(सूरसागर पद संख्या 4773)

इस तरह श्रीकृष्ण का वेश बनाकर वैसा ही आचरण करने का सूर का वर्णन पढ़कर इसमें संदेह नहीं रह जाता कि राधा ही श्रीकृष्ण जैसा रूप बनाकर रहती हैं। उन्हें मंत्री और मित्र दोनों शब्दों से अभिव्यक्त किया जा सकता है।

कहियो नंद कठोर भए।
हम दोउ बीरें डारि पर धरैं मानो थाती सैंपि गए।
तनक-तनक तैं तालि बड़े किए बहुतै सुख दिखराए।
गौचारन को चलत हमारे पाछे कोसक धाए।।
ये बसुदेव देबकी हमसों कहत आपने जाए।
बहुरि विधाता जसुमतिजू के हमहिं न गोद खिलाए।।
कौन काज यह राज, नगर को सब सुख सों सुख पाए ?
सूरदास व्रज समाधान करु आज काल्हि हम आए॥ 2॥

शब्दार्थ–बीरैं=भाइयों को। पर-धरै=दूसरे के घर, मथुरा में। थाती=धरोतर। कोसक=कोस तक ही दूरी। समाधान=तसल्ली।

व्याख्या–आप कहना कि नन्द जी कठोर हो गये हैं। कठोरता का कारण भी स्पष्ट करते हैं कि वे हम दोनों भाइयों को (श्रीकृष्ण और बलराम को) मथुरा में इस तरह छोड़कर चले गये जैसे कोई अपनी धरोहर को (वापस) देकर निश्चिन्त होकर बैठ जाता है। बालकपन में उन्होंने हमें बहुत से सुख दिये थे, हमारा पालन-पोषण तभी से किया जब से कि हम बहुत छोटे थे और हमें उन्होंने इतना बड़ा किया। गोकुल में रहते समय उनका इतना अधिक स्नेह था कि जब हम गौओं को चराने जाया करते थे तो एक-एक कोस तक हमारे संग ही चले जाया करते थे। जब मथुरा में आने पर उनका वैसा स्नेह नहीं है। यहाँ पर वसुदेव और देवकी हमें अपना पुत्र बतलाते हैं, फिर हमें विधाता समझते हैं और यशोदा जी के गोद खिलाये पुत्र के रूप में हमे यहां कोई नहीं समझता। यह नगर का राज्य किस काम का है? अर्थात् नगर का राज्य कुछ काम का नहीं है। हमने यहाँ के सुख से सुख पा लिया वस्तुतः इसमें सुख नहीं है। सूरदास कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा कि तुम ब्रजवासियों को तसल्ली इस तरह से कर देना कि हम बस आजकल में ही आने वाले हैं। अर्थात् शीघ्र ही गोकुल आने वाले हैं।

विशेष–(1) मर्म की दृष्टि से यह एक सुन्दर पद है। (2) 'मानो थाती सौंपि गये' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

तबहिं उपंगसुत आय गए।
सखा-सखा कछू अन्तर नाहीं भरि-भरि अंक लऐ॥
अति सुन्दर तन स्याम सरीखो देखत हरि पछिताने।
ऐसे को वैसी बुधि होती ब्रज पठबै तब आने॥
या आगे रस-काव्य प्रकासे जोग बचन प्रगटावै।
सूर ज्ञान याके दृढ़ हिरदय जुवतिन जोग सिखावै॥ 3॥

शब्दार्थ–उपंगसुत=उद्धव। अंक=गोद। सरीखो=समान। हिरदय=दया। जोग=योग।

व्याख्या–उसी समय उद्धवजी वहाँ पर आ गए। दोनों मित्र-मित्र हैं दोनों में कुछ अन्तर नहीं है– शारीरिक साम्य भी है और आन्तरिक साम्य भी है। उन्होंने गोदी में भर लिया और गाढ़ आलिंगन किया, यह तात्पर्य है कि

नोट

उद्धवजी का शरीर अत्यन्त सुन्दर था। वह श्रीकृष्ण जी जैसा ही था। यह देखकर श्रीकृष्ण जी मन में पश्चाताप करने लगे; दुखी होने लगे। दुःख इस बात का है कि ऐसे सुन्दर-तन उद्धव को, यदि इनका प्रेम और भक्ति में भी विश्वास होता तो कितना अच्छा रहता। पर ये उद्धव ऐसे हैं कि इनके आगे यदि रस की या काव्य की प्रेम-भक्ति सम्बन्धी बातें प्रकाशित करें तो भी यह योग की वाणी ही बोलते हैं। सूरदास कहते हैं कि इनके हृदय में ज्ञान ने दृढ़तापूर्वक स्थान जमा रखा है; यह दृढ़ ज्ञानी हैं। यह युवतियों को योग सिखाकर देखें? भाव यह है कि चाहे उद्धव के हृदय में ज्ञान के प्रति कितनी ही आस्था है पर यदि वह ब्रज में जाकर गोपियों को इसका उपदेश देंगे तो उनके प्रेम के समक्ष इन्हें मात ही खानी पड़ेगी।

विशेष–सूरदास का अभिप्राय भ्रमरगीत के द्वारा निर्गुण पर सगुण की विजय दिखाना है। उसका आभास यहीं से मिलने लगता है।

हरि गोकुल की प्रीति चलाई।
सुनहु उपंगसुत मोहिं न बिसरत ब्रजबासी सुखदाई॥
यह चित होत जाँऊ मैं अबहीं, यहाँ नहीं मन लागत।
गोप सुग्वाल गाय बन चारत अति दुख पायों त्यागत।
कहँ माखन चोरी? कहि जसुमति 'पूत जेंव' करि प्रेम।
सूर स्याम के वचन सहित सुनि व्यापत आपन नेम॥ 4॥

शब्दार्थ–बिसरत=भूलना। जेंव=खाना। सहित=प्रेम युक्त।

व्याख्या–श्रीकृष्ण ने गोकुल के प्रेम का प्रसंग चलाया; गोकुल की बातों को प्रेमपूर्वक याद किया। वे उद्धव से कहने लगे कि हे उद्धव! सुनो, मुझे ब्रज की बातें नहीं भूलती हैं। ब्रजवासी अत्यन्त सुख देने वाले हैं, उनकी स्मृति सतत् होती रहती है। मेरे मन में ऐसा आता है कि मैं गोकुल को अभी चला जाऊँ यहाँ पर मथुरा के वातावरण में मन नहीं लगता है। गोकुल में गोप थे, श्रेष्ठ ग्वाले थे और वन में गायों को चराते थे। उन्हें त्यागते समय हमने अत्यन्त दुःख का अनुभव किया था। ब्रज में हम माखन चुराकर खाया करते थे; वह माखन चोरी अब यहाँ मथुरा में कहाँ है? यशोदा वहाँ पर प्रेमपूर्वक कहा करती थी कि बेर खा लो। मथुरा में इस तरह कोई नहीं कहता। सूरदास कहते हैं कि श्रीकृष्ण के प्रेमयुक्त वचनों को सुनकर भी उद्धव के मन में उनकी योग-साधना के नियम; योग के विभिन्न विधि-विधान व्याप्त हो रहे हैं। प्रेम का उद्धव पर कोई प्रभाव नहीं है यह भाव है।

जदुपति लख्यो तेहि मुसकात।
कहत हम मन रही जोई सोइ भई यह बात ॥
बचन परगट करना लागे प्रेम कथा चलाय।
सुनहु उद्धव मोहिं ब्रज की सुधि नहीं बिसराय ॥
रैनि सोवत चलत, जागत लगत नहिं मन आन ॥
नंद जसुमति नारि नर ब्रज जहां मेरो प्रान ॥
कहत हरि, सुनि उपँगसुत! यह कहत हौं रसरीति।
सूर चित तें टरति नाहीं राधिका की प्रीति॥ 5॥

शब्दार्थ–जदुपति=श्रीकृष्ण ने। तेहि=उसको, उद्धव को। बिसराव=भूलना। आन=अन्य, दूसरी ओर। सुनि=सुन।

व्याख्या–उद्धव को श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए देखा; उन्हें देखकर स्वयं मुस्कुराने लगे। श्रीकृष्ण अपने में सोचते हैं कि हम जो कुछ उद्धव की आस्था ज्ञान के विषय में सोचते थे वही बात रही। वे फिर उद्धव के सामने वचन प्रकट करने लगे और ब्रजवासियों के प्रेम की कथा कहने लगे। हे उद्धव! सुनो, ब्रज की याद को मुझसे भुलाया नहीं जाता। मेरा मन रात्रि में, सोते समय, चलते समय, जागते समय किसी अन्य स्थान पर नहीं लगता है। मेरे प्राण वहीं पर पड़े रहते हैं जहां नन्द, यशोदा, वहां के अन्य नर और नारियां हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे उद्धव! सुनो, प्रेम की रीति यही है जो मैं तुमसे कहता हूँ। सूरदास कहते हैं कि मेरे चित्त से राधिका का प्रेम थोड़ी देर के लिए भी नहीं टलता है अर्थात् श्रीकृष्ण को हर समय राधा का स्मरण होता रहता है।

नोट

विशेष–इस अवतरण में प्रेम के स्वरूप की ओर दृष्टिपात किया गया है। प्रिय का ध्यान थोड़े समय के लिए भी प्रेमी के चित्त से दूर नहीं हटता।

नोट्स उद्धव श्रीकृष्ण के मित्र हैं, किंतु वैचारिक स्तर पर कृष्ण से उनके मतभेद हैं। वे, ज्ञान एवं योग-साधना को ही ईश्वर की प्राप्ति का एकमात्र साधन मानते हैं, जबकि कृष्ण भक्ति के सगुण रूप के समर्थक हैं।

सखा! सुनो मेरी इक बात।
वह लतागन संग गोपन सुधि करत पछितात॥
कहाँ वह वृषभानुतनया परम सुन्दर गात।
सुरति आए रासरस की अधिक जिय अकुलात॥
सदा हित यह रहत नाहीं सकल मिथ्या जात।
सूर प्रभू यह सुनौं मोसों एक ही सौं नात॥6॥

शब्दार्थ–लतागन=लतागण, बहुत सी लताओं का समूह। वृषभानुतनया=वृषाभानु की पुत्री, राधा।

व्याख्या–हे सखा! उद्धव मेरी एक बात सुनो। जब मैं ब्रज की उन लताओं की याद करता हूँ, उन लताओं के साथ गोपियों का सामंजस्य होने के कारण गोपियों को याद करता हूँ तो बहुत पछताता हूँ। पछताना इसलिए कि उन्हें छोड़कर यहाँ मथुरा में उनके सुख से वंचित होने को कहाँ चला आया। फिर यहाँ वह परम सुन्दर शरीर वाली वृषभानु की पुत्री राधा कहाँ है? जिस समय रास के आनन्द की याद आती है तो मन और भी अधिक व्याकुल होता है। इसीलिए कहा गया है– **'सब रस को निरयास रास रस कहिए सोई'।** श्रीकृष्ण की ये बातें सुनकर उद्धव कहते हैं कि संसार के ये सम्बन्ध नहीं रहते। इस संसार में सभी वस्तुएँ मिथ्या हैं। केवल एक ब्रह्म ही सत्य है। सूरदास कहते हैं कि उद्धव भी श्रीकृष्ण को समझाते हैं कि आप मुझसे यह सिद्धान्त समझ लो कि केवल एक परमेश्वर से ही नाता रखना चाहिए। आपको गोपी, गोप आदि की स्मृति नहीं करनी चाहिए, यही मूल भाव है।

विशेष–**(1)** प्रस्तुत पद में सूरदास का भ्रमरगीत-प्रसंग में वर्णित उद्धव का ज्ञानमार्ग का लगाव स्पष्ट होता है। **(2)** ब्रह्म सत्य है और संसार मिथ्या है यह ज्ञानमार्ग का सिद्धान्त शंकराचार्य के अद्वैतवाद का समर्थक है जिसमें कि वे 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का उद्घोष करते है। सूरदास वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों के अनुयायी हैं फलतः वे शुद्धाद्वैतवादी हैं। उनके इसी मत की विशेषता यहाँ सिद्ध होती है।

उद्धव! यह मन निस्चय जानो।
मन क्रम बच मैं तुम्हें पठावत ब्रज को तुरत पलानो॥
पूरन ब्रह्म, सकल अविनासी ताके तुम हौ ज्ञाता।
रेख, न रूप, जाति कुल नाहीं जाके नहिं पितु माता॥
यह मत दै गोपिन कहँ आबहु बिरह नदी मैं भासति।
सूर तुरत यह जाय कहौ तुम ब्रह्म बिना नहिं आसति॥7॥

शब्दार्थ–निस्चय=निश्चय। पठावत=भेजता हूँ। पलानो जाना, प्रस्थान करना। भासति=डूबती है। आसित=मुक्ति।

व्याख्या–श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि हे उद्धव! आप अपने मन में यह निश्चत कर लो कि मैं मन, वचन और कर्म से तुम्हें ब्रज को भेज रहा हूँ। अतः आप वहाँ के लिए तुरन्त ही प्रस्थान कर दीजिए। कहने का भाव यह है कि यदि मेरे मन में आपको ब्रज भेजने का भाव न होता और मैं आपको ब्रज भेजता तो आप कुछ ढील भी कर सकते थे। ऐसे ही वचन या कर्म की किसी प्रकार की कमी के रहते हुए तो आप जाने से सोच-विचार कर सकते थे; विलम्ब कर सकते थे पर तीनों बातों के रहने से मेरी भावना की उत्कटता को देखकर आपको तुरन्त जाना चाहिए। आप ज्ञानी हैं।

आप ब्रह्म को यह जानते हैं कि वह पूर्ण है, अखण्ड है और अविनाशी है। उस ब्रह्म की न तो कोई रूप-रेखा है, न जाति है, न कुल है और न जिसके माता-पिता हैं अर्थात् ब्रह्म एक और अद्वितीय है। इस प्रकार का ज्ञान मार्ग

नोट

का उपदेश आप गोपियों को भी दे आओ। वे मेरे विरह-रूपी नदी में डूब रही हैं अर्थात् मेरे विरह से बहुत दुःखी हैं। सूरदास कहते हैं कि श्रीकृष्ण जी कहने लगे कि उद्धवजी, आप गोपियों से यह जाकर कह दो कि इस प्रकार के ब्रह्म के बिना मुक्ति नहीं। अर्थात् हे गोपियो! यदि आप मुक्ति चाहती हैं तो निगुर्ण ब्रह्म को अपना लो।

विशेष–प्रस्तुत पद में श्रीकृष्ण के वचनों में व्यंग्य भरा है। पहले तो मन, वचन और कर्म की बात कहकर अपनी सफाई देते हैं इससे लगता है कि उनके मन में कुछ बात और थी और वस्तुतः थी भी। दूसरे उद्धव के ज्ञान के ऊपर व्यंग्य है 'ताके तुम हो ज्ञाता' कहकर जो आदर श्रीकृष्ण ने यहाँ व्यक्त किया है उसकी पोल उद्धव के मथुरा लौटने पर खुलती है। वस्तुतः उनके ज्ञान की हंसी उड़ाने की ओर सूर का व्यंग्य समझा जा सकता है।

उद्धव! बेगि ही ब्रज जाहु।
सुरति संदेस सुनाय मेटो बल्लभिन को दाहु॥
काम पावक तूलमय तन बिरह स्वाय समीर।
भसम नाहिंन होन पाबत लोचनन के नीर॥
अजौं लौं यदि भाँति है है कछुक सजग सरीर।
इते पर विनु समाधाने क्यों धरैं तिय धीर॥
कहौं कहा बनाय तुमसों सखा साधु प्रवीन।
सूर सुमति विचारिए क्यों जियै जल बिनु मीन॥ 8॥

शब्दार्थ–सुरति=प्रेम का। बल्लभिन=प्यारियों का, प्रियतमाओं का। दाहु=दुख। पावक=अग्नि। अजौंलौं=आजतक। मीन=मछली।

व्याख्या–श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं कि हे उद्धव! आप शीघ्र ही ब्रज को चले जाओ। हमारा प्रेम का संदेश सुनाकर प्यारी गोपियों के दुख को दूर करो अर्थात् गोपियों को जब यह संदेश मिलेगा कि श्रीकृष्ण ने उन्हें स्मरण किया है तो उनके हृदय, जो वियोग दुःख से दग्ध हो रहे हैं, सान्त्वना प्राप्त करेंगे। काम-रूपी अग्नि में तूल (रुई) के समान उनके शरीर जल रहे हैं। उस पर विरह के श्वासों की समीर चल रही है परन्तु उनके शरीर नेत्रों से बहने वाले आँसुओं के जल के कारण भस्म नहीं हो पा रहे हैं। तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण के अभाव में गोपियों के मन में काम की अग्नि लग रही है और इस कारण विरह की श्वासें चल रही हैं ऐसी स्थिति में उन्हें जलकर भस्म हो जाना चाहिए था, पर आंसुओं का जल मानों भस्म होने से रोक रहा है (रोने से दुःख हल्का हो जाता है)। आज तक उनका शरीर इसी तरह झुलसते-झुलसते कुछ सजग बना हुआ होगा इतने पर भी यदि कोई समाधान न किया गया, तो वे (गोपियाँ) धैर्य धारण किस प्रकार करती हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं, हे उद्धव! मैं तुम से और अधिक बातें बनाकर क्या कहूँ? आप जैसा मित्र और चतुर सज्जन कौन हो सकता है। सूरदास कहते हैं कि श्रीकृष्ण जी उद्धव से कहने लगे कि आप अपने विचार से कोई युक्ति निकाल लीजिए, जिससे वे गोपियां भी जल के बिना मछली की तरह व्याकुल होकर मर रही हैं पुनः जीवन प्राप्त कर सकें। कहने का भाव यह है कि मेरे रूप-रूपी जल के बिना वे गोपियाँ धैर्य धारण कर सकें उन्हें इस तरह आप समझा आएँ। बिना जल के मछली का जीवन असंभव है।

विशेष–'काम पावक तूलमय तन.....नीर' में रूपक अलंकार है। (2) दुःख की चरम सीमा पर पहुँचने पर जो स्थिति हुआ करती है वैसी स्थिति का वर्णन यहाँ पर हुआ है।

पथिक संदेसों कहियो जाय।
आवैंगे हम दोनों भैया, मैया जनि अकुलाय॥
याको विलगु बहुत हम मान्यो जो कहि पठयो धाय।
कहँ लौं कीर्ति मानिए तुम्हरी बड़ो कियो पय प्याय॥
कहियो जाय नदं बावा सों अरु गहि पकर्यो पाय।
दोरु दुखी होन नहिं पावहिं धूमरि धौरी गाय॥
यद्यपि मथुरा बिभव बहुत हैं तुम बिनु कछु न सुहाय।
सूरदास ब्रजवासी लोगनि भेंटत हृदय जुड़ाय॥ 9॥

नोट

शब्दार्थ–पथिक=राहगीर, यहाँ पर उद्धव के लिए सम्बोधन है। जनि=मत, न। बिलगु=बुरा। धाय=दाई, दूध पिलाने वाली, बच्चे का पालन-पोषण करने वाली। धूमरि=काली। धौरी=सफेद। विभव=वैभव, ऐश्वर्य, हृदय जुड़ाय=हृदय प्रसन्न होना।

व्याख्या–श्रीकृष्ण उद्धवजी से कहते हैं कि पथिक! (ब्रज की राह पर जाने वाले राहगीर) आप गोकुल में जाकर यशोदाजी–हमारी माता से यह संदेश कह देना कि हम दोनों भाई (श्रीकृष्ण और बलराम) शीघ्र ही आयेंगे, माता तुम व्याकुल न हो। हमने इस बात का बड़ा बुरा माना है जो आपने हमारे पास यह कहलाकर भेजा था कि मैं तो तुम्हारी पालन-पोषण करने वाली धाय के समान हूँ। (संदेसों देवकी सों कहियो, हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो)। हम आपके यश का गान कहाँ तक करें, आपने दूध पिला-पिलाकर हमें इतना बड़ा कर दिया। हे उद्धव, आप नंद बाबा के हमारी ओर से चरण छूना ओर उनसे यह कहना कि काली और सफेद गायें दुःखी न होने पावें, इसका वे ध्यान रखें। यद्यपि मथुरा में वैभव बहुत है परन्तु तुम्हारे बिना वह वैभव हमें अच्छा नहीं लगता। यहाँ की कोई भी वस्तु हमें नहीं भाती है। सूरदास कहते हैं कि ब्रज के रहने वाले लोगों से मिलकर हृदय प्रसन्न हो जाता है।

नीके रहियो जसुमति मैया।
आवैंगे दिन चारि पाँच में हम हलधर दोउ भैया॥
जा दिन में हम तुमतें बिछुरे काहु न कह्यो 'कन्हैया'।
कबहूँ प्रात न कियो कलेवा, सांझ न पीन्हों छैया॥
बंसी बेनु सँभारि राखियो और अबेर सबेरो।
मति लै जाय चुराय राधिका कछुक खिलौनो मेरो॥
कहियो जाय नंद बाबा सों निपट निठुर जिय कीन्हो।
सूर स्याम पहुँचाय मधुपुरी मधुरि संदेस न लीन्हों॥10॥

शब्दार्थ–नीके=अच्छी तरह। पीन्ही=पी। छैया=धारोष्ण, दुग्ध, थन से दूध पीना। निपट=बिल्कुल। मधुपुरी=मथुरा। बहुरि=फिर।

व्याख्या–श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं कि आप यशोदा मैया से जाकर कहना कि वे अच्छी तरह से रहें अर्थात् हमारे वियोग में व्यथित न हों। हम दोनों भाई (मैं और बलराम) चार-पाँच दिनों में आवेंगे। जिस दिन से हम आपसे बिछुड़े हैं तब से किसी ने भी हमें 'कन्हैया' नहीं कहा। अर्थात् माता-पिता जैसा स्वाभाविक प्यार भरा सम्बोधन मथुरा के राजवैभव में संभव नहीं है। न यहाँ मथुरा में हमें प्रातःकाल ही मक्खन और छाछ आदि का कलेवा मिला और न शाम के समय गायों के थन की धार से निकलने वाला दूध पिया। आप मेरी वंशी को संभाल कर रखना तथा अबेरी-सबेरी किसी समय कहीं राधिका आकर मेरा कोई खिलौना न चुरा ले जाय इसका भी ध्यान रखना। नंद बाबा से भी जाकर कहना कि आपने तो अपना हृदय बिल्कुल कठोर कर लिया। सूरदास कहते हैं कि श्रीकृष्ण कहने लगे कि नंद बाबा ने हमें मथुरा पहुँचाकर फिर हमारी कोई खबर-सुधि नहीं ली।

विशेष–(1) प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण को यशोदा की स्मृति खटकती है। (2) इस पद में मनोवैज्ञानिक स्पर्श के साथ-साथ किशोरावस्था में बाल्यावस्था के खोये हुए पदचिह्न हैं। (3) 'कन्हैया' शब्द द्वारा माता-पिता द्वारा प्रयुक्त सम्बोधन से मार्मिकता का स्पष्ट आभास है।

उद्धव मन अभिलाष बढ़ायो।
जदुपति जोग जानि जिय सांचो नयन अकास चढ़ायो॥
नारिन पै मोको पठवत हौ कहत सिखावन जोग।
मन ही मन सब करत प्रशंसा है मिथ्या सुख भोग॥
आयसु मानि लियो सिर ऊपर प्रभु-आज्ञा परमान।
सूरदास प्रभु पठवत गोकुल मैं क्यों कहौं कि आन॥11॥

शब्दार्थ–जोग=योग। आयुश=आज्ञा। परमान=प्रमाण। पठवत=भेजते हैं। आन=अन्य, अन्य कुछ।

नोट

व्याख्या–श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर उद्धव सोचने लगे कि श्रीकृष्ण योग-मार्ग पर विश्वास करने लगे हैं। अतः वे अपने मन में बहुत प्रसन्न हुए। वे तरह-तरह की इच्छाएं करने लगे। जब उन्हें यह ध्यान आया कि श्रीकृष्ण ने योग को सच्चा समझ लिया है तो उनके नेत्र आकाश में चढ़ गये, अर्थात् उनकी दृष्टि बहुत ऊंची हो गयी; उन्हें गर्व हो गया। श्रीकृष्ण मुझे स्त्रियों के पास योग सिखाने के लिए भेजते हैं, अच्छा है स्त्रियों को समझाने में क्या लगता है। उद्धव अपने मन ही मन फूल रहे हैं, वे आत्मा प्रशंसा से व्याप्त होकर सोच रहे हैं कि संसार के सुख भोग वास्तव में ही मिथ्या हैं तभी तो श्रीकृष्ण पर योग का प्रभाव पड़ा है। उन्होंने श्रीकृष्ण की आज्ञा को मानकर सिर माथे पर लिया। प्रभु की आज्ञा ही प्रमाण है अर्थात् तब प्रभु आज्ञा दे तब सोचने-समझने की आवश्यकता नहीं होती। सूरदास कहते हैं कि उद्धव जी सोचने लगे कि जब श्रीकृष्ण ही मुझे गोकुल को भेज रहे हैं तो मैं कुछ और दूसरी बात क्यों कहूँ। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण की आज्ञा के सामने मुझे और दूसरी बात नहीं सोचनी चाहिए।

विशेष–(1) सूरदास नाना भांति के वर्णन करते हुए यत्र-तत्र 'हरि', 'प्रभु', 'श्याम' आदि शब्दों के द्वारा भगवान का स्मरण करते जाते हैं। इसका कारण सर्वत्र उनकी भक्ति भावना व्याप्ति है। (2) इस पद से उद्धव के ज्ञान के गर्व का और भी स्पष्ट लक्षण दृष्टिगत होता है।

18.1.1 कुब्जा के वचन उद्धव के प्रति

सुनियो एक संदेसो ऊधो गोकुल को जात।
ता पाछे तुम कहियो उनसों एक हमारी बात॥
माता-पिता को हेत जानि कै कान्ह मधुपुरी आए।
नाहिंन स्याम तिहारे प्रीतम, ना जसुदा के जाए॥
समुझी बूझौ अपने मन में तुम जो कहा भलो कीन्हों।
कह बालक, तुम मत्त ग्वालिनी सबै आप बस कीन्हों।।
और जसोदा माखन-काजै बहुतक त्रास दिखाई।
तुमहिं सबै मिलि दाँवरि दीन्हीं रंच दया नहिं आई।।
अरु वृषभानसुता जो कीन्हों सो तुम सब जिय जानो।
यही लाज तजी ब्रज मोहन अब काहै दुख मानो॥
सूरदास यह सुनि सुनि बातें स्याम रहे सिर नाई।
इत कुब्जा उत प्रेम ग्वालिनी कहन न कछु बनिआई॥12॥

शब्दार्थ–हुतु=प्रेम। नाहिन=न तो, नहीं। मत्त=मतवाली। त्रास–दुःख। दावरि=रस्सी। रंच=जरा सी, तनिक भी। जिमि=जी में, मन में। वृषभानसुता=वृषभानु की पुत्री, राधा।

प्रसंग–प्रस्तुत पद में कुब्जा भी उद्धव के हाथ गोपियों के पास सन्देश भेजती है। उसके कथन में असूया का भाव है जैसे गोपियों के कथन में आगे चलकर कुब्जा के प्रति असूया का भाव व्यंग्य से व्यक्त हुआ है। कुब्जा कंस की दासी थी। वह शरीर से कुबड़ी थी। श्रीकृष्ण के स्पर्श के उसका कुबड़ापन दूर हो गया; वह एक सुन्दर स्त्री बन गयी। तभी से वह श्रीकृष्ण की सेवा में रहने लगी। उसको जब यह पता चला कि उद्धवजी गोपियों के पास जा रहे हैं तो वह भी अपना संदेश उन्हें देने लगी। इस भाव का समर्थन सूरसागर की निम्नलिखित पंक्तियों से होता है–

कुबिजा सुन्यौ जात ब्रज ऊधौ महलहिं लियो बुलाई।
अपने कर पाती लिखि राधेहिं, गोपिन सहित बड़ाइ।।

इस तरह के चुने हुए पदों में से प्रस्तुत पद हैं जिनमें कुब्जा उद्धव को संदेश देती हुई कह रही है–

व्याख्या–हे उद्धव! तुम ब्रज को जा रहे हो अतः वहाँ के लिए मेरा भी एक सन्देश सुनते जाओ। जब आप अपना सन्देश दे लें तो उसके बाद एक हमारी बात भी गोपियों से कहना। वह यह कि श्रीकृष्ण अपने माता-पिता देवकी और वसुदेव का प्रेम देखकर मथुरा आये हैं। न तो वे गोपियों के प्रियतम हैं और न यशोदा के पुत्र हैं। तुम सब अपने मन में ही सोच-समझ लो कि तुमने श्रीकृष्ण के गोकुल में रहने पर उनके साथ क्या भला किया था। कहाँ तो छोटी-सी आयु के श्रीकृष्ण और कहाँ तुम मतवाली ग्वालिनें? आप सबने उन्हें अपने वश में कर लिया था। यशोदा

नोट

ने तो मक्खन के कारण उन्हें बहुत ही दुख दिया था। तुम सबने श्रीकृष्ण को बांधने के लिए रस्सी दी थी उस समय तुमको उस पर तनिक भी दया नहीं आयी? वृषभानु की पुत्री राधा ने जो कुछ किया है वह तो तुम सब अपने मन में अच्छी तरह जानती ही हो। इसी शर्म के मारे तो श्रीकृष्ण जी ने ब्रज को छोड़ दिया। अब आप दुख क्यों महसूस करती हो? आपकी करतूतों से ही तो श्रीकृष्ण गोकुल को छोड़कर मथुरा आए हैं। सूरदास कहते हैं कि कुब्जा की इस तरह की बातें सुन-सुन कर श्रीकृष्ण सिर झुकाए हुए स्थिर थे क्योंकि इधर तो उनके प्रेम की पात्र कुब्जा थी और उधर उनके प्रेम की संगिनी गोपियाँ थीं अतः उनसे कुछ बात नहीं बन रही थी कि क्या कहें और क्या न कहें?

18.1.2 उद्धव का ब्रज में जाना

कोऊ आवत है तन स्याम।
बैसेई पट, बैसिय रथ-बैठनि, वैसिय है उर दाम॥
जैसी हुतिं उठि तैसिय दौरी, छांड़ि सकल गृहकाम।
रोम पुलक, गदगद भइ तिहिछन सोचि अंग अभिराम॥
इतनी कहत आय गए ऊधो, रही ठगी तिहि ठाम।
सूरदास प्रभू क्यों ह्याँ आवै बँधे कुब्जा रस स्याम॥13॥

शब्दार्थ–वैसेइ=वैसे ही। दाम=माला। छन=क्षण। अभिराम=सुन्दर। ठाम=जगह, ठौर, स्थान। कुब्जा-रस=कुब्जा के प्रेम।

व्याख्या–उद्धव को दूर से देखकर गोपियाँ कह रहीं हैं कि कोई कृष्ण की भाँति ही श्याम शरीर का आ रहा है। उसके वस्त्र वैसे ही हैं अर्थात् जिस प्रकार श्रीकृष्ण पीताम्बर को धारण किया करते थे वैसे ही इस नये आने वाले व्यक्ति ने (उद्धव ने) वस्त्र धारण कर रखे हैं। वह रथ में उसी प्रकार से बैठा हुआ है। उसके गले में उसी प्रकार माला भी शोभा दे रही है। राह देखते ही गोपियाँ जैसी स्थिति में थीं वैसे ही उठ खड़ी हुईं और अपने घर के सब कामों को छोड़कर दौड़ पड़ीं। उनके शरीर में रोंगटे खड़े हो गये, कंठ गद्गद हो गया और वे उस क्षण श्रीकृष्ण के सुन्दर अंगों का स्मरण करने लगीं। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण के रूप का स्मरण हो आया और वे प्रेम-विभोर हो गयीं। इसी बीच में उद्धवजी उनके पास तक पहुँच गये। उन्हें देखकर गोपियों ने उद्धव को श्रीकृष्ण समझ लिया था इसीलिए उनकी आतुरता और उत्सुकता बलवती हो गई थी, पर उद्धव हो देखकर वे स्तब्ध रह गयीं कि यह व्यक्ति तो कोई दूसरा ही आ निकला। सूरदास कहते हैं कि इसके पश्चात् गोपियाँ कृष्ण के प्रति उलाहनापूर्ण शब्द व्यक्त करने लगीं कि वे यहाँ क्यों आवेंगे वे तो कुब्जा के प्रेम में बँधे हुए हैं।

विशेष–(1) इस पद में रोम पुलक के वर्णन द्वारा शृंगार रस के अयत्नज अनुभाव पुलक की स्थिति की अभिव्यक्ति की गयी है।

(2) उद्धव को देखकर कृष्ण की कल्पना पर पानी फिर जाने से गोपियों द्वारा जो कुब्जा को लक्ष्य करके व्यंग्य वचन कहे गये हैं वे स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक हैं।

है कोई वैसीई अनुहारि।
मधुबन तें इत आवत, सखि री! चितौ तु नयन निहारि॥
माथे मुकुट, मनोहर कुण्डल, पीत बसन रुचिकारि।
रथ पर बैठि कहत सारथि सों ब्रज तन बाहं पसारि॥
जानति नाहिन पहिचानति हौं मन बीते जुग चारि।
सूरदास स्वामी के बिछुरे जैसे मीन बिन बारि॥14॥

शब्दार्थ–अनुहारि=बनावट। चितौ=देखो। रुचि कारि=सुन्दर, रुचि कारि=सुन्दर, रुचिर। ब्रज तन=ब्रज की ओर। पसारि=फैलाकर। मनु=मानो।

व्याख्या–जब उद्धव ब्रज में दिखायी पड़ जाते हैं तो एक गोपी दूसरी गोपी से कह रही है हे सखि! इस व्यक्ति की बनावट तो कुछ वैसे ही है अर्थात् इसे देखकर ऐसा लगता है जैसे यह श्रीकृष्ण हों क्योंकि इसके रूप-रंग की बनावट उन्हीं के समान लग रही है। हे सखि! मधुबन से इधर की ओर आ रहा है तुम नेत्रों से अच्छी तरह देख तो

नोट

लो। उसके माथे पर मुकुट है कानों मे सुन्दर कुंडल शोभायमान हैं और सुन्दर पीला वस्त्र शोभा दे रहा है। वह श्रीकृष्ण जैसा लगने वाला व्यक्ति रथ पर बैठा हुआ है और अपने सारथी से ब्रज की ओर बाहं फैलाकर कुछ कह रहा है। मैं इसे जानती नहीं हूँ पर देखकर कुछ पहचान रही हूँ कि मानो इन्हें कभी चार युग पहले देखा था अर्थात् ऐसा लग रहा है कि इन्हें बहुत दिन पहले कभी देखा हो। (अत्यन्त साम्य के कारण कई बार ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति को देखकर यह तो ख्याल आ जाता है कि इससे हमारा परिचय है, पर कब और कैसे तथा क्या परिचय है, यह स्मरण नहीं हो पाता, यही भाव गोपी द्वारा व्यक्त हो रहा है।) सूरदास कहते हैं कि गोपियों के स्वामी श्रीकृष्ण के बिछुड़ जाने पर उनकी दशा इस प्रकार हो रही है जिस तरह मछली की हालत बिना जल के होती है। कहने का भाव यह है कि गोपियां कृष्ण के विरह में अत्यन्त व्याकुल हैं।

देखा नंदद्वार रथ ठाढ़ो।
बहुरि सखी सुफलकसुत आयो पर्‌यो संदेह उर गाढ़ो॥
प्रान हमारे तबहिं गयो लै अब केहि कारन आयो।
जानति हौं अनुमान सखी री! कृपा करन उठि धायो॥
इतने अन्तर आय उपंगसुत तेहि छन दरसन दीन्हों॥
तब पहिचानि सखा हरिजू को परम सुचित तन कीन्हों।
तब परनाम कियो अति रुचि सों और सबहिं कर जोरे।
सुनिवत रहे तैसेई देखे परम चतुर मति भोरे॥
तुम्हरों दरसन पाय आपनी जन्म सफल करि जान्यो।
सूर ऊधो सों मिलत भयो सुख ज्यों झख पायो पान्यो॥15॥

शब्दार्थ–बहुरि=फिर। सुफलकसुत=अक्रूरजी। उपंगसुत=उद्धवजी। भोरे=भोले। झख=मछली। पान्यो=पानी।

व्याख्या–उद्धवजी सबसे समीप आ गये हैं। उनका रथ नंद के दरवाजे पर आ गया है तब एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि देखो नंद के दरवाजे पर रथ खड़ा हुआ है। हे सखि! हृदय में बड़ा भारी सन्देह हो रहा है फिर कहीं अक्रूर तो नहीं आ गया। (जिस समय श्रीकृष्ण को कंस ने बुलाया था तब अक्रूर ही रथ लेकर आये थे अब भी कोई रथ लेकर आया है अतः गोपियों को सन्देह हो रहा है) अक्रूर हमारे प्राण श्रीकृष्ण को तभी ले गया था, अब न मालूम किस कारण से यहाँ आया है। या हे सखि! ऐसा लगता है कि वह अक्रूर हमारे ऊपर कृपा करने के लिए आया है। अर्थात् जिस प्रकार रथ लेकर पहले कृष्ण को यहां से गया था वैसे ही रथ लेकर अब कृष्ण को यहां छोड़ने आया है, यह भाव है। इसी बीच में उद्धवजी वहाँ आ गये और वे सबको दिखलाई देने लगे। जब गोपियों ने यह जान लिया कि वे श्रीकृष्ण के सखा हैं तो उनको बहुत संतोष हुआ। सबने बड़े प्रेम के साथ उनको प्रणाम किया और सबने उन्हें हाथ जोड़े। वे कहने लगीं कि आपको जैसा सुनते रहते थे आप वैसे ही परम चतुर बुद्धि वाले और भले हैं। आपका दर्शन पाकर तो हम अपने जन्म को सफल समझ रही हैं। सूरदास जी कहते हैं कि जब गोपियाँ उद्धव से मिलीं तो उन्हें ऐसा सुख प्राप्त हुआ जैसे कि मछली को पानी मिल गया हो। कहने का अर्थ यह है कि जिस प्रकार जल से रहित हुई मछली बेहद बेचैनी से छटपटाती रहती है उसी प्रकार गोपियाँ श्रीकृष्ण से प्रेम के लिए उत्सुक तड़प रही थीं। उद्धवजी, जो श्रीकृष्ण के मित्र हैं और उनका सन्देश लाये हैं, उन्हें मिले अपने प्रिय के प्रेम-वारि की आशा से मछली की भाँति ही सन्तोष प्राप्त हुआ।

विशेष–(1) 'ज्यों..... पान्यों' में उपमा अलंकार है।

कहौं कहाँ तें आए हो।
जानति हौं अनुमान मनो तुम जादवनाथ पठाए हो॥
बैसोई बरन, बसन पुनि वैसेई, तन भूषन सजि ल्याए हौ।
सरबसु लै तब संग सिधारे अब का पर पहिराए हौ॥
सुनहु मधुप! एकै मन सब को, सो तो वहाँ लै छाए हौ।
मधुबन की मानिनी मनोहर तहँहि जाहु जहँ भाए हौ॥

नोट

अब यह कौन सयापन ब्रज पर का कारन उठि धाए हौ।
सूर जहाँ लौं स्यामगात हैं जानि भले करि पाए हौ ॥1॥

शब्दार्थ–भूषण=आभूषण। संजि=सजाकर। एकै=एक। मधुवन=एक बन-मथुरा में। सयानप=चतुरता। जानि भले करि पाये हौ=भली-भाँति समझ लिए गये हो।

व्याख्या–उद्धवजी को देखकर कोई सखी उनसे पूछती है कि आप यह तो बतलाएँ कि आप कहाँ से आये हैं। मैं अनुमान लगाकर यह जान सकती हूँ कि आपको यादवनाथ श्रीकृष्ण जी ने यहाँ पर भेजा है। आपका रंग भी वैसा ही है जैसा श्रीकृष्ण जी का था। फिर आपके वस्त्र भी उसी प्रकार के हैं। आपके शरीर-भर के आभूषण भी उसी प्रकार के हैं। आप हमारा सर्वस्व लेकर पहले ही यहाँ से चले गये हो। अब आप किसे ले जाने के लिए आये हो। हे मधुप! सुनो हम सब का एक मन श्रीकृष्ण थे (सबके मन श्रीकृष्ण के वश में थे और सबके मन उनके समीप ही रहते थे) उन्हें लेकर तो मथुरा में रख लिया है। आपके यहाँ मथुरा में सुन्दर मानिनी स्त्रियाँ हैं आप वहीं पर जाओ, आपको वहाँ का रहना ही अच्छा लगता है। समझ में नहीं आता कि यह आपकी कौन-सी चतुराई है। न मालूम किस कारण से आप ब्रज की ओर आ गये हो। सूरदास जी कहते हैं कि जहाँ तक काले शरीर वाले हैं वे सब भली-भाँति समझ लिए गये हैं।

विशेष–(1) इस पद की अन्तिम पंक्ति का व्यंग्य दृष्टव्य है। श्याम वालों को अच्छी तरह से भर पाया है इससे व्यंग्यार्थ यह है कि श्याम गात वाले सब धोखा देने वाले होते हैं। श्रीकृष्ण श्याम गात हैं वे सबको छोड़कर चले गये। अक्रूर जी श्याम गात हैं वे श्रीकृष्ण को यहाँ से लेकर चले गये। मधुप भी ऐसे ही होते हैं।

(2) 'मधुप' शब्द का सम्बोधन भ्रमरगीत प्रसंग की सार्थकता सिद्ध करने के लिए उपयुक्त है।

ऊधो को उपदेस सुनी किन कान दै।
सुन्दर श्याम सुजान पठायो मान दै। ध्रुव॥
कोउ आयो उत ताय जतै नंदसुवन सिधारे।
बहै बेनु-धुनि होय मनो, आए नंद प्यारे॥
धाईं सब गलगाजि कै ऊधो देखे जाय।
लै आई ब्रजराज पै हो, आनद उर न समाय॥
अरघ आरती, तिलक, दूध, दधि माथे दीन्हीं।
कंचन कलस भराए आनि परिकरमा कीन्हीं॥
गोप भी आंगन भई मिलि बैठे यादवजात।
जलझारी आगे धरी, हौं बूझति हरि-कुसलात॥
कुसलछेम बसुदेव, कुसल देवी कुबजाऊ॥
कुसल-छेम अक्रूर कुसल नीके बलदाऊ।
पूछि कुसल गोपाल को रहीं सकज गहि पाय।
प्रेम मगन ऊधो, हो देखत ब्रस को भाय॥
मन-मन ऊधो भए, कहै यह न बूझिय गोपालहिं।
ब्रज को हेतु बिसारि जोग सिखवत ब्रजबालहिं॥
पाती बांचि न आवई रहे नयन जल पूरि।
देखि प्रेम गोपिन को, हो ज्ञान-गरब गयौ दूरि।।
तब इत उत बहराय नीर नयनन मैं सोख्यों।
ठानी कथा प्रबोध बोलि सब गुरू समोख्यो॥
जो ब्रज मुनिवर ध्यावहीं पर पावहिं नहिं पार।
सो व्रत सीखो गोपिका, हो छांड़ि विषम विस्तार॥

नोट

सुनि ऊधो के बचन रहीं नीचे करि तारे।
मनो सुधा सौं सींचि आनि विषज्वाला जारे॥
हम अबला कह जानहीं जोग जुगुति की रीति।
नंदनंदन व्रत छांड़ि कै, हो, को लिखि पूजै भीति?
अबिगत, अगह, अपार, आदि अवगत है सोई।
आदि निरंजन नाम ताहि रंजैं सब कोई॥
नैन नासिका अग्र है तहाँ ब्रह्म को बास।
अविनासी बिनसै नहीं, हो सहज ज्योति-परकास॥
घर लागैं औधूरि कहे मन कहा बँधावै?
अपनो घर परिहरे कहीं को घरहि बतावै?
मूरख जादवजात है, हो, हमहिं सिखावत जोग।
हमको भूली कहत हैं, हो हम भूलीं किधौं लोग?
गोपिहु तैं भयो अंध ताहि दुहु लोचन ऐसे।
ज्ञाननैन जो अंध ताहि सूझै धौं कैसे?
बूझै निगम बोलाइ कै, कहै वेद समुझाय।
आदि अंत जाके नहीं, हो कौन पिता को माय?
चरन नहीं, भुज नहीं, कहौं ऊखल किन बांधो।
नैन नासिका मुख नहीं चोरि दधि कौने खांधो?
कौन खिलायो गोद में, किन कहै तोतरे बैन?
ऊधो ताकौ न्याव है, हो, जाहि न सूझै नैन॥
हम बूझति सतभाव न्याब तुम्हरे मुख साँचो।
प्रेम-नेम रसकथा कहौ कंचन की कांचो॥
जो कोउ पावै सीस दै ताको कीजै नेम॥
मधुप हमारी तौं कहौ, हो जोग भलो किधौं प्रेम।
प्रेम प्रेम सों होय प्रेम सों पारहि जैए।
प्रेम बंध्यो संसार, प्रेम परमारथ पैए॥
एकै निहचै प्रेम को, जीवन-मुक्ति रसाल।
सांचो तिहकै प्रेम की, हो, जो मिलिहैं नंदलाल।।
सुनि गोपिन को प्रेम-नेम ऊधो को भूल्यो।
गावत गुन गोपाल फिरत कुंजन में फूल्यो॥
छन गोपिन के पग धरै, धन्य तिहारौं नेम।
धाय धाय द्रुम भेंटही, हो ऊधो छाके प्रेम॥
धनि गोपी, धनि गोप, धन्य सुरभी बनचारी।
धन्य, धन्य! सो भूमि जहाँ बिहरे बनवारी।।
उपदेसन आयो हुतो मोहिं भयो उपदेस।
ऊधो जदुपति पै गए, हो, किए गोप को बेस॥
भूल्यो, जदुपति नाम, कहत गोपाल गोसाईं।
एक बार ब्रज जाहु देहु गोपिन दिखराई॥

नोट

गोकुल को सुख छांड़ि के कहाँ बसे हौ आय।
कृपावंत हरि जानि कै, हो ऊधो पकरे पाय॥
देखत ब्रज को प्रेम नेम कछु नाहिंन भावै।
उमड्यो नयननि नीर बात कछु कहत न आवै॥
सूर स्याम भूतल गिरे, रहे नयन जल छाय।
पोंछि पीतपट सों कह्यो, आए जोग सिखाय?॥17॥

शब्दार्थ–उततायें=वहाँ से, उधर की ओर से। गलगाजि कै=आनंदित होकर। यादवजात=यहाँ पर उद्धव से तात्पर्य है। भाय=भाव। बूझिय=समझ में आना। गोपालहिं=श्रीकृष्ण की। समोख्यो=सहेज कर कहा। तारे=आंख के तारे, पुतली। भीति=दीवार। घर लागै=घर पर आ लगना, ठिकाने लगना। औधूरी=घूमकर। खाँधो=खाया। नेम=नियम, योग-साधना। काँचो=काँच। छाके=छक जाना, अघा जाना।

व्याख्या–एक सखी कहती है कि उद्धव के उपदेश को ध्यान से क्यों नहीं सुनती हो। इन्हें तो सुन्दर सुजान श्रीकृष्ण जी ने सम्मानपूर्वक यहां पर भेजा है। कोई उधर से आया है जिधर की ओर नंद के पुत्र श्रीकृष्ण जी गये थे। श्रीकृष्ण की वंशी जैसी ही ध्वनि हो रही है ऐसा मालूम पड़ता है कि नंद के प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण भी आये हों। (यह सुनते ही) सभी सखियाँ आनन्दित होकर दौड़ पड़ीं और उन्होंने उद्धव को जाकर देखा। वे उन्हें अपने साथ लिए ब्रज के राजा नंद के पास ले आयीं। उनके हृदय में आनन्द समा नहीं रहा था। उन्होंने उद्धव जी को अर्घ्य दिया, उनकी आरती उतारी और दूध तथा दधि का माथे पर तिलक किया। सोने के कलशों को भरकर लायीं और उनकी परिक्रमा की। गोपों की आंगन में भीड़ लग गयी। उद्धवजी उनसे मिलकर बैठ गये। उनके आगे जल का बर्तन (सुराही) रख दिया गया फिर सबने श्रीकृष्ण की कुशलता पूछी। वसुदेव की कुशल-क्षेम तथा कुब्जा की कुशलता भी पूछी। इसी तरह अक्रूर तथा बलराम की भी कुशल-क्षेम पूछी। श्रीकृष्ण के समस्त सम्बन्धियों सहित कुशल पूछकर सभी गोपियाँ गद्‌गद् हो गयीं और उन्होंने उद्धव के पैर पकड़ लिए। ब्रज की गोपियों के इस तरह के उत्कट प्रेम भाव को देखकर उद्धव भी प्रेममग्न हो गये। उद्धवजी अपने मन में कहने लगे कि गोपाल श्रीकृष्ण की यह बात समझ में नहीं आती कि उन्होंने ब्रज के ऐसे प्रेम को भुलाकर मुझे ब्रज की स्त्रियों को योग सिखाने के लिए क्यों भेज दिया है। गोपियों की यह दशा थी कि उनसे पत्री भी पढ़ी नहीं जा रही थी क्योंकि उनके नेत्र हर्ष के आँसुओं से व्याप्त हो रहे थे। गोपियों के इस प्रकार के प्रेम को देखकर उद्धव का ज्ञान का गर्व दूर हो गया। इस इधर-उधर की बात करके उनके मन को बहलाया और उनके (या अपने) नेत्रों के जल को सुखाया। उसके पश्चात् सबको ज्ञान देने के लिए गुरु की तरह सहेज कर रखी हुई कथा को उन्होंने कहना प्रारम्भ किया।

हे गोपियों! जिस व्रत का मुनि लोग ध्यान धरने पर भी पार नहीं पाते उस व्रत को तुम मुझसे सीखो और इन सांसारिक विषय-भोगों के विस्तार को छोड़ दो। उद्धव के वचनों को सुनकर गोपियों ने अपनी आँखों की पुतलियाँ नीचे की ओर झुका लीं मानो पहले अमृत से सींचकर बढ़ाई हुई बेलों को लाकर विषम की अग्नि में जला दिया गया हो। कहने का भाव यह है कि श्रीकृष्ण के प्रेम से बढ़े हुए गोपियों के हृदय को इस प्रकार के व्रत की बात सुनकर बहुत दुख हुआ। वे उद्धवजी से अत्यंत सरलता और स्वाभाविकता के साथ कहने लगीं कि हम स्त्रियाँ भला योग की मुक्तियों के मार्ग को क्या जानें? श्रीकृष्ण के व्रत को छोड़कर दीवार पर लिखकर योग-व्रत साधना को कौन पूरा करे। अर्थात् हम तो श्रीकृष्ण के अनुराग को जानती हैं। योगी लोग जो दीवार पर चित्र बनाकर या कोई बिन्दु लगाकर जो चित्त एकाग्र करते हैं उसे हम क्या जानें? जो ब्रह्म अविगत है (न जाना जाने वाला है) अगह है (न पकड़ा जाने वाला है), अपार है (जिसका पार नहीं पाया जा सकता) वही जान लेना कैसे संभव है? जिसका नाम आदि निरंजन है अर्थात् माया-रहित है उसे ही सब योगी ध्यान लगाकर देखते हैं। नेत्र और नासिका के अग्र भाग पर जिसे त्रिकुटी कहा जाता है, वहां पर ब्रह्म का निवास है। वह अविनाशी है, कभी नष्ट नहीं होती वह ज्योति-स्वरूप है और स्वाभाविक रूप से ही स्वयं प्रकाशित है- ऐसा ज्ञानियों का मत है। पर आप यह सोचकर तो देखिए कि मन तो इधर-उधर घूम-फिरकर अपने ठिकाने पर स्वयं ही आकर लगता है। मन को भला बाँध कौन सकता है। और अपने घर को छोड़ देने पर बताइए फिर हमें कौन अपने घर को बतलाकर ला सकेगा। (कहने का तात्पर्य यह है कि हमारा मन श्रीकृष्ण से लगा हुआ है। वह यदि कहीं घूमेगा भी तो फिर वहीं आ जाएगा। ऐसी दशा में हम श्रीकृष्ण के प्रेम से अपने मन को हटाकर भुलावे में नहीं पड़ना चाहतीं।) ये उद्धव मूर्ख हैं जो हम जैसी कृष्णानुरागी गोपियों को योग की साधना

नोट

सिखाते हैं। वे हम को भूली हुई कहते हैं। गोपियों की ओर से तो उद्धव! आप अंधे हो गये हो अर्थात् गोपियों की ओर से आपने आँखे बंन्द कर ली हैं। न मालूम आपके ये दोनों नेत्र कैसे हैं। हे उद्धव! आप तो ज्ञान के गर्व में अंधे हो। भला आपको सही-सही मार्ग कैसे सूझ सकता है। कभी तो आप शास्त्र का प्रणाम देते हैं, सभी वेदों के अनुसार ज्ञान की बातें समझाते हैं परन्तु हम पूछती हैं ब्रह्म को आप आदि और अंत-रहित कहते हो उसका कौन पिता है? और कौन माता? यदि आप कहते हैं कि उनके चरण नहीं हैं, कभी वेदों के अनुसार ज्ञान की बातें समझाते हैं परन्तु हम पूछती हैं ब्रह्म को आप आदि और अंत-रहित कहते हो उसका कौन पिता है? और कौन माता? यदि आप कहते हैं कि उनके चरण नहीं हैं, भुजाएँ नहीं हैं तो बताइए यशोदा ने ऊखल से किसको बांधा था। यदि उनके नेत्र, नासिका और मुख नहीं तो दधि चुराकर किसने खाया था। यशोदा ने किसको गोद में खिलाया था? किसने अपनी बाल-लीला करते हुए गोकुल में तोतले वचन बोले थे? हे उद्धव, ये बातें उसे ठीक लग सकती हैं जिसे नेत्रों से कुछ दिखाई ही न देता हो। अच्छा हम सच्ची-सच्ची बात आप से पूछती हैं और जो तुम अपने मुख से कहोगे उसे ही हम सच्चा फैसला न्यायसंगत मानेंगी। आप ही बतलाइए कि योग के नियम अच्छे या प्रेम की रस-कथा अच्छी, इसमें से कौन-सी चीज कंचन है और कौन-सी कांच। अर्थात् प्रेम और योग में कौन श्रेष्ठ है। योग-साधन तो उसके लिए करनी चाहिए जिसे कोई सिर देकर भी प्राप्त कर सके अर्थात् अनेक यौगिक कष्टों के सहन करने के पश्चात् भी ब्रह्म की प्राप्ति संभव नहीं है। हे उद्धव! आप को हमारी कसम है ठीक-ठीक कहना, भला योग की साधना श्रेष्ठ है या प्रेम का मार्ग? प्रेम से प्रेम होता है और प्रेम से इस संसार से पार जाया जा सकता है। (इसका भाव यह है कि यदि आप सामान्यः किसी से प्रेम करोगे तो उसके प्रेम की प्राप्ति कर सकोगे और यदि यही प्रेम ईश्वर से होगा, तो संसार-सागर से पार हो जाओगे) संसार प्रेम के बन्धन में ही बंधा हुआ है। प्रेम से ही परमार्थ को प्राप्ति किया जा सकता है। इसी से तो नारद ने ईश्वर की भक्ति का स्वरूप बतलाते हुए अपने भक्ति सूत्र में कहा है– 'सा त्वमस्मिन् परम प्रेम रूपा' यह निश्चित है। एकमात्र निश्चत है कि प्रेम के द्वारा सुन्दर जीवनमुक्ति की प्राप्ति हो सकती है पर यदि किसी को प्रेम का सच्चा निश्चय है तो वह तभी समझिए जब कि वह प्रेम द्वारा श्रीकृष्ण की प्राप्ति करे। भाव यह है कि प्रेम करने की वास्तविकता यह है कि उसके द्वारा श्रीकृष्ण की प्राप्ति का प्रयत्न हो।

गोपियों के प्रेम की बातें सुनकर उद्धवजी अपनी योग-साधना की बातों को भूल गये। वे श्रीकृष्ण के गुण गाते हुए ब्रज के कुंजो में आनन्द से मस्त हुए घूमने लगे। क्षण-भर में ही वे गोपियों के पैर पकड़ लेते और कहते कि तुम्हारा प्रेम धन्य है। कभी वे दौड़कर वृक्षों से लिपट जाते। इस तरह उद्धवजी प्रेम से छककर अपनी सुध-बुध खो बैठे हैं। वे कहने लगे कि ब्रज की गोपियाँ धन्य हैं, यहां के गोप धन्य हैं और वे वन में चरने वाली गौएं भी यहां की धन्य हैं। यह ब्रज की भूमि धन्य है, जहाँ पर श्रीकृष्ण जी ने विहार किया था। यहां पर घूम-फिरकर आनन्द किया था। मैं ब्रज की युवतियों को ज्ञान-मार्ग का उपदेश देने के लिए आया था परन्तु मुझे स्वयं यहां आकर उपदेश प्राप्त हुआ; प्रेम-मार्ग का उपदेश मैंने गोपियों से सीख लिया है।

इसके पश्चात् उद्धव जी श्रीकृष्ण के पास गये। वे ब्रज से प्रेम की शिक्षा लेकर आये थे, तद्नुसार आत्मविभोर हुए गोप का वेश धारण करके उनसे मिले और पहले जो 'जदुपति' आदि सम्बोधन से उन्हें पुकराते थे उनका त्याग करके उन संबोधनों को अपनाया जिन्हें गोप-गोपियां कहा करती थीं। फलतः श्रीकृष्ण जी को उन्होंने 'गोपाल और गोसाईं' कहा। हे गोपाल! आप एक बार ब्रज में जाओ और गोपियों को अपने दर्शन दे आओ। आप गोकुल के इस प्रकार के सुख को छोड़कर कहां आकर बस गये हो? उद्धव भी जानते थे कि श्रीकृष्ण, कृपा करने वाले हैं अतः वे अपने अपराध से लज्जित हुए और उनके चरणों में गिर पड़े। अपराध यह था कि उन्हें ज्ञान का गर्व था और प्रेम को तुच्छ समझते थे)। वे कहने लगे कि श्रीकृष्ण जी ब्रज के प्रेम को देखकर अब योग-साधना की बातें कुछ भी अच्छी नहीं लगतीं। उनके नेत्रों से अश्रु बह रहे थे और गद्गद कंठ होने से मुख से वचन नहीं निकल रहे थे। सूरदास कहते हैं कि इस अवस्था को प्राप्त हुए उद्धव श्रीकृष्णजी के सामने पृथ्वी पर गिर पड़े। जल उनके नेत्रों में छाया हुआ था; बराबर आँसुओं की घरा बह रही थी श्रीकृष्ण जी ने पीत पट से उनके आसुओं को पोंछा और उनसे कहा कि गोपियों को योग मार्ग की साधना सिखा आये?

विशेष–(1) यहां भ्रमरगीत प्रसंग का संक्षेप में वर्णन हुआ है। (2) यह स्पष्ट है कि सूरदास ने ज्ञान-मार्ग पर प्रेम मार्ग की विजय दिखलाने के लिए इस प्रसंग की निबन्धना की है। (3) प्रेम की तन्मयता की स्थिति का यह सुन्दर उदाहरण है।

नोट

क्या आप जानते हैं गोपियाँ उद्धव से वार्तालाप करते समय अलि (भ्रमर) को माध्यम बनाकर अपनी बात कहती हैं।

हमसों कहत कौन की बातें?
सुनि ऊधो! हम समुझत नाहीं फिरि पूछति हैं तातें॥
को नृप भयो कंस किन मार्‌यो को वसुद्यौ-सुत आहि?
यहाँ हमारे परम मनोहर जीवतु हैं मुख चाहि॥
दिनप्रति जात सहज गोचारन गोप सखा लै संग।
बासरगत रजनी मुख आवत करत नयन गति पंग॥
को व्यापक पूरन अबिनासी, को विधि वेद अपार?
सूर वृथा बकवाद करत हौ या ब्रज नंदकुमार॥ 18॥

शब्दार्थ–तातैं = इससे, इसलिए। वसुद्यौ-सुत = वसुदेव का पुत्र। आहि = है। जीवतु = जीवित। चाहि = देखकर। बासर गत = दिन के चले जाने पर। रजनी मुख = संध्या। पंग = स्तब्ध।

व्याख्या–उद्धव ने गोपियों के सामने अपने ज्ञान-मार्ग का उपदेश दिया जो उनकी समझ में नहीं आया। अतः वे उद्धव से कहती हैं हे उद्धव जी! आप हमसे किसकी बातें कह रहे हो? हे उद्धव! हम आपकी इन बातों को (जो बातें व ज्ञान, योग आदि की कहकर निर्गुण ब्रह्म की उपासना के विषय में कह रहे थे) हम नहीं समझती हैं, इसीलिए आपसे पुनः पूछना चाहती हैं। कौन राज हो गया? कंस जैसे दृष्ट को किसने मार दिया और कौन वासुदेव का पुत्र है? हम उस व्यक्ति को नहीं जानतीं जिसके विषय में ये बातें आपने कही हैं। हमारे परम सुन्दर श्रीकृष्ण हैं और हम उन्हीं का मुख देखकर जीवित रहती हैं। वे श्रीकृष्ण प्रतिदिन स्वाभाविक रूप से अपने सखा ग्वालों के साथ गौएं चराने के लिए जाते हैं। समस्त दिन को गौ चराने में बिताकर वे संध्या के समय घर आते हैं और हमारे नेत्रों की गति को स्तब्ध कर देते हैं। अर्थात् जब श्रीकृष्ण भी गाय चराकर लौटते हैं तो हम निर्निमेष होकर उन्हें देखती हैं। आप जिस सर्वव्यापक पूर्ण और अविनाशी ब्रह्म की बातें करते हैं वह कौन हैं? वह कौन है जिसे वेद भी अपार कहते हैं। अर्थात् वेद भी जिसका भेद नहीं जानते, वह ब्रह्म कौन है? सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहने लगीं कि आप बेकार की बकवास कर रहे हो इस ब्रज में तो श्रीकृष्ण नंद के पुत्र हैं। कहने का आशय यह है कि गोपियों के मन में नंद के पुत्र श्रीकृष्ण का वास है, वे ही उनके सर्वस्व हैं। उद्धव की निराकार ब्रह्म की बातें उनकी समझ में ही नहीं आती हैं। अतः वे उद्धव से ऐसे अटपटे प्रश्न करती हैं।

विशेष–निर्गुण ब्रह्म के समक्ष गोपियों के हृदय-पक्ष का प्रधान तर्क अत्यन्त मधुर और रोचक है।

तू अलि! कासों कहत बनाय?
बिन समुझे हम फिरि बूझति हैं एक बार कहौ गाय॥
किन वैं गबन कीन्हों सकटनि चढ़ि सुफलीकसुत के संग।
किन वै रजक लुटाइ बिबिध पट पहिरे अपने अंग?
किन हति चाप निदरि गज मार्‌यो कि वै मल्ल मथि जाने?
उग्रसेन बसुदेव देवकी किन वैं निगड़ हठि भाने?
तू काकी है करत प्रशंसा, कौने घोष पठायो?
किन मातुल बधि लयो जगत जस कौन मधुपुरी छायो?
माथे मोरमुकुट वनगुंजा, मुख मुरली-धुनि बाजै।
सूरदास जसोदानंदन गोकुल कह न बिराजै॥ 19॥

नोट

शब्दार्थ–अलि = भौंरा, उद्धव। कासों = किससे। गाय =समझाकर, गाकर। सकटनि = रथ पर, रजक = धोबी, कंस के धोबी। मथि जाने = पछाड़े। बिगड़ = बेड़ी। आने = तोड़ता। घोस = अहीरों की बस्ती।

व्याख्या–उद्धव की ज्ञान-मार्ग की बातें गोपियों को अच्छी नहीं लगती हैं। वे उत्तेजित होकर भौंरे के माध्यम से उद्धव से पूछती हैं कि हे अलि! तुम ये ज्ञान की समझ में न आने वाली बातें किसके सामने बना-बनाकर कह रहे हो। हमारी समझ में ये बातें नहीं आतीं, अतः हम आपसे फिर पूछ रही हैं। एक बार फिर हमें समझाकर इन बातों को कहो। वह कौन है जिसने सुफलकसुत अक्रूर के साथ रथ पर चढ़कर मथुरा को गमन किया था। वह कौन है जिसने कंस के धोबियों के कपड़ों की लूट करा दी थी और शरीर पर तरह-तरह के वस्त्र धारण किये थे? और किसके हाथों ने (कुबलयापीड़ नामक हाथी) मारा था तथा किसने उन मल्लों को (चाणूर, मुष्टिक आदि को) पछाड़ा था? उग्रसेन, वासुदेव और देवकी की बेड़ियों को किसने काटा था। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि कृष्ण तो वस्तुतः हमारे आराध्य हैं जिन्होंने उपर्युक्त सब कार्य किये हैं, पर आप किसकी प्रशंसा कर रहे हैं? आपको इस अहीरों की बस्ती में किसने भेजा है! क्या आप नहीं जानते कि वह कौन है जिसने अपने मामा कंस का वध करके जगत को उसके कष्टों और अत्याचारों से बचाकर यहाँ पर यश प्राप्त किया है और मथुरा में विराजमान है। श्रीकृष्ण के मस्तक पर मोर मुकुट सुशोभित होता है, गले में वैजयन्ती माला धारण किए रहते हैं, मुख से मुरली की मधुर ध्वनि का गान करते रहते है। सूरदास कहते हैं कि इस प्रकार का रूप धारण करने वाले भगवान कृष्ण बतलाओ कहाँ पर विराजमान नहीं हैं? कहने का भाव यह है कि हमारे श्रीकृष्ण ही सर्वव्याप्त हैं, वे ही हमारे ब्रह्म हैं; ईश्वर हैं। हम उन्हीं का ध्यान कर सकती हैं, उसके अतिरिक्त और कोई ब्रह्म हमें मान्य नहीं।

हम तो नंदघोष की बासी।
नाम गोपाल, जाति कुल गोपहिं, गोप गोपाल उपासी॥
गिरिवरधारी, गोधनचारी, वृन्दावन अभिलाषी॥
राजा नंद, जसोदा रानी, जलधि नदी जमुना सी॥
प्रान हमारे परम मनोहर कमलनयन सुखरासी।
सूरदास प्रभु कहौं कहाँ लौ अष्ट महासिधि दासी॥20॥

शब्दार्थ–घोष = ग्वालों का गाँव। गोधन चारी = गौओं को चराने वाले। उपासी = उपासिका। जलधि = समुद्र।

व्याख्या–गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हम तो नंद बाबा की बस्ती में रहने वाली हैं। हमारा नाम गोपाल है क्योंकि गौओं का पालन करती हैं। हमारी जाति और कुल गोपों का ही है। हम गोपाल श्रीकृष्ण की इसी नाते से उपासिका हैं। वे भी गौओं के पालन करने वाले हैं। हम उनकी अभिलाषा करती हैं जिन्होंने गोवर्धन पर्वत को धारण किया था; जो गौओं को चराया करते थे और वृन्दावन में विहार करते थे। हमारा अपना छोटा-सा राज्य अलग ही है जिसके राजा नंद हैं, यशोदा उनकी रानी हैं और यमुना नदी सीमा को निर्धारित करने वाला समुद्र है। हमारे प्राण वे श्रीकृष्ण हैं जिनके कमल के समान नेत्र हैं और वो अत्यन्त सुन्दर हैं। वे सब सुखों की खान हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहने लगीं कि हमारे सुख के सामने अष्ट महा सिद्धियां भी दासी हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण के साथ प्राप्त सुख के आगे सब कुछ तुच्छ है।

विशेष–महासिद्धियों की गणना इस प्रकार है–(1) अणिमा, (2) महिमा, (3) लघिमा, (4) गरिमा, (5) प्राप्ति, (6) प्राकाम्य, (7) ईशित्व, (8) वसित्व।

गोकुल सबै गोपाल-उपासी।
जोग अंग साधत जे ऊधो ते सब बसत ईसपुर कासी॥
यद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि तदपि रहति चरननि रसरासी।
अपनी सीतलताहि न छांड़त यद्यपि है ससि राहु-गरासी॥
का अपराध जोग लिखि पठवत प्रेमभजन तजि करत उदासी।
सूरदास ऐसी को बिरहिन माँगती मुक्ति तजे गुनरासी॥ 21॥

नोट

शब्दार्थ–उपासी = उपासना करने वाली, उपासिका। ईसपुर = ईश्वर का नगर, महादेव का पुर। रस-रासी = आनन्द से लिप्त, आनन्द से पगी हुई।

व्याख्या–गोपियाँ कह रही हैं। हे उद्धव, इस गोकुल में तो सब गोपाल श्रीकृष्ण की उपासना करने वाले व्यक्ति रहते हैं। जो व्यक्ति योग को सांगोपाङ्ग धारण करते हैं वे सब महादेव की नगरी काशी में रहते हैं। (यह इसलिए कहा गया है कि काशी उस समय निर्गुण ब्रह्म की उपासना का केन्द्र था) यद्यपि श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर हम अनाथ हो गई हैं; उन्होंने हमें छोड़कर अनाथ कर दिया फिर भी हम उनके चरणों के आनन्द में पगी रहतीं हैं अर्थात् इस स्थिति में भी हम उनके चरणों का ही ध्यान करती हैं! उदाहरण देकर गोपियां समझाती हैं कि यद्यपि चन्द्रमा को राहु ग्रस लेता है परंतु वह अपनी शीतलता के स्वभाव को नहीं छोड़ता। अर्थात् हमें श्रीकृष्ण के विरह का दुख सहना पड़ रहा है परन्तु हम उनके प्रति अपने माधुर्य भाव को नहीं छोड़ सकतीं। ऐसा हमने क्या अपराध किया है श्रीकृष्ण हमारे लिए योग की ही बातें लिखकर भेजते हैं। वे हमें प्रेम के मार्ग से अलग कर विरक्त क्यों बनाना चाहते हैं। सूरदास कहते हैं जो गुणराशि श्रीकृष्ण को त्याग कर मुक्ति की इच्छा करे अर्थात् निर्गुण ब्रह्म की उपासना से प्राप्त मुक्ति दे, वह हमारे सामने कुछ नहीं है, हमें तो अपना प्रेममार्ग ही ईष्ट है।

विशेष–(1) 'अपनी शीतलता हि न छांडति यद्यपि है ससि राहु गरासी' इस पंक्ति की प्रतीक योजना दृष्टव्य है। राशि और राहु के प्रतीकों से गोपियां अपनी विरह-व्यथा की तुलना करती हैं। (2) यह स्पष्ट होता है कि ब्रजवासी आध्यात्मिक साधना के योग-पक्ष को बिल्कुल भी स्वीकार नहीं करते। (3) इस पद से प्रतीत होता है कि जिस व्यक्ति के प्रति विरह है यदि उस व्यक्ति की प्राप्ति न हो तो प्रेम की तृप्ति नहीं हो सकती।

जीवन मुँहचाही को नीको।
दरस परस दिनरात करति हैं कान्ह पियारे पीको॥
नयनन मूँदि-मूँदि किन देखौ वंध्यो ज्ञान पोथी को।
आछे सुन्दर स्याम मनोहर और जगत सब फीको॥
सुनौ जोग को का लै कीजै यहाँ ज्यान है जीको।
खटी मही नहीं रुचि मानै सूर खवैया घी को॥22॥

शब्दार्थ–मुँहचाही = चहेती। परस = स्पर्श। ज्ञान पोथी को = पुस्तकों का ज्ञान। आछे = अच्छे। ज्यान = हानि। मही = मट्ठा।

व्याख्या–गोपियाँ उद्धव से वार्तालाप करते हुए कुब्जा पर व्यंग्य कसते हुए कहती हैं कि वस्तुतः जीवन तो श्रीकृष्ण की इस चहेती कुब्जा का ही अच्छा है। श्रीकृष्ण जो उसके पास ही तो रहते हैं अतः वह उनका नित्य दर्शन करती है फिर उनकी सेवा में रहती है अतः उसे उनके स्पर्श करने का भी अवसर मिलता है। जो प्रिय श्रीकृष्ण का दर्शन और स्पर्श करे उसके जीवन का कहना ही क्या? आप जो यह कहते हैं कि ज्ञान-योग की साधना द्वारा नैनों को मूंद कर, ध्यान लगाकर ईश्वर का दर्शन करो। यह कैसे सम्भव हो सकता है? इस तरह का ज्ञान केवल पुस्तकीय ज्ञान है अर्थात् इस तरह के ध्यान से ईश्वर-प्राप्ति नहीं हो सकती। हमारे श्रीकृष्ण जी परम सुन्दर हैं, अति मनोहर हैं। उनके सामने हमें समस्त संसार फीका लगता है। हे उद्धव! सुनो, हम योग को लेकर करें क्या? क्योंकि योग की साधना करने से हमें श्रीकृष्ण की हानि होती है अथवा यों कह सकते हैं कि कृष्ण के बिना हमारे प्राण निकले जा रहे हैं। ऐसे में हम गोपियाँ योग का ध्यान कैसे करें। सूरदास जी कहते हैं गोपियां कहने लगीं कि जो घी को खाने वाला है वह खट्टे मट्ठे से कैसे तृप्त हो सकता है? कहने का भाव यह है कि गोपियों ने श्रीकृष्ण के सुन्दर रूप का पान किया है वह निर्गुण ब्रह्म के नीरस उपदेश से कैसे संतुष्ट हो सकती हैं।

विशेष–(1) "खाटी मही नहीं रुचि मानै 'सूर' खवैया घी को" इस पंक्ति में अर्थान्तर-न्यास अलंकार है। (2) दरस् परस् दिन रात् करति में अनुप्रास अलंकार है। (3) प्रस्तुत पद में गोपियों का कुब्जा के प्रति व्यंग्य एकदम स्वाभाविक है।

आयो घोष बड़ो व्योपारी।
लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आय उतारी॥
फाटक दैकर हाटक मांगत भोरै निपट सु धारी।

नोट

धुर ही तैं खोटो खायो है लयो फिर त सिर भारी॥
इनके कहे कौन डहकावैं ऐसी कौन अजानी।
अपनो दूध छांड़ि को पीवैं खार कूप को पानी॥
ऊधो जाहु सवार यहाँ तें बेगि गहरु जनि लावौ।
मुँहमांग्यों पैही सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ॥23॥

शब्दार्थ–घोष = ग्वालों का गाँव। खेप = बोझा। फाटक = फटकन। हाटक = सोना। धारी = धारण करके; समझकर। गहरु = देर। धुर ही तें = प्रारम्भ से ही। डहकावै = ठगी में आना। सवार = सवेरे।

व्याख्या–गोपियाँ उद्धव को लक्ष्य करके व्यंग्य करती हैं। वह उद्धव को ज्ञान-योग रूपी सस्ते माल बेचने वाला व्यापारी कहकर आपस में बातें करती हैं कि हमारे इस ग्वालों के गाँव में एक बड़ा व्यापारी आया है। वह व्यापार के लिए ज्ञान और योग का बहुत बड़ा बोझा लाया है और उस सब सामान को उसने ब्रज़ में लाकर उतार दिया यह व्यापारी सस्ता सौदा बड़े दामों में बेचना चाहता है। उसके पास केवल फटकन ही हैं पर वह उसे सोने के मूल्य में देना चाहता है। कहने का आशय यह है कि उद्धव के ज्ञान-योग की बातें गोपियों की दृष्टि में अत्यन्त उपेक्षणीय हैं और उसके मूल्य में वह उनसे श्रीकृष्ण से प्रेम को भूल जाने को कहता है। अर्थात् किसी ने इसकी ज्ञान की बातों को आदर नहीं दिया है। इसीलिए वह अपने सिर पर भारी बोझा उठाकर उसे लिए फिरता है। (यहां पर गोपियों के कथन में अत्यन्त स्वाभाविकता है। उसी बेचने वाले का बोझा अधिक बचा रहता है जिसके सौदे की बिक्री नहीं होती है; उद्धव के ज्ञान योग का ऐसा ही सौदा है।) इस व्यापारी के कहने से कौन ठगायी खा सकता है। ब्रज में ऐसा कोई अज्ञानी नहीं है। अर्थात् ब्रज की स्त्रियां निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं हैं। भला ऐसा कौन है जो अपने दूध को छोड़कर खारे कुएं के पानी को पीने में रुचि रखेगा। (यहाँ पर श्रीकृष्ण जी मधुर दुग्ध हैं और निर्गुण ब्रह्म खारे कुएं का पानी) हे उद्धव! तुम यहां से शीघ्र ही सवेरे चले जाओ, देर न करो। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उनसे कहती हैं कि यदि आप साहुकार (श्रीकृष्ण) को लाकर हमें दर्शन करा दें तो आप मुँहमाँगा पुरस्कार प्राप्त करेंगे।

विशेष–प्रस्तुत पद के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि गोकुल की गोपियों को निर्गुण ब्रह्म के उपदेश में रंच-मात्र भी रुचि नहीं इसीलिए वे उद्धव को नाना प्रकार से फटकारती हैं। प्रस्तुत पद भी उद्धव के लिए फटकार ही समझना चाहिए। योग के समक्ष भक्ति की श्रेष्ठता दृष्टव्य है

जोग ठगौंरी ब्रज न बिकै है।
यह व्योपार तिहातो ऊधो! ऐसोई फिर जैहे॥
जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहै।
दाख छांड़ि कै कटुक निंबौरी को अपने मुख खैहै?
मूरी के पातन के केना की मुक्ताहल दैहै।
सूरदास प्रभु गुनहिं छांडि कै को निर्गुन निरबैहै?॥24॥

शब्दार्थ–ठगोरी = धोखा देने वाली वस्तु। केना = वह अन्न जो बदले में दिया जाता है।

व्याख्या–उद्धव ब्रज में योग का संदेश लेकर आए हैं। वह गोपियों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देकर कृष्ण को भुलाने के लिए कहते हैं परन्तु गोपियां अपने मार्ग से तनिक भी नहीं हटतीं। वे उद्धव से कहती हैं कि तुम्हारा यह धोखा देने वाला योग ब्रज में नहीं बिकेगा अर्थात् तुम अपने योग के उपदेश से ब्रज-नारियों को ठग नहीं सकते। हे उद्धव! तुम्हारा यह योग का व्यापार जो तुम बहुत चतुराई से यहां लाये हो ऐसे वापस चला जाएगा क्योंकि जिन गोपियों के लिए तुम इसे लाए हो उनके हृदय में इसके लिए स्थान नहीं है अथवा वे इस योग को अपनाने में असमर्थ हैं। हे मधुकर! तुम्हीं बताओ, ऐसा कौन मूर्ख होगा जो मीठे अंगूरों को छोड़कर कड़वी निंबौरी को खाए। (यहां गोपियाँ श्रीकृष्ण को अंगूर तथा निर्गुण ब्रह्म को निंबौरी बताकर उद्धव को मानो कह रही हैं कि निर्गुण ब्रह्म को अपनाना हमारे बस की बात नहीं है) अपनी बात पर बल देने के लिए तथा निर्गुण की तुच्छता प्रदर्शित करने के लिए वे फिर कहती हैं कि मूली के पत्तों के बदले में कौन मोती दे सकता है अर्थात् कृष्ण का ध्यान छोड़कर हम निर्गुण को कैसे अपना सकती हैं। सूरदास कहते हैं, गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि गुण-रूप श्रीकृष्ण को छोड़कर हम निर्गुण से कैसे निर्वाह कर सकती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि निर्गुण हमारे किसी काम का नहीं है।

नोट

विशेष–(1) 'दाख छांड़ि कै कटुक निंबौरी' में दाख और निंबौरी में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। (2) गुन और निर्गुण में श्लेषण अलंकार है।

आये जोग सिखावन पांडे।
परमारथी पुराननि लादि ज्यौं बनजारे टांढ़े॥
हमरी गति पति कमलनयन की जोग सिखै ते रांड़े।
कहौ, मधुप, कैसे समायेंगे एक म्यान दो खाँड़े॥
कहु षटपद, कैसे खैयतु है हाथिन के संग गांड़े।
काकी भूख गई बयारि भखि बिना दूध घृत मांड़े॥
काहे का झाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डांड़े।
सूरदास तीनों नहिं उपजत धनिया धान कुम्हांड़े॥25॥

शब्दार्थ–टांढ़े=बनजारों के बैलों का समूह। झाला लै मिलवत=बेकार की बातें करना। कुम्हाड़े=काशीफल।

व्याख्या–गोपियाँ उद्धव और उसके योग पर व्यंग्य करती हुई आपस में कहती हैं कि उद्धव पंडाजी बन कर ब्रज में योग सिखाने आये हैं। इन्होंने अध्यात्मवादी पुराणों का इतना बोझ उठा रखा है जैसे बनजारे व्यापारी बैलों के समूह पर साल लाद कर व्यापार करने जाते हैं। एक व्यापारी की भांति ही उद्धव यहाँ ब्रज में योग का व्यापार करने आए हैं। गोपियां कहती हैं कि हे उद्धव! योग तो तुम उन्हें सिखाओ या वे नारियाँ योग सीखें जिनके पति न हों। हम योग नहीं सीख सकतीं क्योंकि हमारे पति और सहारे तो कमलनयन श्रीकृष्ण हैं ही। जब तक वे हमारे सहारे हैं, हम किसी अन्य का ध्यान नहीं कर सकतीं। हे मधुकर! तुम्हीं कहो कि एक म्यान में दो तलवारें कैसे समा सकती हैं। अर्थात् हमारे एक ही हृदय में श्रीकृष्ण और निर्गुण ब्रह्म ये दोनों कैसे रह सकते हैं। हम कृष्ण का ध्यान करने के साथ-साथ निर्गुण को नहीं भज सकतीं। हे भौरे! कहो कि क्या कोई व्यक्ति हाथी के संग गन्ने खाने की बराबरी कर सकता है अर्थात् जिस प्रकार यह असम्भव है कि हाथी के संग कोई गन्ने नहीं खा सकता उसी प्रकार हम निर्गुण ब्रह्म की उपासना न करके कोई अनहोनी बात नहीं कर रहीं। कोई भूखा व्यक्ति घी, दूध, चावल आदि न खाकर केवल हवा का पान करके भूख नहीं मिटा सकता। उसी प्रकार निराकार, निर्गुण का ध्यान कर हम तृप्त नहीं हो सकतीं (यहाँ निर्गुण को हवा की तरह बताया गया है क्योंकि वह निराकार ही तो है)। गोपियाँ कहती हैं कि तुम क्यों व्यर्थ की बकवास कर रहे हो और किसको दंड दे रहे अर्थात् तुम व्यर्थ में अपने उपदेशों द्वारा हमें कष्ट दे रहे हो। जो चोर हो उसे दंड दो। हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो हमें दण्ड दे रहे हो। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि जिस प्रकार धनिया, धान और काशीफल ये तीनों एक ही स्थान पर नहीं उपज सकते उसी प्रकार एक हृदय में योग, प्रेम और साधना इकट्ठे नहीं रह सकते।

विशेष–(1) परमारथी...टाँड़े में उपमा अलंकार है। (2) एक म्यान में दो खांड़े में लोकोक्ति अलंकार है। (3) 'कुम्हाड़े' शब्द का प्रयोग विचारणीय है। कुम्हड़ा काशीफल को कहते हैं। तुलसीदास ने भी इसका प्रयोग करते हुए लिखा है–

"इहाँ कुम्हड़ बतिया कोंउ नाहीं। जो तर्जनी देखि मर जाही।"

टास्क भ्रमरगीत प्रसंग में उल्लिखित उद्धव की योग-साधना का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

ए अलि! कहा जोग में नीको।
जति रसरीति नंदनंदन की सिखवत निर्गुन फीको॥
देखत सुनत नाहिं कछु स्रवननि, ज्योति-ज्योति करि ध्यावत।
सुन्दरस्याम दयालु कृपानिधि कैसे हौ बिसरावत?
सुनि रसाल मुरली-सुर की धुनि सोइ कौतुक रस भूलैं।

नोट

अपनी भुजा ग्रीव पर मेलैं गोपिन के सुख फूलैं॥
लोककानि कुल को भ्रम प्रभु मिलि-मिलि कै घर बन खेली।
अब तुम सूर खवावन आए जोग जहर की बेली॥ 26॥

शब्दार्थ–नीकौ = अच्छा। रस रीति = प्रेम की रीति। खेली = कुछ न समझा। ग्रीव = गर्दन। बेली = बेल।

व्याख्या–हे भ्रमर! तुम्हारे योग में ऐसी कौन-सी अच्छी बात है? आप हमें श्रीकृष्ण के प्रेम के मार्ग को छोड़कर निर्गुण ब्रह्म के नीरस उपदेश की शिक्षा क्यों देते हो? आप जिस निर्गुण ब्रह्म के ध्यान करने की बात कहते हो उन्हें न तो देखा ही जा सकता है और न उसको बोलते हुए ही सुन सकते हैं। केवल यह ध्यान कर सकते हैं कि वह ज्योति है या वह ज्योतिस्वरूप है। ऐसे निर्गुण ब्रह्म को लेकर हम अपने सुन्दर और परम दयालु श्रीकृष्ण को कैसे भूल जायं? वे तो दया के समुद्र हैं उन्हें कैसे भुलाया जा सकता है। हम उनकी मुरली के सुन्दर स्वरों को सुनकर उस ध्वनि के कौतुक में ही अपने को भूल जाती हैं। फिर श्रीकृष्ण जी अपनी भुजा को हमारे गले में डाल देते हैं। इस तरह गोपियों के सुख की सीमा का कथन भी नहीं किया जा सकता। लोक की लाज और कुल की लाज को हमने कुछ भी नहीं समझा। श्रीकृष्ण के साथ मिलकर वन में रास रचा कर हमने लोकलाज तथा कुल की मर्यादा को समाप्त कर दिया है। इस प्रकार अपना सर्वस्व न्योछावर करके प्रेम में पली गोपियों को आप योग की विषैली बेल खिलाने आए हो। प्रेममयी गोपियों के लिए योग का उपदेश विषैले विष के समान घातक और कष्टप्रद प्रतीत होता है।

हमरे कौन जोग ब्रत साधे?
मृगत्वच, भस्म अधरि, जटा को को इतना अवराधै।
जाकी कहूँ थाह नहिं पैए अगम, अपार, अगाधै।
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इते बांध को बांधै?
आसन पवन बिभूति मृगछाला ध्याननि को अवराधै?
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गांठि को बाँधै?॥ 27॥

शब्दार्थ–मृगत्वच = मृगछाला। अधरि = साधुओं की वह लकड़ी जिसका सहारा लेकर वे प्रायः बैठते हैं। अगाध = बहुत गहरा। बांध = बंधन, आडम्बर। पवन = प्राणायाम। मानिक = माणिक्य हीरा।

व्याख्या–गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव! हमारे यहाँ योग व्रत की साधना कौन करे? योग-साधना करते समय बहुत-सी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। मृगछाला, भस्म, अधारि और जटाओं की आवश्यकता उनमें से मुख्य है, गोपियाँ कहती हैं कि इतनी वस्तुओं की आराधना कौन करें। फिर इतने प्रपंच के बाद यदि ईश्वर की प्राप्ति हो जाए तब भी ठीक है। पर आपका योगमार्ग से प्राप्त ब्रह्म तो ऐसा ही है कि उसकी कहीं थाह भी नहीं पायी जा सकती। वह अगम्य है, अपार है और अगाध है। ऐसे ब्रह्म को प्राप्त करना कैसे संभव है? हमें तो श्रीकृष्ण की प्राप्ति अभीष्ट है। उन गिरधरलाल के सुन्दर मुख की प्राप्ति के लिए किसी आडम्बर की भी आवश्यकता नहीं है। अर्थात् श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए प्राणायाम, भस्म मृगछाला, अधारि आदि प्रपंचों की आवश्यकता भी नहीं हैं और हमें चाहिए भी नहीं तब हम आपके इस प्रपंच में क्यों पड़ें? आसन, प्राणायाम, भस्म और मृगछाला सहित कौन उस ब्रह्म का ध्यान करे? सूरदास कहते हैं कि हीरा को छोड़कर ऐसा कौन है जो राख को गाँठ में बाँधेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे श्रीकृष्ण हर दृष्टि से हीरे के समान श्रेष्ठ और मूल्यवान हैं और उसके समक्ष निर्गुण ब्रह्म राख के समान हेय और मूल्यहीन है। ऐसी स्थिति में हम निर्गुण ब्रह्म के उपदेश की स्वीकृति रंचकमात्र भी नहीं है।

विशेष–(1) अष्टांग योग के आठ साधन हैं–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनके ही कुछ साधनों की ओर प्रस्तुत पद में संकेत किया गया है। (2) ज्ञान मार्ग के खण्डन का तर्क बेहद सरलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

हम तो दुहूं भाँति फल पायो।
जो ब्रजनाथ मिलैं तो नीको, नातरु जग जस गायो॥
कहँ वै गोकुल की गोपी सब वरनहीन लघुजाती।
कहँ वै कमला के स्वामी संग मिलि बैठीं इक पाती॥

नोट

निगमध्यान मुनिज्ञान अगोचर, ते भए घोषनिवासी।
ता ऊपर अब सांच कहो धौं मुक्ति कौन की दासी?
जोग-कथा, पा लागौं ऊधो, ना कहु बारंबार।
सूर स्याम तजि और भजै जो ताकी जनमी छार॥28॥

शब्दार्थ–नातरु = नहीं तो। कमला के स्वामी = लक्ष्मी के स्वामी, विष्णु। पाती = पंक्ति। पालगों = पैर पड़ना। छार = धूल, भस्म।

व्याख्या–योगमार्ग को हर दृष्टि से हेय बतला कर श्रीकृष्ण के विरह में ही जलते रहने में अपनी आस्था दिखलाते हुए गोपियाँ कहती हैं कि श्रीकृष्ण का ध्यान करने से हमें दोनों प्रकार से उत्तम फल मिलेगा। यदि श्रीकृष्ण मिल जायेंगे तो हमारा वियोग में जलना सार्थक होगा क्योंकि प्रिय की प्राप्ति पर विरह की समाप्ति हो जाती है। यदि श्रीकृष्ण न मिले तो संसार में श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पित करने के यश की भागी तो रहेंगी ही। हमारा तो सौभाग्य है कि इतने बड़े व्यक्ति से हमें स्नेह करने का अवसर मिला। नहीं तो कहाँ हम गोपियां जो गोकुल के छोटे से गांव में रहती हैं। हमारा वर्ण भी कोई बहुत उत्तम नहीं है। हमारी जाति घोष है वह भी कोई बड़ी नहीं है। और कहाँ वे लक्ष्मी के स्वामी, विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण भगवान, हम उनके साथ मिलकर बैठी हैं। जिस परमेश्वर का वेद भी ध्यान करते हैं, जिनको मुनि भी अपने ज्ञान के द्वारा अगोचर कहते हैं ऐसे श्रीकृष्ण गोपों के गांव में आकर रहने लगे थे। हमारा तो ऐसे व्यक्ति के संसर्ग में सौभाग्य रहा है। ऐसे ऊंचे प्रिय के लिए विरह-व्यथित होने में भी सौभाग्य है। अतः हमें श्रीकृष्ण के न मिलने का भी दुःख नहीं है, हम इसी विरह में प्रसन्न हैं। हमारे यहाँ उस निर्गुण ब्रह्म से प्राप्त होने वाली मुक्ति की कौन चाहत करता है? हे उद्धव! हम आपके पैरों पड़ती हैं आप इस योग की कथा को बार-बार न कहो। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियों कहने लगीं कि जो श्रीकृष्ण को तजकर और किसी को भजे उसका जन्म निरर्थक माना जाएगा। (जननी छार का अर्थ यह भी किया जाता है कि उसकी माता धूल के समान तुच्छ है क्योंकि उसने ऐसी संतान को जन्म दिया जो श्रीकृष्ण के अलावा किसी और का भजन करती है।)

विशेष–इस पद में दैन्य भाव की प्रधानता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. श्रीकृष्ण में परममित्र ..... द्वारका से कृष्ण का संदेश लेकर गोकुल आए।
2. श्रीकृष्ण के स्पर्श से ..... ने अति सुंदर युवती का रूप प्राप्त किया।
3. उद्धव गोपियों को भक्ति के लिए ..... का संदेश देते हैं।
4. सूर की गोपियां ..... की उपासक हैं।

पूरनता इन नयन न पूरी।
तुम जो कहत श्रवननि सुनि समुझत, ये याही दुख मरति विसरी।
हरि अन्तर्यामी सब जानत बुद्धि विचारता वचन समूरी।
वै रस रूप रतन सागर निधि क्यों मनि पाय खवावत धूरी॥
रहु रे कुटिल चपल मधु लम्पट कितब संदेस कहत कटु कूरी।
कहं मुनिध्यान कहां ब्रज युवती! कैसे जात कुलिस करि चूरी॥
देखु प्रगट सरिता, सागर सर, सीतल सुभग स्वाद रुचि रूरी।
सूर स्वाति जल बसै जिय चातक चित लागत सब झूरी॥29॥

शब्दार्थ–बिसूरी = बेचैन होकर। समूरी = मूल सहित, आद्योपान्त। कितव = धूर्त्त। कूरी = निष्ठुर। रूरी = अच्छा। झूरो = नीरस, व्यर्थ शुष्क।

नोट

व्याख्या–उद्धव ने गोपियों को कृष्ण के पूर्ण ब्रह्म होने का उपदेश दिया था। अतः उन्हें उनके उस अन्तर्यामी रूप को समझ लेना चाहिए। इस पर गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि श्रीकृष्ण पूर्ण हैं, यह बात हमारे नेत्रों से बैठती नहीं है अर्थात् नेत्रों की तृप्ति श्रीकृष्ण की पूर्णता के उपदेश से नहीं होती। आप जो निर्गुण ब्रह्म-विषयक चर्चा करते हैं उसे हम कानों से सुनकर तो समझती हैं पर इससे आँखों की तृप्ति नहीं हो पाती और ये आँखें इसी दुःख में बिलख-बिलख कर मरती हैं। आप यह कहते हैं कि श्रीकृष्ण अन्तर्यामी हैं और इसी रूप में सब जानते हैं परन्तु हम अपनी बुद्धि से विचार करती हैं; उस पर समूल (आद्योपान्त) दृष्टिपात करती हैं, तो हमको वे रस-रूप में ही प्रतीत होते हैं। वे हमारे लिए समुद्र से निकली निधि के समान अमूल्य रत्न हैं। ऐसे श्रीकृष्ण रूपी दिव्य मणि को जिन्होंने प्राप्त किया है उन्हें निर्गुण ब्रह्म की धूल क्यों खिलाते हो। गोपियाँ उद्धव पर खीजते हुए भ्रमर के बहाने से उन्हें डांटती हुई कहती हैं कि कुटिल! रस के लोभी! भौंरें चुप रह! तू बहुत धूर्त्त है इसी में तो कटु और निष्ठुर संदेश कह रहा है। सोचकर तो देखो कहाँ मुनियों द्वारा अभ्यस्त ध्यान और कहाँ ब्रज की स्त्रियाँ? भला कहीं कुलिश को पीस चूर-चूर किया जा सकता है? अर्थात् जैसे वज्र को पीसकर चूर-चूर कर देना अत्यन्त असम्भव है वैसे ही हमारा योग आदि में व्यवहृत ध्यान लगाना असम्भव है। आप स्पष्ट रूप से चातक के प्रेम को देखिए, वह अपने सामने नदी, समुद्र और तालाब के शीतल, सुन्दर, अच्छे स्वाद से पूर्ण जल को प्रत्यक्ष देख रहा होता है परन्तु उसके लिए ये सब जल नीरस हैं क्योंकि चातक का मन तो एकमात्र स्वाति के जल में ही बसा हुआ होता है। कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार चातक निष्ठा के साथ अपने प्रेम का पालन करता है उसी प्रकार हम गोपियां जो एकमात्र श्रीकृष्ण में अनुरक्त हैं, निष्ठा के साथ केवल उन्हीं का ध्यान करती हैं; वे ही हमारे द्वारा अभीप्सित हैं और निर्गुण ब्रह्म हमारे लिए सर्वथा उपेक्षणीय है।

विशेष–(1) प्रेम के आदर्श के लिए चातक को उपमान रूप में प्रस्तुत करना बहुत प्रसिद्ध है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी चातक के प्रेम का अनेक स्थलों पर आख्यान किया है। एक उदाहरण देखिए–

बध्यो बधिक पर्‌यौ पुन्य जल उलट उठायी चोंच।

तुलसी चातक प्रेम पर मरतेहु लगी न सोंच॥

सूरदास की गोपियों ने, चातक के उदाहरण द्वारा, प्रस्तुत इस पद में, अपने प्रेम की अनन्यता तथा श्रीकृष्ण के प्रति निष्ठा का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

(2) इस पद में छेकानुप्रास अनेक स्थलों पर है और वृत्यनुप्रास भी दृष्टव्य है–(क) स्रवननि सुनि समुझत, (ख) रस रूप रतन, (ग) सरिता सागर सर सीतल सुभग।

हमतें हरि कबहूँ न उदास।
राति खबाय पिबाय अधररस सो क्यौं बिसरत ब्रज को बास॥
तुमसों प्रेमकथा को कहिबो मनहुँ काटिबों घास।
बहिरौ तान-स्वाद कह जानै, गूंगो बात-मिठास॥
सुनु री सखी, बहुरि फिरि ऐहैं वे सुर बिबिध बिलास।
सूरदास ऊधों अब हमको भयो तेरहौं मास॥30॥

शब्दार्थ–उदास=उदासीन। बिसरत=भूलना। ऐहैं=आवेंगे। भयो तरहों मास=बहुत समय व्यतीत हो गया।

व्याख्या–गोपियों को श्रीकृष्ण के प्रेम पर विश्वास है। वे उद्धव से कहती हैं कि हमसे श्रीकृष्ण जी कभी भी उदासीन नहीं हो सकते। (अतः आपका यह तर्क कि श्रीकृष्ण को इधर आने का अवकाश नहीं है, ठीक नहीं है।) जिस स्थान पर हमने उन्हें खिलाया है और अधररस का पान कराया है ऐसा ब्रज का स्थान भला कहीं वे भुला सकेंगे? गोपियाँ उद्धव को इन प्रेम-प्रसंगों के वर्णन करने के उपयुक्त पात्र ही नहीं समझतीं। वे शुष्क ज्ञान के ज्ञाता हैं। अतः वे कहती हैं कि हे उद्धव! आपके समक्ष प्रेम-कथा का कहना तो मानों घास काटना है (व्यर्थ परिश्रम करना है)। भला कहीं बहरा व्यक्ति संगीत के मधुर स्वर को जान सकता है? अथवा गूँगा व्यक्ति भला कहीं मीठी बातों के आनन्द की अभिव्यक्ति कर सकता है? (नहीं! अर्थात् बहरे के आगे गाने का कोई प्रभाव नहीं हो सकता और गूँगे के साथ मीठा वार्तालाप नहीं हो सकता; एक सुनेगा नहीं दूसरा बोलेगा नहीं, उसी प्रकार तुम्हारे सामने प्रेम की चर्चा करना व्यर्थ है।) गोपियाँ एक-दूसरे से कहती है कि हे सखी हमारे अतीत के वे सुख और विलास के दिन फिर भी आयेंगे।

नोट

सूरदास कहते हैं कि गोपियां कहने लगीं कि अब तो हमको प्रतीक्षा करते-करते तेरहवाँ महीना लग गया अर्थात् प्रतीक्षा करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया अब तो इसका अन्त होगा ही।

विशेष–प्रस्तुत पद में सूरदास ने विभिन्न मुहावरों का उपयोग करके अपनी भाषा की रोचकता को बढ़ा दिया है। 'काटिबों घास' और 'भयो तेरहों मास' ऐसे ही कथन हैं। (2) '..मनहुँ काटिबो घास' में उत्प्रेक्षा अलंकार है। (3) ..विरह में अवधि अत्यन्त दीर्घ लगती है, इस स्वाभाविक स्थिति का दर्शन इस पद में पठनीय है।

18.2 सारांश (Summary)

सगुण भक्तिधारा के भक्त कवि सूरदास की काव्य साधना के केंद्र में श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति ही अभीष्ट रही। सूरदास के संपूर्ण काव्य में लोकपक्ष विस्तृत रूप में उजागर हुआ है। द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के स्थान पर गोकुलवासी कन्हैया का गोप रूप ही सूर को अधिक प्रिय है।

सगुण भक्तिधारा के भक्त कवि सूरदास श्रीकृष्ण भक्ति के अनन्य उपासक हैं। सूरसागर में 'भ्रमरगीत प्रसंग' के माध्यम से सूरदास ने ईश्वर के सगुण रूप की प्रतिष्ठा की है। सूर गोपियों के माध्यम से भक्ति हेतु आधार अथवा अवलंब के पक्ष में तर्क देते हैं। रूपहीन निर्गुण भक्ति सूर के सम्मुख राज, क्षार के समान अर्थहीन है। भ्रमरगीत प्रसंग में ब्रज की गंवार गोपियाँ ज्ञानी उद्धव को प्रेम का पाठ पढ़ाती हैं। वह चतुर हैं। उद्धव की ज्ञान व योग साधना की बातों को वह हेय, तुच्छ बताकर नकार देती हैं। यही नहीं वे उद्धव को प्रेम का मार्ग अपनाने की बात करती हैं। वे उद्धव से कहती हैं कि आप अभी प्रेम मार्ग के नए पथिक हैं। प्रिय के प्रेम में डूबने के पश्चात् जिस आनंद का अनुभव होता है वह अभी आपको पता ही नहीं सूरदास ने भ्रमरगीत के माध्यम से सहज-सुलभ सर्वजन ग्राहय भक्ति को महत्त्व दिया है।

18.3 शब्दकोश (Keywords)

1. अलिः भौंरा। गोपियां भ्रमर के माध्यम से उद्धव से अपनी बात कहतीं हैं। गोपियों ने भौंरे को श्रीकृष्ण का प्रतीक माना है क्योंकि भौंरा भी रूप गुण में कुछ उनके जैसा ही है।

2. फाटनः फटकन, अनाज को फटकने के पश्चात् निकलने वाला व्यर्थ कूड़ा।

18.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भ्रमरगीत पदों के आधार का सार प्रस्तुत कीजिए।

2. 'भ्रमरगीत के माध्यम से सूर ने सगुण भक्ति की प्रतिष्ठा की है' संदर्भ सहित समझाइए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. उद्धव 2. कुब्जा ने 3. योग-साधना 4. श्रीकृष्ण

18.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सूरसागर–*सूरदास कृत।*
2. सूर की काव्य कला– *गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।*
3. सूरदास के पद–*गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।*

नोट

इकाई 19

भ्रमरगीत की भाषा-शैली

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
19.1 भ्रमरगीत प्रसंग की भाषा-शैली
19.2 सारांश (Summary)
19.3 शब्दकोश (Keywords)
19.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
19.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Reading)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सूरसागर के भ्रमरगीत प्रसंग की भाषा-शैली को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सूरदास की भाषा ब्रजभाषा है। सूरसागर ब्रजभाषा का सबसे प्राचीन काव्यग्रंथ है। विद्वानों ने यह माना है कि सूरसागर जैसी इतनी उच्चकोटि की ब्रजभाषा की रचना पहले-पहल ही कोई कैसे लिख सकता है? यह किसी प्रचलित ब्रजभाषा की गीति परम्परा का विकसित रूप है। हो सकता है वह परम्परा मौखिक रही हो। सूरदास ने ग्रामीण ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। उनकी ब्रजभाषा गोस्वामी तुलसीदास जैसी साहित्यिक नहीं है। ब्रजभाषा अपनी कोमलता और सरसता के बल पर एकदम काव्योचित भाषा है। सूरदास की भाषा में दोनों प्रकार की विशेषताएँ–सामान्य विशेषताएँ और शास्त्रीय विशेषताएँ मिलती हैं।

19.1 भ्रमरगीत प्रसंग की भाषा-शैली

सूरदास की भाषा में सरलता का गुण विद्यमान है। उन स्थलों को छोड़कर जहाँ सूर का कार्य रूप अधिक उद्बुद्ध है, उसमें सर्वत्र बोधगम्यता मिलती है। उन्होंने जो दृष्ट कूट लिखे हैं उनकी भाषा अलबत्ता इस प्रकार के गुणों से अलग है। प्रवाहपूर्णता में भी ऐसी ही विशेषता व्याप्त है। सूर का काव्य गीति काव्य है। उनकी रचना विभिन्न राग-रागनियों में हुई है। उसमें संगीतात्मकता और सहज-प्रवाह का आना सर्वथा संभाव्य है–

तेरो बुरो न कोऊ मानै।
रस की बात मधुप नीरस, सुनु, रसिक होत सो जानै॥
दादुर बसै निकट कमलन के जनम न रस पहिचाने।
अलि अनुराग उड़त मन बांध्यों कहे सुनत नहिं आने॥
सरिता चले मिलन सागर को कूल मूल द्रुम यानै।
कायर बकै लोह तैं भाजै, लरै जो सूर बखानै॥ –(पद 31)

टास्क सूरसागर के भ्रमरगीत प्रसंग से कुछ विदेशी शब्द चुनकर लिखिए।

नोट

कवि ने अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। इससे लगता है कि सूरदास को भावों को अभिव्यक्त करने में जिस प्रकार के शब्द उपयुक्त लगे हैं, उन्होंने ग्रहण कर लिए हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्दों के उदाहरण इस प्रकार हैं–

तत्सम–जैसे, जल, सुत, दारा, मदन, अनंग, पद, पट, अवधि, इदि, घन, समीर, द्रुम, मीन, मृग, पीताम्बर, कुसुम, गिरि आदि।

तद्भव–पाती, बुधि, बचन, अंखियाँ, नैन, हाथ, लोन, संपदा, जमुना, दही, जुबनिम आदि।

देशज–छाक, लरिकिनी, कीन, तोर, केदा।

विदेशी–तरवारि, नफा, दिवानी, जहाज, बाज, ख्याल

क्या आप जानते हैं सूरसागर की रचना ब्रजभाषा में हुई है, जो पश्चिमी उत्तर प्रदेश के व्यापक क्षेत्र में बोली जाती है।

भाषा को सशक्त बनाने के लिए सूरदास ने अपने काव्य में मुहावरे और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए–आँख बरति हैं मेरी, ठगोरी लाई, तेरो कह्यो पवन को मुसमयो, निपट दई को खोयो, मामी पीना, मन ही मन मांझ रही, आदि मुहावरे बड़ी स्वाभाविकता के साथ प्रयुक्त किए गए हैं।

अपने स्वारथ से सब कोऊ अपनी दूध छांडि को पीवै खार कूप को वारी, कथा कहत मौसी के आगे जानत नानी नाना, खाटी मही कहा रुचि मानै सूर खवैया घी को, काफी भूख गई मन लाडू, सूर सुकल हठि नाव चलावत से सरिता हैं सूखी। आदि लोकोक्तियाँ भी भ्रमरगीत की भाषा को चुटीला बना देती हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

1. काव्य रूप की दृष्टि से सूरदास का काव्य मुक्तक काव्य है।
2. सूरसागर सुप्रसिद्ध महाकाव्य है।
3. भ्रमरगीत की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है।
4. भ्रमरगीत प्रसंग गीत शैली में रचा गया काव्य है।
5. भ्रमरगीत प्रसंग प्रबंध काव्य की श्रेणी में आता है।

काव्य रूप की दृष्टि से सूरदास का काव्य मुक्तक काव्य है। मुक्तक काव्य में प्रत्येक छन्द का अपना अलग-अलग महत्त्व होता है। उसमें पहले छंद से दूसरे छन्द को आगे बढ़ाने वाली बात नहीं होती। भ्रमरगीत में भी इसी छवि को देखते हैं। एक-एक पद अपने आप में स्वतंत्र है। इसमें पूर्वापर सम्बन्ध भी नहीं है। फिर भी 'भ्रमरगीत' में भी और पूरे सूरसागर में भी एक हल्की-सी कथा चलती है। हल्की-सी कथा भ्रमरगीत प्रसंग में भी है, परन्तु उससे यह काव्यांश प्रबन्ध काव्य नहीं बन जाता। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने प्रबन्ध काव्य को एक बागीचा कहा है और मुक्तक काव्य को चुने हुए फूलों का गुलदस्ता। 'भ्रमरगीत प्रसंग' में वही बात देखने में आती है। यह सूरदास द्वारा रचे गये चुने हुए पदों का संग्रह है। उसमें मुक्तक काव्य के लक्षण ही घटते हैं। यों मुक्तकों को भी विद्वानों ने दो वर्गों में बांटा है–पाठ्य मुक्तक और गेय मुक्तक। इस दृष्टि से देखने पर 'भ्रमरगीत' प्रसंग के पद गेय मुक्तक हैं। ये विभिन्न राग-रागनियों में बँधे हुए हैं और गीति काव्य का अच्छा उदाहरण माने जाते हैं। विद्वानों ने माना है कि सूरदास के पदों को देखकर ऐसा लगता है कि इससे पूर्व अवश्य ही कोई गीति परम्परा रही होगी चाहे मौखिक ही रही हो तभी तो सूर ने इतने उच्च कोटि के संगीतमय गीत लिखे हैं। ये सभी गीत मुक्तक हैं।

नोट

19.2 सारांश (Summary)

सूरदास की भाषा ब्रजभाषा है। सूरसागर ब्रजभाषा का सबसे प्राचीन काव्य ग्रंथ है। विद्वानों ने यह माना है कि सूरसागर जैसी इतनी उच्चकोटि की ब्रजभाषा की रचना पहले-पहल ही कोई कैसे लिख सकता है? यह किसी प्रचलित ब्रजभाषा की गीति परम्परा का विकसित रूप है। सूरदास की भाषा में सरलता प्रवाहपूर्णता का गुण विद्यमान है। सूरदास को भावों को अभिव्यक्त करने में जिस प्रकार के शब्द उपयुक्त लगे हैं, उन्होंने ग्रहण कर लिए हैं। भाषा को सशक्त बनाने के लिए सूरदास ने अपने काव्य में मुहावरे और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। काव्य रूप की दृष्टि से सूरदास का काव्य मुक्तक काव्य है। मुक्तक काव्य में प्रत्येक छन्द का अपना अलग-अलग महत्त्व होता है। 'भ्रमरगीत' प्रसंग के पद गेय मुक्तक हैं। ये विभिन्न राग-रागनियों में बँधे हुए हैं और गीति काव्य के अच्छे उदाहरण माने जाते हैं।

19.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **तत्समः** शब्द जो मूल भाषा के शुद्ध रूप में हो।
2. **तद्भवः** किसी भाषा से विकसित शब्द।
3. **देशजः** बोल-चाल की भाषा से बना हुआ शब्द।

19.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भ्रमरगीत प्रसंग की भाषा-शैली पर विचार कीजिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य
5. असत्य

19.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. सूरसागर–*सूरदास कृत।*
2. सूर की काव्य कला–*गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।*
3. सूरदास के पद–*गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।*

नोट

इकाई 20

भ्रमरगीत का अलंकार विधान

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

20.1 सूरदास के काव्य में अलंकार विधान

20.2 सारांश (Summary)

20.3 शब्दकोश (Keywords)

20.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

20.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- भ्रमरगीत में प्रयुक्त अलंकार विधान को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सूरदास के काव्य में अलंकारों का अधिकारपूर्वक प्रयोग किया हुआ मिलता है। सूरदास भक्त कवि हैं। वहाँ उनका कवि रूप अधिक उभर आया है, जहाँ उन्होंने अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसीलिए ये शब्द कहे हैं–"सूरदास अपने विषय का दर्शन कराते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है, उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है।"

20.1 सूरदास के काव्य में अलंकार विधान

भ्रमरगीत प्रसंग में भी सूरदास का कवि रूप अधिक देखने में आता है, जहाँ अनेक अलंकारों की योजना की गई है। इनमें से कुछ अलंकारों के उदाहरण दृष्टव्य हैं–

अनुप्रास–

तब वे लता लागति अति सीतल

उपमा–

प्रीति करि दीन्ही गरे छुरी।
बधिक चुगाय कपट कन पाछे करत बुरी॥

रूपक–

दृष्टि धार करि मारि साँवदे घायल सब ब्रज नारि

उत्प्रेक्षा–

तुमसो प्रेम कथा को कहिबो मनहुँ कटिबो घास

नोट

अर्थान्तरन्यास–

सुनो भोग को काली जै यहाँ ज्यान है जी को।
खाटी मही नहीं रुचि मानै सूर खवैया घी को॥

संदेह–

किधौं घन गरजन नहिं उन देसनि।
किधौं वाह इन्द्र हठिहि हरि बरज्यो, दादुर खाये देखनि।।

व्यतिरेक–

देखौ माई नयनन्ह ते घन हारे।
बिनु ही ऋतु बरसत निसि बासर सदा सजल दोड तारे॥

यथाक्रम–

जैसे मीन, कमल, चातक की ऐसे ही गई बीति।
तलफत, जरत, पुकारत सुन सठ नाहिन है यह रीति।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

दी गई पंक्तियों में कौन-सा अलंकार है–

1. 'तब वे लता लागति अति सीतल।'
   (अ) उपमा (ब) रूपक (स) अनुप्रास
2. 'प्रीति कर दीन्हीं गरे छुरी जैसे बधिक चुगाय कपट कन पादे करत बुरी' में कौन-सा अलंकार है?
   (अ) उपमा (ब) उत्प्रेक्षा (स) अतिशयोक्ति
3. तुमसो प्रेम कथा को कहिबो मनहु काटिबो घास।'
   (अ) उत्प्रेक्षा (ब) रूपक (स) वक्रोक्ति
4. 'किंधौं घन गरजन नहिं उन देसनि।'
   (अ) व्यतिरेक (ब) उपमा (स) संदेह

सूरदास के अलंकार विधान की विशिष्टता यह है कि कवि ने एक साथ कई-कई अलंकारों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों पर यहां कई अलंकार मिले हुए हैं, उभयालंकार भी दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए–"दिम तहिनोग लागत ऐसो अलि! ज्यों करुई ककरी।" (-32) यहाँ पर ज्यों करुई ककरी में उपमा अलंकार है और करुई ककरी में अनुप्रास अलंकार एक साथ मिले हुए हैं–ये दूध और पानी की तरह मिले हुए हैं, अतः यहाँ पर उपमा और अनुप्रास का संकट नामक उपमालंकार है। एक और उदाहरण देखिए–

प्रीति करि दीनी गरे छुरी।
जैसे बधिक चुगाय कपटकन पाछे करत बुरी॥
मुरली मधुर चेप कर कांटो मोर चन्द्र टटवारी।
वंक विलोकनि लूक लागि बस सकी न तनहि सम्हार।

यहाँ पर दूसरी पंक्ति में उपमा अलंकार है। उसके बाद तीसरी और चौथी पंक्ति में रूपक अलंकार है। दोनों अलंकार तिल-तंडुल की तरह मिले हुए हैं। अतः यहाँ पर उपमा और रूपक का संसृष्टि नामक उभयालंकार है।

नोट

नोट्स सूरदास के काव्य में अलंकारिक प्रयोग बहुत मिलते हैं। इस प्रसंग में यह ध्यान देने योग्य है कि कवि ने अलंकारों का प्रयोग काव्य शोभा बढ़ाने के लिए किया है। साहित्य लहरी की तरह भ्रमरगीत प्रसंग में न क्लिष्ट कल्पनाएँ हैं, न अलंकारों का बरबस प्रयोग।

बिम्ब-योजना

सूरदास ने शब्दों द्वारा वर्ण्य-वस्तु का चित्र उपस्थित कर देने की अद्‌भुत कला पाई है। उनके द्वारा वर्णित एक-एक बात का सजीव रूप हमारी आँखों के सामने साकार हो जाता है। शास्त्रीय शब्दावली में इसे ही बिम्ब योजना कहते हैं। ऐसे अनेक विषय भ्रमरगीत प्रसंग में आये हैं। श्रोतृ बिम्ब और घ्राण बिम्ब तो भ्रमरगीत में नहीं हैं, पर नेत्र बिम्ब बहुत हैं। सूर के शब्दों को पढ़कर आँखों के आगे एक चित्र उपस्थित हो जाता है। इस तरह का एक उदाहरण देखिए–

है कोई वैसोई अनुहारि।
मधुबन तें इत आवत, सखि री! चितो तु नयन निहारि॥
माथे मुकुट मनोहर कुंडल, पीत बसन रुचि कारि।
रथ पर बैठ कहत सारथि सों, ब्रज तन बाँह पसारि॥

यहाँ पर रथ पर बैठे हुए उद्धव का एक चित्र हमारी आँखों के सामने आ जाता है। यह सूरदास की बिम्ब योजना की सफलता है। यहाँ पर नेत्र बिम्ब है। इसी तरह–"देखो नंद द्वार रथ ठाढ़ो।", "सूर स्याम भूतल गिरे, रहे नयन जल छाय", "हमारे हरि हारिल की लकरी", "निरखत अंक स्याम सुन्दर के, बार-बार लखति छाती" "अति मलीन वृषभानुकारी" आदि पंक्तियों से सम्बद्ध प्रसंगों में नेत्र बिम्बों को सफलतापूर्वक उभारा गया है। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि सूरदास ने एक-एक बात को लेकर उसका चित्र भी खींचा है, जैसे, कहीं नेत्र को लेकर, कहीं आँसुओं को लेकर, कहीं शरीर की कृषता को लेकर और कहीं प्रेम की किसी एक मधुर स्मृति को लेकर। कहीं ऐसा भी देखने में आता है कि कवि ने एक साथ अनेक चित्र उपस्थित कर दिये हैं। इस तरह के बिम्ब–"फूल बिनन नहीं जाऊँ सखी री! हरि बिन कैसी बीनों फूल" तथा 'सुनहू स्यामू वै ब्रज वनिता बिरह तुम्हारे भई बावरी" पदों में अच्छी प्रकार उभरकर आये हैं। इस तरह के मिश्रित बिम्बों का एक संश्लिष्ट रूप निम्नलिखित पद में दृष्टव्य है। उद्धव श्रीकृष्ण के सामने ब्रज की सारी कथा और गोपियों के प्रेम का वर्णन करते हैं। उस पर कृष्ण उन्हें उत्तर देते हैं–

ऊधो मोहिं ब्रज विसरत नाहीं।
हंस सुता की सुन्दर कगरी अरु कुंजन की छाहीं॥
वै सुरभी वै वच्छ दोहनी खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं।
वह मथुरा कंचन की नगरी मनि मुक्ताहल जाहिं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत तुन नाहीं॥
अनगन भांति करी बहु लीला जसुदा नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि कहि पछितांही॥

टास्क साहित्य के संदर्भ में बिंब का अर्थ स्पष्ट करते हुए कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत करें।

नोट

इस पद में कृष्ण के अतीत के प्रसंगों के क्रम करके अनेक चित्र सामने आ जाते हैं। इसकी प्रत्येक पंक्ति में एक नवीन बिम्ब है। बिम्ब योजना का सफलतापूर्वक आख्यान अन्यत्र भी मिलता है। अन्धे सूर ने अपनी बाह्य आँखों से जैसे स्पष्ट बिम्ब, जितनी अधिकता से अपने काव्य में व्यक्त किए हैं, उतनी मात्रा में हिन्दी के और किसी कवि की रचना में दुर्लभ हैं।

लक्षणा-शक्ति

जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा हो और कोई अन्य अर्थ लगाना पड़े वहाँ शब्द की लक्षणा शक्ति होती है। सूरदास के काव्य में पर्याप्त मात्रा में लक्षणा शक्ति का प्रयोग मिलता है। भ्रमरगीत प्रसंग एक उपालंभ काव्य है। गोपियों के वचनों की वक्रता और वैदग्ध्यपूर्ण अभिव्यक्ति में लक्षणा अत्यधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई है। इसमें भ्रमरगीत प्रसंग के शिल्प की प्रौढ़ता की अति वृद्धि हुई है। शब्द की लक्षणा शक्ति के अनेक उदाहरण भ्रमरगीत प्रसंग में मिलते हैं जैसे, "अँखियाँ हरिदर्शन की भूखी"। यहाँ पर भूखी शब्द में ही लक्षणा शक्ति है। भूखी का मुख्य अर्थ भूख न लगकर यहाँ इच्छुक अर्थ लग रहा है, अतः यहाँ शब्द की लक्षणा शक्ति है। इसी तरह–"कहि कहि कथा स्याम सुन्दर की सीतल करु सब गात" में सीतल शब्द में लक्षणा शक्ति है। इस तरह के और भी बहुत से प्रयोग सूरदास के भ्रमरगीत प्रसंग में मिलते हैं। "ऊधो कुलिस गई यह छाती", "ऊधो काल-चाल चौराजी", "इकटक मग जोवति अरु रोवति, भूलेहु पलक न लागी" "हरिमुख की सुन मीठी बातें डरपत है मन मेरो"–इन सभी कथनों में शब्द की लक्षणा शक्ति है।

क्या आप जानते हैं जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा हो और शब्द का कोई अन्य अर्थ लगाना पड़े उसे लक्षणा शब्द शक्ति कहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्य के अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष यानी कथ्य और शिल्प-दोनों ही दृष्टियों से सूरदास का भ्रमरगीत प्रसंग प्रशंसनीय है। उनकी रचना का अध्ययन करने के पश्चात् भक्तभाल में उनके विषय में लिखा गया छप्पय सर्वथा युक्तिसंगत लगता है। सूरदास की प्रशंसा में नाभादास ने भक्तभाल में इस प्रकार कहा है–

उक्ति योज्ञ अनुप्रास, वरन अस्थिति अति भारी।
वचन प्रीति निर्वाह, अर्थ अद्‌भुत तुक धारी॥
प्रतिबिम्बित दिवि दृष्टि, हृदय हरि लीला भासी।
जन्म कर्म गुन रूप सर्व रसना जू प्रवासी॥
विमल बुद्धि गुनि और की, जो वह गुनि स्रवनान करै।
श्री सूर कबित सुन कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै॥

20.2 सारांश (Summary)

सूरदास भक्त कवि हैं। वहाँ उनका कवि रूप अधिक उभर आया है, जहाँ उन्होंने अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है। **डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने इसीलिए ये शब्द कहे हैं–"सूरदास अपने विषय का दर्शन कराते हैं तो मानो अलंकार शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है, उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है।"

सूरदास ने शब्दों द्वारा वर्ण्य-वस्तु का चित्र उपस्थित कर देने की अद्‌भुत कला पाई है। उनके द्वारा वर्णित एक-एक बात का सजीव बिम्ब हमारी आँखों के सामने साकार हो जाता है। सूर के शब्दों को पढ़कर आँखों के आगे एक चित्र उपस्थित हो जाता है।

जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा हो और कोई अन्य अर्थ लगाना पड़े वहाँ शब्द की लक्षणा शक्ति होती है। सूरदास के काव्य में पर्याप्त मात्रा में लक्षणा शक्ति का प्रयोग मिलता है। भ्रमरगीत प्रसंग एक उपालंभ काव्य है। गोपियों के वचनों की

नोट

वक्रता और वैदग्ध्यपूर्ण अभिव्यक्ति में लक्षणा अत्यधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई है। इसमें भ्रमरगीत प्रसंग के शिल्प की प्रौढ़ता की अति वृद्धि हुई है।

20.3 शब्दकोश (Keywords)

1. करुई ककरीः कड़वी ककड़ी के लिए यह देशज शब्द प्रयुक्त हुआ है।

2. बिंबः झलक, परछाईं, साहित्य के अन्तर्गत इसका अर्थ व्यंजना शक्ति से निकलने वाले अर्थ के रूप में समझा जाता है।

20.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भ्रमरगीत प्रसंग के शिल्पविधान पर प्रकाश डालिए।

2. भ्रमरगीत प्रसंग के आधार पर सूर के अलंकार विधान का विवेचन कीजिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. (स) 2. (अ) 3. (अ) 4. (स)

20.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सूरसागर–*सूरदास कृत।*
2. सूर की काव्य कला–*गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।*
3. सूरदास के पद–*गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।*

नोट

इकाई 21

भ्रमरगीत की तात्विक समीक्षा

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
21.1 वर्ण्य विषय
21.2 मर्मस्पर्शिता
21.3 कल्पना सौन्दर्य
21.4 रसाभिव्यक्ति
21.5 सारांश (Summary)
21.6 शब्दकोश (Keywords)
21.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
21.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सूरसागर के काव्य-भाग भ्रमरगीत की तात्विक समीक्षा करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भ्रमरगीत की मीमांसा करते समय उसका काव्य-सौष्ठव सहज ही हमारी आँखों के सामने आ जाता है। सूरदास भक्त कवि हैं। भक्ति का भाव-भरा विस्तार उनके सूरसागर में भरा हुआ है। भ्रमरगीत उसका महत्त्वपूर्ण अंश है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने इसे सूरसागर का सार कहा है–"भ्रमरगीत सूरसागर के भीतर का एक सार रत्न है।" सूरसागर में भागवत पुराण की तरह श्रीकृष्ण की भक्ति में उच्चता के साथ काव्य-कला का भी अद्‌भुत उत्कर्ष है। भागवत के प्रसंगों को सूरदास ने अपनी कवित्व शक्ति, मौलिक सूझबूझ और उत्तम अभिव्यंजना कला से और निखार दिया है। 'भ्रमरगीत प्रसंग' उनकी कला का और परिष्कृत रूप है। इस प्रसंग के अनेक पक्षों पर विचार करने के पश्चात् उसके काव्य-सौन्दर्य का विवेचन निश्चय ही रोचक है।

काव्य की परख के दो मानदंड स्पष्ट हैं–काव्य का अनुभूति पक्ष और काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष। अनुभूति पक्ष का सम्बन्ध वर्णित विषय है यानी क्या कहा गया है, इसका उत्तर देना अनुभूति पक्ष है और उस अनुभूति की कितनी कलापूर्ण अभिव्यक्ति की गई है इसका विवेचन अभिव्यक्ति पक्ष है। किसी रचना की काव्य सम्बन्धी मीमांसा के लिए प्रायः कुछ बिन्दु स्थिर होते हैं। उन्हीं के आधार पर काव्य का सही विवेचन हो सकता है। वे प्रायः निम्नलिखित हैं–वर्ण्य विषय, मर्मस्पर्शी स्थल, कल्पना सौन्दर्य, प्राकृतिक सुषमा, रसाभिव्यक्ति, भाषा और काव्यरूप, अलंकार योजना, बिम्बयोजना, लक्षणा शक्ति।

इन्हीं बिंदुओं के आधार पर भ्रमरगीत का काव्य सौष्ठव दृष्टव्य है।

21.1 वर्ण्य विषय

'भ्रमरगीत' का वर्ण्य उद्धव और गोपियों की कृष्ण विषयक चर्चा है। उद्धव के ज्ञान गर्व को चूर करने के लिए ही श्रीकृष्ण उन्हें गोपियों के पास भेजते हैं। वे अपने ज्ञान मार्ग का उपदेश गोपियों को देते हुए निर्गुण ब्रह्म को

नोट

समझाने की चेष्टा करते हैं। कृष्ण प्रेम की उत्सुक गोपियाँ भ्रमर के माध्यम से उद्धव को सगुण ब्रह्म के समर्थन से भरी तर्कपूर्ण भावाभिव्यक्ति करती हैं। इसी को क्रम-क्रम करके सूरदास ने भावभीना विस्तार दिया है। वास्तविकता यह है कि भ्रमरगीत के माध्यम से सूरदास ने निर्गुण निराकार ब्रह्म का खंडन कराकर सगुण ब्रह्म का समर्थन प्रकट किया है। उद्धव पर गोपियों की विनय, ज्ञान पर प्रेम की विजय है। इस तरह सूरदास के भ्रमरगीत में तरह-तरह से गोपियों के प्रेम का प्रकटीकरण किया गया है। इसमें और कोई कथा नहीं चलती। इसके अनेक छन्दों में अनेक प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति हुई है। यही भ्रमरगीत का वर्ण्य विषय है। इसको ही भ्रमरगीत का कथ्य भी कह सकते हैं। इसी को दूसरे शब्दों में अनुभूति पक्ष कहा गया है। इस सम्बन्ध में यह तथ्य अवेक्षणीय है कि कुछ विद्वान भ्रमरगीत प्रसंग में यह अनुभव करते हैं कि इसमें सूरदास ने एक ही प्रकार की भाषा में, एक ही प्रकार के गीत काव्य में, एक ही प्रकार की मधुर ब्रजभाषा में, एक ही प्रकार की अनुभूति की है। उसमें पुनरावृत्ति बहुत है।

सूरदास गोपियों के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म का खंडन करके प्रेम मार्ग की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। गोपियाँ बार-बार अपनी बात कहती हैं, इसलिए भ्रमरगीत प्रसंग में पुनरावृत्ति या एकरसता कुछ लोगों को लगती है, पर ऐसी बहुत नहीं है। यदि ध्यान से देखा जाय तो भ्रमरगीत प्रसंग के पदों में चाहे बात वही घुमा-फिराकर कही गई हो पर अंतिम पंक्ति में सूरदास अवश्य ही नई बात कहते हैं। इसी तरह प्रत्येक पद की पहली पंक्ति नई उठान से आरंभ होती है। यह एकरसता वाली स्थिति नहीं है बल्कि वह स्थिति है जो ईख के गन्ने को खाने में होती है। एक बार छीलिए; फिर छीलिए, फिर छीलिए पर इच्छुदण्ड (गन्ना) अपना स्वाद देता ही रहता है। 'छिन्नश्छिन्न पुनरपिपुनः स्वादुमानिच्छुदण्डः''। इसी प्रकार सूर की अनुभूति का माधुर्य समझना चाहिए। कहना न होगा भक्ति का समावेश और उदात्त कवित्वपूर्ण अभिव्यक्ति–इन दोनों के योग ने सूरदास के भ्रमरगीत को काव्यानुभूति की दृष्टि से प्रौढ़ता प्रदान कर दी है। इस काव्य में शृंगार रस का आद्योपान्त प्रवाह है इसलिए भी इसकी रसनीयता अपेक्षाकृत अधिक उत्तम प्रतीत होती है। यानी सूरदास के भ्रमरगीत प्रसंग का कथ्य शक्ति सम्पन्न है। वह ऐसी वाणी में रचित है कि सहसा रस चुंबिनी कोटि को पहुँच गया है।

21.2 मर्मस्पर्शिता

भ्रमरगीत प्रसंग में मर्म को छूने वाली अभिव्यंजनाएँ बहुत अधिक देखने में आती हैं। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने इस दृष्टि से भ्रमरगीत की प्रशंसा करते हुए कहा है–"सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है।" वैसे तो सारा ही भ्रमरगीत प्रसंग नारी के प्रति पुरुष की बेवफाई को प्रकट करने वाला शाश्वत सत्य होने के कारण मर्मस्पर्शी है पर इसके कुछ स्थल अधिक सराहनीय हैं। गोपियाँ अपनी स्थिति इस प्रकार समझाती हैं, जिस प्रकार कि कोई चिड़ीमार पहले पक्षियों को अनाज के कण खाने के लिए डाल देता है पर बाद में उन्हें जाल में फंसाकर उनके साथ बुरा बर्ताव करता है। श्रीकृष्ण ने इसी तरह पहले तो गोपियों के साथ प्रेम करके उन्हें लुभाया और फिर बाद में मथुरा जाकर उनको भुलाकर उनके साथ बुरा व्यवहार किया। इसलिए गोपियाँ कहती हैं–

प्रीति कर दीन्हीं गरे छुरी।

जैसे बधिक चुगाय कपट कन पाछे करत बुरी॥

उन्हें यह लगता है कि प्रीति क्या मिली हमें तो मानो कोई जहरीली वस्तु ही प्रीति के साथ दे दी गई। यानी कृष्ण ने हमारे साथ बड़ा छल किया है–

ऊधो! दीनी प्रीति दिनाई।

बातनि सुहृद, करम कपटी के चले चोर की नाई॥

गोपियों के इस तरह के कथन हमारे मन को छू लेते हैं। जिन गोपियों का श्रीकृष्ण के साथ बाल्यकाल से प्रेम रहा है, उसे एकदम कैसे भुलाया जा सकता है। गोपियों के वचनों में जो सच्चाई है, यह प्रेममयी भाषा अपने आप बन जाती है और इसलिए हमारे हृदय को छू लेती है। कृष्ण के प्रति प्रेम को व्यंजित करते समय गोपियाँ कभी उलाहने देती हैं, कभी अपने वचनों की विदग्धता के द्वारा प्रेम प्रकट करती हैं। उन प्रसंगों में मार्मिकता है। राधा की विरह व्यथित दशा तो और भी अधिक हृदयद्रावक है। भ्रमरगीत प्रसंग में गोपियों के अधिकांश उद्‌गार मर्मस्पर्शी हैं। उनमें कोई न कोई हृदय को छूने वाली बात आ ही गई हैं एक बात और ध्यान देने योग्य है। एक स्थिति ऐसी होती है कि

नोट

व्यक्ति जूझकर टूट जाता है। वह न चाहते हुए भी अपनी दृढ़ता छोड़ देता है। प्रेम की पगडंडी पर चलने वाली गोपियाँ अनेक यत्न करके उद्धव से अपने मनोभाव व्यक्त करती हैं। हारकर फिर वे यह कहती हैं कि कृष्ण किसी तरह ब्रज में आकर बसें। उन्होंने प्रेम-व्यवहार के बीच कृष्ण से अनेक कार्य कराये थे। वे सब सिने-चित्र की भांति उनके मानस-पटल में अंकित होते आते हैं और वे अत्यन्त भावभीने शब्दों में अपने सब कार्यों के लिए पश्चाताप करती हुई कृष्ण की खुशामद करती हैं। उनके ये प्रसंग मर्म को छूने वाले हैं–

फिर ब्रज बसहु गोकुल नाथ।
बहुरि न तुमहिं जगाय पठवौं गोधनन के साथ।
बरजौं न माखन खात कबहूँ, दैहौं देन लुटाय।
कबहूँ न दैहों उराहनो जसुमति के आगे जाय॥
दौरि दाम न देहुँगी लकुटी न जसुमति पानि।
चोरी न देहुँ उघारि, किए औगुन न कहिहौं आनि॥
करिहौं न तुम सों मान हठ, हठिहौ न मांगत दान।
कहिहौं न मृदु मुरली बजावन करन तुमसों गान॥
कहिहौं न चरनन देन जावक गुहन बेनी फूल।
कहिहौं न करन सिंगार बटतर, बसन, जमुना कूल॥
भुज भूषनन युत कंध धरिकै रास नृत्य न कराउँ।
हौं संकेत-निकुंज बसिकै दूति मुख न बुलाउँ॥

इन सभी बातों में एक-एक प्रसंग समाया हुआ है और वह हृदय को छूने वाला है। भ्रमरगीत प्रसंग में यशोदा के वात्सल्य से सटे हुए उद्‌गार भी उसी तरह के मर्म को छूने वाले हैं। इस तरह का एक पद बहुत प्रसद्धि है–

यद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखकै मोहन के मुख जोग॥ **सूरसागर–376**

21.3 कल्पना सौन्दर्य

सूरदास के काव्य में कल्पना का सौन्दर्य पग-पग पर मिलता है। 'सूरसागर' की रचना भागवत से प्रभाव ग्रहण करके कवि ने अपनी कल्पना की सहायता से अनेक नूतन चित्र उकेरे हैं। सूरसार का अति प्रसिद्ध और भावपूर्ण प्रसंग भ्रमरगीत है, इसलिए उसमें सूरदास की कल्पना का सौन्दर्य क्यों नहीं होगा। अकेले भ्रमरगीत प्रसंग का कल्पना-वैभव ही सूर की महत्ता को अच्छी प्रकार उजागर करने में समर्थ है। सूरदास ने भ्रमरगीत प्रसंग की वस्तु को अपनी कल्पना से नूतन बना दिया है। निर्गुण ब्रह्म का खंडन और उस पर प्रेममार्ग की विजय दिखलाने में कवि ने कल्पना का सहारा लिया है। यह दूसरी बात है कि कवि अपने परिवेश के प्रति इतना सजग है, जिसके कारण वह इस तरह की स्थापना इस काव्यांश में करना चाहता है।

सूरदास का काव्य मुक्तक काव्य है। मुक्तक काव्य में अलग-अलग तरह की अभिव्यंजनाएँ की जाती हैं। सूर इस कला में सिद्धहस्त हैं। भ्रमरगीत प्रसंग में इसलिए तरह-तरह की कल्पना से युक्त पद देखने में आते हैं। यों तो गोपियों के तरह-तरह के भाव व्यक्त हुए हैं उनकी प्रत्येक नई उठान में कार्य की कल्पना है फिर भी कुछ प्रसंग अधिक महत्त्व के कहे जा सकते हैं।

गोपियाँ कृष्ण के विरह में व्यथित हैं। उन्हें इस बात पर बड़ा आश्चर्य होता है कि श्रीकृष्ण वर्षा ऋतु में भी उनकी याद करके उनके पास नहीं आये। वे तरह-तरह की शंकाएँ करती हैं। उन्हें सन्देह होता कि जिस देश में कृष्ण हैं, क्या वहाँ बादल नहीं गरजते? या इन्द्र को ही भगवान ने वर्षा करने को मना कर दिया है या वर्षा के आगमन की सूचना देनेवाले मेढ़कों को सर्पों ने खा लिया। इस तरह की नाना कल्पनाएँ प्रदर्शित करने वाला पद निम्नलिखित है–

नोट

किधौं घन गरजन नहिं उन देसनि।
किधौं वहि इन्द हठिहि हरि बरज्यौ, दारदुर खाये सेसनि॥
किधौं वहि देस बकन मग छाड्यो, घर बूड़ति न प्रवेसनि।
किधौं वहि देस मोर चातक पिक, बाधक बधे विसेसनि॥
किधौं वहि देस बाल नहिं झूलति गावत गीत सहेसनि।
पथिक न चलत सूर के प्रभु पै जासौं कहौं संदेसनि॥ पद, 280

तरह-तरह की कल्पनाओं का सौन्दर्य भ्रमरगीत प्रसंग के और भी अनेक पदों में मिलता है। यहाँ पर सूरदास ने दृष्टकूट शैली का प्रयोग किया है, यहाँ जो चमत्कार है वह भी कार्य की कल्पना का ही है। 'हरि को तिलक हरि! चित्त को दहत' तथा 'कहत कत परेदसी की बात' आदि पंक्तियों से आरंभ होने वाले पद इसी प्रकार की दृष्टकूट-शैली से युक्त हैं। यहाँ कल्पना का साम्राज्य है। इसी तरह जहाँ सूरदास ने अलंकृत वर्णन किया है, वहाँ पर भी कल्पना का सौन्दर्य देखने योग्य है। 'निस दिन बरसत नैन हमारे', 'लखियत कालिन्दी अतिकारी' तथा 'अति मलीन वृषभानुकुमारी' आदि पंक्तियों से आरंभ होने वाले पद अलंकृत पद हैं और उनमें कल्पना की सुन्दरता अलंकारों के प्रयोग के रूप में दिखलाई देती है। कल्पना सौन्दर्य का एक अनूठा उदाहरण यहाँ पर और दृष्टव्य है। गोपियाँ कृष्ण के विरह में दुखी हैं। वे काम से पीड़ित होने पर विचार करती हैं कि कामदेव हमें सता रहा है, हमारा वध किये दे रहा है। स्यात् कामदेव ने हमें अपना शत्रु शिव समझ लिया है क्योंकि शिवजी के पास गंगा भी हैं हमारी मोतियों की माला को कामदेव ने गंगा समझ लिया है। हमने तो श्रीकृष्ण के लिए सोलह शृंगार कर रखे हैं। आप भूल से शिव समझ रहे हैं। सरसता, सौन्दर्य और आपहुति के पुष्ट सूर की कल्पना का यह सब सौन्दर्य निम्नलिखित पद में ईक्षणीय है–

सबन अवध सुन्दरी बधै जनि।
मुक्तामाल अनंग! गंग नहिं, नवसत साजे अर्थ स्यामघन॥
भाल तिलक उडुपति न होय यह, कबरित-ग्रंथि अहिपति न सहसफन।
नहिं विभूति दाधिसुत न भाल जड़! यह मृगमद चंदन चर्चित तन।
न मृग चर्म यह असित कंचुकी, देखि बिचारि कहाँ नंदी गन।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु बरबस काम करत हठ हम सन॥

अतः यह स्पष्ट है कि सूरदास के भ्रमरगीत प्रसंग में कवि की कल्पना का सौन्दर्य अनेक प्रकार से प्रस्फुटित होता हुआ दिखलाई देता है। यह प्रसंग आदि की गंभीरता के साथ-साथ उच्च कोटि के कवित्व से पूर्ण है। इसलिए इसमें कल्पना का अधिक सौन्दर्य मिलता है।

नोट्स आचार्य शुक्ल ने भ्रमरगीत की प्रशंसा करते हुए कहा कि–''सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है।''

प्राकृतिक सुषमा

सूरदास के भ्रमरगीत काव्य में ब्रज के गोकुल गाँव का वातावरण उभरकर आया है। ग्राम-प्रदेश में प्रकृति का पूरा प्रसार होता है। श्रीकृष्ण का गोकुल गाँव की प्रकृति के साथ घनिष्ठ साथ रहा है। सूरदास ने जो भावाभिव्यक्ति की है उसमें प्रकृति का समावेश हो जाना सर्वथा स्वाभाविक था। भ्रमरगीत का सम्बन्ध सीधे रूप में कृष्ण की ब्रज की लीलाओं से है। अतः इस काव्य में प्राकृतिक सुषमा का प्रशंसित रूप देखने को मिलता है। हिन्दी-साहित्य में प्रकृति वर्णन की अनेक शैलियाँ प्रसिद्ध हैं–(1) आलम्बन रूप में (2) उद्दीपन रूप में (3) मानवीकरण के रूप में (4) प्रतीकात्मक रूप में (5) अलंकार विधान के रूप में (6) पृष्ठभूमि के रूप में (7) बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप में (8) उपदेशिका रूप में (9) दूती के रूप में (10) रहस्यात्मक रूप में (11) संवेदना के रूप में। भ्रमरगीत प्रसंग में इनमें से

नोट

कई प्रकार का वर्णन देखने में आता है। कवि की कला प्रकृति की शैलियों की विविधता में नहीं है। उनका वैशिष्ट्य प्राकृतिक सुषमा के अंकन में है। उन्होंने ब्रज के वन, नदी, पर्वत, लता, पुष्प, कुंज, कछार आदि के साथ सर्वथा सुलभ सूर्य, चन्द्र रात्रि, जल चन्दन आदि अनेक चीजों का भावपूर्ण वर्णन किया है।

टास्क गोपियों एवं उद्धव के मत (सगुण एवं निर्गुण) के प्रति अपने विचार प्रकट कीजिए।

भ्रमरगीत प्रसंग में श्रीकृष्ण के विरह में व्यथित गोपियों के प्रेम भरे उद्‌गार हैं। वे कृष्ण के संयोग के समय की स्मृति करती हैं। संयोग के समय की सुखद चीजें वियोग में दुखद हो जाती हैं। गोपियाँ कृष्ण के वियोग का प्रभाव प्रकृति पर भी मानती हैं। मधुबन को जब हरा-भरा देखा तो उसे लज्जित करते हुए कहती हैं–

"मधुवन, तुम कत रहत रहे।
विरह वियोग स्याम सुन्दर के ढाठे क्यों न जरे॥"

गोपियों को श्रीकृष्ण के बिना प्रकृति की सभी वस्तुएँ दुखद लगती हैं। सूरदास ने उसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है–

बिनु गोपाल बैरिन भई कुञ्जैं।
तब ये लता लगति अति सीतल अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं॥
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलै अलि गुंजैं।
पवन पानि घनसार संजीवनि दधि सुत किरन भानु भई मुंजै॥
ए, ऊधो, कहियो माधव सों विरह कदन करि मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं॥ **–पद, 85**

प्रकृति वर्णन की शैली की दृष्टि से यहाँ प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन है। उसमें अधिक कला इस बात में है कि कवि ने ब्रज की उस प्राकृतिक शोभा की व्यंजना कर दी है जिसका ब्रज की भूमि पर सर्वतो व्याप्त प्रसार है। सूरदास ने विभिन्न ऋतुओं के अनुसार भी प्रकृति सम्बन्धी सुन्दरता व्यंजित की है, उसमें वर्षा की प्रमुखता रही है।

सूरदास ने प्रकृति के एक-एक पदार्थ को लेकर भी भावाभिव्यक्ति की है–चाहे वह उद्दीपन रूप में ही आई है। जैसे–

चन्द्रमा को देखकर–"हर को तिलक हरि चित को दहत",
बादल को देखकर–"बरु ये बदराऊ बरसन आये",
कोयल को देखकर–"जो तूने कुहू उड़ माहि"
मोर को देखकर–"हमारे माई मोरउ बैर परे"

प्राकृतिक सुषमा की छटा अलंकार विधान के रूप में सूर ने खूब की है। जहाँ लम्बे रूपक हैं वहाँ पर और जहाँ तरह-तरह की उपमाएँ ही हैं वहाँ पर तो प्रकृति का सहारा लिया ही है, सामान्य कथनों में भी प्रकृति का उपमान रूप में प्रयोग हुआ है। इस तरह प्रकृति का अलंकार रूप में–"सवन अबध सुन्दरी बधै जनि," टेक वाले पद में अच्छी प्रकार देखा जा सकता है। सूरदास ने आलम्बन रूप में, दूती रूप में, मानवीकरण के रूप में भी प्रकृति का वर्णन किया है। उनकी अनुभूति की यह विशेषता है कि चाहे किसी रूप में आई है, प्रकृति अपनी सुषमा विकीर्ण करती हुई ही आई है।

21.4 रसाभिव्यक्ति

सूरदास रस सिद्ध कवि हैं। वात्सल्य और शृंगार रस के वर्णन में वे अद्वितीय हैं। इसलिए उन्हें वात्सल्य और शृंगार रस का सम्राट कहा जाता है। भ्रमरगीत प्रसंग में सूरदास ने कृष्ण के प्रति गोपियों के विरहोद्‌गारों की मार्मिक

नोट

अभिव्यंजना की है। उसमें यशोदा के कथनों से वियोग वात्सल्य रस की निष्पत्ति होती है। इस प्रसंग का मुख्य रस शृंगार रस है। शृंगार रस का भी वियोग पक्ष भ्रमरगीत प्रसंग में आया है। यहाँ शृंगार रस के आलम्बन श्रीकृष्ण हैं। उद्धव की चिट्ठी जिसमें ज्ञानमार्ग का उपदेश गोपियों के विरह को उद्दीप्त कर देता है। उनके हृदय से तरह-तरह के उद्‌गार निकलते हैं। सूरदास ने उनका विस्तार के साथ वर्णन किया है। वे सभी प्रसंग शृंगार रस के विरह वर्णन के हैं। कहीं-कहीं कृष्ण को भी शृंगार रस के आश्रय के रूप में वर्णित किया गया है पर ऐसा कुछ ही पदों में है। वियोग शृंगार रस की अभिव्यक्ति गोपियों के अनेक भावों में होती है। यहाँ पर कुछ उदाहरण ध्यान देने योग्य हैं। उद्धव श्रीकृष्ण की चिट्ठी लाते हैं। अपने प्रिय की वस्तु पाकर और अतीत के साहचर्य सम्बन्ध का स्मरण करके गोपियाँ प्रेम विभोर हो जाती हैं। सूरदास ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है–

निरखत अंक स्याम सुन्दर के बार-बार लावति छाती।

लोचन जल कागद-मसि मिलिकै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती।

यहाँ पर श्रीकृष्ण आलम्बन हैं। उनकी चिट्ठी उद्दीपन है। उसको बार-बार छाती से लगाना अनुभाव है। आँसू सात्त्विक अनुभाव है। और स्मृति संचारी भाव है। रति स्थायी भाव है रस के सभी अवयव भी यहाँ पर हैं और यहाँ शृंगार रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. सूर ..... रस के सम्राट हैं।
2. सूरदास ने भ्रमरगीत प्रसंग में गोपियों की ..... को अभिव्यक्ति दी है।
3. भ्रमरगीत प्रसंग ..... का एक अंश है।
4. भ्रमरगीत प्रसंग ..... निवासी गोपियों एवं उद्धव के बीच वार्तालाप है।

गोपियों का श्रीकृष्ण से बाल्यकाल से अनुराग है। जिसे छोड़ना किसी प्रकार भी संभव नहीं है। श्रीकृष्ण का रूप और उनका चरित उनके लिए सदैव मनोहर उद्दीपक बना हुआ है। इसीलिए वे उद्धव के उपदेश की उपेक्षा करके श्रीकृष्ण का ही स्मरण करती हैं। इस तरह भाव निम्नलिखित पद में आये हैं और वे वियोग शृंगार रस के हैं–

लरिकाई को प्रेम, कहो अलि कैसे करिकै छूटत?

कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित अब अन्तरगति यों लूटत॥

चंचल चाल मनोहर चितवनि, वह मुसुकानि मंदधुनि गावति।

नटवर भेस नंद नन्दन को यह विनोद गृह बन ते आवत॥

चरन कमल की सपथ करति हौं यह संदेस मोहि विष सम लागत।

सूरदास मोहि निमिष न विसरत मोहन मूरति सोवत जागत॥ **–पद 34**

गोपियों का श्रीकृष्ण से कितना अधिक अनुराग है, वह सूर की अनेक उक्तियों से अच्छी प्रकार व्यंजित हो जाता है। उनके कथनों में वियोग की ऐसी मार्मिक अभिव्यंजना वियोग शृंगार के उदाहरणों में सरलता से गिन सकते हैं।

वे कभी हमरे हरि हारिल की लकरी, कहकर, कभी **'उपमा नैनन एक गही,** कहकर, **"सबन अबध सुन्दरी बधै जनि"** कहकर कभी **"यह तो कान्ह केलि की भूखी"** कहकर कभी हम हमें नंन्दनंदन को गारो' कहकर यानी सहस्र प्रकार से अपने मन की व्यथा को व्यक्त करती हैं। इस तरह के अनेक कथनों में से यह यहाँ पर अवेक्षणीय है–

निस दिन बरसत नैन हमारे।

सदा रहति पावस ऋतु हम पै जब से स्याम सिधारे॥

दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ, दूर कपोल भये कारे।

कंचुकि नहिंसूखत सुन सजनी, उर बिच बहत पनारे॥

नोट

सूरदास प्रभु अम्बु बढ्यो, गोकुल लेहु उबारे।
कँह लौं कहौ स्याम घन सुन्दर, बिकल होत अति मारे॥ **–पद 316**

भ्रमरगीत प्रसंग में वियोग की अभिव्यक्ति को कवि ने अनेक प्रकार से परिकल्पित किया है। गोपियाँ विभिन्न ऋतुओं के अनुसार अपने वियोग दुख की अभिव्यक्ति करती हैं। प्रकृति के पदार्थों को देखकर वियोग के भावों की वृद्धि का वर्णन करती हैं। कभी कामदेव के सताने की शिकायत करती हैं। अपने विभिन्न अंगों की जैसे मन की आंखों की व्याकुलता का वर्णन करती हैं। अतीत की अनेक स्मृतियाँ उनके हृदय पटल पर सिने चित्र की भाँति आती है। वे अपने कायो ं के लिए अनुताप प्रकट करती हैं। कृष्ण से तरह-तरह के व्यंग्य और उपालम्भों से युक्त शब्दावली में शिकवा करती हैं। संदेश भेजने का भी कथन करती हैं। जब बहुत कह लेती हैं तो आत्मीयता से भरे शब्द भी प्रकट करती हैं। इन सभी तरह की अभिव्यंजनाओं में शृंगार रस की धारा बहती है। इनके इतने अधिक भावविस्तार को देखकर **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने कहा है–

"वियोग की जितनी अन्तर्दशाएं हो सकती हैं, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है या सामान्यतः हो सकता है, वे सब इसके भीतर मौजूद हैं।"

क्या आप जानते हैं सूरदास को वात्सल्य एवं शृंगार रस का सम्राट कहा जाता है।

गोपियों के वियोग के भावों में सबसे अधिक सरस और हृदयस्पर्शी गोपियों की कृष्ण के प्रति अभि-आस्था है। उनका कृष्ण से जो सम्बन्ध रहा है उसके बल पर वे बड़े विश्वास के साथ व्यक्त करती हैं कि चाहे कृष्ण लाखों विवाह कर ले या फिर एक छोड़ दस कुब्जाओं को रख लें, रहेंगे वे अन्ततः हमारे ही–

ब्याहो लाख धरो दस कूबरि अंतहि कान्ह हमारे।

शृंगार रस की अभिव्यक्ति की परख रस के विभिन्न अवयवों की निबंधना से भी की जाती है। विभाव के अन्तर्गत आलम्बन तो श्रीकृष्ण हैं। उद्दीपन के दो प्रकार होते हैं–आलंबनगत और आलम्बन बाह्य। आलम्बनगत उद्दीपन का आख्यान भ्रमरगीत में इसीलिए नहीं है क्योंकि श्रीकृष्ण सामने नहीं हैं। केवल मात्र उनकी चिट्ठी है। आलम्बन बाह्य में कवि ने कहीं तो ऋतुओं के अनुसार उद्दीपन की अभिव्यक्ति की हैं। उनमें वर्षा ऋतु सबसे प्रमुख है जैसे, कारी घटा देखि बादर की नयन नीर भर आये, ब्रजतैं द्वै ऋतु, पै न गई, आदि पदों में वर्षा, से गोपियों से विरह के उद्दीप्त होने का वर्णन है। ब्रज की प्रकृति लता, कुंज यमुना के उद्दीपन आदि को बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं, पद में अच्छी प्रकार व्यक्त किया गया है। बादल, कोयल, पपीहा, मोर, चन्द्रमा, आदि को लेकर सूर ने अलग-अलग विरह–उद्दीपक वर्णन प्रस्तुत किये हैं। कहीं कहीं त्यौहारों के समय का बड़ा मर्मभरा उद्दीपक चित्र सूर ने खींचा है। जैसे–

आवत दिवारी बिल खाय ब्रजवारी कहै, अबकै हमारे गाँव गोधन पुजै है को?

शृंगार रस के अनुभावों का भी बहुत आधिक्य भ्रमरगीत प्रसंग में मिलता है। ज्ञानमार्ग के उपदेश को सुनकर गोपियों के प्रेम भरे तर्क यत्नज अनुभाव में आयेंगे और ये इतने अधिक हैं कि उनकी गणना भी नहीं की जा सकती। सात्त्विक भावों में अश्रु का वर्णन बहुत देखने में आता है–"निस दिन बरसत नैन हमारे और शखि इन नैनन ते घन हारे' आदि पदों में आंसुओं का वर्णन है। इस तरह का सूरदास का निम्नलिखित पद ध्यान देने योग्य है। कवि राधा की विरह-दशा का वर्णन करते हुए कहता है। यहाँ विभिन्न अनुभावों के साथ दैन्य चिता आदि संचारी भाव भी आ गये हैं।"

अति मलीन वृषभानु कुमारी।
हरि स्रमजल अंतर तनु भी जता लालच न धुआवति सारी॥
अधोमुख रहति उरध नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।
छूटे चिहुर बदन कुम्हिलाने ज्यों मलिनी हिमकर की मारी॥
हरि संदेश सुनि सहज मृतक भई इक विरहिनि दूजै अलि जारी।
सूर स्याम विनु यों जीवति है ब्रज बनिता सब स्याम दुलारी॥ **–पद 100**

नोट

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सूरदास ने भ्रमरगीत प्रसंग में वियोग शृंगार रस की सांगोपांग अभिव्यक्ति की है। कवि ने बार-बार विरह के इतने उद्‌गार व्यक्त किये हैं कि उनमें से रस प्रक्रिया की सारी सामग्री ढूँढ निकालना आसान काम है। वियोग की एकादश अवस्थाएँ बतलाई गई हैं–अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्छा, मरण। ये सभी भ्रमरगीत प्रसंग में मिल जाते हैं। ये सब बातें सूरदास के प्रभावपूर्ण अनुभूति कौशल को प्रकट करनेवाली हैं। तभी तो उनके बारे में कहा है–

किधौं सूर को सर लग्यौ, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यौ, तन मन धुनत सरीर॥

21.5 सारांश (Summary)

'भ्रमरगीत' का वर्ण्य उद्धव और गोपियों की कृष्ण विषयक चर्चा है। उद्धव के ज्ञान गर्व को चूर करने के लिए ही श्रीकृष्ण उन्हें गोपियों के पास भेजते हैं। वे अपने ज्ञान मार्ग का उपदेश गोपियों को देते हुए निर्गुण ब्रह्म को समझाने की चेष्टा करते हैं। कृष्ण प्रेम की उत्सुक गोपियाँ भ्रमर के माध्यम से उद्धव को सगुण ब्रह्म के समर्थन से भरी तर्कपूर्ण भावाभिव्यक्ति करती हैं।

भ्रमरगीत प्रसंग में मर्म को छूने वाली अभिव्यंजनाएँ बहुत अधिक देखने में आती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस दृष्टि से भ्रमरगीत की प्रशंसा करते हुए कहा है–"सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है।"

सूरदास के काव्य में कल्पना का सौन्दर्य पग-पग पर मिलता है। 'सूरसागर' की रचना भागवत से प्रभाव ग्रहण करके कवि ने अपनी कल्पना की सहायता से अनेक नूतन चित्र उकेरे हैं। सूरसागर का अति प्रसिद्ध और भावपूर्ण प्रसंग भ्रमरगीत है, इसलिए उसमें सूरदास की कल्पना का सौन्दर्य क्यों नहीं होगा। अकेले भ्रमरगीत प्रसंग का कल्पना-वैभव ही सूर की महत्ता को अच्छी प्रकार उजागर करने में समर्थ है।

सूरदास रस सिद्ध कवि हैं। वात्सल्य और शृंगार रस के वर्णन में वे अद्वितीय हैं। इसलिए उन्हें वात्सल्य और शृंगार रस का सम्राट कहा जाता है। भ्रमरगीत प्रसंग में सूरदास ने कृष्ण के प्रति गोपियों के विरहोद्‌गारों की मार्मिक अभिव्यंजना की है।

21.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **मर्मस्पर्शी:** हृदय को छूने वाला।
2. **वाग्वैदग्ध्य:** बात में चतुर, वाक् चतुर।

21.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सूरदास ने भ्रमरगीत प्रसंग के माध्यम से विरह की अभूतपूर्व प्रस्तुति की है। उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
2. भ्रमरगीत प्रसंग के कल्पनात्मक सौंदर्य पर प्रकाश डालिए।
3. 'भ्रमरगीत प्रसंग के माध्यम से ब्रज के प्राकृतिक सौंदर्य को उकेरने में सूरदास सफल रहे हैं' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. वात्सल्य एवं शृंगार 2. विरह-वेदना 3. सूरसागर 4. ब्रज

21.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सूरसागर–*सूरदास कृत।*
2. सूर की काव्य कला–*गौतम मनमोहन, भारतीय मन्दिर।*
3. सूरदास के पद–*गुप्ता संजय, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली।*

नोट

इकाई 22

मीरा मुक्तावली (व्याख्या भाग)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
22.1 मीरा मुक्तावली
22.2 सारांश (Summary)
22.3 शब्दकोश (Keywords)
22.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
22.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- व्याख्या के माध्यम से मीराबाई के पदों के भाव को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भक्तिकालीन कवियों में सूर, तुलसी के साथ मीराबाई का नाम भी विशेष महत्त्व रखता है। मीरा की काव्यकृति मीरा मुक्तावली सबसे अलग है। सामंती समाज व्यवस्था में मीरा का कृष्ण के प्रति प्रेम अनुपम है। मीरा का काव्य भी उनके प्रेम की तरह सहज, सरल है। यहाँ मीरा मुक्तावली के कुछ प्रमुख पदों को व्याख्या सहित प्रस्तुत किया जा रहा है।

22.1 मीरा मुक्तावली

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ ॥टेक॥
गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ॥
रैण दिन बाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ॥
जो पहिरावै सोई पहिरूँ जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ॥
जहाँ बैठावें तितही बैठूँ बेचे तो बिक जाऊँ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार बार वलि जाऊँ ॥17॥

शब्दार्थ–म्हारो=हमारा, मेरा। सांचो=सच्चा, वास्तविक। प्रीतम=प्रियतम,प्यारा। लुभाऊँ=मुग्ध हो जाती हूं। रैण=रात। भोर=सवेरा। रैणदिन=रात-दिन। बाके=उसके। वाहि=उसे। रिझाऊँ=प्रसन्न करूँ। दे=दे देवे। पल=एक क्षण भी। रहाऊं=रह सकती हूं।

व्याख्या–मैं गिरधर श्रीकृष्ण के घर जाऊँगी। वह श्रीकृष्ण ही वास्तव में मेरा सच्चा प्रियजन है। उसकी रूप छटा को देखते ही मैं उस पर लुभा (मोहित हो) जाती हूं। रात्रि के आते ही, (होते ही) मैं वहां से उठ जाती हूं और प्रातःकाल होते ही पुनः वहाँ पहुंच जाती हूं अथवा रात होते ही वहां पहुंच जाती हूं और प्रातः होते ही वहां से आ जाती

नोट

हूं। रात-दिन उसी के साथ खेलती हूं, नित्यप्रति उसी की जीवन संगिनी बन गई हूं। जैसे भी बनेगा उसे प्रसन्न करूँगी। रिझाऊँगी। मेरा प्रियतम जो कुछ भी पहनने के लिए देगा, वही पहनूँगी और जो कुछ भी खाने के लिए देगा, वही खाऊँगी। मेरा तथा उनका परस्पर प्रेम बहुत पुराना है। उनके बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकती। वह प्रियतम मुझे जहाँ बैठाएगा वहीं मैं बैठूंगी और यदि वह मुझे बेचना चाहे तो मैं बिक भी जाऊँगी। मीरा के प्रभु तो (स्वामी, प्रियतम) गिरिधर नागर श्रीकृष्ण हैं। मीरा उन पर बार-बार बलिहारी जाती है।

विशिष्ट–इस पद में समर्पण की पराकाष्ठा है। रहस्यवादी काव्य की परम्परा के अनुसार पहली स्थिति के अनन्तर दूसरी स्थिति की अभिव्यंजना इसमें है परन्तु मीरा तो भक्तमयी हैं अतः इस पद में पुष्टिमार्गीय भक्तिपद्धति के अनुसार समर्पण की भावना प्रकट है। तथा तनुजा, वित्तजा और मनसा भक्ति की भावना भी अपने चरमोत्कर्ष के साथ व्यक्त है।

कबीर ने भी अपने पदों में राम बहुरिया होने का भाव व्यक्त किया है। एक स्थान पर तो उन्होंने अपने को राम का कुत्ता ही मान लिया है। माया मोह की रस्सी मान ली है और स्वामी रस्सी से कुत्ते को जिधर खींचता है, कुत्ता उधर ही चलता जाता है। वैसी भावना भी यहां द्रष्टव्य है।

कबिरा कूता राम का मुतिया मेरा नाऊँ।
गले में मेरे जेवरी जित खींचे तित जाऊँ॥

सखि म्हारो सामरिया रगे, देखवाँ कराँ री ॥टेक॥
सांवरो उमरण सावंरो सुमरण, साँवरो ध्यान धराँ री।
ज्यों ज्यों चरण धराँ धरणी घर त्याँ त्याँ निरत कराँ री।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, कुँजा गैल फिराँ री ॥18॥

शब्दार्थ–सामरिया=सांवरिया, सांवरा, श्याम रंग का। करां=करूँ। उमरण=चिन्तन। सुमरण=याद करना। धरां=धारण करूँ धरणी=पृथ्वी। निरत=नृत्य, नाच। लता=कुंजलता। गैला= साथ, फिराँ=फिरूँ।

व्याख्या–हे सखी! मैं तो अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को नित्यप्रति देखा करूँगी। उन के दर्शनों के बिना किसी दिन भी नहीं रहती हूं। मेरे चिन्तन और स्मरण का विषय भी केवल श्रीकृष्ण ही हैं। उस श्यामवर्ण वाले श्रीकृष्ण का ध्यान ही धारण किये रहती हूं। श्रीकृष्ण जहां-जहां, भी धरती पर अपने चरणों को रखते हैं। वहां-वहां ही मैं अपना नृत्य करती हूं। मेरे प्रभु तो गिरधर नागर श्रीकृष्ण हैं मैं उनके साथ ही लताकुंजों में साथ-साथ फिरूँगी उनके साथ ही रहती हूं। उनसे पृथक् कभी नहीं रहूंगी।

विशिष्ट–इस पद में कोई अलंकार नहीं है। पद की तीसरी पंक्ति में अनुप्रास अथवा उपमालंकार का अन्वेषण केवल भ्रान्ति है। 'र' अक्षर के बहु प्रयोग से यहां अनुप्रासलंकार नहीं माना जा सकता। क्योंकि यह तो मीरा की कथन-शैली है। इस प्रकार तो मीरा के सभी पदों में अनुप्रासलंकार मानना पड़ जाएगा।

माई री म्हा लियाँ गोविन्दाँ मोल ॥टेक॥
थें कह्याँ छारगे म्हाँ काँ चौड्डे लियाँ बजन्ताँ ढोल।
थें कह्याँ मुहोंघो म्हाँ कह्याँ सस्तो, लिया री तराजाँह तोल।
तण वाराँ म्हाँ जीवण वाराँ, वाराँ अमोलक मोल।
मीरा कूँ प्रभु दरसण दीज्याँ, पूरव जन्म को कोल ॥19॥

शब्दार्थ–थें=तुम। कह्यां=कहती हो। छाणे=छिप कर। म्हां का=मैं कहती हूं। चौड्डे=चौड़े, खुले आम सबके सामने। बजन्ता=बजाते हुए। ढोल=ढोल बजाकर, स्पष्ट रूप से, मुहोंघो=मंहगो, महंगा। तराज़ाँ=तराजू में। तन=शरीर। वारां=अर्पित करती हूं, न्योछावर करती हूं। अमोलक-मोल=अमूल्य मानकर। पूरव-जन्म=पूर्वजन्म, पहला जन्म। कोल=कौन, वचन, वायदा, प्रतिज्ञा।

व्याख्या–हे सखी! मैंने तो गोविंद (श्रीकृष्ण) को मोल ले लिया है। तू कहती है कि छिप कर मोल लिया है, परन्तु मैं कहती हूं कि मैंने सब के सामने प्रकट रूप से ढोल बजाकर (सबको सुना-दिखाकर) मोल लिया है। तुम कहती हो कि यह मोल लेना बहुत महंगा पड़ा है, पर मेरा कहना है कि मैंने सस्ते में ही ले लिया है क्योंकि तराजू में तोलकर

नोट

ठीक ढंग से खरीदा है। मैं इस श्रीकृष्ण पर अपना शरीर और जीवन न्योछावर कर सकती हूं। मैं अमूल्य पदार्थ भी इस पर न्योछावर कर सकती हूं। मीरा कहती है कि उसे भगवान् दर्शन दें क्योंकि उसके प्रति भगवान् का पूर्वजन्म का दिया हुआ वचन है कि प्रति जन्म में उसे (मीरा को) दर्शन देंगे।

विशिष्ट–यह उक्ति प्रसिद्ध है कि भगवान् ने गोपियों को अगले जन्म में दर्शन देने का वचन दिया था, मीरा भी उन गोपियों में प्रधान थी अतः वह उसी प्रतिज्ञा का स्मरण करके अपने प्रभु को भी प्रतिज्ञापूर्ति के लिए स्मरण दिलाती है।

नाभादास की भक्तमाल में भी इसी प्रकार का घटनासम्बद्ध संकेत मिलता है।

सदरिस गोपिन प्रेम प्रकट कलयुगहिं दिखायो।

निर अंकुस अतिनिडर, रसिक जन रसना गायो॥

अलंकार–इस पद में प्रश्नोत्तरलंकार है। मीरा स्वयं ही सखी से उक्ति कह कर अपना उत्तर दे रही है।

माई म्हाँ गोविंद लीनो मोल।

कोई कहे सस्तो, कहे मुहोंघ, लीनों तराजू तोल।

कोई कहै घर में, कोई कहै वन में, राधा के संग किलोल।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर आवत प्रेम के मोल॥

म्हां गिरधर रंग राती सैयां म्हां॥टेक॥
पंचरंग चोला पहरया सखी म्हां, झिरमिट खेलण जाती।
वां झिरमिट मां मिल्यो सविंरो, देख्यां तन मन राती।
जिण रो पियाँ परदेस बस्यां री लिख लिख भेज्यां पाती।
म्हारा पिंया म्हारे हीयड़े वस्यां णा आवां णा जाती।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मग जोवां दिन राती ॥ 20॥

पाठान्तर–सखी री मैं तो गिरधर के रंग राती।

पंचरंग मेरा चोला रंगा दे, मैं झुरमुट खेलन जाती।

झुरमुट में मेरा साई मिलेगा, खोल अडम्बर गाँती।

पवन पानी दोनों ही जायेंगे, अटल रहे अविनासी।

सुरत निरत का दिवला संजोलै, मनसा की कर बाती।

प्रेम हरी को तेल बनाले, जगा करे दिन राती।

जा के पिया परदेस बसत हैं, लिखि लिखि भेजैं पाती।

मेरे पिया मो माँहि बसत हैं कहुं न आती जाती।

पीहर बसूँ न बसूँ सास घर, सतगुर शब्द संगाती।

ना घर मेरा ना घर तेरा, मीरा हरि रंग राती।

शब्दार्थ–रँग=रंग, प्रेम। पंचरंग=पाँच रंगों का, पाँच तत्त्वों का (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश)। चोला = कुर्त्ता, शरीर। पहरया=पहना। झिरमिट=एक खेल, जिसमें व्यक्ति अपने को लम्बे कपड़े में ऐसे लपेट लेता है कि दूसरा शीघ्रता से पहचान न सके। यहाँ तात्पर्य है कि कर्मानुसार योनि से प्राप्त शरीर। राती=अनुरक्त, मुग्ध। पाती=पत्र। पिया=प्रिय। मग=मार्ग, रास्ता। जोवाँ=देखती हूं।

व्याख्या–हे सखि! मैं श्रीकृष्ण के रंग में रंगी हुई हूं। उन में ही पूर्णरूप से अनुरक्त हूं। मैं पंच रंगा चोला पहनकर झिरमिट का खेल खेलने जाती हूं। तात्पर्य यहाँ यह है कि अपने पाँच तत्वों से बने कर्मानुसार प्राप्त इस शरीर से भगवान को प्राप्त करने के लिए माया से आधृत होने के कारण एक खेल को खेल रही हूं। वास्तविकता मैं जानती हूं। इस झिरमिट के खेल में मुझे श्रीकृष्ण के, दर्शन प्राप्त हो गये। उन्हें देखकर मैं शरीर और मन से उन पर अनुरक्त

नोट

हो गयी। जिन नारियों का पति परदेश में रहता है। वे तो पत्र लिख लिखकर संदेश भेजती हैं; परन्तु मेरा प्रियतम तो मेरे हृदय में ही रहता है। इसलिए मैं कहीं आती-जाती नहीं, मुझे पत्र लिखने की आवश्यकता नहीं है। मीरा के स्वामी (प्रभु) तो गिरधर नागर श्रीकृष्ण हैं जिनके लिए वह दिन रात रास्ता देखती रहती हैं। प्रतीक्षा करती रहती है।

विशिष्ट–इस पद में "पंचरंग चोला" तथा "झिरमिट" शब्द का प्रयोग किया गया है जो निर्गुणी सन्तों के सम्प्रदाय के शब्द हैं। इन प्रतीकों का प्रयोग मीरा ने अपने युग के सन्तों के प्रभाव वश किया है। अन्यथा शरीर को चोला कहना तथा पंचरंगी चोला कहना भक्ति-क्षेत्र की एक सामान्य परम्परा का बोधक है।

अलंकार–''पंचरंग चोला'' पदों में श्लेष का प्रयोग है। कुर्त्ता तथा शरीर दोनों पक्षों में इन पदों का अर्थ जा सकता है। पंचरंग से भी पाँच तत्त्वों एवं पाँच रंगों से रंग गया चोला अर्थ लिया जा सकता है। पाँच तत्त्व के अतिरिक्त लोभ, क्रोध, शोक, हर्ष और मोह पाँच विकारों से युक्त शरीर का अर्थ भी लिया जा सकता है इस पद का पाठान्तर भी मिलता है जो राजस्थानी भाषा मिश्रित है। अन्य भाषाओं के अन्तर से भी पाठान्तर मिलते हैं।

बड़े घर ताला लागां री, पुरबला पुन्न जगांवाँ री।
झीलरयां री कामणा म्हाँरों डाबरां कुण जावाँरी।
गंगा जमणा काम णा म्हारे, म्हां जावां दरियां वांरी।
हेल्या मेल्या कामणा म्हारे, पेठ्या मिल सरदारां री।
कामदाराँ सूँ काम णा म्हारे, जावाँ जाव म्हा दरवाराँ री।
काथ कथीर सूँ काम णा म्हारे, चड़स्यां घणरी सारयां री।
सोणा रूपां सू काम णा म्हारे, म्हारे हीरां रो बीपाराँ री।
भाग म्हारो जाग्यां रे, रतणाकर म्हारी सीरया री।
अम्रत प्यालो छाँड्याँ रे, कुण पीवाँ कड़वां नीरा री।
भगत गणा प्रभु परचा पावां, जावां गजतां दूरयाँ री।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, मणरथ करस्यां पूरयां री।

शब्दार्थ–ताला लागाँ=सम्बन्ध हो गया। लगन लग गई। परस्पर आकर्षण हो गया। पुरबला=पहला। पुन्न=पुण्य। झीलर्या=झील से। डाबराँ=छोटा तालाब। कुण=क्यों, कौन। जावाँ=जावें। दरियाव=समुद्र। हेल्या मेल्या, हेली मेली = सम्बन्ध। कामदारां = कर्मचारी, प्रबन्धक। जाव=जाऊँगी। दरबारा में। स्वामी या मालिक के दरबार में। काथ=कांच। कथीर=रांगा। सारयाँ=लोहे पर। हीरा री=हीरों का। बीपार=व्यापार। रतणाकर=रत्नाकर, सागर। सीरयाँ=सम्बन्ध से, निकट से, मेल से। अम्रत=अमृत। कड़वां=कड़वा। नीरा=नीर, पानी। परचा=परिचय। पावां=पाया, प्राप्त किया। दूरयां=दूर। मणरथ=मनोरथ, इच्छा।

व्याख्या–मीरा कहती है कि बड़े घर में ताला लग गया है। एक अर्थ तो यह कि अब भगवान् के घर से सम्बन्ध हो गया है। दूसरा यह कि लौकिक रूप से राजगृह में मेरे लिये ताला लग गया है। राजगृह से सम्बन्ध छूट गया है और भगवान् के पक्ष में यह कि उस बड़े घर से मेरा सम्बन्ध हो गया है। मेरे पहले जन्म में किए हुए पुण्यों का उदय हो गया है। झील से मेरा कोई काम नहीं; सम्बन्ध नहीं, तब छोटे तालाब पर कौन जावे। गंगा-यमुना से भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। मैं तो सागर की ओर जाती हूं। तात्पर्य यह कि सागर के समान अनन्त शक्ति वाले से मेरा सम्बन्ध नहीं है। मेरा कर्मचारियों, अधिकारियों अथवा प्रबन्धकों से कोई काम नहीं। मैं तो सीधी दरबार में ही जाती हूं। मेरा सीधा सम्बन्ध भगवान् श्रीकृष्ण से है। अतः दरबारियों के पास जाने की आवश्यकता ही नही। कांच और रांगे से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं तो लोहे की घन पर चढ़ चुकी हूं। तपकर पार उतर चुकी हूं। मेरा सोना-चाँदी से भी कुछ सम्बन्ध नहीं है। मैं तो हीरे का व्यापर करती हूं। मेरा तो अब भाग्य जाग गया है। मेरा सम्बन्ध अब रत्नाकर से है। क्योंकि रत्नाकर के पास सब कुछ होता है। वहाँ सोने-चाँदी का कुछ मूल्य नहीं रहता। अमृत का प्याला छोड़कर कड़वा पानी कौन पीएगा। भक्त लोगों के द्वारा मैंने भगवान का परिचय प्राप्त कर लिया है। अतः तुच्छ, नीच व्यक्तियों से अब मैं दूर ही रहती हूं। मीरा के प्रभु तो गिरधर नागर श्रीकृष्ण हैं जो कि उसके मन की सब इच्छाओं को पूरा करेंगे।

नोट

टास्क बड़े घर में ताला लगने से मीरा का क्या अभिप्राय है?

तुलना–सूरदास ने भी लौकिक आधार पर इष्टदेव के सामने अन्य पदार्थों को तुच्छ ठहराया था।

सूरदास–जिन मधुकर अम्बुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै।

सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।

अलंकार–इस पद में परिसंख्यालंकार है। क्योंकि सब स्थानों से वृत्ति हटाकर केवल श्रीकृष्णाश्रित कर दी गई है। अतः परिसंख्यालंकार है।

विशिष्ट–इस पद में मीरा ने राजगृह तथा लोक व्यवहार-वर्णन के माध्यम से भक्ति भावना की अभिव्यक्ति की है। राजगृह में कर्मचारियों एवं अधिकारियों की अपेक्षा राजदरबार में सीधा पहुँचना लाभकारी है तथा लोक व्यवहार में हीरों का व्यापारी होना श्रेष्ठ है। निम्न स्थिति पर रहना किसी भी दशा में उचित नहीं। अतः मीरा ने भी सभी को त्याग कर भगवान् श्रीकृष्ण का ही आश्रय ले लिया है। उसके दरबार में जाने के बाद किसी अन्य से सम्बन्ध रखने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

मीरा लागो रंग हरी, और न रंग अंटक परी ॥टेक॥
चूड़ी म्हांरे तिलक अरु माला सील वरत सिणगारो।
और सिंगार म्हाँरे दाय न आवैं, यों गुर ग्यान हमारो।
कोई निन्दो कोई बिन्दो म्हें तो, गुण गोविन्दे का गास्यां।
जिण मारग म्हाँरा साध पधारे, उन मारग म्हे जास्याँ।
चोरी न करस्यां जिव न सतास्यां कांई करसी म्हारों कोई।
गज से उतर के खर नहीं चढ़स्यां ये तो बात न होई ॥21॥

पाठान्तर–एक अन्य पाठ में पारिवारिक-जनों का व्यवहार भी मीरा ने प्रस्तुत किया है। जो निम्नलिखित पद में व्यक्त है।

मीरा रंग लायो नांम हरी और रंग अटंकि परी।
गिरिधर साजस्याँ सखी ये न होस्या मोह्यो गिरधारी।
जेठ बहू का नाती नहीं छै, राणा थे सेवक म्हें स्वामी।
चूड़ो देवड़ो तिलक जपमाला, सील बरत सो भारी।
चोरी करूँ नहीं जीव सतावां कोई करै लो म्हारो कोई।
गज चढ़ खर न चढ़ा हो राणा ये तो बाताँ सरी।
गिरधर धनी गोविंद कडूं वो साधसन्त म्हारा अरी।
थें थाके म्हें म्हां के हो राणा जी यूं कहै मीरा खरी।

शब्दार्थ–रंगहरी=हरि, श्रीकृष्ण का रंग। श्रीकृष्ण के रंग में लीन, हरा रंग। अंटक=बाधा, रुकावट। चूड़ी=चूड़ियाँ। सील बरत=शील एवं व्रत। आचार=व्यवहार। सिणगारो=शृंगार। दाय=पसन्द, अनुकूल। गुरग्यान=गुरु ज्ञान, गुरु का दिया हुआ ज्ञान। निन्दो=निन्दा करो। विन्दो=वन्दना करो, प्रशंसा करो। गास्याँ=गाऊँगी। मारग=मार्ग, रास्ता। म्हाँरा=हमारा। जास्याँ=जाऊँगी। जिव=जीव, प्राणी। सतास्याँ=सताऊँगी। गज=हाथी। खर=गधा। चढ़स्याँ=चढूँगी।

व्याख्या–मीरा कहती है कि उसे श्रीकृष्ण का रंग लग गया है। अब और रंग बाधा नहीं पहुंचा सकते। और किसी का रंग मीरा पर प्रभाव नहीं जमा सकता। श्रीकृष्ण के प्रेम को छोड़कर मीरा अन्य किसी देवता से प्रेम नहीं कर सकती। मेरा शृंगार चूड़ियाँ, तिलक, माला तथा आचार-व्यवहार के अनुसार व्रतादि रखना है। गुरु ने मुझे यह ज्ञान दिया है इसलिये और किसी प्रकार का शृंगार मुझे पसन्द नहीं आता है। चाहे कोई मेरी निन्दा करे अथवा प्रशंसा करे, मुझे तो श्रीकृष्ण के गुणों का ही गान करना है। जिस रास्ते से हमारे साधुजन चलेंगे। उसी मार्ग से ही मुझे भी जाना है।

नोट

मैं न तो चोरी करती हूं, न ही प्राणियों को सताती हूं। हाथी से उतरकर कोई भी गधे पर नहीं चढ़ता है। यदि कोई ऐसा करता है तो यह अच्छी बात नहीं होगी। मीरा के कहने का अभिप्राय यह है कि मैं एक बार कृष्ण को अपना लेने के अनन्तर उनसे विमुख नहीं होऊँगी। उस मार्ग से विचलित न होऊँगी।

विशिष्ट–इस पद में अभिधा शक्ति का सशक्त प्रयोग है। परन्तु अन्तिम पंक्ति में लक्षण द्वारा मीरा ने अपनी मनोवृत्ति प्रकट की है कि वह भक्ति मार्ग से किसी प्रकार अपना पाँव पीछे न हटाएगी।

1. अन्तिम पंक्ति में दृष्टांत अलंकार है।

आवो सहेल्या रली करौं हे, पर घर गवण निवारि।
झूठा माणिक मोतिया री, झूठी जगमग जोती।
झूठा सब आभूषण री, सांची पिया जी री पोति।
झूठा पाठ पटवर रे, झूठा दिखणी चीर।
सांची पियाजी री गूदड़ी, जामे निरमल रहैं सरीर।
छप्पन भोग बुहाइ दे हे, इन भोगनि में दाग।
लूण अलूणो ही भलो हे, अपने पिया जी को साग।
देखि विराणै निवांण कूं हे, क्यूँ उपजावै खीज।
कालर अपणो ही भलो हे, जामे निपजै चीज।
छैल विराणो लाख को हे, अपणो काज न होई
ताके संग सीधारताँ हे, भला न कहसी कोइ।
वर हीणों अपणों भलो हे, कोढ़ी कुष्टी कीइ।
जा के संग सीधारताँ है, भला कहै सब लोइ।
अविनासी सुं बालवाँ हे, जिनसूं सांचो प्रीत।
मीरा कूं प्रभु मिल्या हे, एही भगति की रीत॥27॥

शब्दार्थ–सहेल्या=सखियों, सहेलियों। रली करां=मिलकर खेलें, केलि करें, आनन्द मनाएँ। पर घर=दूसरों के घर। गवण=जाना। निवारि=छोड़ कर, रोककर। माणिक=मणियाँ। जगमग=जगमगाती, चमकीली। जोती=ज्योति, चमक, रोशनी। आभूषण=आभूषण, गहने। साँची=सच्ची। पिया जी री=प्रियतम की। पोति=माला, नाम लेना। पाटपटम्बर=रेशमी कपड़े। दिखणी=दक्षिण क्षेत्रीया। चीर=वस्त्र। साँची=सच्ची है। गुदड़ी=साधारण वस्त्र फटे पुराने वस्त्र। निरमल= पवित्र। छप्पन भोग=छप्पन प्रकार के खाद्य पदार्थ। बुहाइ दे=बहा दे, फैंक दे। भोगानि में=भोग योग्य व्यंजनों, पदार्थों में। दाग=दोष, कालिमा, धब्बा। लूण=नमकवाला। अलूणा=बिना नमक के। विराणै=विराने, पराये। निवाँण=नीची उपजाऊ भूमि। उपजावें=पैदा करें। खीज=क्रोध,मन के बुरा मानने की जलन, द्वेष, डाह। कालर=ऐसी भूमि जो बहुत कम उपजाऊ हो। निपजै=उत्पन्न होती है। चीज=पदार्थ, अच्छे अन्न, अच्छी वस्तु। छैल=सुन्दर। विराणी=पराया, दूसरा। लाख को=लाख का, बहुमूल्य। सिधारतां=जाने पर। हीणो=हीन तुच्छ, साधारण। वर=पति, स्वामी। लोइ=लोग। सूँ=समान, सहर्ष। वालेमाँ=वल्लभ,प्रियतम। ऐहो=ऐसी।

व्याख्या–हे सहेलियो! आओ, दूसरे के घर जाना छोड़ कर आनन्द करें। श्रीकृष्ण को ही अपना एकमात्र आश्रय मानकर प्रसन्नता से रहें। इस संसार में मिलने वाले मणियाँ और मोती भी झूठे हैं और इनकी जगमगाहट भी झूठी है। तात्पर्य यह कि संसार में जो पदार्थ बहुत आकर्षण वाले हैं वे भी सब झूठे हैं। नष्ट होने वाले हैं। गहने भी सब झूठे हैं। इनमें भी कोई सार नहीं है। नारियों का गहनों की ओर आकृष्ट होना भी सारहीन है। केवल प्रियतम का प्रेम ही सच्चा है। पहने जाने वाले रेशमी वस्त्र भी झूठे हैं। (राजाओं के घरों में रेशमी वस्त्र पहनने का रिवाज था ही, मीरा ने उन वस्त्रों की ओर संकेत किया है कि यह आडम्बर दिखावे से भरे वस्त्र पहनना भी बेकार है) दक्षिण क्षेत्र में बने हुए वस्त्र भी व्यर्थ हैं। दक्षिणी रेशमी साड़ियाँ इत्यादि पहनावे या दक्षिणी रेशमी कपड़े भी निस्सार हैं। प्रियतम रेशमी साड़ियाँ इत्यादि पहनावे या दक्षिणी रेशमी कपड़े भी निस्सार हैं। प्रियतम की गुदड़ी ही अच्छी है। जिसमें सारा शरीर पापों से छूटा रहता है, पवित्र रहता है। इन छप्पन प्रकार के खाद्य पदार्थों को त्याग दो। इनसे तो कलंक

नोट

लगने की सम्भावना है। अपने प्रियतम का दिया हुआ नमक वाला या नमक रहित सागपात (व्यंजन) खाने में ही भला है, दूसरों की उपजाऊ भूमि को देखकर अपने में क्यों ईर्ष्या-द्वेष पैदा करती हो। अपनी अनुपजाऊ भूमि भी अच्छी है जिसमें तुम्हारे काम योग्य पदार्थ तो उत्पन्न होते ही हैं। दूसरे की सुन्दर वस्तु चाहे लाखों रुपयों की भी क्यों न हो। वह अपने काम की नहीं है। (यहाँ छैल शब्द विवेच्य है। **श्री परशुराम चतुर्वेदी** ने छैला शब्द का अर्थ रसिक व्यक्ति दिया हुआ है, वह अशुद्ध है क्योंकि छैल शब्द, पंजाबी भाषा का है; जिसका अर्थ सुन्दर है, यह विशेषण पद है। संज्ञा नहीं) उसके साथ चलने पर कोई भला नहीं कहता। (लगता है कि दूसरी पंक्ति के कारण ही छैल शब्द का अर्थ रसिक युवा कर दिया है ताकि दूसरी पंक्ति का अर्थ यह ठीक बैठ जाए कि उस रसिक युवक के साथ जाने पर कोई भी भला नहीं कहेगा परन्तु वास्तव में यह अर्थ है कि अत्यन्त भड़कीले (बने-ठने) रूप से जाने वाले को कोई भला नहीं कहता है। यहाँ छैल का तात्पर्य अपने को अत्यन्त भड़कीला और चंचल बनाने से है। रसिक युवा अर्थ किसी भी दशा मे ग्राह्य नहीं है। हाँ! छैल से छैला अर्थ ले लिया जाए, जो कि सम्भव है तब होगा कि दूसरे का रसिक पति चाहे कितना ही अमूल्य हो, लाखों का हो, परन्तु उससे अपना काम नहीं चलता। उस छैला (भड़कीले व्यक्तित्व वाले व्यक्ति) के साथ चलने पर भला नहीं होगा। जग हँसाई ही होगी। अपना पति चाहे हीन, कोड़ी भी क्यों न हो, वह ही अच्छा है। उसके साथ चलने पर सब लोग अच्छा ही कहेंगे। कोई बुराई न कहेगा। अतः अपना प्रियतम अविनाशी भगवान को ही मानना उचित है। जिनसे हमारी सच्ची प्रीति है। मीरा कहती हैं कि उसे भगवान् (स्वामी-पति) मिल गया है। अतः यही भक्ति की रीति ठीक है।

विशिष्ट–इस पद में सांसारिक पदार्थों की असारता के साथ ही लोक व्यवहार की पद्धति का वर्णन भी है। यहाँ लौकिक पदार्थों के ग्रहण या अग्रहण की नीति दिखाई गई है।

अलंकार–इस पद में परिसंख्यालंकार है क्योंकि सब पदार्थों से हटा कर भक्ति में ही मन को लीन किया गया है।

क्या आप जानते हैं मीरा की भाषा राजस्थानी एवं ब्रज मिश्रित भाषा है। इसके अतिरिक्त गुजराती, पंजाबी, बांग्ला, फ़ारसी आदि के शब्द भी उनके पदों में प्रयुक्त हुए हैं।

माई म्हाणो सुपणा माँ परण्याँ दीनानाथ।
छप्पण कोटाँ जणाँ पधारयाँ दुल्हो सिरी ब्रजनाथ।
सुपणा माँ तोरण बंध्या री सुपणामाँ गह्या हाथ।
सुपणाँ माँ म्हारे परण गया पायाँ अचल सोहाग।
मीरा रो गिरधर मिल्या री, पुरब जणम रो भाग॥ 28॥

पाठान्तर–
माई री म्हाँने सपणे माँ परणी गोपाल।
राती पी की चुनरी पहरी, मँहदी पान रसाल।
कांई कराँ और संग भाँवर, म्हाँने जग जंजाल।
मीरा प्रभु गिरधर लाल सूँ, करी सगाई हाल।

इस पद के कई पाठान्तर प्राप्त हैं। उसका कारण पाठों में प्रयुक्त भिन्नार्थक शब्द नहीं है। अपितु विभिन्न लेखकों ने अपनी मतभिन्नता प्रदर्शित करने के लिये पद के शब्दों तथा शब्दरूपों में हेरफेर कर दिया है। इससे कई पाठान्तर प्राप्त होने लगे हैं।

शब्दार्थ–म्हाणो=मेरा। सुपणा=स्वप्न। मां=में। परण्यां=परिणय कर लिया, विवाह कर लिया। छप्पण कोटाँ=छप्पन करोड़। जणाँ=जन,मनुष्य, बराती। पधारियाँ=पधारे, आये। दूल्हो=दूल्हा, वर। सिरी=श्री। तोरण=द्वार बन्धन। बंधयारी= बाँध दिया। गह्य=पकड़ा। परण=परिणय, विवाह या प्रतिज्ञा । अचल=अटल। सुहाग=सौभाग्य। पुरब=पूर्व, पहले। भाग=भाग्य।

नोट

व्याख्या–हे सखि! स्वप्न में श्रीकृष्ण दीनानाथ ने मेरा विवाह अपने साथ कर लिया। (स्वप्न में मेरे साथ दीनानाथ श्री कृष्ण का विवाह हो गया) मेरे विवाह की बारात में छप्पन करोड़ मनुष्य आये। उनमें दूल्हा के रूप में श्री ब्रजनाथ श्रीकृष्ण थे। मेरे स्वप्न में ही मुख्य द्वार पर आमों के पत्तों की मंगल मालाओं का बन्धन बंध गया। स्वप्न में ही श्रीकृष्ण ने मेरा हाथ पकड़ लिया, अर्थात् पाणि-ग्रहण संस्कार हो गया। इस प्रकार स्वप्न में ही मेरा विवाह हो गया (अथवा मेरी श्रीकृष्ण से विवाह करने की प्रतिज्ञा पूरी हो गई)। मैंने अटल सौभाग्य प्राप्त कर लिया है। मीरा कहती है कि पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण अथवा पहले जन्म में किये कर्मों से प्राप्त भाग्य के कारण ही मुझे श्रीकृष्ण पति के रूप में प्राप्त हो गए हैं।

विशिष्ट–भक्ति पद्धति में स्वप्न की स्थिति भी इष्टदेव के मिलन के लिए मानी गई है।

थें मत बरजाँ माइड़ी, साधाँ दरसण जावाँ।
स्याम रूप हिरदाँ बसाँ, म्हारे ओर णा भावाँ।
सब सोवाँ सुख नीदड़ी म्हाणे नेण जगावाँ।
ग्याण नंसा जग बावरा ज्याकूं स्याम णा भावाँ।
माँ हिरदाँ वस्या साँवरो म्हारे णींद न आवाँ।
चौमास्याँ री बावड़ी ज्याँ कूँ नीर णा पीवाँ।
हरि निर्झर अमृत झरया, म्हारी प्यास दुझावाँ।
रूप सुरंगा साँवरो, मुख निरखण जावाँ।
मीरा व्याकुल बिरहिणी अपनी कर ल्यावां ॥29॥

शब्दार्थ–थें=तुम। बरजाँ=रोको। माइड़ी=माँ। दरसण=दर्शन। हिरदाँ=हृदय में। बसाँ=बसा हुआ है। ओर=और। भावाँ=अच्छा लगता। चौमास्याँ की बावड़ी=चौमासे या वर्षा ऋतु में भर जाने वाली बावरी। नीर=जल। निर्झर=झरना। भर्‌या=भरा। रूप सुरंगा=सुन्दर। निरखण=देखने।

व्याख्या–हे माँ अथवा सखि! तुम मुझे मत रोको। मैं साधुओं के दर्शन के लिए जाती हूं। श्रीकृष्ण का सुन्दर रूप मेरे हृदय में बसा हुआ है। मुझे और कोई अच्छा नहीं लगता। श्रीकृष्ण के रूप के अतिरिक्त किसी दूसरे का रूप नहीं भाता। सब लोग सुख की नींद सोते हैं। परन्तु मेरे नयन जागते रहते हैं। नींद ही नहीं आती। जगत् में जिन्हें श्रीकृष्ण प्रिय नहीं हैं। उनका ज्ञान नष्ट हो चुका है। वह जगत् (वे लोग) ही पागल हो गया है, जिसे श्रीकृष्ण अच्छा नहीं लगता। मेरे हृदय में श्रीकृष्ण बसा हुआ है। इसलिए मुझे नींद नहीं आती। मेरे लिए (मीरा के लिये) श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य सब देवता गण चौमासे के (वर्षा ऋतु) जल से भरी बावड़ी के समान हैं। मैं उनकी पूजा नहीं कर सकती। न ही वे मुझे प्रिय हैं। क्योंकि वर्षा ऋतु का जल कोई नहीं पीता। ऐसे ही मैं श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी देव को अपना इष्ट प्रिय नहीं मान सकती। श्रीकृष्ण अमृत को देने वाले झरने के समान हैं। इस झरने के अमृतजल से ही मेरे हृदय की प्यास बुझ सकती है। श्रीकृष्ण का रूप मोहक एवं सुन्दर हैं। सांवला रूप मनभाता है। मैं उसी का सुन्दर मुख देखने के लिए जी रही हूं। मीरा कहती है कि मैं श्री कृष्ण के वियोग में बेचैन हूँ। इसलिए हे श्रीकृष्ण! हे प्रिय! मुझे अपना लो, अपनी प्रिय मान लो।

विशिष्ट–इस पद में "चौमास्यां री बावड़ी ज्याँ कूँ नीर णा पीवाँ" पद्यांश में दृष्टान्त अलंकार है। क्योंकि वर्षा ऋतु के जलवाली बावड़ी के जल के समान ही अन्य देवों की पूजा को माना गया है।

"हरि निर्झर अमृत झर्‌या" पद्यांश में रूपकालंकार की छटा है। हरि (भगवान, इष्टदेव) को ही मीरा ने निर्भर मान लिया है। हरि पर अमृत वाले निर्झर का आरोप किया गया है। झरने के जल पर अमृत का आरोप है। अतः रूपकालंकार सुन्दर रूप में समन्वित है।

बरजी री म्हां स्याम विणा न रह्यां ॥टेक॥
साधाँ संगत हरि सुख पाल्यूँ जग सूँ दूर रह्याँ।
तण मण म्हाराँ जावाँ जास्याँ, म्हारो सीस लह्यां।
मण म्हारो लाग्याँ गिरधारी, जगरा बोल सह्याँ।
मीरा रे प्रभु हरि अविनासी, थारी सरणा गह्यां॥30॥

नोट

शब्दार्थ–बरजी=रोकी हुई, मना करने पर। संगत=संगति। जग सूं=संसार से। दूर रह्याँ=दूर रहती हूं। जावाँ जास्याँ=जाता है, चला जाए। सीस=शीश, सिर। लह्याँ=ले लिया जावे, काट लिया जावे। जगरा=झगड़ा जग रा=संसार का। बोल=बोली, कड़वे वचन, व्यंग्य भरे शब्द। थारी=तुम्हारी। सरण=शरण। गह्याँ=पकड़ती हूँ।

व्याख्या–मुझे श्रीकृष्ण की उपासना करने से रोका गया। परन्तु रोकने पर भी मैं श्रीकृष्ण के बिना न रह सकती हूं, न रह सकी। साधों–भगवान के भक्तों की संगति में रहकर अपने प्रिय श्याम को मिलने का सुख प्राप्त करती हूं और संसार की मोह-ममता से दूर रहती हूं। मेरा शरीर और मन तो जाने वाला है। विनाश को प्राप्त करने वाला है। इसलिए यदि शरीर और मन जाता है तो जाए। मेरा तो सिर भी श्याम के चरणों में समर्पित है। मेरा सिर ले लिया जावे तो भी मुझे कोई खेद नहीं है। मेरा मन श्रीकृष्ण के प्रेम में रम गया है, तल्लीन हो गया है। इस कारण मैं झगड़े और कटु वचन अथवा व्यंग्य भरे वचनों को भी सुन लूँगी। अथवा श्रीकृष्ण से प्रेम होने के कारण मैं संसार के लोगों द्वारा कहे जाने वाले व्यंग्य वचनों को भी सुन लूँगी। मीरा कहती है कि मेरे प्रभु तो अविनाशी, अमर हैं। इसलिए हे भगवन्! मैंने तुम्हारी शरण ग्रहण कर ली है। इसलिए शरण में आने के कारण अब मेरी रक्षा कीजिए।

विशिष्ट–इस पद की तीसरी पंक्ति में "जावां जास्याँ" पाठ है। जिसका अर्थ जाता है, जाने वाला है तो जाए। किया गया है। परन्तु यदि पाठ ''आवाँ जास्याँ'' माना जाए तो अर्थ में गम्भीरता आ जाती है। क्योंकि शरीर को "आने जाने वाला" होना लोक प्रसिद्ध है। शरीर नष्ट होता रहता है साथ ही मन भी नष्ट हो जाता है। इसलिए "आवां जारयाँ" पाठ अधिक संगत हैं यह पद "कामोद राग" में गाया गया है।

इस पद में मीरा के अन्तःकरण में संसार के प्रति उपेक्षा की भावना प्रबल रूप में दिखाई पड़ती है। वह अपने मन की दृढ़ता एवं भक्ति भावना की पावनता के कारण किसी भी बाह्य आक्षेप को सहन करने के लिए सर्वथा सशक्त रूप में प्रस्तुत है। इस पद में अपने भक्ति-प्रेमपूर्ण आन्तरिक जगत् में बाह्य जगत् की कटुता को सहज ही सहन करके वह अपने मार्ग पर अडिग रहने की चुनौती देती-सी लगती है।

आज म्हाँरो साधु जननों संग रे, राणा म्हाँरा भाग भल्याँ ॥टेक॥
साधु जननो संग जो करिये, चढ़े ते चौगणों रंग रे।
साकत जननो संग न करिये, पड़े भजन में भंग रे।
अठसठ तीरथ संतों ने चरणो कोटि कासी ने कोटि गंग रे।
निन्दा कर से नरज कुण्ड माँ, जासे थासे आंधला अपंग रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सन्तो नी रज म्हाँरे अंग रे ॥31॥

शब्दार्थ–साधुजनों=साधुजनों के साथ। साधु लोगों का संग=संगति। चढ़ेते=चढ़ जाता है। चौगणो=चौगुणो। रंग=रंगत, प्रभाव। साकत=शाक्त लोग (हृदयहीन माने जाने वाले बलि पूजक लोग। अठसठ तीरथ=अड़सठ तीर्थ स्थान। संतों ने चरणो= सन्तों के चरणों में ही। कोटि= करोड़ों। सोय=वही। करसे=करेगा। नरककुंड मा=नरक के कुंड में। जासे=जायेगा। थासे=हो जायेगा। आँधला=अन्धा। अपंग=अंगों में विकार वाला। सन्तो नी=सन्तों की, सन्तों के चरणों की। रज=धूल। जंग=जंगों में, पर।

व्याख्या–हे राणा! आज मेरे भाग्य का शुभ समय है। भाग्य अच्छा है कि मुझे साधुजनों की संगति प्राप्त हुई है। जो भगवान् का भक्त साधुजनों की संगति करता है। उस पर भक्ति का चौगुणा रंग चढ़ जाता है शाक्त लोगों की संगति नहीं करनी चाहिए। क्योंकि वे हृदयहीन होते हैं, बलिपूजन में विश्वास करते हैं। इस कारण शाक्त लोगों की संगति करने से भगवान के नाम को भजने में (भक्ति करने में) विघ्न पड़ते हैं। रुकावटें आती हैं। सन्तों के चरणों की सेवा करने से अड़सठ तीर्थों की यात्रा करने के समान पुण्य प्राप्त होता है। करोड़ बार काशी जाने और गंगा में करोड़ों बार स्नान करने से जो पुण्य मिलता है, वही सन्तों की चरण सेवा से सहज में मिल जाता है। सन्तों की निंदा करने वाला नरक के कुंड में जाएगा। वह अंधा और अंगहीन हो जाएगा। मीरा के स्वामी तो गिरधर नागर श्रीकृष्ण हैं। और सन्तों के चरणों की धूल मेरे (मीरा के) अंगों में लगी हुई है। सन्तों के चरणों की धूल की कृपा से मैं पवित्र हो गई हूं।

विशिष्ट–इस पद में शाक्त जनों की संगति का विरोध प्रकट किया गया है। मीरा के इन वचनों से लगता है कि युद्ध-प्रिय वंश की महारानी होने के कारण वह राणा कुल में दुर्गापूजा तथा तत्सम्बन्धी शाक्त आचार-विचार देखती

नोट

रही होंगी। मीरा को बलि, मांस, मदिरादि का क्रम अपने जीवन के अनुकूल नहीं लगा था। इसलिए वैष्णव जनों का पक्ष लेते हुए उसने शाक्तों पर कटु व्यंग्य किया है। इस व्यंग्य में तत्कालीन भक्ति-क्षेत्र में शाक्तों की निंदनीय स्थिति का भी ज्ञान हो जाता है।

कबीर ने भी शाक्तों का विरोध किया था। उन्हें वैष्णव जन की झोंपड़ी प्रिय थी। वे शाक्तों के बड़गांव से भी दूर भागते थे। निम्नलिखित पद इसी भावना का परिचायक है।

चंदन की कुटकी भली ना बबूंर की अबराउं।
वैश्नों की छपरी भली, ना साक्त का बड़गाँउ।

शाक्तों के आचार-विचार का विरोध वैष्णव भक्तों द्वारा सामाजिक स्तर पर परम्परागत था। इसीलिए भी मीरा ने वैष्णवजनों का पक्ष लिया है।

चौगणी रंग 'चढ़ना', 'भजन में भंग-पड़ना', 'अंग रज लो'– जैसे मुहावरों का प्रयोग भावाभिव्यक्ति को सफल बनाता है।

माई म्हां गोविन्द गुण गास्याँ ॥टेक॥
चरणाम्रित रो नेम सकारे नित उठ दरसण जास्याँ।
हरि मन्दिर माँ निरत करावाँ घूँघर्‌याँ धमकास्याँ।
स्याम गाम रो झाँझ चलास्याँ भो सागर तर जास्याँ।
यो संसार बीडरों काँटो गैल प्रीतम अटकास्याँ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर गुन गावाँ सुख पास्याँ ॥31॥

शब्दार्थ–गास्याँ=गाऊंगी। चरणाम्रित=भगवान के चरणों को धोने से प्राप्त जल (यह जल भक्त अमृततुल्य मानते हैं)। नेम=नियम। सकारे=सवेरे। नित=नित्य, प्रतिदिन। जास्याँ=जाऊँगी। माँ=में। करावाँ=करवाती हूँ। घूँघरया=घुँघरू। धमकास्याँ=बजावेगी, बजाऊँगी। गाम=गाँव, स्थान। झांझ=जहाज। भो सागर=संसार रूपी समुद्र। तर=तैरना,पार कर जाना। यो=यह। बीडरो=झरबेरी के कांटों का घेरा। गैल=पास, निकट। अटकास्यां=अटकायेगा। गावाँ=गाती हूं।

व्याख्या–हे सखि! मैं तो श्री कृष्ण (गोविंद) के गुणों को गाऊँगी। नियमपूर्वक प्रातः उनके चरणों का अमृतजल लेने तथा दर्शन करने के लिये जाऊँगी। भगवान् के मन्दिर मे नृत्य (रासलीला, कीर्तन) आदि भी करवाती हूं। उस नृत्य में अपने घुँघुरुओं की मधुर ध्वनि भी करूँगी। घुघुँरू भी जोर से बजाऊँगी। श्याम के गाँव में पहुंचने के लिए भक्ति का जहाज (बेड़ा) चलाऊँगी और संसाररूपी सागर से पार हो जाऊँगी। यह संसार झरबेरी के कांटों के समान है। यहाँ मनुष्य मोह माया, ममता में फँस जाता है। इस में मुझे मेरा प्रिय श्रीकृष्ण ही फँसा गया हैं। मीरा के प्रभु गिरधर नागर हैं। मीरा कहती हैं कि वह उनके गुण गाएँगी और अनन्त सुख पायेंगी।

विशिष्ट–इस पद में 'गोविंद' शब्द ध्यान देने योग्य हैं। गोविंद का अर्थ "गवां विन्दते" इति गोविंदः है। गो इन्द्रियाँ कहलाती हैं, इन्द्रियों को वश में करने वाला आत्मरूप होने से भगवान का नाम गोविंद भी है। गोचारक होने वाला अर्थ पृथक् है। मीरा ने इस पद में इन्द्रियवशकारी भगवान का गुणगान किया है।

(2) "स्याम गाम रो झाँक चलस्याँ"– पाठ के स्थान पर किन्हीं प्रतियों में "स्याम नाम रो झाँक चलास्याँ"– पाठ भी मिलता है। तब अर्थ होगा कि श्रीकृष्ण के नाम की झाँझ बजाकर मैं संसार रूपी समुद्र से पार उतर जाऊँगी। यहाँ लिपि के कारण होने वाले अन्तर से दोनों अर्थों में रमणीयता रहती है।

(3) भागवत में श्रवण-कीर्तन, स्मरण आदि भक्ति-विधियों की चर्चा है। उसी पद्धति से यहाँ आत्मनिवेदन, कीर्तन-दास्य आदि का अवलम्बन किया गया है। भागवत का यह श्लोक प्रसिद्ध है–

श्रवणं कीर्तन विष्णोस्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चन वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

(4) क्षेमेन्द्र के औचित्य सम्प्रदाय के अनुसार यह व्रतौचित्य का सुंदर उदाहरण माना जाना चाहिये। क्योंकि मीरा अपने जीवन-व्रत पर अटल रही।

नोट

(5) पद में अन्त्यानुप्रास की छटा है। रीति की दृष्टि से यह पद पांचाली का माना जाना चाहिये क्योंकि मीरा पाञ्चाल प्रदेश के अन्तर्गत ही निवास करती थी। पूरिया कल्याण राग का यह पद गेयता में बड़ा प्रभावशाली है।

नहिं भावै थाँरो देसलड़ो रंगरूड़ो ॥टेक॥
थाँरे देसाँ में राणा साध नहीं छै, लोग बसै सब कूड़ो।
गहणा गाँठी राणा हम सब त्यागा त्याग्यो कररो चूड़ो
काजल टीको हम सब त्याग त्याग्यो छै बांधन जूड़ो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर बर पायों छै पूरो॥ 33॥

शब्दार्थ–भावै=अच्छा लगता। थाराँ=तुम्हारा। देसलड़ो=देश। रंगरूड़ो=अच्छे रंग का , सुन्दर, विचित्रतापूर्ण। साध=साधु-सन्तजन। कूड़ो=कूड़ा, बेकार, निकम्मे। गहणा=गहना। गांठी-गांठ=गहनों की गांठ, सब गहनों की पोटली। कर रो=हाथ का। चूड़ो=चूड़ा। हाथी दान्त का दना हुआ चूड़ा। छै=है। बांधन=बाँधना, अथवा जूड़े का बंधन बांधने वाला आभूषण।

व्याख्या–हे राणा! मुझे तुम्हारा यह सुन्दर अथवा विचित्र देश अच्छा नहीं लगता है। हे राणा! तुम्हारे इस देश में साधु (सन्त, भक्त) लोग नहीं रहते हैं। जो लोग तुम्हारे देश में बसते हैं। वे सब कूड़ा हैं। दुर्जन तथा बेकार हैं इन लोगों का भक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने गहनों की पोटली भी छोड़ दी हैं, गहने और वस्त्र सब छोड़ दिये हैं। हाथ में पहना हुआ हाथी दांत का बना चूड़ा भी त्याग दिया है। आँखों में लगने वाला काजल और माथे पर लगाने योग्य टीका (बिंदी) को भी मैंने त्याग दिया है जूड़ा बांधना भी छोड़ दिया है। जूड़े को बांधने वाला बंधन नामक गहना भी छोड़ दिया है। मीरा कहती है कि उस का प्रभु गिरधर नागर है, उसने श्रीकृष्ण को सर्वगुणपूर्ण वर के रूप में प्राप्त कर लिया है। अतः उसे आभूषण नहीं चाहिए।

विशिष्ट–इस पद में मीरा की सांसारिक सुख-भोग के सब पदार्थों को त्यागने की स्पष्टोक्ति है। राणा (देवरा) के दिये सभी आभूषण आदि सुख सामग्री की चिन्ता मीरा ने नहीं की। भक्तिहीन जन मीरा के मत में कूड़ा हैं। खिन्न एंव क्षुब्ध मीरा की वाणी कितनी स्पष्टभाषिणी बन गई है।

(1) भक्ति के अनुसार कोई व्यक्ति भक्त तभी बन सकता है, जबकि वह सांसारिक पदार्थों का मोह सर्वथा त्याग दे। यह तनुजा भक्ति कही जाती है। इस पद में मीरा का भक्ति-भाव तनुजा भक्ति का ही है।

राणा जी म्हाने या बदनामी लगे मीठी॥टेक॥
कोई निन्दो कोई बिन्दो मैं। चलूँगी चाल अनूठी।
सन्त संगति मा ग्यान सुणै छीं दुरजन लोगँ ने दीठी।
मीरा रो प्रभु गिरधर नागर दुरजन जलो जा अंगीठी॥ 34॥

शब्दार्थ–मीठी=भली, अच्छी। निदो=निंदा करे। विन्दो=वंदना करे, प्रशंसा करे। चाल=गति। अनूठी=अनोखी (उल्टी–भिन्न मार्ग से)। मा=से, में।

व्याख्या–हे राणा जी! मुझे श्रीकृष्ण के प्रति अपने प्रेम के कारण होने वाली बदनामी अच्छी लगती है। वास्तव में यह बदनामी मुझे मधुर लगती एवं भाती है। इस प्रेम के कारण चाहे कोई व्यक्ति मेरी निन्दा करे चाहे कोई मेरी प्रशंसा करे, परन्तु मैं अपनी अनोखी चाल चलती रहूंगी। श्रीकृष्ण के प्रेम-भक्ति सम्बन्धी अनोखे मार्ग पर आरूढ़ रहूंगी। सन्तों की संगति में बैठने के कारण मैंने ज्ञान सुन लिया है। ज्ञान प्राप्त कर लिया है। इस ज्ञान की वार्ता को सुनते हुए दुर्जनों ने मुझे देख लिया और मेरे बारे में अनेक दुर्वचन कहे हैं। मीरा कहती है कि उसके रक्षक स्वामी गिरधर नागर हैं। इसलिए दुर्जन यदि शत्रुता की अंगीठी में जलते हैं, तो जलें। वे दुर्जन मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। मुझ पर उनके बुरे वचनों या व्यंग्यबाणों का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

विशिष्ट–इस पद में मीरा ने अपने जीवन में प्राप्त होने वाली बदनामी का स्पष्ट निर्देश किया है। श्रीकृष्ण की भक्ति के कारण सामाजिक रूप से राज परिवार में उसे बदनामी सहनी पड़ी, दुर्जनों के जो कड़वे वचन सुनने पड़े, उन सबका स्पष्ट उल्लेख यहाँ किया गया है। भगवद् भक्ति के कारण अपने संरक्षण का भाव भी व्यक्त किया गया है। ईश्वर स्वयं, भगवान् अथवा इष्ट देव जब संरक्षक हैं तब संसार के दुर्जन क्या बिगाड़ सकते हैं। इसी दृढ़ धारणा को यहाँ अभिव्यक्ति मिली है।

नोट

राणा जी थें क्याँने राखों म्हाँसूँ बैर ॥टेक॥
थे तो राणा जी म्हाँने इसड़ा लागो ज्यों बच्छन में कैर।
महल अटारी हम सब त्यागा, त्याग्यो थाँरो बसनो सहर।
काजल टीकी राणा हम सब त्याग्या, भगवीं चादर पहर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, इमरित कर दियो जहर ॥ 35॥

पाठान्तर–1.मारूँ घर मेवाड़ मेरतो त्याग दियो थाँरो सहर।

2. थाँरे रूस्यां राणा कुछ नहिं बिगड़ै, अब हरि कीन्ही मेहर।

3. मीरा के प्रभु गिरधर नागर दृढ़ करि पी गई जहर।

शब्दार्थ–क्याँ ने=किस कारण से। म्हाँसूँ=मुझ से। बैर=शत्रुता, दुश्मनी। म्हाँने=मुझे। इसड़ा=ऐसा। लागो=लगता है। ज्यों=जैसे। ब्रच्छन=वृक्षों। कैर=करील। थाँरों=तुम्हारा। बसनो=निवास योग्य। सहर=शहर। टीका=बिंदी। भगवीं चादर=भगवे कपड़े। इमरित=अमृत।

व्याख्या–हे राणा जी! तुमने (आपने) मुझ से क्यों शत्रुता ठान ली है। राणा! तुम तो मुझे ऐसे लगते हो, जैसे हरे-भरे वृक्षों में करील का बिना पत्तों वाला कंटीला वृक्ष होता है। तात्पर्य यह कि सन्त जनों, भगवद्जनों के मध्य तुम निष्प्रभाव तथा अखरने वाले लगते हो। सन्तों जैसी शीतलता तथा सरसता तुम में नहीं है। मैंने (मीरा ने) तुम्हारे महलों और अटारी को छोड़ दिया है और तुम्हारे शहर में निवास भी त्याग दिया है। मैंने भगवे वस्त्र (भक्तजनों के) पहन लिये हैं और सांसारिक सुख के प्रतीक आँखों में लगाने योग्य काजल तथा माथे पर लगाया जाने वाला टीका लगाना भी छोड़ दिया है। मेरे प्रभु गिरिधर नागर हैं। उन्होंने मेरे लिए जहर को अमृत के रूप में परिवर्तित कर दिया है। इसलिए जहर का प्रभाव भी मुझ पर नहीं हुआ। वह तो अमृत बन गया है।

विशिष्ट–इस पद में मीरा ने राणा को फटकारने के साथ ही स्वयं भगवे वस्त्र धारण करने की बात कह दी है। इससे यह संकेत मिलता है कि मीरा संन्यासिनी हो गयी थी। वह राजसी वस्त्र त्याग कर संन्यासिनी बन गयी थी। इस पद में मन की अपराजेय मनोवृत्ति का परिचय दिया गया है तथा राज-प्रलोभनों को झटके से छोड़ देने का आत्मबल भी धर्णित है।

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो काँई कर लेसी।
म्हें तो गुण गोविन्द का गास्याँ, हो माई ॥टेक॥
राणो जी रूठ्यो बाँरो देस रखासी।
हरि रूठ्याँ कुम्हलास्याँ, हो माई।
लोक लाज की काण न मानूँ।
निरभै निसाण घुरास्याँ, हो माई।
स्याम नाम का झाँझ चलास्याँ।
भवसागर तर जास्याँ, हो माई।
मीरा सरण सँबल, गिरधर की।
चरण कँवल लपटास्याँ, हो माई ॥36॥

शब्दार्थ–सीसोद्यो=सिसोदिया वंश के राणा। रूठ्यो=रूठ गया, नाराज हो गया। काँई=क्या। करलेसी=कर लेगा। गास्याँ=गाऊँगी। बांरो=अपना, उनका। रखासी=रखेगा। कुम्हलास्याँ=कुम्हला जाऊँगी। काण=मर्यादा। निरभै=निडर होकर। निसाण=निशान, नगाड़ा। की घुरास्याँ=बजाऊँगी। चलास्याँ=चलाऊँगी। भवसागर=संसार रूपी समुद्र। तर=पार, उद्धार पाना। सबल=शक्तिशाली में। लपटास्याँ=लिपट जाऊँगी।

व्याख्या–हे सखि! सिसोदिया वंशीय राणा यदि मुझसे रूठ जाएगा तो मेरा क्या कर लेगा। मेरा क्या बिगाड़ लेगा? मैं तो श्रीकृष्ण के गुणों का गान करूँगी। सदा उनके गुणों का कीर्तन करूँगी। यदि राणा रूठ जाएँगे तो उनका देश उन्हें मुबारक! राणा रूठने पर अपना देश रखेगा और मैं उसके देश से निर्वासित कर दी जाऊँगी। परन्तु भगवान श्रीकृष्ण के नाराज होने पर मैं मुरझा जाऊँगी। मेरी जीवन-शक्ति ही समाप्त हो जाएगी। सांसारिक लाज की मर्यादा

नोट

को मैं नहीं मानती। इसलिए निडर होकर मैं अपनी भक्ति-भावना का नगाड़ा बजाऊँगी। तात्पर्य यह कि संसार में श्रीकृष्ण के प्रति अपने पावन प्रेम को सर्वत्र एवं सर्व ज्ञात कर दूँगी। श्रीकृष्ण के नाम का जहाज चलाऊँगी और उस नाम रूपी जहाज पर चढ़कर संसार रूपी समुद्र से पास जाऊँगी। अपना उद्धार कर लूँगी। मैंने तो शक्तिशाली सांवरे गिरिधर की शरण ले ली है और उनके चरणों से लिपटी रहूंगी। अतः मैं निःशंक हूं। मुझे किसी प्रकार की असुरक्षा का भय नहीं है।

अलंकार–इस पद में अधिक अलंकार है। अधिक अलंकार में आधार और आधेय की लघुता और गुरुता का वर्णन रहता है परन्तु कभी आधार गुरु कभी लघु होता है। यहाँ भी सांसारिक बड़े-बड़े आधारों का त्याग कर भगवान के चरण कमल जैसे लघु आधार को ग्रहण किया गया है। इसलिए दूसरा अधिक अलंकार है परन्तु उन चरण कमलों को जब संसारव्यापी मान लिया जाए तब मीरा रूप में आधेय लघु हो जायेगा। ऐसी दशा में प्रथम अधिक अलंकार होगा। "चरण कमल" में रूपकालंकार भी है।

"सबल शब्द का एक पाठान्तर "साँवल" भी मिलता है। साँवल का अर्थ सांवरा है। सांवला अर्थ भी लिया जा सकता है।

मीरा ने इस पद के भावों को अन्य पदों में भी अभिव्यक्त किया है। "माई म्हां गोविन्द गुण गास्यां" नाम पद में भी इन्ही भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। वास्तव में मीरा के मन में अपने पारिवारिक सम्बन्धियों के प्रति विद्रोह भावना भरी थी। वही बार-बार व्यक्त हो जाती थी।

पग बाँध घुँ घर्‌याँ नाच्याँ री॥
लोग कह्याँ मीरा बावरी सासु कह्याँ कुलनासी री।
विष रो प्यालो राणा भेज्याँ पीवाँ मीरा हाँसी री॥
तण मण वार्‌याँ हरि चरणा माँ दरसण अमरित प्यास्याँ री।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर थारी सरणाँ आस्याँ री ॥37॥

पाठान्तर–दूसरी पंक्ति से पहले यह पंक्ति और मिलती है।

''मैं तो मेरे नारायण की, आपहि हो गई दासी री।''

शब्दार्थ–पग=पैरों में। घुंघर्‌यां=घुंघरू। बावरी=पगली। सासु=सास। कुलनासी=कुल पर कलंक लगाने वाली, कुल नष्ट करने वाली। विष रो=विष का, जहर का। पीवां=पीती हुई। हाँसी=हँसी, खुश रही। तणमण=तन मन। वार्‌यां=न्योछावर करने से। अमरित=अमृत। प्यास्यां=पीऊँगी। थारी=तुम्हारी। आस्याँ=आ गई हूँ।

व्याख्या–मीरा कहती है कि मैं पांवों में घुंघरू बांध कर नाच करती हूं। इस कारण लोग कहते हैं कि मीरा पगली हो गई है। सास कहती है कि उसके कुल को इस (मीरा) ने कलंकित कर दिया है। राणा ने मुझे मारने के लिए जहर का प्याला भेजा। उनका विचार था कि जहर का प्याला पीने से मेरी मृत्यु हो जाएगी परन्तु मैंने उस प्याले को हँसी में (हँसते-हँसते) पी लिया है। मैंने अपना शरीर तथा मन श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया है। इसलिए मैं दर्शन रूपी अमृत पियूंगी। अपने इष्टदेव के दर्शनों से मेरी प्यास बुझ जाएगी। मीरा कहती है कि हे मेरे गिरिधर नागर प्रभो! मैं तुम्हारी शरण में आ गई हूं। अब मैं निश्चिंत हूं। मुझे किसी प्रकार का बाह्य सांसारिक भय नहीं रहा।

विशिष्ट–इस पद में मीरा ने अपने ऊपर ढाये जाने वाले पारिवारिक अत्याचारों का स्पष्ट वर्णन किया है। नारी हृदय की कोमलता अत्याचारों की पीड़ा को सहती रही। हँसी से सहती रही। परन्तु अपने विश्वास एवं ध्येय से एक पग पीछे न हटी। यही पावन भाव इस पद में व्यक्त है।

साँवरियो रंग राचाँ राणा, साँवरियो रंग राचाँ॥टेक॥
ताल पखावज मिरद्‌ङ्ग बाजा, साधाँ धागे णाच्याँ।
बूझया मारणे मदण वावरी, स्याम प्रीतम्हाँ काचाँ।
विष रो प्यालो राणा भेज्याँ, आरोग्याँ णा जाँच्याँ
मीरा रे प्रभू गिरधर नागर, जनम जनम रो साचाँ॥38॥

नोट

पाठान्तर–इस पद के कई पाठान्तर मिलते हैं। यहाँ एक ही दिया जा रहा है।

साँवरे रंग राची राणा जी हूँ तो।
बाँध घूंघरू प्रेम के, हूं हरि आगे नाची।
एक निरखत है एक परखत है, एक करत मेरी हाँसी।
और लोग म्हारी काँई करसी, हूं हरि जी की दासी॥
राणा विष को प्याला भेज्या, हूं तो हिम्मत सांची।
मीरा स्याम चरण लाग रही है सांची॥

शब्दार्थ–रंग राचाँ=रंग में रंग गई। प्रेम में डूब गई। ताल=ताली, ढोलक की ताल, ध्वनि। साधाँ=साधुओं। नाच्यां=नाची। बूझया=समझा माणे=मुझे। मदन=कामदेव। काचाँ=कच्चा। आरोग्याँ=खा लिया, पी लिया। णा जाँच्याँ=न जांचा, न जाँच की।

व्याख्या–मीरा कहती है कि हे राणा! मैं तो अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण के रंग में रंग गई हूं। अतः तालियाँ बजा-बजाकर सन्तों के आगे भी नाचती रहती हूं। मुझे इस विषय में किसी प्रकार की लज्जा नहीं है। मेरे बारे में परिवार के लोगों ने समझा कि कामातुर होकर पागल हो गई हूं। श्री कृष्ण की प्रीति भी कच्ची है, स्थायी नहीं है। राणा ने इन्हीं कारणों से क्रोधित होकर जहर का प्याला भेजा। उस प्याले की जाँच न करके मैंने पी लिया। मेरे स्वामी गिरिधर नागर श्रीकृष्ण हैं। उनका और मेरा सम्बन्ध जन्म जन्मान्तर से है और वह सम्बन्ध सच्चा है। कच्चा नहीं है।

विशिष्ट–"इस पद की तीसरी पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जाता है कि मां ने मुझे बहुत समझाया और कहा कि तू (मीरा) श्रीकृष्ण के प्रेम में पागल हो गई है, श्रीकृष्ण की प्रीति कच्ची है। श्रीकृष्ण का प्रेम सच्चा नहीं है।" परन्तु यह अर्थ औचित्य का स्पर्श नहीं करता। अतः ठीक नहीं लगता।

ऐसी भावना मीरा ने अन्य पदों में भी व्यक्त की है जैसे–

1. मेरी उण की प्रीत पुराणी उण बिन पल न रहाऊं।
2. पूर्व जन्म की प्रीत पुराणी सो क्यूँ छोड़ी जाय।
3. मीरा कूं प्रभु दरसण दीज्यो जनम-जनम की चेली।
4. मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे पूरब जनम का साथी।

राणा जी थें जहर दियों म्हे जाणी ॥ टेक॥
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बारावाणी।
लोक लाज कुल काण जगत की, दइ बहाया जस पाणी॥
अपणे घर का परदा कर ले मैं अबला बौराणी।
तरकस तीर लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सणकाणी॥
सब संतन पर तन मन वारौं, चरण कंवल लपटाणी।
मीरा के प्रभु राखि लई है, दासी अपणी जाणी॥ 39॥

शब्दार्थ–थें=तुम ने। म्हें=मैंने। जाणी=जान लिया। दहत=तपाया जाता है। निकसत=निकलता है। वारावाणी=चमकीला। कुलकाणी=कुल की मर्यादा। जगत की=संसार की मर्यादा या लज्जा। दइ बहाय=बहा दी। जस=जैसे। पाणी=पानी। परदा=ओट। अबला=बलहीन, स्त्री। तरकस तीर=तरकश से निकलने वाला तीर, लोगों के शब्द रूपी बाण। हियरे=हृदय पर। गरक गयो=गर्क गया, डूब गया, चुभ गया। सणकाणी=सनक गई, सनकी हो गई। वारौ=न्योछावर कर दूं। कंवल=कमल। लपटाणी=लिपट गई हूँ। जाणी=जानकर, समझकर।

व्याख्या–हे राणा! तुम ने मुझे प्याले में जहर भेजा था। मैं इस बात को जान गई थी, तब भी मैंने उस जहर को पी लिया और मेरी भावना इस प्रकार अधिक सत्य सिद्ध हो गई। मेरी भक्ति भावना वैसे ही चमक उठी, जैसे सोना। (धातु) आग में जलाये (गलाए) जाने पर चमकीला होकर निकलता है, कुन्दन बन जाता है। मैंने लोक-मर्यादा तथा कुल की मर्यादा को भी ऐसे ही बहा दिया है, जैसे पानी बहा दिया जाता है। लोक के उपहास तथा कुल के सम्बन्धियों की व्यंग्य भरी उक्तियों की चिन्ता नहीं की। हे राजन! आप अपने ही घर का परदा कर लें। अपने आप

नोट

को ही छिपा लें। मैं तो एक पागल स्त्री हो गयी हूं। ऐसा श्रीकृष्ण के प्रेम में स्वाभाविक है। अतः अब आप (राजन!) स्वयं ही परे हट जाइए। अपने को छिपा लीजिए। छिपना भी परदे के पीछे छिपने के समान होना चाहिए। मेरे अन्तःकरण में अपने प्रिय श्याम की भक्ति एवं प्रेम के तरकश से निकला हुआ तीर लग गया है, वह तीर गहरा लगा है, अतः मैं सनकी हो गई हूं, और कुलमर्यादा की चिन्ता नहीं करती मैं अपने तन मन को साधु-सन्तों पर न्यौछावर करने को प्रस्तुत हूं। जीवन भर साधुओं महात्माओं की सेवा करूँगी। अपने इष्ट देव श्रीकृष्ण के चरणों से लिपट गयी हूं, चरण कमल ही मेरा आश्रय स्थल हैं, मीरा के प्रभु उसे अपनी दासी (सेविका) समझ कर रक्षा करेंगे।

विशिष्ट–इस पद में दृढ़तापूर्वक आत्मविश्वास के भाव की अभिव्यक्ति है। सम्बन्धियों द्वारा दिया जाने वाला दारुण कष्ट भी मीरा को भक्ति मार्ग से विचलित नहीं कर सका। यही भाव यहां प्रस्तुत है।

जैसे कंचन दहत अगनि में ...उदाहरण नामक अलंकार है। चरणकंवल में स्वाभाविक ही रूपकालंकार की छटा है।

माई म्हाँ गोविन्द गुण गाणा ॥टेक॥
राजा रूठ्याँ नगरी त्यागाँ, हरि रूठ्याँ कहँ जाणा।
राणौ भेज्या विषरो प्याला चरणामृत पी जाणा।
काला नाग पिटारयाँ भेज्या, सालगराम पिछाणा।
मीरा तो अब प्रेम दिवाणी, साँवलिया वर पाणा ॥40॥

शब्दार्थ–म्हाँ=मैंने। गाणा=गाना है (गाऊंगी)। रूठ्यां=नाराज होने पर। विषरो=जहर का। नाग=सर्प। सालागराम=शालिग्राम। पिछाणा=पहचाना, माना। दिवाणी=दीवानी, तल्लीन। वर=पति। पाणा=पाना है।

व्याख्या–हे सखि! मुझें तो अब जीवन भर गोविंद (श्रीकृष्ण) के गुणों को गाना है। यदि राजा मुझसे रूठ जाए तो मैं उसकी नगरी छोड़ सकती हूं, परन्तु अपने इष्ट देव भगवान श्री कृष्ण के रूठ जाने (नाराज) हो जाने पर कहाँ जा सकती हूं। राणा ने मेरी जीवनलीला समाप्त करने के लिए विष से भरा (जहर भरा) प्याला भेजा। मैंने उसे श्रीकृष्ण के चरणों का अमृत जल माना और पी गयी। काला सर्प पिटारी में बंद करके डसने के लिए भेजा गया। उस नाग को भी मैंने शालिग्राम के रूप में पहचाना। वह मीरा तो अब श्री कृष्ण के प्रेम में तल्लीन होने के कारण पगली लगती है। मुझे तो उसी श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करना है।

विशिष्ट–इस पद में सांसारिक सम्बन्धियों द्वारा दिये जाने वाले कष्टों के वर्णन के द्वारा मीरा ने अपनी अटल भक्ति का परिचय दिया है। मीरा ने विष का प्याला तथा कालेनाग के द्वारा होने वाले जीवन-नाश की चिन्ता नहीं की और अपने भक्तिभाव के कारण मृत्यु से बच गयी। भक्ति के असाधारण प्रभाव को इस पद में प्रकट किया गया है।

1. इस पद में दो स्थानों पर भ्रम (भ्रांतिमान्) अलंकार है। विष के प्याले को श्रीकृष्ण के चरणामृत के रूप में समझा। वह इसलिये क्योंकि श्री कृष्ण का रंग श्याम है। उनका चरणामृत भी इसी वर्ण का होगा। जहर का रंग भी इस भांति का होता है। इसलिए सन्देह न किया अपितु जहर को चरणामृत ही मान लिया। काले नाग को शालिग्राम मानना ही इसी अलंकार की छटा प्रकट करता है। भ्रमालंकार में एक पदार्थ को देखते हुए भी निश्चित रूप से दूसरा माना जाता है। अतस्मिन्तद् बुद्धिः होती है। (जो जैसा नहीं है, उसे वैसा मान लिया जाता है) इसलिए दोनों स्थानों पर भ्रातिमान् अलंकार की छटा है।

यो तो रंग धत्ताँ लग्यो ए माय ॥टेक॥
पिया पियाला अमर रस का, चढ़ गई घूम घुमाय।
यो तो अमल म्हाँरो कबहुँ न उतरे, कोट करो न उपाय।
साँप पिटारो राणा जी भेज्यो, द्यो मेड़तणी गल डार।
विष को प्यालो राणा जी मेल्यो, द्यो मेड़तणी ने पाय।
कर चरणामृत पी गई रे, गुण गोविन्द रा गाय।
पिया पियाला नाम का रे, ओर न रंग सोहाय।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर, कांचो रंग उड़ जाय ॥41॥

नोट

शब्दार्थ–यो तो=यह तो। धत्ताँ= पक्का, खूब गहरा, बहुत अधिक। लग्यो=लग गया। अमररस=अमरता देने वाला भगवद् भक्ति का रस। घूम=नशा, मस्ती। घुमाय=चक्कर खा कर, चक्कर देकर, चकराकर। अमल=नशा। कोट=कोटि, करोड़ों। द्यो=दिया। मेड़तणी=मेड़ता की रहने वाली। डार=डालदो। नौसर हार=नौ लड़ियों वाला हार। मेल्यो=भेजा, दिया। गाय=गा कर। सोहाय=अच्छा लगता। कांचो=कच्चा।

व्याख्या–हे मां। (अथवा सखि)। मुझ पर भगवान श्रीकृष्ण के भक्ति भाव एवं प्रेम का रंग गहरा चढ़ गया है। मैंने अमर कर देने वाले प्रेम रस का प्याला पी लिया है और उस के नशे में मुझे चक्कर आ गया है। अब यह चक्कर देने वाला प्रेमामृत रस का नशा कभी उतरने वाला नहीं है। इसे उतारने के लिये चाहे करोड़ों उपाय भी क्यों न कर लिये जाएँ, तब भी यह नशा नहीं उतरेगा। राणा ने पिटारी में सांप रख कर मुझे मारने के लिये भेजा परन्तु मेड़तावासिनी (मैं) ने उसे गले में डाल लिया। उसे हंसते - हंसते गले से लगा लिया, उस सर्प को नौ लड़ियों वाले हार के समान समझ कर गले में पहना। राणा जी ने जहर का प्याला भेजा, उसे भी मेड़तावासिनी ने (मीरा ने) पी लिया। गोविंद के गुणों का गान करती रही और जहर को अपने इष्टदेव श्री कृष्ण का चरणामृत मानकर पी गयी। अब तो मैंने इष्टदेव के नाम का ही प्याला पी लिया है। अब और कोई रंग अच्छा नहीं लगता। मुझे उन के नाम के अतिरिक्त दूसरी बात नहीं सुहाती। मीरा के स्वामी तो श्रीकृष्ण हैं। उनके नाम का रंग पक्का है। यह रंग नहीं उतरेगा। कच्चा रंग तो उड़ जाता है, पक्का नहीं छूटता।

विशिष्ट–इस पद में भी दोनों घटनाओं का वर्णन है परन्तु पद में "मेड़तणी" शब्द ध्यान देने योग्य है। मीरा के अन्तःकरण का कुलक्रमागत राजसी गुण यहां प्रकट हैं, यहाँ रजोगुण की प्रधानता है। मेड़ता की वासिनी होने का उसे गौरव है। वह भीषण कष्टों से पार होने की क्षमता रखती है। इसी पद में गिरिधर शब्द भी है जो श्रीकृष्ण की लीलाओं की रजोगुण-प्रधानता का द्योतक है। "मेड़तणी" और 'गिरिधर' शब्द शक्ति एवं आत्मविश्वास को दर्शाने के लिए प्रयुक्त हैं। यहाँ मीरा का वंशज रजोगुण उभर आया है। मातृ कुल के गौरव से समन्वित हो कर अपनी कष्टपरायणता की सामर्थ्य का परिचय इस पद में दिया गया है।

अलंकारः– काले नाग पर नौ लड़ी वाले हार का आरोप रूपकालंकार की छटा दिखाता है।

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥टेक॥
साँप पिटारा राणा भेज्यों, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखो बिघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय ॥42॥

शब्दार्थ–मगन=मग्न, तल्लीन। दीन्ह=दिया। अंचाय=पी कर। सूल सेज=सूलों की सेज (शूलों की शय्या) सहाई=सहायक। विघन=विघ्न, बाधा। डोलती=घूमती। पै=पर। बलि जाय=बलिहारी जाती हूं।

व्याख्या–अपने इष्टदेव भगवान श्रीकृष्ण के गुणों को गा-गा कर मीरा उन गीतों में ही तल्लीन हो गई है। उन गीतों में ही अपने आप को डुबोए हुए है। राणा ने पिटारे में सांप को बंद करके भेजा और वह सांप वाला पिटारा जाकर मीरा के हाथ में दे दिया गया। नहा धोकर जब मीरा उस पिटारे को देखने लगी तो सांप की अपेक्षा उसे शालिग्राम के रूप में पाया गया। राणा ने मीरा की जीवन-लीला समाप्त करने के लिये जहर से भरा हुआ प्याला भेजा, भगवान ने अपनी कृपाशक्ति से उसे अमृत बना दिया। नहा-धो कर (स्नानोपरांत) जब मीरा उस भरे प्याले को पीने लगी तो पी कर अमर हो गई। कांटों भरी शय्या भी राणा ने भेजी और मीरा को उस पर सुलाने के लिये कहा। संध्या हुई और जब मीरा उस कांटों भरी शय्या पर सोने लगी तो वह ऐसे लगी, मानो फूलों की शय्या हो। मीरा के प्रभु ही उस के सदा सहायक हैं, जिन्होंने उस की जीवन-यात्रा में आने वाले सभी विघ्नों को दूर कर दिया है। मीरा तो अपने इष्ट के लिए गाए जाने वाले भजनों (भक्ति गीतों) के भाव की मस्ती में ही रहती है। भाव दशा में ही लीन रहती है और वह अपने गिरिधर गोपाल पर अपने आप न्योछावर होती है।

नोट

विशिष्ट–इस पद में क्रमागत सर्प तथा जहर की घटना के साथ ही शूलों वाली शय्या का वर्णन भी दिया गया है। जो उनके जीवन की कष्ट गाथा की एक बड़ी कड़ी है।

अलंकार–इस पद में 'साँझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय पद में उत्प्रेक्षालंकार है। मानो, (मनु, जनु) शब्दों से उत्प्रेक्षा अलंकार का बोध होता है। उत्प्रेक्षा में कल्पना मूलकता अवश्य रहती है। इसलिए "सूरसेज" में फूल सेज की कल्पना की गयी है।

हेली म्हाँसू हरि बिनि रह्यो न जाय ॥टेक॥
सास लड़ैं मेरी नन्द खिजावे, राणा रह्या रिसाय।
पहरो भी राख्यौ चौकी बिठारयो, ताला दियो जड़ाय।
पूर्व जनम की प्रीत पुराणी, सोक्यूँ छोड़ी जाय।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, अवरु न आवे म्हाँरी दाय ॥42॥

पाठान्तर–तीसरी और चौथी पंक्ति में एक पाठान्तर प्राप्त होता है

चौकी मेलौ भले ही सजनी, ताला द्यो न जड़ाइ।

पूर्व जन्म की प्रीत हमारी, सो कहां रहे लुकाइ॥

शब्दार्थः–हेली=अरी। म्हाँसूँ=हम से, मुझ से। बिनि=बिना। रह्यो=रहा। नन्द=ननद, पति की बहन। खिजावै=खिजाती है। तंग करती है। जड़ाय=जड़ दिया है, डलवा दिया है। प्रीत=प्रेम। पुराणी=पुरानी। अवरु=अन्य,और। म्हाँरो=हमारा। दाय=पसंद।

व्याख्याः–हे सखि! भगवान के बिना मुझसे रहा नहीं जाता। इस भगवत्प्रेम के कारण मेरी सास मुझसे लड़ती है, और ननद भी तंग करती है। राणा तो क्रोधित ही रहता है। मुझे घर से बाहर न निकलने देने के लिए पहरा रखा गया और सिपाहियों की चौकी भी बिठाई गयी। ताले लगा कर मुझे कोठरी में बन्द भी रखा गया। श्रीकृष्ण से मेरा पूर्वजन्म का प्रेम है। वह अब कैसे छोड़ा जा सकता है। मीरा के स्वामी तो चतुर गिरधारी हैं। मुझे तो उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी देवता पसन्द नहीं आता है।

विशिष्ट– पारिवारिक जनों (सास-ननद तथा राणा) द्वारा दिये जाने वाले दैनिक कष्टों का उल्लेख इस पद में है।

जाण्याँ णा प्रभु मिलण बिध क्याँ होय ॥टेक॥
आया म्हारे आँगवाँ फिर गया मैं जाण्या खोय।
जोवताँ मग रैण बीताँ दिवस बीताँ जोय।
हरि पधाराँ आँगणाँ गयी मैं अभागण सोय।
बिरह व्याकुल अनल अन्तर कलणाँ पड़ता होय।
दासी मीरा लाल गिरधर मिल णा बिछड्या कोय ॥43॥

शब्दार्थः–जाण्याँ णा=जाना नहीं। बिध=विधि, क्याँ=कैसे। होय =होती है। आँगणाँ=आंगन में, जोवताँ=देखते। मग=रास्ता। रैण बीताँ= रात बीत गयी। अनल=आग। अन्तर=बीच में। कलणाँ=चैन नहीं। पड़ता होय=पड़ता है। मिल णा बिछड्या कोय=मिल कर कोई न बिछुड़े।

व्याख्याः–मीरा कहती है कि मैं यह नहीं जानती कि भगवान से मिलने की रीति क्या है। वह मेरे घर के आंगन में आया और लौट कर चला गया। मैंने उसे खो कर ही समझा। तात्पर्य यह कि जब वह मेरा इष्ट देव भगवान श्रीकृष्ण मेरे घर में आकर वापस चला गया, तब मैंने जाना कि वह मेरा ही प्रियतम था। उस के आने की प्रतीक्षा में रास्ता देखते-देखते राह बीत गई। और दिन भी उसके आने की राह देखते -देखते बीत गया। भगवान मेरे आंगन में आ कर चला भी गया, परन्तु मैं आभागिन सोती ही रही। वियोग की आग से मेरा हृदय जल रहा है। बहुत व्याकुलता बढ़ गयी है। इस व्याकुलता के कारण चैन नहीं पड़ता है गिरिधर श्रीकृष्ण की दासी मीरा कहती है कि मिलकर किसी को भी बिछोड़ा नहीं हो। अर्थात् प्रिय से मिलन होने के अनन्तर किसी को भी अपने प्रिय का वियोग न सहना पड़े।

विशिष्टः–यह पद वियोग शृंगार का उदात्त उदाहरण है। यहाँ अंतःकरण के वियोग का आन्तरिक पक्ष सुन्दर रूप में चित्रित हुआ है।

नोट

अन्य कवियों से तुलनाः–कबिरा देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ।
बिरहणि पिव पावै नहीं जियरा तलफै माई॥

मीरा ने भी कबीर की भाँति अपने प्रिय के वियोग में मानसिक व्याकुलता की अभिव्यक्ति की है।

नोट्स

सामंती समाज व्यवस्था में किसी विवाहित स्त्री का पर-पुरुष से संबंध किसी भी रूप में स्वीकार्य नहीं था, चाहे वह भगवान से ही क्यों न हो। मीरा ने तो कृष्ण के प्रेम में अपना घर (ससुराल) ही त्याग दिया था।

जोगियाजी निसदिन जोऊँ बाट ॥टेक॥
पाँव न चालै पंथ दूलेहो, आड़ा औघट घाट।
नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीति न पाइ।
मैं भोली भोलापन कीन्हों, राख्यौं नहिं बिलमाइ।
जोगिया कूँ जोवत बोही दिन बीता, अजहूँ आयो नाहिं।
बिरह बुझावण अन्तरि आवो, तपन लगी तन माहिं।
कै तो जोगी जग में नाहीं, कैर बिसारी मोइ।
काँइ करूं कित जाऊँरी सजनी नैण गुमायो रोइ।
आरति तेरी अन्तरि मेरे, आवो अपनी जाणि।
मीरा व्याकुल बिरहिणी रे, तुम बिन तलफत प्राणी॥44॥

शब्दार्थ–जोगिया=योगी, प्रिय। निस दिन=रात दिन। जोऊँ= देखती हूं। बाट=रास्ता। चलै=चलते। पंथ=रास्ता। दुहेलो=कठिन, दुर्गम। आड़ा=मध्य-मध्य में, बीच-बीच में, रुकावटों भरा। औघट=अटपटा खराब, कठिनता से पार होने वाला। घाट=पार करने का स्थल। रम गया=लीन हो गया, लोगों में मिल गया। बिलगाई=बिलगाकर, उलझाकर। बो हो= बहुत से। अजहुं=आज तक। बुझावण=बुझाने के लिए। बिरह की आग शान्त करने के लिये। अन्तरि=अन्तर में, हृदय में। आवो=आओ। तपन=अग्नि, ताप, ज्वाला। तन=शरीर। माँहि=में। कै तो= या तो। कैर=अथवा। बिसारी=भुला दिया। मोह=मुझे। काँइ करूँ=क्या करूँ। कित=कहाँ। नैण गुमायो=आँखें गँवा दीं, आँखें खोदीं। रोइ= रो कर। आरति=आर्त, लालसा, (आरती भी अर्थ हो सकता है)। अपनी जाणि=अपना जान कर। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार। तलफत=तड़पते हैं। प्राणि=प्राण।

व्याख्या–मीरा कहती है कि हे प्रियतम! मैं तेरे आने की प्रतीक्षा में रात-दिन रास्ता देखती रहती हूं। प्रेम की आकुलता के कारण मेरे पाँव नहीं चलते। रास्ता भी बड़ा बीहड़ है। कठिन है। इस पर चलना कठिन है। इसका घाट भी विघ्नों (रुकावटों) से भरा हुआ है।, बड़ा ही अटपटा घाट है। मैं पार नहीं पहुंच सकती। नगर में आ कर योगी वहाँ की शोभा में तल्लीन हो गया। मेरे मन की प्रीति को वह नहीं पहचान सका। मैं तो सरल स्वभाव की थी। इसी भोलेपन में ही रही। उसे अपने प्रेम में उलझाये नहीं रखा। प्रियतम का मार्ग देखते-देखते बहुत दिन बीत गये परन्तु वह आज दिन तक भी नहीं आया। हे प्रियतम! मेरे हृदय में लगी विरह की आग को बुझाने के लिये आ जाओ। मेरे शरीर में वियोग की आग की तपन लगी हुई है। सारा शरीर जल रहा है। इसलिये मेरे हृदय में आकर इस अग्नि को शान्त करो। वह योगी अब तक मेरे घर वापस नहीं आया। इससे प्रतीत होता है कि या तो वह योगी इस संसार में नहीं रहा, अथवा उसने मुझे ही भुला दिया है। हे सखि! अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मैं तो उसके वियोग में रो रो कर आँखें भी खो बैठी हूं। हे प्रियतम! तुम्हारी आरती तो मेरे अन्तःकरण में है। अर्थात् तुम्हारी आकृति मेरे हृदय में है।(अथवा मैं अपने प्रेम भाव के कारण अन्तःकरण में आर्त्त भक्त की भाँति हो गयी हूं, (द्रोपदी भी तो आर्त भक्त थी, भगवान उसके उद्धार के लिये आये थे। तब भाई के नाते आए थे। अब प्रियतम के नाते ही उद्धार करने के लिए आ जाओ) एक अर्थ यह भी किया जाता है कि मेरा अन्तःकरण तुम से मिलने की लालसा में जल रहा है। इसलिये

नोट

मेरे अन्तःकरण को शान्त करने के लिए आओ (परशुराम चतुर्वेदी ने यही अर्थ लिया है) हे प्रियतम! मीरा वियोग में व्याकुल है। तुम्हारे बिना मेरे प्राण तड़पते हैं और कष्ट पाते हैं।

विशिष्ट–मीरा ने वियोगदशा का वर्णन इस पद में किया है। वर्णन में नारी सुलभ स्वाभाविकता है। सरलता है। शारीरिक विरह के माध्यम से शारीरिक पावनीकरण का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है।

डिम्भादि के वर्णन का बंधन न माना जाए तो इस पद में स्वभावोक्ति अलंकार मानने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं हो सकती। क्योंकि सरल प्रियतमा अपने प्रियतम के वियोग में इसी भाव को व्यक्त करती है।

विद्यापति, कबीर, जायसी तथा मंझन जैसे कवियों ने भी इसी प्रकार के भाव वियोगदशा में व्यक्त किये हैं।

विद्यापति–सखि मोर पिया अबहु न आमोल कुलिस-हिया।

नरवर खोआ लोलूं दिवस लिखि-लिखि, नयन अँधाओलूँ पिया पथ देखि॥

कबीर–अँखड़िया झाँई पड़ी पंथ निहारि निहारि।

जीभड़ियाँ छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि॥

अखयाँ तरशाँ दरसण प्यासी।
मग जोवाँ दिण बीताँ सजणी, णैण पड्या दुखरासी।
डारा बैठ्या कोयल बोल्या, बोल सुण्या री गासी।
कड़वा बोल लोक जग बोल्या कारस्याँ म्हारी हाँसी।
मीरा हरि के हाथ विकाणी, जणम जणम री दासी ॥ 45॥

शब्दार्थ–अखयाँ=आँखें। तरशाँ=तरसती हैं। जोवां=ढूँढती हैं। खोजती हैं। बीताँ=बीतते हैं। डारा=डाली। बैठ्या=बैठ कर। गासी=दुःख से भरा हुआ। बिकाणी=बिकी हुई

व्याख्या–हे सखी! मेरी आँखें अपने प्रिय इष्टदेव के दर्शन के लिये तरसती हैं। प्रिय के दर्शन के लिये प्यासी आँखे तरसती हैं। बिना दर्शन किये प्यास नहीं बुझेगी। प्रिय का रास्ता देखते-देखते ही दिन बीत जाता है। आँखें दुःख से भर गई हैं। आँखों को प्रिय के वियोग के कारण बहुत कष्ट है। यदि "णैण" की अपेक्षा "रैण" शब्द रख लें तो अर्थ अधिक उपयुक्त होगा। दिन बीत जाने के पश्चात् रात आ जाती है तब वियोग का दुःख बढ़ जाता है। वृक्ष की डाली पर बैठी हुई कोयल का स्वर जब सुना तो वह दुःख से भरा हुआ ही सुनाई पड़ा। जग के लोगो ने भी कड़वी बोली ही बोली। इन लोगों ने भी मीठे वचन नहीं कहे, अपितु इन बोलियों (वचनों) में भी मेरी हँसी ही उड़ाई गई। मीरा कहती है कि वास्तविकता तो यह है कि वह अपने भगवान् के हाथों बिक चुकी है। आत्मसमर्पण कर चुकी है। परन्तु एक जन्म से ही दासी नहीं है, आदि जन्म-जन्मान्तर से वह अपने भगवान की सेविका है।

पाठशोध–इस पद में "णैण" पद की अपेक्षा "रैण" पाठ होना चाहिये। तभी पद के पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त किया गया "दिन" शब्द सार्थक होता है। "णैण" शब्द से अर्थ औचित्य में दोष आता है।

सूरदास ने भी दर्शन बिना प्यासे नेत्रों का वर्णन किया है। मीरा तथा सूरदास की भावना में साम्य है और वैषम्य भी। सूरदास ने लोक को कुछ नहीं कहा। मीरा ने जगत् को उलाहना दिया है। यह अन्तर अवश्य द्रष्टव्य है–

सूरदास– अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी॥

देख्यां चाहति कमल नैन कौं, निसिदिन रहति उदासी।
आए ऊधौ फिरि गए आँगन, डारि गये उर फाँसी।
केसरि तिलक मोतिनि की माला, वृन्दावन के बासी।
काहु के मन की कोउ जानत, लोगनि के मन हाँसी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, करबत लैहों कासी॥

–सूरसागर–पृ. 151

कृष्णदास, चतुर्भुजदास, तुलसीदास आदि कवियों के काव्य में भी दर्शनार्थ व्याकुल होने की चर्चा है। भक्त का अपने इष्टदेव के पावन दर्शन से नेत्रों की प्यास बुझाने का वर्णन करना सामान्य रीति रही है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

1. ब्रज में मीरा राधा-कृष्ण के संग रास लीला रचाती थी।
2. मीरा ने भगवान श्रीकृष्ण को अपना इष्ट मानकर समस्त सांसारिक सुखों को तिलांजलि दे दी।
3. मीरा की काव्य-भाषा राजस्थानी, ब्रज और गुजराती का मिला-जुला रूप है।
4. श्रीकृष्ण प्रेम के कारण कंस ने मीरा को तरह-तरह से प्रताड़ित किया।
5. मीरा ने भगवान श्रीकृष्ण को पति के रूप में माना है।

जोगी मत जा मत जा मत जा, पाइ परूँ मैं तेरी चेरी हौं॥ टेक॥
प्रेम भगति को पैड़ों ही न्यारों हमको गैल बात जा।
अगर चँदण की चिता वणाउँ, अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपणे अंग लगा जा।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर जोत में जोत मिला जा ॥46॥

शब्दार्थ–पाँऊ परूँ=पाँव पड़ती हूं, विनय करती हूं। चेरी=दासी, सेविका। पैंडो=रास्ता। गैल=गली, साथ, मार्ग। अगर=एक सुगन्धित पदार्थ। बणाऊँ=बना देती हूं। जला जा=प्रज्वलित करते जाओ। ढेरी=ढेर, राशि, समूह। जोत=ज्योति।

व्याख्या–हे योगी! तुम मत जाओ। मैं तुम्हारे पाँवों पड़ती हूं, प्रार्थना करती हूं, मैं तुम्हारी सेविका हूं। प्रेम से भरी भक्ति-भावना का रास्ता ही अनोखा है। वह साधारण रास्ता नहीं है। मुझे भी उस रास्ते पर चलने की विधि बताते जाओ। अथवा मुझे (हमें अपने लिये बहुवचन का प्रयोग) भी अपने साथ संगति में रख कर उस प्रेम भक्ति के मार्ग को बताते जाओ। मैं अगर और चन्दन की लकड़ियों से चिता बना लेती हूं। तुम अपने हाथों से इस चिता में आग लगा जाओ। इस चिता में जल जाने पर मैं केवल राख का समूह हो जाऊँगी। तब तुम उस भस्म को अपने अंगों में लगाते जाओ। मीरा कहती हैं कि हे प्रभु! गिरिधर नागर! इस प्रकार मेरे शरीर के भस्म होने पर ज्योति ज्योति में लीन हो जाएगी। शरीर की भस्म तो शरीर में लिपट जाएगी और जीवात्मा तुम्हारे आत्मांश में समा जाएगी।

विशिष्ट–कबीर, जायसी, गुरु नानक आदि सन्तों के वचनों में भी यह भावना विद्यमान है। इस भावना का व्यापक रूप भक्ति-काव्य में सर्वत्र प्राप्त हैं जैसे–

यह तन जारौं मसि करूँ, क्यूँ धुँवा जाई सरग्गि।
मति वै राम दया करैं, बरसि बुझावे अग्गि ॥ **–कबीर**

भारतीय वेदान्तवाद के अनुसार इस पद में अद्वैत होने की भावना को प्रस्तुत किया गया है। भक्ति-क्षेत्र में सगुण के माध्यम से इस भावना को व्यक्त किया गया है।

थें जीम्या गिरधरलाल।
मीरा दासी अरज करूयाँ छै, म्हारों लाल दयाल।
छप्पण भोग छतीशाँ बिंजण, पावाँ जन प्रतिपाल।
राजभोग आरोग्याँ गिरधर, सणमुख राखाँ थाल।
मीरा दासी सरणा ज्याशीं, कीज्याँ वेग निहाल ॥47॥

शब्दार्थ–जीम्या=भोजन करना है। अरज=प्रार्थना। दयाल=दयालु। बिजण=व्यंजन, सब्जियाँ। प्रतिपाल=रक्षक। आरोग्यां=खाने पर। सम्मुख सामने, ज्याशी=जाती हूँ। बेग=शीघ्र। निहाल=कृपा से कृतार्थ।

व्याख्या–हे श्री कृष्ण! गिरिधरलाल! आपको भोजन करना है। तो आप भोजन कीजिये। मीरा प्रार्थना करती है। मेरे गिरिधर गोपाल अत्यन्त कृपालु हैं। मैं अपने भक्तों की रक्षा करने वाले भगवान के सामने छप्पन प्रकार के भोज्य-पदार्थों तथा छत्तीस प्रकार की सब्जियों से भरे हुए थाल को रखती हूं। वे इसे खायेंगे। दासी मीरा अपने इष्टदेव की शरणागत है। इसलिए भगवान शीघ्र अपनी कृपा से मुझे (मीरा को) कृतार्थ कीजिये।

नोट

विशिष्ट–मीरा के युग में वृन्दावन में भगवान को भोग लगाने की जो परम्परा विद्यमान थी। मीरा ने उसी का वर्णन किया है। यह परम्परा आज तक भी विद्यमान है।

छोड़ मत जाज्यो जी महाराज ॥टेक॥
म्हा अबला बल म्हारो गिरधर, थें म्हारों सरताज।
ग्हा गुणहीन गुणागर नागर, म्हा हिवड़ो रो साज।
जग तारण भो भीत निवारण, थें राख्याँ गजराज।
हार्‌याँ जीवन सरण रावलाँ, कठे जावाँ ब्रजराज।
मीरा रे प्रभु और णा काँई, राखा अब री लाज ॥48॥

शब्दार्थ–अबला=निर्बल, स्त्री। सरताज=सिर का ताज, स्वामी। गुणागर=गुणों का घर, गुणी। हिबड़ो=हृदय। रावलाँ=तुम्हारी। कठे=कहाँ।

व्याख्या–हे महाराज! श्रीकृष्ण! मुझे छोड़कर मत जावें। मैं अत्यन्त निर्बल स्त्री हूं। मेरे बल तो गिरधर श्री कृष्ण ही हैं। इसलिये हे श्रीकृष्ण! तुम ही मेरे सिर के ताज हो। मेरे स्वामी हो। मैं तो सर्वथा गुण-रहित हूं और आप नटनागर कृष्ण हैं इसीलिये सभी गुणों के एकमात्र स्थान हैं। आप ही मेरे हृदय का शृंगार हैं। संसार से पार उतारने वाले भी आप ही हैं। संसार में आने वाले कष्टों का निवारण करने वाले भी आप ही हैं। तुम्हीं ने (आप ने) गजराज की रक्षा की थी। जीवन में हार जाने पर केवल तुम्हारी शरण प्राप्त होती हैं। इसलिए और कहाँ जायें। मीरा को अपने इष्टदेव के अतिरिक्त और कोई आश्रय-स्थल नहीं है। इसलिये मीरा की लोक-मर्यादा की रक्षा कीजिये।

विशिष्ट–इस पद में गजराज की कथा दी गई है। शापवश गज-ग्राह दोनों ही पास-पास रहते थे। गजराज अपनी हथनियों समेत जल पीने गया। वहाँ उसे ग्राह ने पकड़ लिया। कई युगों तक संघर्ष चलता रहा। अन्त में भगवान् ने स्वयं आकर गज को मुक्त किया। गज ने अपनी मुक्ति के लिये सरोवर के एक पुष्प को सूँड़ में उठा कर आकाश की ओर देखा था तभी भगवान् को उसके उद्धार की स्मृति आई और गजेन्द्र मोक्ष मिल गया।

इस पद में तुल्य अलंकार है, जिसका लक्षण 'अलंकार रत्नाकर' में शोभाकर मिश्र ने दिया है–निवृत्तावन्योदयस्तुल्यम्।

ऐसी लगन लगाइ कहाँ तू जासी ॥टेक॥
तुम देखे बिन कलि न परति है, तलफि तलफि जिव जासी।
तेरे खातिर जोगण हूँगी, करवत लूँगी कासी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल की दासी ॥49॥

शब्दार्थ–लगन लगाइ=लगन लगा कर, प्रेम जगा कर। जासी=जायेगा। कलि=कल, चैन। तलफि तलफि=तड़प तड़प कर। जिव=जीव, जीवात्मा। करवत लूँगी कासी=काशी नगरी में करवट लूँगी, आरे से अपना शरीर चिरवा दूँगी।

व्याख्या–मीरा कहती है कि हे इष्टदेव! तुमने ऐसी प्रेम की लगन लगाई है। अतः अब कहाँ जाओगे। तुम्हारे दर्शन किये बिना मुझे चैन नहीं पड़ता है। तुम्हारे बिना तो यह जीवात्मा तड़प-तड़प कर ही रह जायेगी। जीवात्मा का तो विनाश नहीं होता। शरीर ही नष्ट होता है। मैं तेरे लिये योगिन बन जाऊँगी। अपने इन्द्रिय समूह पर नियंत्रण कर लूँगी और काशी करवट भी ले लूँगी। वहाँ जाकर असह्य कष्ट भी सहने को तैयार रहूंगी। मीरा के प्रभु तो श्रीकृष्ण गिरिधारी हैं। वे चतुर हैं। मीरा तो उनके चरणकमलों की सेविका है। किसी अन्य इष्टदेव की पूजा नहीं करना चाहती।

विशिष्ट–(1) करवत लूँगी कासी–काशी में धर्मान्ध लोगों ने ऐसा कुँआ बनवा दिया था, जहाँ धर्म-ईश्वर विश्वासी व्यक्तियों को धोखे से ले आते और उसका सब कुछ लेकर उसे नीचे देखने के लिये कहते। व्यक्ति जैसे ही नीचे देखता, वह गिर जाता और भूमिगत आरे से चिर जाता और मृत्युलोक पहुंच जाता है। यह है करवट काशी की निर्मम कथा।

(2) चरणकंवल में रूपकालंकार है। चरणों पर कमल का आरोप किया गया है।

पिया म्हरि नैणा आगाँ रहज्यो जी ॥टेक॥
नैणाँ आगाँ रहज्यौ, म्हाँणे भूल णो जाज्यौ जी।
भौ सागर म्हाँ बूड्या चाहाँ, स्याम वेग सुध लीज्यो जी।

नोट

राणा भेज्या विष रो प्यालो, थें इमरत बर दीज्यो जी।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीज्यो जी॥50॥

शब्दार्थ–आगाँ=आगे। रहज्यो जी=रहिये जी। जाज्यो जी=जाइए जी। वेग=शीघ्र। सुध=खबर।

व्याख्या–हे प्रिय! आप सदा ही मेरी आंखो के सामने रहिए। इसलिये कि मेरे मन में किसी प्रकार का विकार न आने पाएगा। मेरी आँखों के सामने रहिए और मुझे भूल मत जाइए। मैं तो संसार रूपी समुद्र में (मोहादि के कारण) डूबना चाहती हूं इसलिये मेरी खबर शीघ्र ही लीजिए। ताकि मैं कोई ऐसा कर्म मोहवश न कर दूँ, जिससे बाद में पछताना पड़े। राजा ने नाराज होने के कारण जहर का प्याला भेजा परन्तु आपने उसे अमृत में बदल दिया। (अथवा उसे अमृत के रूप में परिवर्तित कर दिया) मीरा कहती है कि मेरे गिरिधर नागर प्रभु! मिल जाने के पश्चात् बिछुड़ जाने की रीति को मत चलाइए। इससे मुझे बेहद कष्ट होगा।

विशिष्ट–(1) भौ सागर पद में रूपकालंकार है। क्योंकि भव पर सागर का आरोप किया गया है।

(2) इस पद में संसार के मायाजाल से छुटकारा पाने के लिये भगवान के प्रति भक्ति-भावना व्यक्त की गई है और मीरा इष्टदेव से भक्त के संरक्षण के लिए तल्लीनतापूर्वक निवेदन करती है।

थांणें काँई कांई बोल सुणावा म्हाँरा साँवराँ गिरधारी॥टेक॥
पूरब जणम री प्रीत पुराणी, जावा णां गिरधारी।
सुन्दर बदन जोवतां साजण, थारी छबि बलिहारी।
म्हाँरे आँगण स्याम पधारो, मंगल गावाँ नारी।
मोती चौक पुरांवाँ णेणां, तण मण डाराँ वारी।
चरण सरण री दासी मीरा, जणम जणम री क्वाँरी॥51॥

शब्दार्थ–थाँणे=तुम्हें। काँई-काँई=क्या-क्या। कैसे। जोवताँ=देखती हूं। डाराँवारी=न्यौछावर कर देती हूं। क्वाँरी=कुमारी, अविवाहित।

व्याख्या–तुम्हें क्या-क्या वचन सुनाऊँ। क्या कुछ कहूँ। हे सांवले श्रीकृष्ण! तुम ही मेरे प्रिय हो। मेरी प्रीति पूर्व जन्म से चली आ रही है। इसे किसी प्रकार भी मत तोड़ देना। हे प्रिय! मैं तुम्हारे सुन्दर मुख को देखती हूं और तुम्हारी मुख-शोभा पर न्यौछावर जाती हूं। हे स्वामी! तुम मेरे आँगन में आओ! नारियाँ (भक्त स्त्रियाँ) तुम्हारे आने पर मंगलमय गान गाएंगी। मैं नयनों के मोतियों (आँखों के आँसुओं से) चौक पूरती हूँ। चौक सजाती हूँ और अपने शरीर और मन को तुझ पर न्यौछावर करती हूं। हे भगवनू ! मीरा तो तुम्हारे चरणों की दासी है। वह तो जन्म जन्मान्तर से अविवाहित है। मीरा ने तो अपने इष्टदेव को छोड़कर किसी सांसारिक पुरुष को अपना पति नहीं माना है।

विशिष्ट–"मोती चौक पुरावाँ णेणाँ"– पद्यांश में निरंग रूपक है। इसमें आँखों के आँसुओं में मोतियों का आरोप किया गया है।

देखाँ माई हरि मण काठ कियाँ॥टेक॥
आवण कह गयाँ अजाँ ण आया, कर म्हारे कौल गयाँ।
खान पान सुध बुध सब बिसर्‌यां, काइ म्हारो प्राण जियां।
थारो कोल विरुद्ध जग थारो, थे काँई बिसर गयां।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, थे विण फटा हियाँ॥52॥

शब्दार्थ–काठ=कठोर, लकड़ी जैसा सूखा। अजाँ=आज तक। कौल=वायदा। जियाँ= जिएगा। बिसर=भुला देना। फटा हियाँ=हृदय फट गया है, दुःख की चरम स्थिति।

व्याख्या–हे सखी! देखो; भगवान ने अपना मन कितना कठोर कर लिया है अथवा लकड़ी की भाँति रूखा-सूखा बना लिया है। आने के लिये (दर्शन देने के लिए) कह गये परन्तु आज तक (अभी तक) नहीं आए, यद्यपि आने के लिए मुझको वचन दे गए थे। उसके न आने के कारण मुझे खान-पान की चिन्ता भी भूल गयी है। मुझे अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए खाने पीने का भी होश नहीं है। ऐसा होने से मेरे प्राण किस प्रकार जीवित रहेंगे।

नोट

हे इष्टदेव! तुम्हारा वचन ही विरोधात्मक हो गया है इसलिए तुम्हारे वचन के अनुसार सारा संसार ही मेरे विरोध में हो गया है। अतः स्पष्ट बताओ कि तुम मुझे क्यों भूल गये हो। मीरा कहती है कि हे मेरे गिरिधर, चतुर स्वामी श्रीकृष्ण! तुम्हारे बिना मेरा हृदय फट गया है, विदीर्ण हो गया है। वियोग से अत्यन्त पीड़ित हो गया है।

विशिष्ट–"मण काठ" में सांग रूपकालंकार है। मण पर काठ का आरोप है। इसके अतिरिक्त मन के काठ करने का तात्पर्य रूखा-सूखा अथवा शुष्क, हृदयहीन होने से है। कठोर तो अभिधात्मक स्थिति का बोधक है परन्तु मन के काठ करने का तात्पर्य है कि वियोगिनी मीरा की किसी भी प्रार्थना को न सुनने के लिए हृदय को अपने में ही केन्द्रित कर लेना है ताकि किसी अन्य की विनती का प्रभाव ही न पड़े। प्रादेशिक बोलियों के कारण इस पाठ में कई पाठान्तर हो गये हैं। "आवण" शब्द के स्थान पर 'आवन' तथा "अजां" के स्थान पर "अजहुं" के प्रयोग से पाठान्तर बन गए हैं।

जोगिया के प्रीत कियाँ दुःख होइ ॥टेक॥
प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी, जोगी मित न कोइ।
रात दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियाँ बिनि मोइ।
ऐसी सूरत या जग माँही फेरि न देखी सोइ।
मीरा रे प्रभु कबरे मिलोगे, मिलियां आणँद होइ॥ 53॥

शब्दार्थ–प्रीत=प्रीति। मित=मित्र। कल=चैन। फेरि=पुनः। कब रे=कब। आणँद=आनन्द।

व्याख्या–हे सखी! योगी से प्रीति (प्रेम) करने पर दुःख होगा ही। सजनी! प्रीति करने पर सुख नहीं हो सकता क्योंकि योगी किसी का मित्र नहीं होता और हे योगी! तुम से बिना मिले मुझे रात दिन आराम नहीं पड़ता है। चैन नहीं आता है। ऐसी आकृति (शक्ल) इस संसार में फिर देखने को नहीं प्राप्त हो सकती। मीरा कहती है कि हे मेरे इष्टदेव प्रभु! अब तुम कब मिलोगे। तुम्हारे मिलने पर ही आनन्द होता है। तुम्हारे वियोग में तो दशा दुःखमयी रहती है।

विशिष्ट–(1) इस पद में जोगी शब्द ले बहुधा सिद्ध और नाथपंथी योगियों की चर्चा की गई है परन्तु संभावना के अतिरिक्त यह अधिक औचित्यपूर्ण लगता है कि मीरा ने श्रीकृष्ण का "योगी" रूप ही यहाँ माना है। क्योंकि श्रीकृष्ण योगेश्वर और योगीराज, योगीश्वर भी है। गोपी भावना से विरहात्मक स्थिति में मीरा ने इस पद को कहा है। अतः योगीराज का प्रयोग सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय की परम्परा में स्वीकार न किया जाए, अपितु विशुद्ध भक्ति भाव क्षेत्र में ही उसे लिया जाए।

(2) प्रीति करने से सुख न होने की चर्चा मीरा ने की है। लौकिक स्तर पर प्रेम करने वालों को भी अन्य लोगों के वाग् बाण सहन करने पड़ते हैं। यही स्थिति प्रारम्भ में उन भक्तों को भी सहन करनी पड़ती है जो संसार त्यागकर भक्त बनते हैं। जनता उन भक्तों पर लांछन लगाती है, उन पर व्यंग्य बाण छोड़ती है और मीरा के नारी होने के कारण उस पर तो अनेक प्रकार के लांछन लगाए गए। अतः दुःख स्वाभाविक है परन्तु भक्ति में रम जाने पर जनता श्रद्धा करने लगती है और तब भक्तजनों को भक्ति काल के समय में इन श्रद्धालु जनों से विघ्न पड़ने से कष्ट होता है। समर्पण के मार्ग पर भी सभी प्रकार के दुःखों को सहन करना पड़ता है। वास्तव में मीरा ने मनोवैज्ञानिक स्तर पर भक्ति-मार्ग की यथार्थता को व्यक्त किया है।

जोगिया री प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल ॥ टेक॥
हिल मिल बात बणावत मीठी, पीछै जावत भूल ॥
तोड़त जेज करत नहिं सजनी, जैसे चमेली के फूल।
मीरा कहै प्रभु तुमरे दरस बिन, लगत हिवड़ा में सूल॥ 54॥

शब्दार्थ–प्रीतड़ी=प्रीत, प्रेम। दुखड़ा=दुःख। मूल=कारण। बणावत=बनाता है। पीछे=बाद में। जेज=देर। दरस=दर्शन। हिवड़ा=हृदय। सूल=शूल, काँटा, वेदना।

व्याख्या–हे सखी! योगी से प्रीति लगाना दुःख का कारण हो जाता है। पहले तो हिलमिल कर अत्यन्त प्रेम से बातें बनाता है और बाद में भूल जाता है। हे सखी! यह अपनी प्रीति को तोड़ते हुए ऐसे ही देर नहीं लगाता जैसे कि चमेली के फूल को तोड़ने में देर नहीं लगती। मीरा कहती है कि हे प्रभु प्रियतम! तुम्हारे दर्शन के बिना हमारे हृदय में कांटे चुभते हैं और वेदना की अनुभूति होती है।

नोट

विशिष्ट–इस पद में दृष्टान्तालंकार का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। "तोड़त जेज करत नहीं सजनी जैसे चमेली के फूल"–इस पद्यांश में कई विद्वान् पद से उपमालंकार कह सकते हैं, परन्तु इसमें दृष्टान्तालंकार है क्योंकि प्रीति का टूटना उपमेय वाक्य के लिए चमेली का फूल उपमान वाक्य बनकर प्रयुक्त है। पुनः चमेली गन्ध-सूक्ष्मता तथा प्रीति की भावसूक्ष्मता का व्यापार भी उपमान उपमेय वाक्य बना कर रखे गये हैं। अतः दृष्टांतालंकार ही औचित्यपूर्ण है। उदाहरणालंकार मानना भी उपयुक्त नहीं है।

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत ॥ टेक॥
आसण माड़ अडिग होय बैठा, याही भजन की रीत।
मैं तो जाणूँ संग चलेगा, छाँड़ि गया अधबीच।
आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर चरणन आवे चीत ॥ 55॥

शब्दार्थ–कोई दिन=कभी-कभी, किसी न किसी दिन। रमता=रमण-शील, एक स्थान पर न टिकने वाला। अतीत=निर्लेप, मुक्त, तीनों गुणों (सत्व, रज, तप) से परे। आसन माड़=आसन लगाकर। आसन जमाकर। अडिग=न डिगने वाला, स्थिर। चीत= चित्त, सुध, याद।

व्याख्या–हे निर्लिप्त, हे त्रिगुणातीत इष्टदेव! मुझे कभी न कभी अथवा किसी न किसी दिन तो याद कीजिये। आप सब प्राणियों में रमणशील हैं तथा राम होने के कारण आप में सब योगी लोग रमण करते हैं, तल्लीन रहते हैं। (राम=रमन्ते योगिनोऽस्मिन् इति रामः) आसन लगाकर, ध्यानावस्थित होकर निश्चल भाव से बैठ गये हैं। क्या यही भजन की रीति है एक अर्थ यह भी हो सकता है कि मैं मीरा आसन लगा कर निश्चल होकर बैठ जाऊँ। क्या यही भक्ति करने की रीति है। मैं (मीरा) तो जानती थी कि प्रीति के अनन्तर जीवन भर साथ चलेगा, परन्तु मुझे तो आप आधे मार्ग में ही छोड़ गये हैं। आप ऐसे योगी हैं जो आते-जाते दिखाई नहीं देते, वास्तव में योगी किसका मित्र होता है। किसी का नहीं। मीरा कहती है कि मेरे प्रभु गिरिधर नागर! मेरा मन आपके चरणों में ही लगा हुआ है।

विशिष्ट–इद पद पर बहुधा आलोचकों ने नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव माना है परन्तु लगता नहीं क्योंकि श्रीकृष्ण योगीश्वर भी हैं और रामावतार भी। राम का अर्थ है जिसमें योगी लोग रमण करते हैं, उसे हम राम कहते हैं। भगवान त्रिगुणातीत भी माने जाते हैं। तमोगुण एवं सत्त्वगुण से भगवान अतीत होते हैं। अतः योगी, राम एवं अतीत शब्द से नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव नहीं माना जाना चाहिए।

यह पद थोड़े परिवर्तन के साथ चन्द्रसखी के नाम से भी कहा जाता है।

जाणा रे मोहणा, जाणां थारी प्रीत ॥ टेक॥
प्रेम भगति रो पैड़ा म्हारो, अवरु ण जाणाँ रीत।
इमरत पाइ विषाँ क्यूँ दीज्याँ कूँण गांव री रीत।
मीरा रे प्रभु हरि अविणासी, अपणो जणारो भीत ॥ 56॥

पाठान्तर–जाओ निरमोइए रे, झीनी थाँरी प्रीत॥टेक॥

लगन लगी जब और प्रीत छी अब अछु आँवलो रीत।
अमृत पाय विष क्यूँ दीजै कोण गाँव री रीत।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, आप गरज के मीत।

शब्दार्थ–थारी=तुम्हारी। पैंडा=रास्ता। रीत-रीति=ढंग। पाइ=पीकर। अविनाशी=अमर।

व्याख्या– हे मन मोहन! मैंने तुम्हारी प्रीति को भली-भांति समझ लिया है। मेरे जीवन का मार्ग प्रेम और भक्ति-भाव से भरा हुआ है। मैं इस मार्ग के अतिरिक्त किसी ओर को नहीं जाती हूं। मैंने तो दर्शन रूपी अमृत पिया है। अब वियोग का विष क्यों देते हो। यह कौन से स्थान की रीति-विधि है। प्रेम में तो ऐसा नहीं होता। मीरा कहती है कि हे अविनाशी इष्टदेव। तुम मुझे अब अपना मित्र समझकर अपना लो।

जावादे जावादे जोगी किसका मीत ॥ टेक॥
सदा उदासी रहै मोरि सजनी, निपट अटपटी रीत।

नोट

बोलत बचन मधुर से मानूँ, जोरत नाहीं प्रीत।
मैं जाणूँ या पार निभैगी, छांड़ि चले अधबीच।
मीरा रे प्रभु स्याम मनोहर प्रेम पियारा मीत ॥57॥

शब्दार्थ–जावा दे=जाने दे। मीत=मित्र। उदासि=उदासीन, निरपेक्ष। मोरी=मेरी। निपट=बिल्कुल। अटपटी=बेढंगी। जोरत=जोड़ता। पार निभेगी=जीवन के पार तक निभेगी, मृत्यु तक निभती रहेगी।

व्याख्या–हे सखी! जाने दे। जाने दे! योगी किसका मित्र होता है। इसकी रीति सर्वथा बेढंगी है कि यह अपने प्रीति करने वाले के प्रति भी उदासीन ही रहता है। मैं यह मानती हूं कि यह सदा मीठे-मीठे वचन बोलता है, परन्तु इसकी विशेषता यह है कि प्रीति किसी से नहीं जोड़ता है। अपितु प्रीति के बारे में सदा उदासीन रहता है। मैं समझती थी कि मेरी प्रीति मृत्यु पर्यन्त चलेगी परन्तु यह योगी तो आधे मार्ग में ही छोड़ चला है। पूरे जीवन की तो बात ही दूर की है। मीरा कहती है कि हे मेरे प्रभु श्याम मनोहर! तुम ही वास्तव में मेरे प्रिय मित्र हो, इसलिए मेरा त्याग मत करो। सदा अपनी शरण में रखो।

विशिष्ट–इस पद की अंतिम पंक्ति में श्री कृष्ण के प्रति अपनी निष्ठा स्पष्ट करने से यह बात संदेह उपजाती है कि "योगी" कोई अन्य व्यक्ति है, जिसके प्रति मीरा अपने भावों को स्पष्ट करती है कि वह योगी तो उदासीन रहता है। परन्तु "योगी" शब्द को नाथ पंथियों से सम्बद्ध नहीं मानना चाहिए।

(2) पार निभना मुहावरा है, इसका प्रयोग लौकिक प्रेम के क्षेत्र में किया जाता है। मीरा ने उसे भक्ति-क्षेत्र में भी इसी लाक्षणिकता से प्रयुक्त किया है।

धूतारां जोगी एकरसूँ हँसि बोलि ॥टेक॥
जगत बदीत करी मनमोहन, कहा बजावत ढोल।
अंग भभूति गले मृतछाला, तू जन गुड़िया खोल।
सदन सरोज बदन की सोभा, ऊभी जोऊँ कपोल।
सेली नाद बभूत न बटवो, अजूँ मुनी मुख खोल।
चढ़ती बैस नैण अणियाले, तू धरि धरि कत डोल।
मीरा रे प्रभु हरि अविनासी, चेरी भई बिन मोल॥58॥

पाठान्तर– धूतारा एक बेरिया मुख खोल रे।
कान कुन्डल गल बीच सैली अब तेरी मुनी मुख खोल रे।
रास रच्यो वंशी वट यमुना, तादिन कीनी कोल रे॥
पूर्व जन्म की मैं हूं गोपिया अधविच पड गयो झोल रे।
जगत बंदी ते तुम करी मोहन अब क्यों बजावे ढोल रे।
तेरे कारण सब जग त्याग्यो–अब मोहै कर सों लोल रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई बिन मोल रे।

शब्दार्थ–धूतारा=धूर्त्त, छली, धोखेबाज। एकरसूं=एक बार तो। वदीत=प्रसिद्ध। वदीत=हठ कर के। करी=की। गुड़िया खोल=रहस्य बता दे, भेद का पर्दा खोल दे। सदन=नवीन, नया, ताजा। सरोज=कमल। अभी=खड़ी-खड़ी। कपोल=गाल, मुख-मंडल। सैली=योगियों की माला अथवा चादर। नाद=योगियों के बजाने का बाजा, सींग। बर्भूत=विभूति, भस्म, धूनी की राख। बटवो=योगियों का बटुआ या थैला। अजूँ=अब भी। मुनी=मौनी, चुप रहने वाला। चढ़ती वैस=जबानी। अनियाले=अनियारे, तीखे। चेरी=चेली, शिष्या, दासी, सेविका।

व्याख्या–हे कपटी योगी! मुझसे एक बार तो बात कर ले। एक दूसरा अर्थ यह है कि हे धूतारा! (वाद्य यन्त्र विशेष) लिए रहने वाले योगी। मुझसे एक रस होकर (सर्वथा स्पष्ट एवं निष्कपट होकर) हँसकर बोल ले। हे मन को मोह लेने वाले मोहन! तुमने संसार में मेरे साथ बढ़-चढ़कर व्यवहार कर दिया है। अथवा मेरे प्रेम को संसार में विदित कर दिया है। अब ढोल बजाने से क्या होता है। एक दूसरा अर्थ यह भी किया जाता है कि मेरी तुम्हारी (मनमोहन श्रीकृष्ण तथा मीरा की) प्रीति जगत् में प्रसिद्ध हो गई है अतः मीरा कहती हैं कि मैंने भी इस प्रीति को सारे संसार

नोट

में ज्ञात कर दिया है, छिपा नहीं रखा है। अपने शरीर के अंगों पर भस्म, गले में मृगछाला पहन ली हैं अतः तू संसार के सामने प्रेम के रहस्य की बात को बता दे। छिपा कर मत रख। कमल के समान तुम्हारा शरीर एवं मुख की शोभा को मैं खड़ी-खड़ी देखती हूं। दूसरा अर्थ यह भी किया गया है कि नवीन सद्यविकसित कमल के समान सुन्दर तुम्हारे मुख की शोभा को मैं प्रतीक्षा में खड़ी-खड़ी देखती हूं। तुम्हारे कपोलों को भी मैं खड़ी-खड़ी देखती हूं। मेरे पास योगियों जैसी चादर, बाघ-सींग, भस्म तथा शैला भी नहीं है। हे मौनी! तू अब भी मुख खोल कर वार्तालाप कर। तुम्हारी जवानी चढ़ रही है। आँखें तीक्ष्ण हैं। अतः तू घर-घर मत जा। मीरा कहती है कि मेरे स्वामी तो अविनाशी भगवान हैं। मैं तो उनकी बिना मोल की सेविका, शिष्या एवं दासी हूं।

विशिष्ट–इस पद में "योगी" का जो रूप चित्रण है। उससे लगता है कि उस काल में जवान योगी जनता को जल देने के लिए घूमते थे। मीरा ने उन्हें देखा था इसलिये ऐसे योगियों को घर-घर घूमने से मना करती है। और सामाजिक स्थिति का संरक्षण करती है। इसके साथ ही अपनी भक्ति-भावना की श्री कृष्ण के प्रति दृढ़ता का भी ज्ञापन कर देती है। इस तरह मीरा ने तत्कालीन जंत्र पंथियों के बाह्य आडम्बरमय रूप का विरोध किया है और अपने निर्विकारात्मक योगीश्वर का समर्थन किया है। कृष्ण भक्त होने के कारण मीरा ने "अविनासी" शब्द का प्रयोग किया है। "हरि शब्द" भगवान विष्णु का अवतार होने के कारण श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त किया गया है। इस पद में "बिन मोल चेरी होना" मुहावरा भावना बोधक ढंग से प्रयुक्त है।

रमईया मेरे तोही सूँ लागी नेह।
लगी प्रीति जिन तोडै रे बाला, अधिकौ कीजै नेह ॥ टेक॥
जै हूँ ऐसी जानती रे बालाँ, प्रीति कीयाँ दुष होय।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय॥
षीर न षाजे आरी रे, मूरष न कीजै मिंत।
षिण ताता षिण सीतला रे, षिण बैरी षिण मिंत॥
प्रीत करै ते बावरा रे, करि तोड़ै ते कूर।
प्रीत निभावण दल के षंभण, ते कोई बिरला सूर।
तुम गजगीरी कों चूँतरी रे, हम बालू की भीत।
अब तो भ्यां कैसे वणै रे, पूरब जनम की प्रीत।
एकै थाणे रोपिया रे, इक आँवो इक बूल।
वाकौ रस नीको लगै रे, वाकी भागै सूल॥
ज्यूँ डूगर का वाहला रे, यूँ ओछा तणा संनेह।
बहता वहै जी उतावला रे, वे तो लटक बतावे छेह॥
आयो साँवण भादवा रे, बोंलण सगा मोर।
मीरा कूँ हरिजन मिल्या रे, ले गया पवन झकोर॥ 59॥

शब्दार्थ–रमईया=राम, पति। नेह=प्रेम, प्रीति। बाला=प्रियतम। षीर=क्षीर, दूध भात। अकरी (आरी)=अत्युष्ण, बहुत गर्म, षिण=क्षण। बावरा=पागल। कूर=क्रूर, बुरा, नीच। षंभण=थामना। सूर=सूरमा। गजगीरी=विशेष नाम, गच किया हुआ चबूतरा, सुदृढ़ चबूतरा। बालू= रेत। भीत=दीवार। थाणे=स्थान, जगह में आँवो=आम। बूल= बबूल का पेड़। भागे= भाग्य में। सूल= काँटा। बाहला=स्रोत, बहने वाला झरना। ओछा तणा=ओछे व्यक्ति, नीच मनुष्य। तण=का। उतावला=उमड़कर। छेह=तोड़ देता है, नष्ट कर देता है, मनुष्य विनाश कर लेता है।

व्याख्या–हे रमैया! हे मेरे इष्टदेव! हे रमणीय श्याम! मेरी तो तुझ से ही प्रीति लगी हुई। हे प्रियतम! अब इस लगी हुई प्रीति को मत तोड़िये अपितु मुझ से और अधिक प्रेम कीजिए। हे प्रिय! यदि मैं यह तथ्य जानती कि प्रीति 'तुमसे' भगवान से भी, करने पर दुःख होता है तो मैं नगर भर में ढिंढोरा फेर देती कि कोई भी किसी से प्रीति मत करना। तात्पर्य यह कि सब स्थानों पर यह प्रसिद्धि हो जाती कि प्रीति (भगवत्! प्रीति) भी दुःखदायक है। हे प्रियतम! दूध बहुत गर्म हो, तब भी नहीं पीना चाहिए। न ही मूर्ख व्यक्ति से मित्रता करनी चाहिए। जैसे दूध क्षण भर में गर्म

नोट

हो जाता है और क्षण भर में शीतल हो जाता है। इसी भाँति मूर्ख व्यक्ति भी क्षण भर में क्रोधवश शत्रु बन जाता है और क्रोध उतरते ही मित्र बन जाता है। प्रीति करने वाले को लोक में पागल कहते है। (लौकिक और अलौकिक दोनों स्तर पर यही स्थिति है) और जो प्रीति करने के पश्चात् उसे तोड़ देता है। उस प्रीति को नहीं निभाता है। उसे संसार में लोग नीच, कृतघ्न अथवा विश्वासघाती कहते हैं। प्रीति करने के पश्चात् उसको निभाने वाला, विघ्नों को नष्ट कर के चलने वाला। ('दिल के षंभण' पाठ माना जाए तो अर्थ होगा कि दिल को थाम कर चलने वाला, धैर्यशाली व्यक्ति) कोई अनोखा ही शूर होता है। (भक्ति-क्षेत्र का सूरमा, जो संसार के लोगों के व्यंग्य-बाणों को सहन कर लेवे) हे प्रियतम! तुम तो पक्का बना हुआ चबूतरा हो। अथवा गजगिरि स्थान (पर्वत विशेष के पत्थरों से) के शिलाखण्डों से बने चबूतरे की भाँति हो और मैं रेत की दीवार की भाँति हूं। जो स्थायी नहीं, गिर पड़ने वाली है। तब भी मेरी ओर तुम्हारी प्रीति (पूर्वजन्म जन्मान्तर की है) पूर्व जन्म से चली आ रही है। अब इसे कैसे भी बना रहना चाहिए। टूटना नहीं चाहिए। इसे न टूटने देने का श्रेय एक मात्र तुम्हें ही प्राप्त हो सकता है। संसार में एक ही स्थान पर आम का पौधा और कीकर का पेड़ लगाया जाए तो विधि का विधान यह होता है कि आम का रस अच्छा 'मधुर' लगता है। सब को भाता है। प्रिय लगता है और उस कीकर के भाग्य के काँटे आते हैं। जो सब को चुभते हैं। इसी प्रकार संसार के प्राणियों में कुछ को भगवद् भक्ति का मधुर रस प्राप्त होता है और कुछ को मोह, मद-क्रोधादि के कारण कांटों के चुभने के समान पीड़ा ही उपलब्ध होती है। नीच मनुष्यों की प्रीति छोटी-छोटी पहाड़ियों से गिरने वाले पानी के स्रोत की भांति स्थिर नहीं होती, वह पानी का स्रोत बड़ी तीव्रता से बहता है परन्तु शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। इसी भांति ओछे व्यक्ति का प्रेम भी बड़े उत्साह से आरम्भ होता है और शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। सावन और भादों मास का समय आ गया है और वर्षा हो रही है। मोर कूकने लगे हैं। मीरा को सावन ऋतु की भाँति शीतलता देने वाले भगवद् भक्त मिले हैं। भक्तजनों के मिलने से शीतलता मिली है। परन्तु यह शीतलता हवा के झोंके के समान हैं जैसे झोंका आता और चला जाता है। उसी भांति सत्संगति भी स्थायी नहीं रहती। स्थायी शीतलता तो अपनी भगवत्प्रीति से ही प्राप्त हो सकती है।

विशिष्ट–(1) इस पद में मीरा ने भगवत् प्रेम के मार्ग की कठिनाइयों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। अपने प्रियतम के कठोर, दयामय, लहरी-स्थिर, रसिक। शुष्क होने का अपना मनोगत चित्र-चित्रित किया है। साथ ही अपने अटूट प्रेम का परिचय भी दिया है।

(2) पीर न षाजे आकरी रे.....पद में प्रतिवस्तूपमा का उदाहरण सुन्दर बना है। कुछ विद्वान् इसमें निदर्शनालंकार की छटा देखते हैं। उसके अनुसार दूध और मूर्ख की क्रियाएँ परिणाम भिन्न होने पर भी मूलतः दोनों में हानि रूप समान धर्म हैं अतः निदर्शनालंकार है।

(3) दृष्टांत अलंकार की छटा दर्शनीय है। गजगीरी को चूँतरौ रे। बालू की भीत, ज्यों डूगर का बाहला रे यूँ ओछा तणा सनेह ..... बतावे छेह आदि पदों में दृष्टांतालंकार सुन्दर बन पड़ा है।

गिरधर रीसाणा कौन गुणाँ ॥टेक॥
कछुक आँगुण हम पै काढ़ों, मैं भी कान सुणाँ॥
मैं तो दासी थारी जनम जनम की, थे साहब सुगुणा।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, थारोई नाम भणा ॥60॥

शब्दार्थ–रीसाणा=अप्रसन्न हुआ, नाराज हुआ। कौन गुणाँ=किस कारण से। कान सुणाँ=कानों से सुनूँ, जानूँ। साहब=स्वामी। सुगुणा=गुण शाली। थारोई=तुम्हारा ही। भणा=कहती हूं, लेती हूं, जपती हूं।

व्याख्या–हे गिरिधर! हे श्रीकृष्ण तुम किस कारण से मुझसे नाराज हो। कुछ दोष हममें भी बताओ, निकालो अथवा सिद्ध करो। उन दोषों को मैं भी अपने कानों से सुनूँ। मैं तो तुम्हारी जन्म जन्मान्तर से सेविका हूं। और मेरे स्वामी तुम तो बहुत गुणी और श्रेष्ठ हो। मीरा कहती है कि हे चतुर गिरिधर! मैं तो केवल तुम्हारा ही नाम लेती हूं। तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्य देव का ध्यान नहीं करती।

विशिष्ट–इस पद में मीरा की भक्ति-भावना की दृढ़ता के साक्षात् दर्शन होते हैं। आत्म दृढ़ता के कारण मीरा कहती है कि वह अपने दोषों को कानों से सुनने के लिए प्रस्तुत है ताकि दोषों को सुन कर उन्हें दूर कर सके। परन्तु भीतरी भाव यह है कि दोष आएँगे कहाँ से। मीरा तो जन्म जन्मान्तर से भगवन्नाम लेती आ रही है, अतः दोषों के लिए अवकाश कहाँ। इस दृष्टि से मीरा की भक्तिभावना की सुदृढ़ता यहाँ प्रकट है।

नोट

म्हाँरे डेरे आज्यो जी महाराज।
चुणि चुणि कलियाँ सेज बिछायी नख सिख पहस्यो साज॥
जनम जनम की दासी तेरी तुम मेरे सिरताज।
मीरा के प्रभु हरि विनासी दरसन दीज्यौ आज ॥61॥

शब्दार्थ–म्हारे=हमारे। डेरे=स्थान पर, निवास स्थान पर। चुणि-चुणि=चुन-चुनकर। सेज=शय्या। नख-सिख=पांव के नाखूनों से लेकर सिर की शिखा (चोटी) तक, सारे शरीर पर। सिरताज=सिर के ताज, सिर की शोभा।

व्याख्या–हे महाराज (राजाओं के राजा) श्री कृष्ण! आप मेरे डेरे पर आइए। मेरे निवास स्थान पर आ कर मुझे दर्शन दीजिए। आप के विराजने के लिए कलियों को चुन-चुन कर शय्या बनाई है और आप को रिझाने के लिए आप के अनुकूल ही मैने सारे शरीर में शृंगार किया है। गोपी भाव से प्रिय के अनुकूल अपने आप को सजाया है। (तुम) आप मेरे सिरताज हैं। मैं तुम्हारी जन्म जन्मान्तर की दासी हूं। हे प्रभु। आप तो सब पीड़ा हरने वाले अविनाशी हैं। इस लिये मुझे दर्शन दीजिए।

विशिष्ट–इस पद में मीरा का विनय भाव प्रस्तुत है। वह अपने इस देव को महाराज और सिरताज से कम समझने वाली नहीं है। उसके अन्तः करण में भगवन् की सर्वोत्तम आकृति अपना स्थान बनाए हुए है।

हरि थें हर्‌या जण की भीर॥टेक॥
द्रोपता री लाज राख्याँ थे बढ़ायाँ चीर॥
भगत कारण रूप नरहरि, धर्‌याँ आप सरीर।
बूढ़ँता गजराज राख्याँ, कटवाँ कुँजर भीर।
दासि मीरा लाल गिरधर, हराँ कटवाँ म्हारी भीर ॥62॥

पाठान्तर–
हरि तुम हरो जन की भीर ॥ टेक।
द्रोपदी की लाज राखी तुम बढ़ायो चीर।
भक्त कारन रूप नरहरि धरयौं आप शरीर॥
हिरन कश्यप मारि लीन्हौं, धरयौ नाहिंन धीर॥
बूड़त गजराज राख्यौ, कियों बाहर नीर॥
दासी मीरा लाल गिरधर, चरण कँवल पे सीर॥

शब्दार्थ–हर्‌या=दूर की। जण की=जन की, अपने भक्त की। भीर=पीड़ा, कष्ट, दुःख। लाज=लज्जा। चीर=वस्त्र, नरहरि=मनुष्य और सिंह का रूप, नृसिंह रूप। बूड़ताँ=डूबता हुआ। कुँजर=गजराज। हराँ=दूर कीजिए।

व्याख्या–हे भगवन् ! तुमने अपने भक्तों की पीड़ा को सदा दूर किया है। तुमने चीरों को बढ़ा कर द्रोपदी की लज्जा को बचाया है और प्रह्लाद के कष्ट दूर करने के लिये नृसिंह का अवतार (शरीर धारण) धारण किया है। प्रह्लाद को बचा लिया तथा हिरण्यकश्यप (प्रहलाद के पिता) को नष्ट किया। गजराज को डूबते हुए देख कर तुमने ही उसका उद्धार किया, उसे बचाया। हाथी की पीड़ा को नष्ट किया और उसे बचा लिया। मीरा कहती है कि हे गिरिधर श्रीकृष्ण! मेरी पीड़ा को भी दूर कीजिए। मेरे कष्ट का निवारण भी कीजिए। मैं तुम्हारी दासी हूं। अतः कष्टों को दूर कीजिए।

विशिष्ट–इस पद में मीरा ने इतिहास को देखा है और भारतीय इतिहास में द्रोपदी और प्रह्लाद की चर्चा है। इन दोनों भक्तों की रक्षा भगवान ने की है। यह इतिहास प्रसिद्ध है। गजराज की रक्षा की कथा भी ज्ञात है। इन भक्तों के उदाहरणों से मीरा ने अपनी रक्षा के लिए भी प्रार्थना की है।

अब तो निभायाँ, बाहँ गह्याँ री लाज॥टेक॥
असरण सरण कह्याँ गिरधारी, पतित उधारत पाज।
भोसागर मझधार अधाराँ थें विण घणो अकाज।
जुग-जुग भीर हराँ भगताँरी, दीश्याँ मोच्छ नेवाज॥
मीरा सरण गहाँ चरणाँ री, लाज रखाँ महाराज॥63॥

नोट

पाठान्तर– अब तो निभाया सरेगी। बाँह गहे की लाज।
समरथ सरन तुम्हारी सइयाँ, सरब सुधारण काज॥
भवसागर संसार अपरबल, जामें तुम हो जहाज।
निरधाराँ आधार जगत गुरु, तुम बिन होय अकाज॥
जुग-जुग भीर हरि भक्त की, दीनी मोक्ष समाज।
मीरा सरण गही चरणन की, लाज रखो महाराज॥

शब्दार्थ–निभायाँ=निभा दीजिए, अपना वचन पूरा कर दीजिए। गहयां=पकड़ने की। पाज=प्रतिज्ञा। अधारां=निराधार, बिना आधार के। अकाज=हानि। दीश्यां=दीजिए। नेवाज=कृपालु।

व्याख्या–हे भगवान! अब तो आप मेरी बाँह पकड़ने की लाज निभा लीजिए। मुझे अपना लेने की मर्यादा का पालन कीजिए। हे गिरिधारी! तुम अशरणों, निराश्रितों को शरण देने वाले हो और पापियों, पतितों का उद्धार करना तुम्हारी प्रतिज्ञा है मैं संसार रूपी सागर के बीच में निराधार निराश्रित पड़ी हुई हूं। तुम्हारे द्वारा उद्धार किए बिना बहुत हानि होगी। हे भगवन् तुमने युग-युग में अपने भक्तों के कष्टों को दूर किया है। इस लिए कृपालु होने के कारण मुझे मोक्ष दीजिए। हे महाराज। मीरा ने आपके चरणों की शरण ग्रहण की है इसलिए इस बात की (मर्यादा) रखिए कि आपकी शरण में आने वाले भक्त की रक्षा हो। उसे कष्ट न पहुंचे।

विशिष्ट–(1) इस पद में मीरा की विनय सहित शरणागत्-प्रपत्ति भक्ति का परिचय मिलता है। वह निराधार होने के कारण भगवान के चरणों में आ गई है। अतः अब भगवान उसके रक्षक हैं।

(2) भो सागर में (भव रूपी सागर) में रूपक अलंकार की व्यापक छटा है। सागर में अनन्त जीव एवं पदार्थ है संसार में भी ऐसी ही स्थिति है।

हरि बिन कुण गति मेरी ॥टेक॥
तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मैं रावरी चेरी।
आदि अन्त निज नाँव तेरो, हीया में फेरी।
बेरि बेरि पुकारि कहूँ, प्रभु आरति है तेरी।
यौ संसार विकार सागर, बीच में घेरी।
नाव फाटी प्रभु पाल बाँधो, बूड़त है बेरी।
बिरहणि पिव की बाट जोवै, राखिल्यौ नेरी।
दासि मीरा राम रटत है, सरण हूँ तेरी ॥64॥

शब्दार्थ–कूण गति=कौन सी दशा। प्रतिपाल=रक्षक। रावरी=तुम्हारी। चेरी=सेविका, चेली। आदि-अन्त=आरम्भ से लेकर अन्त तक। नाव=नाम। हीया में फेरी=हृदय में नाम फेरती रहती हूं। हृदय में नाम लेती रहती हूं। बेरि-बेरि=बार-बार, जल्दी-जल्दी। आरति=आरती उतारना, उत्कट चाह अथवा आर्त्त भक्त की पुकार। विकार=दोष। घेरी=घिर गई हूं। पाल बाँधो=पाल तानो, पाल चढ़ाओ। बेरी=बेड़ी, नौका। पिव की=प्रिय की। बाट जोवै=रास्ता देखती है। नेरी=निकट।

व्याख्या–हे भगवन् तुम्हारे बिना मेरी गति कहाँ हैं? तुम ही मेरे रक्षक हो। मैं तुम्हारी सेविका हूं। शिष्या हूं। मैं आदि से अन्त तक–जन्म से मृत्यु तक तुम्हारा ही अपना नाम रह जाता है। इसलिये मैं अपने हृदय में तुम्हारे ही नाम को जपती रहती हूं बार-बार पुकार कर कहती हूँ कि भगवन्। मैं तुम्हारी आरती करती हूँ। अथवा आर्त्त (दुःखी) भक्त की भाँति बार-बार प्रार्थना करती हूँ। यह संसार दोषों से भरा हुआ समुद्र है मैं इसके बीच में घिर गई हूँ। मेरी जीवन नौका टूट-फूट गई है। इसलिये तुम मेरे उद्धार के लिये पाल को बाँध दो। सहारा दे दो। मेरी जीवन-नौका डूब रही है। मैं तो वियोगिनी हूँ। इसलिये प्रिय का (तुम्हारा) मार्ग देखती रहती हूँ। इस लिए तुम मुझे अपने निकट रख लो। हे भगवन्! मीरा तुम्हारी दासी है। मैं तुम्हारा नाम लेती रहती हूँ। मैं (मीरा) तुम्हारी शरणागत हूँ।

विशिष्ट–शरणागत भक्त का निवेदन इस पद में है। भक्ति भाव के आर्त्त भेद का रूप भी इस पद में दृष्टिगत होता है।

नोट (1) यौ संसार विकार सागर – में रूपकालंकार की छटा है।

प्रभु जी थें कहाँ गया नेहड़ा लगाय ॥टेक॥
छोड्या म्हां विस्वास संगाती, प्रेमी बाती जलाय।
बिरह समंद में छोड़ गया छो, नेह री नाव चलाय।
मीरा रे प्रभु कबरे मिलोगे थे विण रह्याँ णा जाय ॥65॥

पाठान्तर– प्रभु जी थे कहाँ गयो नेहड़ा लगाय ।टेक।
छोड़ गया अब कौन बिसासी, प्रेम की बाती जलाय॥
बिरह समन्द में छोड़ गया छो, नेह की नाव चलाय।
मीरा के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम बिन रह्यो न जाय॥

शब्दार्थ–नेहड़ा=नेह, प्रेम। संगाती=साथी। बाती जलाय=बत्ती को जला कर। समँद=समुद्र। रह्याँ=रहा।

व्याख्या–हे भगवन्! तुम प्रीति लगाने के बाद कहाँ चले गये। तुम मेरे विश्वास के साथी थे, तुमने मुझे क्यों छोड़ दिया। प्रेम की बत्ती जला कर तुम कहाँ चले गये। अथवा (संगाती) शब्द के स्थान पर 'संघाती' शब्द रख लिया जाए। तब यह अर्थ होगा कि मेरे अन्तःकरण में प्रेम की आभा जला कर तुम विश्वासघात करके मुझे छोड़ गये। प्रेम की नौका चला कर तत्पश्चात् मुझे वियोग के समुद्र मे छोड़ गये हो। मीरा कहती है कि मेरे प्रभु तुम मुझे कब मिलोगे। तुम्हारे बिना मुझ से रहा नहीं जाता।

विशिष्ट–(1) इस पद में आत्मनिवेदनात्मक भक्ति का उज्ज्वल रूप है। मीरा अपने प्रेम और तज्जनित विरह के सम्बन्ध में अपना हृदयगत भाव स्पष्टतः कहती है।

(2) 'विरह समंद' में रूपकालंकार की शोभा है। विरह सागर की भाँति अथाह एवं गम्भीर होता है। 'प्रेम री बाती' एवं 'नेह री नाव' पद्यांशों में रूपकालंकार नहीं मानना चाहिये। 'प्रेमबाती' तथा 'नेहनाव' प्रयोग होता तो रूपकालंकार बनता। 'री' शब्द से का, के, की (सम्बन्ध कारक) का बोध हो जाता है। अतः रूपकालंकार नहीं बन सकता।

डारि गयो मनमोहन पासी ॥ टेक॥
आँबाँ की डालि कोइल इक बोलै, मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी।
बिरह की मारी मैं बन-बन डोलूँ, प्राण तजूँ करवत ल्यूँ कासी।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ॥ 66 ॥

शब्दार्थ–डारि गयो=डाल गया। पासी=फाँसी, फन्दा। आँबा=आम। जग केरी=संसार की। हाँसी=हँसी। करवत ल्यूँ कासी=करवट लूँगी काशी में, आरे से चिरना। अविनासी=जिसका विनाश न हो।

व्याख्या–मीरा कहती है कि मन को मोहने वाला श्रीकृष्ण मेरे गले में प्रेम की फाँसी डाल गया है। आम की डाल पर बैठी हुई एक कोयल बोलती है। उसकी मधुर ध्वनि सुन कर मैं तो वियोग में मरी जाती हूँ और संसार के लिये यह हँसी का विषय बन गया है। प्रेम के वियोग में पीड़ित मैं तो वन-वन में घूमती फिरती हूँ। प्राण छोड़ने को तत्पर हूँ। काशी करवट लेने को भी तैयार हूँ। मीरा कहती है कि मेरे प्रभु भगवान, अविनाशी हैं इसलिये हे प्रभु! तुम मेरे ठाकुर (स्वामी) हो और मैं तुम्हारी सेविका हूँ। इसलिये अपनी शरण में मुझे ले लो।

विशिष्ट–(1) कोयल की मधुर ध्वनि के कारण मीरा के अन्तःकरण का भगवत् प्रेम के कारण पीड़ित होना वरिह का अलौकिकीकरण है। लौकिक उपकरणों के द्वारा अलौकिक प्रेम के विरह का रूप यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

(2) इस पद में असंगति अलंकार है। क्योंकि आम की डाली पर कोयल बोलती है और मरण का प्रभाव मीरा पर होता है। कारण कोयल डाली पर है और कार्य मीरा का हृदय अन्य स्थान पर। कारण-कार्य के भिन्न देश में होने से असंगति अलंकार की संगति यहाँ है।

समानान्तर भाव–सूरदास– **नेह लगाय त्यागि गये तृन सम,**
डारि गये गल फाँसी।
माई म्हाँरी हरिहू न बूझयाँ बात ॥टेक॥
पंड माँसूँ प्राण पापी, निकसि क्यूँ णा जात।

नोट

पटा णा खोल्या मुखां णा बोल्याँ, साँझ भयाँ परभात
अबोलणाँ जुग बीतण लागो कायाँरी कुसलात।
सावण आवण हरि आवण री, सुण्या म्हाणे बात।
घोर रैणाँ बीजु चमकाँ बार गिणतां प्रभात।
मीरा दासी स्याम राती, ललक जीवणां जात॥67॥

पाठान्तर– माई म्हारी हरिजी न बूझी बात।
पिण्ड माँ सूँ प्राण पापी निकस क्यूँ नहीं जात।
पट न खोल्या मुखाँ न बोल्या, साँझ भई परभात।
अबोलणा जुग वीतण लागो, तो काहे की कुसलात।
सुपन में हरि दरस दीन्हों णैण जाप्युँ हरि जात।
नैण म्हारा उघड़ आया रही मन पछतात।
रैण अंधेरी विरह घेरी, तारा गिणति निस जात।
ले कटारी कंठ चीरूँ करूँगी अपघात।
आवण आवण होय रह्यो रे नहिं आवण की बात।
मीरा व्याकुल विरहणी रे बाल ज्यूँ बिललात॥

शब्दार्थ–बूझ्यॉं बात=बात न बूझी, पूछा या समझा। पंड=पिण्ड, शरीर। माँ सूँ=में से। निकसि=निकल। पटा=कपड़ा, परदा, घूँघट। साँझ=सन्ध्या। भया=हो गया। प्रभात=सवेरा। अबोलणाँ=बिना बोले। जुग=युग, लम्बा समय। कायाँ री= कैसी। कुसलात=कुशलता। आवण=आना। रैण=रात। बीजु=बिजली। बार णिनताँ=दिन गिनते-गिनते। समय गिनते-गिनते। राती=अनुरक्त हुई। ललक=ललकते हुए, चाह में। जात=जा रहा है।

व्याख्या–हे सखी! हरि ने हमारी बात भी नहीं पूछी। हमसे किसी प्रकार की बातचीत नहीं की। मेरे इस शरीर से यह पापी प्राण क्यों नहीं निकल जाते। मैंने अपना पर्दा भी नहीं उठाया और मुख से भी कुछ नहीं बोला। संध्या से लेकर समय बीतते प्रातःकाल हो गया। बिना बोले ही युग (लम्बा समय) बीतने लगा। कुशलता कैसी? कुशलता किस प्रकार हो सकती है। हरि ने सावन मास में आने के लिये कहा था। हमने यह बात सुनी थी। रात्रि भयंकर अन्धकार से भी हुई है बिजली चमकती है। समय गिनते-गिनते दिन चढ़ता है। मीरा कहती है कि मैं तो श्रीकृष्ण की दासी हूँ। मेरा जीवन ललकते-ललकते ही बीता जा रहा है। दर्शन की चाह में ही बीत रहा है।

विशिष्ट–विरह की दशा का चित्र इस पद में दिया गया है। प्रकृति का उद्दीपन रूप भी इस पद में विद्यमान है।

परम सनेही राम की नीति ओलूँरी आवै॥ टेक॥
राम हमारे हम हैं राम के, हरि बिन कछू न सुहावै।
आवण कह गये अजहूँ न आए जिवड़ो अति उकलावै।
तुम दरसण की आम रमैया, कब हरि दरस दिखावै।
चरणकँवल की लगनि लगी नित, बिन दरसणु दुख पावै।
मीरा कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, आणँद बरण्युं न जावै॥ 68॥

शब्दार्थ–परम सनेही=बहुत प्रेमी। ओलूँ=स्मृति। जिवड़ो=जीव, जीवात्मा। उकलावै=अकुलाता है। बैचैन होता है। आस=आशा। लगनि=लगन।

व्याख्या–सर्वत्र रमणशील, सर्वव्यापक परम प्रेमी की नीति सदा स्मरण होती रहती है। उसके व्यवहार की याद आती रहती है। राम हमारे हैं और हम राम के हैं। भगवान के बिना मुझे कुछ भी नहीं भाता। प्रियतम मुझ से आने के लिये कह गये थे परन्तु आज तक नहीं आये। इस कारण जीवात्मा बहुत व्याकुल हो गई है। हे प्रियतम! तुम्हारे दर्शन की आशा लगी हुई है। अब भगवान आप कब दर्शन देंगे। मुझे तो चरण कमलों की लगन ही सदा लगी रहती है।

नोट

बिना दर्शनों के दुःख ही प्राप्त होता है। मीरा कहती है कि मेरे स्वामिन्! दर्शन दीजिये। दर्शन करने से प्राप्त होने वाले आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

विशिष्ट–स्मृति भाव की पुष्टि इस पद में उत्कट रूप से है। नवधा भक्ति के स्मरण भेद, का यह पद सुन्दर उदाहरण है। मीरा अपने प्रियतम के स्मरण में दिन व्यतीत कर रही है। साथ ही दर्शनार्थ प्रार्थना भी करती है। क्योंकि स्मरण से दर्शन अधिक आनन्ददायक होता है।

साँवलिया म्हारो छाय रह्या परदेस ॥टेक॥
म्हारा बिछड़ या फेर न मिलया भेज्या णा एक सन्नेस।
रतण आभरण भूखण छाड्याँ, खोर कियाँ सिर केस।
भगवाँ भेख धरयाँ थें कारण, ढूँढया चारयाँ देस।
मीरा रे प्रभु स्याम मिलण विणा जीवनि जनम अनेस ॥ 69॥

शब्दार्थ–छाय रह्याँ=टिका रहा। परदेस=परदेश। फेर=फिर,पुनः सन्नेस=सन्देश। रतन=रत्न। भूखण=भूषण। खोर कियाँ=क्षौर करवा दी, हजामत करवा दी। भेस=वेष। चारयां देस=चारों दिशाओं में। अनेस=बिना स्वामी के, विधवा की भाँति।

व्याख्या–मीरा कहती है, कि हमारा प्रियतम श्याम परदेश में बस गया है। हम से बिछुड़ने के बाद पुनः नहीं मिला और अपने ना मिलने के सम्बन्ध में एक भी संदेश नहीं भेजा। मैंने अपने प्रियतम के निकट न रहने के कारण रत्न और गहने पहनना छोड़ दिया है और सिर के बाल भी कटवा दिये हैं। तुम्हारे कारण से मैंने भगवा वेष धारण कर लिया है और संन्यासिनी बन कर तुम्हें चारों दिशाओं में ढूँढा है। मीरा कहती है कि अपने स्वामी श्रीकृष्ण से मिले बिना तो इस जन्म का जीवन विधवा की भाँति बीत जाएगा।

विशिष्ट–इस पद के 'रतण' शब्द का अर्थ रटना भी किया जाता है जो सर्वथा अशुद्ध है। शुद्ध रतन (रत्न) है। अनेस शब्द का अनेक या अप्रिय अर्थ किया है। जो सर्वथा भ्रांत अर्थ है। अन (+) ईश=बिना स्वामी के। मीरा तो अपने आप को सर्वदा, सर्वथा साधक मानती है। अतः वह दृढ़तापूर्वक कहती है कि बिना मिलन के तो यह जीवन विधवा-सा बीत जाएगा। इसलिये सधवा रहने के लिये दर्शन देने के हेतु वह अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से प्रार्थना करती है।

स्याम विणा सखि रह्या ण जावाँ ॥टेक॥
तण मण जीवण प्रीतम वारया, थारे रूप लुभावाँ।
खाण पाण म्हाणे फीकाँ सो लागां णैण रहां मुरझावाँ।
निस दिन जोवां बाट मुरारी, कबरो दरसण पावाँ।
बार बार थारी अरजाँ करसूँ रैण गवां दिन जावाँ।
मीरा रे हरि थे मिलियाँ विण तरस तरस जीया जावाँ ॥ 70॥

शब्दार्थ–वारया=निछावर किया। खाण पाण=खाना-पीना। फीकाँ=नीरस। नैणा रहाँ मुरझावौ=आंखें मुरझा गयी हैं। बाट=रास्ता। अरजाँ=अरज, प्रार्थना। रैण=रात।

व्याख्या–मीरा कहती है, हे सखि! श्रीकृष्ण के बिन मुझसे रहा नहीं जाता। मैं अपने प्रियतम पर शरीर, मन और जीवन को न्यौछावर किये हुए हूं। मैं तुम्हारे (प्रिय) रूप पर मुग्ध हूं मुझे तुम्हारे बिना खाना-पीना भी नीरस लगता है। आँखें भी मुरझा गयी हैं। उदास हो गयी हैं। हे मुरारि! मैं रात-दिन तुम्हारा रास्ता देखती हूं, कब मुझे दर्शन प्राप्त होंगे? मैं तुम्हारे आगे बार-बार प्रार्थना करती हूं कि इसी प्रकार जीवन के रात-दिन बीतते जा रहे हैं। मीरा कहती है कि भगवन्! तुमसे मिले और दर्शन किये बिना मेरी जीवात्मा तरस-तरस कर रह जाती है। मुझे बहुत व्याकुलता है जीवात्मा तड़पती रहती है।

विशिष्ट–(1) विरह की दशा का वर्णन इस पद में किया गया है। लौकिक संगति के साधनों का त्याग भी इस पद में वर्णित है जोकि प्रेमरूपा भक्ति के लिए आवश्यक माना जाता है।

णैण मुरझाना (नयन मुरझाना) मुहावरे का प्रयोग रमणीय ढंग से किया गया है।

नोट

22.2 सारांश (Summary)

मीरा का काव्य सहज जीवन का उद्‌गार है। उनकी विरह वेदना ही काव्य बनकर उभरी है। कृष्ण के प्रेम में दीवानी मीरा ने राजकुल का वैभव सुख-साज सब कुछ त्याग दिया। अपने इष्ट के सामने उन्हें सांसारिक सुख तुच्छ प्रतीत हुए। मीरा ने पति का घर त्याग दिया। वह कृष्ण की पुजारिन बनकर संतों की संगत में रहने लगीं। उनके इस व्यवहार को उनके ससुराल वालों ने अपना अपमान माना और मीरा को दण्डित करने हेतु तरह-तरह की यातनाएँ दीं। लेकिन मीरा अपनी भक्ति से रंच-मात्र भी विमुख न हुईं। उनके प्रेम का रंग और भी गाढ़ा होता गया। उनका काव्य उनके हृदय का उद्‌गार है, प्रेम की अभिव्यक्ति है।

22.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **छप्पन भोगः** 56 तरह के पकवान, खाद्य-पदार्थ।
2. **पचरंगः** पांच रंगों का, यहां तात्पर्य है पांच तत्वों से (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश)।

22.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मीरा एवं कबीर के भक्ति रूपों की तुलना कीजिए।
2. 'मीरा का काव्य उनकी सहज अनुभूतियों का उद्‌गार है।' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. सत्य

22.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मीरा मुक्तावली–*मीराबाई कृत।*
2. मीरा पदावली–*प्रभात प्रकाशन।*
3. मीरा का काव्य–*त्रिपाठी विश्वनाथ, वाणी प्रकाशन (पटना) बिहार।*

नोट

इकाई 23

मीरा की भक्ति भावना

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
23.1 मीरा की भक्ति भावना
23.2 सारांश (Summary)
23.3 शब्दकोश (Keywords)
23.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
23.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मीरा के भक्ति भावना को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भक्तकवियों की रचनाओं से उनके सिद्धांत और जीवन का तालमेल बिठाने में थोड़ी-बहुत सुविधा इसलिए होती है कि वे अपनी आस्था को कविता से बड़ा मानते थे। वे कथ्य को वाणी से अधिक महत्त्व देते थे। जहां अवसर मिलता था अपने विषय में भी दो टूक बातें करते थे। उन्होंने कविता में अपने विचारों को, जीवन-जगत् संबंधी अपनी प्रतिक्रिया को सीधे तौर पर अभिव्यक्त किया है।

मीरा ने प्रभूत मात्रा में रचना नहीं की, लेकिन फिर भी उन्होंने अपने विषय में पर्याप्त लिखा है। उनकी रचनाओं से उनके बाह्यांतर संघर्ष का पता चलता है। उनके विषय में बाह्य साक्ष्य प्रामाणिक-अर्धप्रामाणिक किंवदंतियां, वार्ताएं मिलती हैं। उनसे उनकी रचना सुसंबद्ध मालूम पड़ती है।

23.1 मीरा की भक्ति भावना

मीरा की कविता में लोकलाज, कुल की मर्यादा को तोड़ने या लांघने की बात बार-बार कही गई है। यह अकारण नहीं। इसके सामाजिक कारण हैं। मीरा अपने इष्ट को समर्पित तो होती हैं लेकिन इस समर्पित होने की प्रक्रिया में जो विघ्न-बाधा आती है उसका संकेत भी वह दे देती हैं। यह भी देखने की चीज है कि तुलसी के समान मीरा की कविता में भी 'दुर्जन', 'खल' आते हैं। विषमता का बोध मीरा के यहां प्रकट है। कबीर, तुलसी ने अपने समकालीन किसी 'खल' का नाम लेकर उल्लेख नहीं किया। जबकि मीरा ने 'राणा' का नाम लिया है।

क्या आप जानते हैं मीरा ने प्रचुर मात्रा में रचना नहीं की, लेकिन फिर भी उन्होंने अपने विषय में पर्याप्त लिखा है।

नोट

मीरा को श्याम के बिना जग खारा लगता है। जग की बात कच्ची लगती है। इस कच्ची यानी झूठी बात का विरोध श्याम के प्रति प्रीति से है जो जग की सच्ची बात है। जिस जग की और बातें कच्ची लगती हैं उसी में श्याम की प्रीति है जो सच्ची है। श्याम के बिना जग खारा लगता है तो उनकी भक्ति रसीली है। श्याम के बिना खारेपन के विरुद्ध भक्ति का रसीलापन मौजूद है। यथार्थ में कुमति है तो साधु-संगति भी है। कालव्याल है तो उससे बचने का तरीका हरि का गुणगान भी है। जगत् में खारापन और रसीलापन, कच्चापन और सच्चाई दोनों हैं। यथार्थ, विषमता पर परस्पर विरोधिता से युक्त है। मीरा को यथार्थ के जिस पक्ष से लड़ने के लिए लोकलाज तजनी पड़ती है वह शक्तिशाली है, मीरा उसके विरुद्ध उसी पर आधारित भावपक्ष को प्रस्तुत करती हैं जो उनके हृदय में स्थित है।

नोट्स मीरा का अपना कोई नहीं, केवल गिरधर गोपाल हैं। मीरा ने भाई-बंधु, सगे-साथी सब छोड़ दिया। साधुओं के साथ बैठ-बैठकर लोक-लाज भी खो दी।

मीरा का प्रियतम

मीरा द्वारा स्मृत, चित्रित और संबोधित 'जोगी' परम प्रियतम कृष्ण है–यही मान्य लगता है। 'जोगी' उनकी साधना पर नाथपंथी प्रभाव प्रकट करता है। लेकिन इस 'जोगी' को लेकर मीरा ने जो कुछ कहा है वह कुछ और भी संकेत कर सकता है। जिसके विरह में मीरा दुखी हैं और जिसे लेकर मीरा ने ऐसी अचूक अभिव्यक्ति की है, उसका लौकिक आधार नहीं होगा–यह मानना संभव नहीं लगता। जिसके विषय में मीरा ने यह सीधी पंक्ति लिखीः **'था देख्यां बिण कल णा पड़तां जाणे म्हारी छाती।'** वह मीरा के अज्ञात प्रियतम का ज्ञात आधार न होगा?

मीरा ने जोगी के वियोग में जो कुछ कहा है वह विरहवर्णन की परंपरा में होते हुए भी किंचित् असामान्य है। जोगी की राह देखते हुए बहुत दिन बीत गए, वह आज तक आया नहीं। या तो जोगी जग में नहीं (मर गया है) या उसने मुझे भुला दियाः

कै तो जोगि जग मैं नाहिं कैर बिसारी मोइ (पद 44)

टास्क मीरा की कृष्ण भक्ति के पीछे क्या भावना थी? इसका पता लगाइए।

मीरा का गिरधर नागर

मीरा के 'गिरधर नागर' का जो रूप निर्मित हुआ है उस पर मूर्ति की निर्मात्री का बहुत गहरा प्रभाव है। 'गिरधर नागर' स्थित भावजगत में है लेकिन जिन उपकरणों से उनका निर्माण हुआ है वे इसी जगत् के हैं। वे मीरा के जीवनसंघर्ष से उपजे हैं। उस मूर्ति में पीरा की पीड़ा शमित होकर रूपांतरित हो जाती है। अभाव ही समाप्त नहीं होते। विष बुझता ही नहीं, अमृत में बदल जाता है।

मीरा का अपना कोई नहीं, केवल गिरधर गोपाल हैं। मीरा ने भाई-बंधु सगे-साथी सब छोड़ा। साधुओं के साथ बैठ-बैठकर लोकलाज खो दी। भक्तों को देखकर वे प्रसन्न होतीं, जगत् को देखकर रोतीं। आंसुओं से सींच-सींचकर उन्होंने प्रेमबेल बोई। राणा ने विष का प्याला भेजा। मीरा ने मगन होकर पी लिया। मीरा को लगन लग गई अब जो होना है, होः

म्यारां री गिरधर गोपाल दूसरा णां कूयां।
दूसरा णां कूयां साधां सकल लोक जूयां॥ टेक॥
भाया छांड्यां बन्धा छांड्यां छांड्यां सगा सूयां।
साधां ढिग बैठ-बैठ, लोकलाज खूयां।
भगत देख्यां राजी हुयां जगत देख्यां रूयां।

नोट

असवां जल सींच-सींच प्रेम बेल बूयां।
दध मथ घृत काढ़ लयां डार दया छूयां।
राणा विषरो प्यालो भेज्यां पीय मगर हूयां।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. मीरा की कविता में लोकलाज, कुल की ..... तोड़ने व लांघने की बात बार-बार कही गई है।
2. मीरा को श्याम के बिना जग ..... लगता है।
3. मीरा को यथार्थ से लड़ने के लिए ..... तजनी पड़ती है।
4. ..... की राह देखते हुए बहुत दिन गीत गए, वह आज तक आया नहीं।

23.2 सारांश (Summary)

मीरा की कविता में लोकलाज, कुल की मर्यादा को तोड़ने या लांघने की बात बार-बार कहीं गई है। यह अकारण नहीं। इसके सामाजिक कारण हैं। मीरा अपने इष्ट को समर्पित तो होती हैं लेकिन इस समर्पित होने की प्रक्रिया में जो विघ्न-बाधा आती है उसका संकेत भी वह दे देती हैं।

मीरा को श्याम के बिना जग खारा लगता है। जग की बात कच्ची लगती है। इस कच्ची यानी झूठी बात का विरोध श्याम के प्रति प्रीति से है जो जग की सच्ची बात है।

मीरा के 'गिरधर नागर' का जो रूप निर्मित हुआ है उस पर मूर्ति की निर्मात्री का बहुत गहरा प्रभाव है। 'गिरधर नागर' स्थित भावजगत में है लेकिन जिन उपकरणों से उनका निर्माण हुआ है वे इसी जगत् के हैं।

23.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **लोकलाजः** सामाजिक परम्पराएं, मर्यादा, नियम आदि।
2. **विरहः** बिछड़ना, किसी से अलग होने का भाव।

23.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मीराबाई किस भावना से कृष्ण भक्ति करती हैं? वर्णन करो।
2. मीरा के गिरधर नागर का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. मीरा को श्याम के बिना जग खारा क्यों लगता है?

उत्तर–स्व-मूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. मर्यादा 2. खारा 3. लोकलाज 4. जोगी

23.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. मीरा मुक्तावली–*मीराबाई कृत।*
2. मीरा पदावली–*प्रभात प्रकाशन।*
3. मीरा का काव्य–*त्रिपाठी विश्वनाथ, वाणी प्रकाशन (पटना) बिहार।*

नोट

इकाई 24

मीरा मुक्तावली का शिल्प विधान

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
24.1 शिल्पगत विशेषताएं
24.2 भाषागत विशेषताएं
24.2 सारांश (Summary)
24.3 शब्दकोश (Keywords)
24.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
24.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मीरा की शिल्पगत विशेषताएँ जानने में।
- मीरा की भाषागत विशेषताएं समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मीरा की कविता की सबसे महत्त्वपूर्ण शिल्पगत विशेषता निरलंकृति है, जिसे आज की आलोचनात्मक शब्दावली में 'सपाटबयानी' कहते हैं। अलंकारों का प्रयोग मीरा के काव्य में भी मिलता है किन्तु नाममात्र को। अलंकारों का प्रयोग मीराकाव्य की विशेषता नहीं। स्त्रीसुलभ असहायता, प्रेमी की दृढ़ता, अनन्यता एवं पुरुषप्रधान समाज में अनेक अबलात्व–इन सबने मिलकर उनकी अभिव्यक्ति को बहुत सीधा और सपाट बना दिया है। उनके सीधे कथन में बेचारगी और निरीहता की हृदयवेधक सरलता है–**'अंसुवन जल सींच-सींच प्रेमबेलि बोई।'** यह उनकी विशिष्ट अभिव्यक्ति की प्रतिनिधि पंक्ति है। मीरा सीधी-सपाट पंक्तियों में विह्वलता की अभिव्यक्ति करती हैं। जिन पदों में विरह-व्याकुलता वर्णित-चित्रित की गई है, उनकी प्रथम पंक्ति या टेक ऐसी है कि मानों वह हृदय में रह नहीं पाई, मीरा ने उसे दबाने, छिपाने की बहुत कोशिश की है, लेकिन वह विवश चीत्कार मनोस्थिति को प्रकट करती हुई बरबस बाहर निकल ही पड़ी है, जैसे उसे रोक पाना मीरा के वश में नहीं था। निरलंकृति और संक्षिप्तता इन टेक पंक्तियों का प्राण है। कोई नारी अबला क्लेश सहते-सहते, घुटते-घुटते न रह पाई हो और पुकार उठी हो। प्रिय को संबोधित करते हुए अपनी असह्य पीड़ा चीत्कार कर उठी हो–इस विवश स्थिति में अलंकारप्रियता, वाग्चातुर्य का कोई अवकाश नहीं। यहां टूटना ही काव्यसृजन को व्यवस्था देने का काम करता है:

हो जी! हरि कित गए णेह लगाया!

जो जानेवाला है उससे न जाने की अबलासुलभ कातर याचना है:

छोड़ मत जाज्यो जी महाराज। (पद 48)

ऐसी लगन लगाइ कहां तू जासी। (पद 49)

नोट

ये सीधी-सादी पंक्तियां इतनी अनुभूति-स्पंदित क्यों हैं? इनमें कोई काव्यकौशल नहीं। फिर भी ये सहृदय को इतना प्रभावित क्यों करती हैं? इसका कारण भारतीय पाठक और श्रोतावर्ग का भारतीय नारी की असहाय स्थिति से भरपूर परिचय है। कविता के प्रभाव के विषय में इस तथ्य की ओर समीक्षकों का ध्यान कम गया है कि कथन की मार्मिकता या प्रभावशीलता का बहुत बड़ा निर्णायक तत्त्व कहनेवाले की विश्वसनीयता भी है।

24.1 शिल्पगत विशेषताएं

यह सुनिश्चित है कि मीरा की कविता का प्रयोजन किसी भी प्रकार की शिल्प-गत चतुराइयों के लिए नहीं था–न यश के लिए, न अर्थ के लिए, न व्यवहारविद् बनने के लिए। वे किसी भी तरह उन कवियों की श्रेणी में नहीं थीं जिन्हें कविताई का शास्त्रीय ज्ञान हो। मीरा की कविता आत्म-निवेदन की सहज स्फूर्त अभिव्यंजना है। जो बात तुलसीदास जी ने अपने लिए विनयवश कही थी वह कवयित्री मीरा के लिए वास्तविकता है। उन्होंने लिखा–

कवित विवेक एक नहीं मोरे। सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे॥

कवि न होहुँ नहिं चतुर कहाऊँ। मति अनुसार राम गुन गाऊँ॥

मीरा की कविता 'कृष्ण गुणगान' की है। रस, छन्द, अलंकार की दृष्टि से उनकी कविता का विश्लेषण करना उनके काव्य-प्रयोजन को निरादृत करना है, तब भी अनायास उनकी रचनाओं में बिना कठिनाई के अनेक गुण दृष्टिगत होते हैं।

क्या आप जानते हैं

मीरा की कविताओं का सौन्दर्य विशिष्ट ध्वनियोजना में भी है। उनकी काव्य पंक्तियाँ राजस्थानी ध्वनि प्रवृतियों के अनुकूल हैं, इसलिए उनमें सहज प्रवाह है।

रस

रसों की दृष्टि से मीरा की कविता में शृंगार और शान्त रस का ही आधिक्य है लेकिन उनका शृंगार बिहारी, देव, मतिराम की तरह उद्दीपन-विभाव के लिए नहीं है। यहाँ कृष्ण अभिसार के लिए कहीं से आते नहीं हैं और न लौटते हैं। वे मीरा के हृदय में निवास करते हैं। मीरा ने अपने एक पद में लिखा है–

औरन के परदेस बसत पिय लिख-लिख भेजत पाती।

मोरे पिया मोरे हृदय वसत है, ना कहुँ आती-जाती।

रस की स्थिति का सार-संक्षेप देते हुए यह कहा जा सकता है कि उन्होंने रस को नहीं देखा, वे सदा रसिक या रसेश को देखती रहीं।

छन्द

मीरा के पास अनेक छन्दों की सम्पदा नहीं है। वे तुलसी, केशव की तरह विभिन्न छन्दों का अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए प्रयोग नहीं करतीं। वे पद-रचना करती हैं। गीतिकाव्य के लिए पद ही सबसे श्रेष्ठ माध्यम और छन्द है। कृष्ण का रूप-सौन्दर्य, कृष्ण से प्रणय, कृष्ण की प्रतीक्षा यही तीन विषय मीरा की कविता की वर्ण्य-वस्तु हैं। तीव्र अनुभूति के इन विषयों को मीरा ने पदबद्ध किए हैं जो सरस शब्द और सराग स्वर में 'मणि-कांचन' की तरह गुँथ गए हैं। ''अपने युग के अन्य महान् भक्तों की तरह उन्होंने भी अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए 'गेय-पद' को चुना जो साहित्य और संगीत की मिलन भूमि पर जन्मा काव्य-रूप है और जिसमें भावधर्मी शब्द-साधना संगीत के स्वर-विधान में आकार ग्रहण करती है।'' (डॉ. सी.एल. प्रभात)। यह कहना कठिन है कि इन पदों को स्वयं कवयित्री ने राग-निबद्ध किया था या अन्य संगीतकारों ने, जो मीरा के प्रशंसक रहे हों या स्वतन्त्र संगीतज्ञों ने। मीरा की संगीत

नोट

शिक्षा कब और कहाँ हुई इसकी भी जानकारी नहीं मिलती। तब भी यह गणना की गई है कि उनके पद 27 रागों में गाए जा सकते हैं। 'मीरा की मल्हार' तो सुप्रसिद्ध है ही 'कल्याण' और 'मारू' राग में उनके उत्तम पद हैं।

नरोत्तम स्वामी के अनुसार भावावेश, संगीतात्मकता और प्रसाद-माधुर्य-गुण सम्पन्न भाषा के कारण वे पद गीति-काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हो गए हैं। गीति-तत्व 'लिरिसिज्म' के बारे में डॉ. प्रभात ने लिखा है 'पश्चिमी काव्य-शास्त्र द्वारा निर्धारित लिरिक' के लक्षण मीरा में अनायास ही आ गए हैं। संवेदना, वैयक्तिकता, अन्विति और गेयता चारों इनके पदों में हैं।

टास्क मीराबाई कृष्ण भक्तिधारा की कवियित्री हैं। कृष्ण भक्तिधारा के अन्य कवियों का परिचय दीजिए।

अलंकार

मीरा अनुभूति की कवयित्री हैं इसलिए उनमें अलंकरण और कविता के बाह्य-उपादानों को ढूँढ़ना व्यर्थ है। अंग्रेजी कवि **कीट्स** ने लिखा है कि कविता मेरे मन में उतनी सहजता से, स्वाभाविक रूप से आए जैसे वृक्षों में पत्ते, अगर इस तरह नहीं तो बेहतर है कि फिर नहीं। मीरा के पास कविता इस सहजता से ही आई थी इसीलिए उन्हें कविता के बाहरी उपादानों की विशेषता, अलंकारों की आवश्यकता नहीं हुई। किन्तु स्वाभाविक रूप से जहाँ अलंकार आए हैं वे उनकी कविता को आभामय बना देते हैं। उत्प्रेक्षा के ये दो उदाहरण देखें–

(क) अंग खीण, व्याकुल भया मुख पिव पिव वाणी हो।
ज्यूँ चातक घन कूँ रटै, मछरी ज्यूँ पाणी हो॥

(ख) कुण्ड झलकाँ कपोल अलकाँ लहराई।
मीनाँ तज सरवर ज्यों मकर मिलण धाई।

रूपक – तन मन बार्‌या हरि चरणाँ में दरसण-अमृत पास्याँ री।

काव्यलिंग – भज मन चरण कमल अनिवासी।
जेताई दीखे धरणि गगन बिच लेता सब उठ जासी।

अनुप्रास – कुटिल, भृकुटि, तिलक भाल, चितवन में टोना।
खंजन अरू मधुप मीना, भूले मृग-छोना।

24.2 भाषागत विशेषताएं

निष्ठा शब्दजाल नहीं बुनती। वह अत्यंत अनिवार्य कथनता में ही रमती है। शब्दजाल से बचने की प्रवृत्ति का दूसरा परिणाम सरल भाषा या परिचित शब्दों का उपयोग भी हो सकता है लेकिन यह बात बहुत बलपूर्वक नहीं कही जा सकती। ऐसा लगता है कि रचनाकार के शब्द या छंद चयन पर समकालीन रचना प्रवृत्तियों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है और उसकी संवेदना का सांचा समकालीन रचनात्मक प्रवृत्तियां निर्मित करती हैं, अवश्य ही इसमें उसकी व्यक्तिगत विशेषताएं सक्रिय भूमिका निभाती हैं।

मीरा की शब्दावली सरल और परिचित है। इस सरलता का उनकी निरीहता से बहुत गहरा संबंध जान पड़ता है। निरीहता की अभिव्यक्ति अलंकृत नहीं होती। उनकी पंक्तियों का सांचा जनबोली का है। पंक्तियां गद्यात्मक हैं। उनका गठन ठेठ गद्य का है। आज की हिंदी कविता में जो खंडित और आहत वाक्यगठन दिखलाई पड़ता है, छायावादी कविता में जिसकी बहुलता है, वह मीरा की कविताओं में नहीं। प्रायः प्रत्येक पंक्ति गद्य का एक सुगठित वाक्य है। यह कहना बहुत कठिन है कि यह मीरा के काव्यकौशल का परिणाम है। मीरा ने काव्यकला का बहुत अधिक रियाज

नोट

नहीं किया होगा। यह मंजाव और कसाव उन्हें अन्य भक्तकवियों की रचनाएं पढ़कर और सुनकर मिला होगा। वस्तुतः जब हम किसी अच्छी कविता को पढ़कर-सुनकर प्रभावित हो रहे होते हैं तो क्या उसकी रचनाधर्मिता में भी शामिल नहीं हो रहे होते। रचना प्रक्रिया चाहे जितने खामोश या अघोषित रूप में खुले, वह सहृदय के चित्त में जरूर खिलती है। इसी से काव्य का संस्कार बनता है। अनुमानतः मीरा की कविताओं में कौशल का आधार उनके निरंतर काव्यास्वाद का सघन संस्कार है।

नोट्स मीरा ने काव्यकला का बहुत अधिक रियाज नहीं किया होगा, उनकी रचना में कसाव और मंजाव अन्थ भक्त कवियों की रचनाएं पढ़कर और सुनकर आया होगा।

मीरा की कविताओं का सौंदर्य विशिष्ट ध्वनियोजना में भी है। उनकी पंक्तियां राजस्थानी ध्वनिप्रवृतियों के अनुकूल हैं, इसीलिए उनमें प्रवाह है। इस प्रवाह में विशिष्ट ध्वनियों का चमत्कार और झनकार है। प्रवाह के कारण उन पंक्तियों की स्मरणीयता बढ़ती है। स्मरणीयता तब आती है जब पंक्तियों की ध्वनियोजना ऐसी हो कि एक ध्वनि से अगली ध्वनि तक जाने में यानी उच्चारण करने में उच्चारण अवयवों को असुविधा न हो। यही नहीं, वे उच्चारण में सहज प्रवृत्त हो जाएं। ऐसा तभी होता है जब रचनाकार अपनी बोली की अंतरंगता में पैठा होता है, वह बोली की अपनी ध्वनियोजना और वाक्यप्रवाह की ध्वनिगत प्रवृत्ति (इंटोनेशन) में खुद रचा-बसा हो। प्रत्येक बोली का अपना वाक्यप्रवाह और अपनी प्रिय ध्वनियां होती हैं। कविता की पदावली और उसके छंदविधान का निश्चय इन्हीं ध्वनियों और इसी प्रवाह से होता है।

जिन पदों में मीरा का आत्मनिवेदन या प्रिय की मनोहारी छवि का अंकन हुआ है या भावविह्वलता व्यक्त हुई है, उनमें ध्वनियों के आवर्त बारंबार उठते हैं, उनमें विशिष्ट ध्वनियों की आवृति होती है–व्यंजन और स्वर दोनों की र, ल, स् ध्वनियां प्रायः सभी मध्यकालीन भक्तकवियों को प्रिय हैंः

मण थे परस हरि रे चरण।

सुभग सीतल कंवल कोमल, जगत ज्वाला हरण।

इण चरण प्रह्लाद परस्यां, इन्द्र पदवी धरण।

इण चरण ध्रुव अटल करस्यां, सरण असरण सरण।

इण चरण ब्रह्माण्ड भेट्यां नखरिखां गिरि भरण।

अनुप्रास केवल अंत्य नहीं, पंक्ति के बीच में भी अनुप्रास दो-दो या तीन शब्दों में। राजस्थानी भाषा की ध्वनिप्रवृत्ति के कारण 'ण' का प्रयोग बहुत ज्यादा मिलता है। ट, ण ध्वनियां तो कठोर मानी जाती हैं, फिर भी मीरा की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति ये ध्वनियां कैसे कर लेती हैं।

व्यंजनों के अनुप्रास के साथ-साथ मीरा के यहां स्वरों की आवृत्ति भी कम नहीं होती। ह्रस्व स्वरों के प्रयोग भी मीरा के यहां प्रवाह उत्पन्न करते हैं जैसे 'मण थें परस हरि के चरण' वाले पद में लेकिन मीरा में दीर्घ स्वरों का अनुप्रास अधिक मिलेगा। दीर्घ स्वरों का और सानुनासिक दीर्घ स्वरों का।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. मीरा की कविता का प्रयोजन किसी भी प्रकार की ..... चतुराइयों के लिए नहीं था।
2. रसों की दृष्टि से मीरा की कविता में ..... और ..... रस का आधिक्य है।
3. मीरा की कविता की सबसे महत्त्वपूर्ण ..... विशेषता निरलंकृति है।
4. मीरा के कथन में बेचारगी और ..... की हृदयवेधक सरलता है।

नोट

24.3 सारांश (Summary)

मीरा की कविता 'कृष्ण गुणगान' की है। रस, छन्द, अलंकार की दृष्टि से उनकी कविता का विश्लेषण करना उनके काव्य-प्रयोजन को निरादृत करना है। रसों की दृष्टि से मीरा की कविता में शृंगार और शान्त रस का ही आधिक्य है। मीरा अनुभूति की कवयित्री हैं इसलिए उनमें अलंकरण और कविता के बाह्य-उपादानों को ढूँढ़ना व्यर्थ है। मीरा की शब्दावली सरल और परिचित है। इस सरलता का उनकी निरीहता से बहुत गहरा संबंध जान पड़ता है। निरीहता की अभिव्यक्ति अलंकृत नहीं होती। उनकी पंक्तियों का सांचा जनबोली का है। पंक्तियां गद्यात्मक हैं। उनका गठन ठेठ गद्य का है। मीरा की कविताओं का सौंदर्य विशिष्ट ध्वनियोजना में भी है। उनकी पंक्तियां राजस्थानी ध्वनिप्रवृतियों के अनुकूल हैं, इसीलिए उनमें प्रवाह है। इस प्रवाह में विशिष्ट ध्वनियों का चमत्कार और झनकार है।

24.4 शब्दकोश (Keywords)

1. स्त्रीसुलभः स्त्रियों में पाई वाली सहज प्रवृत्ति।

2. भावाभिव्यक्तिः मन में उठने वाले विचारों और भावों को अभिव्यक्त करना, जाहिर करना, मन की बात कहना।

24.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'मीरा का काव्य भावों की सहज अभिव्यक्ति है।'

2. 'मीरा की कविता राजस्थानी ध्वनिप्रवृतियों के अनुकूल है' उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

3. मीरा के काव्य की शिल्पगत विशेषताओं का वर्णन करें।

4. मीरा की भाषागत विशेषताएं बताइए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. शिल्पगत 2. शृंगार, शांत 3. शिल्पगत 4. निरीहता

24.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. मीरा मुक्तावली–*मीराबाई कृत।*

2. मीरा पदावली–*प्रभात प्रकाशन।*

3. मीरा का काव्य–*त्रिपाठी विश्वनाथ, वाणी प्रकाशन (पटना) बिहार।*

नोट

इकाई 25

मीरा मुक्तावली: भाव पक्ष एवं कला पक्ष

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
25.1 मीरा के काव्य का भाव-पक्ष
25.1.1 मीरा के काव्य का कला-पक्ष
25.2 सारांश (Summary)
25.3 शब्दकोश (Keywords)
25.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
25.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मीरा मुक्तावली के काव्य पक्ष एवं कला पक्ष को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आत्मलीन कवि के उद्वेलित मनोवेग उसके हृदय की हलचल का प्रकाशन करते हैं, किन्तु हृदय मूक है। अतः भावदशा की चरमावस्था में प्रायः अति संवेदनशील प्राण मूक हो जाते हैं। वाणी का वहाँ प्रवेश नहीं होता, अतः भाव-योग, अनुभूति की मौन साधना है, किन्तु कवि मौन नहीं रह सकता। उसका भावयोग शब्द-योग की भी साधना करता है। यह 'शब्द-योग' विशेष महत्त्वपूर्ण है। वस्तु स्थिति इस प्रकार होती है कि कवि की घनीभूत अनुभूति, उद्वेलित मनोवेग और तीव्रतम भाव संवेदन का क्षण कवि को आत्मलीन कर देता है और वह उस दशा को अपने सम्पूर्ण काव्यगत उपादानों के साथ व्यक्त करने के लिए विकल और विवश हो जाता है। तब भाव शब्दों की खोज करते हैं, भाव-पक्ष बुद्धि-पक्ष से समरसता स्थापित करने की चेष्टा करता है और भाव-दशा का क्रमिक रूप, क्रमिक शब्द-विन्यास द्वारा भावों से निबद्धित होने लगता है। यही काव्य-सृष्टि की मानसिक प्रक्रिया है। मीरा के काव्य में भाव-पक्ष प्रधान है, अतः उसमें पांडित्य का अभाव पाया जाता है। मीरा का समस्त काव्य हार्दिक भावों का सहज प्रकाशन है।

25.1 मीरा के काव्य का भाव-पक्ष

1. आत्मानुभूति–कवि के जीवन में किसी विशिष्ट क्षण में, किसी विशिष्ट वातावरण और परिस्थिति से उसी अनुभूति की चेतना जागृत होती है। यह अनुभूति कवि के सहज संवेदनशील हृदय का विशिष्ट गुण है। आत्मानुभूति के उस क्षण, उस परिस्थिति से, शांत जल में फेंके हुए पत्थर से उत्पन्न होने वाली लहरों की तरह कवि-मानस की भावनाएँ तरंगित होती हैं। यह आत्मानुभूति भी काव्य का सूक्ष्म प्राण है, जो कवि की व्यैक्तिकता को आत्मसात् किये रहते हैं। यही अनुभूति कालांतर में भाव-जागृति का मूल कारण बनती है।

2. भावजागृति–आत्मानुभूति से कवि के प्राणों में जो स्पन्दन होता है, उससे भावोर्मियाँ तरंगित हो, सचेतन बन उद्वेलित हो उठती हैं। इससे कवि की भावुकता को बल मिलता है। अनुभूति की तीव्रता से कवि भाव-लोक में विचरण करने लगता है। कल्पनाशक्ति उस भावुकता को और भी बल देती है और मनोद्वेगों से वह संचालित होने लगता है।

नोट

3. मनोवेगों का उद्वेलन–भाव-जागृति के साथ ही कवि के मन में संवेगों का ज्वार उठता है। मनोवेगों का यह ज्वार कवि की अनुभूति को तीव्रता और भावों को शक्ति प्रदान करता है, फलतः कवि अनुभूति से भाव-दशा में पहुँच जाता है। उसकी अन्तर्वृत्तियाँ भावनिष्ठ होकर मूल भावानुभूति पर केन्द्रित हो जाती हैं, और कवि उसे केन्द्रित भावानुभूति के रस में निमग्न हो जाता है। धीरे-धीरे कवि अपने मनोद्वेगों को व्यक्त करने के लिए विकल होने लगता है।

4. भावदशा की चरम परिणति–मनोवेगों के उद्वेलन से जागृत भाव कवि की आत्मानुभूति को तीव्रतम रूप से उसे भाव दशा में रसलीन कर देते हैं, और कवि भावविभोर हो आत्मलीन हो जाता है।

5. भानानुरूप शब्दों की योजना–भाव-जगत की पूर्ववर्ती प्रक्रियाएं सूक्ष्म अन्तर्मन के विभिन्न स्तरों और क्रियाकलापों का प्रकाशन करती हैं, किन्तु भाव-योग से शब्द योग का समन्वय होते ही काव्य की अमूर्त भावना, शब्दों के मूर्त रूपों में आबद्ध होकर अप्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष और सूक्ष्म से स्थूल रूप में व्यक्त होने लगती है। काव्य का स्वयं प्रसूत लेखन और गायन यहीं से प्रारंभ होता है। इस दशा में शब्द भावों का अनुसरण करते हैं और गीत मनःस्थिति और भावोद्वेगों को शब्दों में बाँध यथाविधि मुखर करते हैं तथा गीति काव्य में संगीतात्मक स्वर, ताल, लय आदि गुण अपने आप आ जाते हैं। संक्षेप में हम इस प्रक्रिया के बारे में यह कह सकते हैं कि कवि की अनुभूति, भावना और कल्पना मनोवेगों के साहचर्य से कवि के जीवन में जिस भाव-जगत की सृष्टि करती है, वही भावों का उद्वेलन अपने स्वरूपों के अनुसार शब्दों का चयन कर गीति विधान का कारण बन जाता है और अनुभूति, भाव एवं मनोवेग अपने द्योतक सार्थक शब्दों में व्यक्त होते हैं।

6. भाव-दशा का उतार-चढ़ाव–काव्य में भाव-प्रवाह सदैव समतल नहीं होता। वह एक सूक्ष्म केन्द्र से उठकर कवि की सम्पूर्ण चेतना पर छा जाता है। निस्तब्ध जल में पत्थर गिरने से उठने वाली लहरों की तरह-मानस की भावोर्मियाँ मनोवेगों को उठाती, चढ़ाती और आगे बढ़ाती है।

7. अनुभूति की संतुलित पूर्णाभिव्यक्ति पर गीत का अंत–अनुभूति की भाव-दशा में परिणति शब्दयोग द्वारा काव्य-सृष्टि करती है। कवि भावदशा में जब तक रहता हैं, तभी तक यह भावों के उतार-चढ़ाव को शब्दों की कड़ियों और छन्दों की लड़ियों में बाँधता है, गीत गाया या लिखा जाता है। भाव जब शब्द, अर्थ छन्द, स्वर, ताल, लय, गति और रसानुभूति को पूर्णतः क्रम से अभिव्यक्त कर देते हैं, तब गीत का अंत हो जाता है।

मीरा के प्रत्येक पद में गीति-सृष्टि की ये सभी प्रक्रियाएं सर्वत्र पाई जाती हैं, अतः मीरा का कोई-सा भी पद इन कसौटियों पर कसा जा सकता हैं

क्या आप जानते हैं काव्य में भाव प्रवाह सदैव समतल नहीं होता। वह एक सूक्ष्म केन्द्र से उठकर कवि की सम्पूर्ण चेतना पर छा जाता है।

मीरा के काव्य का मूलभूत भाव-तत्व और उसका विश्लेषण

मीरा के अद्यावधि उपलब्ध मूलपदों में जो वस्तुगत अंतरंग तत्व है, उसका प्रमाणिक संकेत केवल मूल स्रोत की तरह मीरा की काव्य धारा में विद्यमान है। मीरा की एकमात्र मान्यता है कि–

''प्रेम भगति रो पैंडा म्हारो, और ण जाणां रीत।''

इसके स्पष्ट हो जाता है कि मीरा प्रेमभक्ति की उपासिका थीं। उसके जीवन और काव्य में प्रेम और भक्ति के तत्व सर्वोपरि थे, अतः मीरा के काव्य को मूलभूत भाव तत्व की दृष्टि से दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है। यथा–(1) प्रेम-प्रधान गीतिकाव्य (2) भक्ति-परक गीति काव्य।

नोट

मीरा का प्रेम-प्रधान गीति-काव्य

गीति काव्य में प्रेम प्रधान गीति-काव्य सुन्दर सृष्टि के प्रमाण माने जाते हैं, क्योंकि प्रेम-तत्व जीवन की सबसे प्रबल, मादक, सुन्दर और सरस उपलब्धि है। संसार के सम्पूर्ण गीतिकाव्य में तुलना और अनुपात की दृष्टि से प्रेम-प्रधान गीति-काव्य सबसे अधिक व्यापक और विस्तीर्ण पैमाने पर पाया जाता है और विश्व की किसी भी भाषा का कोई-सा भी इतर काव्य रूप उसी भाषा के प्रेम-काव्य से आगे नहीं बढ़ पाता, क्योंकि प्रेम का दायरा भी वैयक्तिकता से लेकर, जाति प्रेम, देशप्रेम, मानव प्रेम और ईश्वर प्रेम तक क्रमशः ससीम से असीम तक फैला है, अतः प्रेम तत्व की व्यापकता ने प्रेम-प्रधान काव्य को लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम के सोपानों पर चढ़ाते हुए कवि की अनुभूतियों को ऊर्ध्वागामी गति दी। मीरा के प्रेम प्रधान गीति काव्य में मीरा का वैयक्तिक प्रेम लौकिकता से ऊपर उठ अलौकिक कृष्ण प्रेम तक व्याप्त है।

मीरा के प्रेम-काव्य में संयोग और वियोग-पक्ष

प्रेम-भाव के दो पक्ष हैं, एक शुक्लपक्ष या संयोग पक्ष और दूसरा कृष्णपक्ष या वियोग पक्ष। इसी प्रेमप्रधान गीतिकाव्य में संयोग के सुखद, उज्ज्वल आल्हादकारी, आनंदमय, अलौकिक, प्रेमालोक की शान्त, स्निग्ध फेनोज्ज्वल किरणें पाई जाती हैं, तो वियोग की अमावस्या में प्रेमी की व्याकुलता, प्रिय की निष्ठुरता, प्रेमी की अपेक्षा, प्रिय की उपेक्षा, विरह-वेदना की तीव्रता और निराशा आदि का बड़ा सजीव चित्रण पाया जाता है।

मीरा के काव्य में प्रेम-तत्व के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का अभिव्यंजन पाया जाता है और उसमें भी मीरा का विरह-पक्ष अधिक प्रबल है। अस्तु, मीरा के सम्पूर्ण पदों में प्रेम और संयोग-वियोग की दशाओं के वर्णन पाए जाते हैं।

25.1.1 मीरा के काव्य का कला पक्ष

मीरा के काव्य में प्रेम और भक्ति का तादात्म्य पाया जाता है। सामान्यतः भक्ति ईश्वरीय प्रेम के रागात्मक सम्बन्ध और आध्यात्मिक अनुभूतियों के आवेग से परिपूर्ण होती है। ईश्वरीय सत्ता की सर्वशक्तिमत्ता, और भक्त द्वारा उसकी स्वीकृति तथा उसका गुणगान भक्ति-साहित्य में स्तुतिपरक गीतों का जन्म के कारण है। मीरा के पदों में भी 'गिरधरनागर' की स्तुति और अपने उद्धार के लिए प्रार्थनायें पाई जाती हैं। यथा–

भज मण चरण कंवल अबणासी।

अरज करां अबला कर जोड़या स्याम तुम्हारी दासी।

मीरा से प्रभु गिरधर नागर, काट्यां म्हारी गांसी।''

भक्त आत्मा का यह आत्मनिवेदन स्वतः प्रेरित-प्रकाशन है, जो कवि की पवित्र भावनाओं को वाणी देता है और उसकी आत्मा के उद्धार के लिए ईश्वरीय करुणा और कृष्ण का आह्वान करता है। भक्त का दैन्य, प्रभु-शरणागति और उद्धार के लिए प्रार्थनाएं इन्हीं भक्तिपरक गीतों में पाई जाती हैं। भक्त जब कभी अपने और भगवान के सम्बन्ध और स्वरूपों का अभिव्यंजन करता है, तब उसके द्वारा उसके धर्म-दर्शन और भक्ति-साधना-पद्धति का ज्ञापन होता है।

मीरा के पद उन्हें सगुणोपासिका कृष्ण-भक्तिन सिद्ध करते हैं, जो कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव से प्रेरित होकर नवधा रूपों में अपनी भक्ति को आचार शास्त्र में परिणत कर चुकीं थीं।

मीरा पदावली में **रसात्मकता** का सागर लहराता है। भक्तिभाव तो तरंगित है ही। शुद्ध शृंगार के पद भी इस काव्य में उपलब्ध होते हैं। एक पद देखिये–

आली सांवरो की दृष्टि, मानूँ प्रेम की कटारी है॥
लगत बेहाल भई तन की सुधि बुद्धि गई।
तनह मैं व्यापी पीर, मणमतवारी है॥
सखियाँ मिलि दोय चारी, बाहरी भई हैं सारी।

नोट

हौं तो बाकी नीको जाणो कुंज को बिहारी है॥
चंद को चकोर चाहे, दीपक पतंग दाहे।
जल बिना मरे मीन ऐसी प्रीत प्यारी है॥
बिन देष्याँ कैसे जीवें कल न परत हिये।
जाय वाकूं ऐसे कहियौ मीत तो तिहारी है॥

वियोग शृंगार की अभिलाषा, जड़ता, व्याधि आदि दस दशाओं को मीरा के काव्य में देखना सहज है। अद्‌भुत रस के उदाहरणों को भी मीरा-काव्य में सहजता से देखा जा सकता है। अपने इष्ट देव गिरिधारी श्रीकृष्ण का अद्‌भुत रूप चित्रण मीरा ने अपने पदों में आत्मतल्लीनता से किया है–

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

1. मीरा के काव्य-पदों में गीति-सृष्टि की प्रमुख प्रक्रियाओं का सर्वथा अभाव है।
2. प्रेम-भाव के दो पक्ष होते हैं–एक संयोग पक्ष और दूसरा वियोग पक्ष।
3. मीराबाई का काव्य मुख्यतः लक्षणा और व्यंजनाप्रधान है।
4. मीरा सगुणोपासिका कृष्ण-भक्तिन हैं और कृष्ण को पतिरूप में माना है।

निपट वंकट छब अँटके।
म्हारे णैणा निपट वंकट छब अँटके॥
देख्याँ रूप मदनमोहन की पियत पियूखन मटके।
वारिज भवाँ अलक मतवारी णैण रूप रस अंटके।
टेढ़ याँ कर टेढ़े करि मुरली, टेढ़ूयाँ पाग लर लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभाणी गिरिधर नागर नट के॥

रसों के अन्य भेदों में मीराबाई की रुचि नहीं लगती। खींच-तान की बात पृथक् है परन्तु शृंगार और अद्‌भुत रस के ही उदाहरण इनके पदों में मिलते हैं। भावोदय, भावशान्ति, भावशवलता आदि भेदों के उदाहरण भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।

अलंकारों में मीराबाई ने उपमा और रूपकालंकार का बहुत प्रयोग किया है। उपमानों में पाना (पान) का प्रयोग बहुधा किया है। उत्प्रेक्षा की छटा भी यत्रतत्र दृष्टिगत होती है। कहीं-कहीं असंगति एवं विरोधाभास जैसे अलंकार भी प्रयुक्त किए हैं। असंगति का उदाहरण पठनीय है–

डारि गयो मनमोहन पासी।
आँम्वाँ की डालि कोइल इक बोले, मेरो मरण अरू जग केरी हाँसी।

विरोधाभास की छटा इस पद में दर्शनीय है–

प्रभु जी कहाँ गया नेहड़ा लगाया।
छोड़ या महा विस्वास संघाती प्रेम री बाती जलाय।
विरह समंद मे छोड़ गया छो, नेह री नाव चलाय।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे थे विण रह्याँ न जाय॥

प्रधानतः मीरा का काव्य **अभिधाप्रधान** है। लक्षणा और व्यंजना तो कदाचित् ही दृष्टि में आये। वस्तुतः **अभिधात्मक** काव्य भी उत्तम हो सकता है क्योंकि मीरा के पद इस तथ्य के साक्षात् प्रमाण हैं। लक्षणा और व्यंजना की आवश्यकता मीरा के जीवन में कहाँ थी? तब काव्य में ही कहाँ आ सकती थी।

नोट

नोट्स मीराबाई का काव्य मुख्यतः अभिधाप्रधान है। लक्षणा और व्यंजना उनके काव्य में नजर नहीं आते।

मीरा की भाषा-शैलीः इन पदों में भाषा-सौष्ठव भी अपने ढंग का निराला है। राजस्थानी तथा ब्रजभाषा के अतिरिक्त गुजराती, बांग्ला, पंजाबी, एवं फारसी आदि भाषाओं के शब्द भी इन पदों में प्राप्त हैं। ये कालान्तर में मीरा के पदों में अन्य गायकों द्वारा प्रवेशित भी हो सकते हैं। परन्तु पदों की मूल भाषा में राजस्थानी की उच्चारण क्षमता और व्यावहारिकता तथा ब्रजभाषा का गेयात्मक माधुर्य है। इसी लिए गीतिकाव्य के पदलालित्य, संगीतात्मकता आदि गुण इन पदों में सहजता से आ गये हैं।

25.2 सारांश (Summary)

मीरा प्रेमभक्ति की उपासिका थीं। उसके जीवन और काव्य में प्रेम और भक्ति के तत्व सर्वोपरि थे, अतः मीरा के काव्य को मूलभूत भाव तत्व की दृष्टि से दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है। यथा–(1) प्रेम-प्रधान गीतिकाव्य (2) भक्ति-परक गीति काव्य। मीरा के काव्य में प्रेम-तत्व के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का अभिव्यंजन पाया जाता है और उसमें भी मीरा का विरह-पक्ष अधिक प्रबल है। अस्तु, मीरा के सम्पूर्ण पदों में प्रेम और संयोग-वियोग की दशाओं के वर्णन पाए जाते हैं। मीरा के पद उन्हें सगुणोपासिका कृष्ण-भक्तिन सिद्ध करते हैं, जो कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव से प्रेरित होकर नवधा रूपों में अपनी भक्ति को आचार शास्त्र में परिणत कर चुकीं थीं। अलंकारों में मीराबाई ने उपमा और रूपकालंकार का बहुत प्रयोग किया है। उपमानों में पाना (पान) का प्रयोग बहुधा किया है। उत्प्रेक्षा की छटा भी यत्रतत्र दृष्टिगत होती है।

25.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **आत्मानुभूतिः** अन्तःकरण में महसूस करना, आत्म साक्षात्कार।
2. **सगुणोपासकः** जिसको प्रत्यक्ष मान कर उसके गुणों की उपासना की जाए।
3. **भावशबलताः** अनेक भावों का एक साथ वर्णन करना।

25.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'मीरा ने अपने काव्य में अपमा और रूपक अलंकार का बहुधा प्रयोग किया है।' उदाहरण सहित स्पष्ट करें।
2. मीरा का काव्य प्रेम-प्रधान गीति-काव्य है। विवेचन करें।
3. मीरा के काव्य में राजस्थानी तथा ब्रज भाषा के अतिरिक्त दूसरी भावाओं के शब्दों को चुनकर लिखें।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य

25.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मीरा मुक्तावली–*मीराबाई कृत।*
2. मीरा पदावली–*प्रभात प्रकाशन।*
3. मीरा का काव्य–*त्रिपाठी विश्वनाथ, वाणी प्रकाशन (पटना) बिहार।*

नोट

इकाई 26

मीरा मुक्तावली: भाषा-शैली

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
26.1 मीरा के काव्य में अलंकार योजना
26.2 मीरा की काव्य भाषा का स्वरूप
26.3 सारांश (Summary)
26.4 शब्दकोश (Keywords)
26.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
26.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मीरा के काव्य की भाषा-शैली के स्वरूप को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मीरा का काव्य तीव्र अनुभूति का काव्य है। भावानुभूति व्यक्त करना ही मीरा का उद्देश्य था। न भाषा को अलंकृत करने या सजाने-संवारने का उसे ध्यान था, न किसी प्रकार के चमत्कार-प्रदर्शन का ही उसे अवकाश था। फिर भी मीरा की भावमयी अभिव्यक्ति स्वतः ही सशक्त और प्रभावी बन गई है। कहीं-कहीं स्वाभाविक अलंकार-विधान भी स्वतः प्रकट हुआ है। सादृश्यमूलक अलंकारों में रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा का ही कुछ प्रयोग दिखाई देता है। मीरा ने साधना-परम्परा से प्राप्त उपमानों और प्रतीकों को ही अपनाया है।

26.1 मीरा के काव्य में अलंकार योजना

व्यास्त रूपक से अलंकृत निम्न पंक्तियाँ देखिए: मूर्त-अमूर्त-योजना बहुत सुन्दर है:

'दीपक जोऊँ ग्यान का चढ़ूँ अगम अटारी हो,'
'सील संतोष की केसर घोली प्रेम-प्रीत पिचकारी रे।'
'प्रेम भटी को मैं मद पीयो छकी फिरूँ दिनराती।'

रूपक :

'दरसन-इमरत पास्यांरी।'
'विरह-समुंद में छोड़ गया, नेह री नाव चढ़ाव।'

सांगरूपक :

या तन को दियना करौं मनसा करौं बाती हो।
तेल भरावों प्रेम का बारौं दिन राती हो।

नोट

रूप-साम्य और प्रभाव-साम्य पर आधारित अप्रस्तुत-योजना कहीं-कहीं बिम्बात्मक बन गई है। **उत्प्रेक्षा** का रूप-साम्य का ऐसा प्रयोग देखिए:

'कुंडल झलकां कपोल अलकाँ लहराई।
मीन तज सरवर ज्यौं मकर मिलण आई॥'

उपमा अलंकार के भी छुट-पुट प्रयोग मिलते हैं:

उपमा :

'अंग खीन व्याकुल भया मुख पिव पिव वाणी हो।
ज्यों चातक घन कौर रटै, मछरी बिन पानी हो'॥
'हरि बिन मथुरा ऐसी लागै शशि बिनु रैन अँधेरी।'

अतिशयोक्ति–मीरा ने ऊहात्मक प्रयोग नहीं किये। कहीं-कहीं विरह-वर्णन में ही परम्परागत अतिशयोक्ति का प्रयोग हुआ है–

'गिणतां गिणतां घिस गई म्हारी आंगलियां री रेख'
'छप्पन कोटि जणा पधार्‌याँ दूल्हो श्री ब्रजनाथ'

विरोधमूलक अलंकार–विरोधों का चमत्कार भी मीरा ने नहीं दिखाया। कथ्य में स्वाभाविक विरोधाभास कहीं आ गया हो तो दूसरी बात है। निम्न पंक्तियां ऐसी ही हैं–

बिन करताल पखावज बाजै अनहद की झनकार रे।
बिन सुर राग छतीसों गावै रोम रोम रंग सार रे।

टास्क मीरा की काव्य भाषा पर किन-किन क्षेत्रीय भाषाओं का प्रभाव है?

मीरा ने वर्ण-सौन्दर्य या शब्द वैचित्र्य का भी कोई सचेतन प्रयास नहीं किया। अतः अन्य ब्रज कवियों-जैसी अनुप्रास तथा नाद-सौन्दर्य की छटा भी उनकी भाषा में नहीं है। भाव-प्रवाह में स्वतः ही कहीं-कहीं पदावली सानुप्रासिक हो गई है। एक-दो उदाहरण देखिए:

'बरसे बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन मैं उमग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।'
'नैनन बनज बसाऊँ री जो मैं साहिब पाऊँ'

श्लेष, यमक, वक्रोक्ति आदि शब्द-चमत्कार-प्रधान अलंकारों का भी मीरा ने प्रयोग नहीं किया। मीरा की अनलंकृत वाणी में निश्छल भावमयी अभिव्यक्ति की ही विशेषता है।

लाक्षणिक प्रयोग और मुहावरे–मीरा की स्वाभाविक अभिधा-प्रधान वाणी में लाक्षणिक प्रयोग और मुहावरों का स्वतः ही खूब समावेश हो गया है। कुछ उदाहरण देखिए–'बाट जोवां', 'हाथ बिकाणी', 'रंग राँचा', 'करेजो खाय', 'लागी मोहिं राम खुमारी हो', 'हरिसू सैन लगाती', 'भजन बिना नगर फीको',

नैन बिछास्याँ हिबड़ो डास्यां सर पर राख्यू बिराज।'
'उणबिन सब जग खारो लागत और बात सब कांची'
'अब तो निभायौ सरैगी, बांह गहे की लाज'

लोकोक्तियों का प्रयोग भी मीरा की भाषा में अपेक्षाकृत कम है।

नोट

नोट्स मीरा के काव्य में भाषा के परिष्कृत रूप के स्थान पर सहज-सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

नाथ-सन्त-परम्परा में प्रयुक्त कुछ प्रतीक भीरे मीरा की रहस्य-साधनापरक पंक्तियों में पाये जाते हैं, जैसे 'चलो अगम के देस, वहाँ भरा प्रेम-हौज, हंस केल्यां करै।' 'पंच रंग चोला पहर सखी मैं झिरमिट खेलन जाती', 'त्रिकुटी महल मैं बना है झरोखा तहाँ तै झांखी लगाऊँरी''। 'सुन्न महल में सुरत जगाऊँ सुख की सेज बिछाऊँरी।''

26.2 मीरा की काव्य भाषा का स्वरूप

मीरा की भाषा राजस्थानी-मिश्रित ब्रज भाषा है। उन्होंने साहित्यिक ब्रज भाषा के साथ अपनी मातृभाषा पश्चिमी राजस्थानी के शब्द-रूपों का मिश्रित प्रयोग किया है। मीरा की भाषा तद्भव शब्द-बहुला है। तत्सम शब्दों का उन्होंने बहुत ही कम प्रयोग किया है। रूप-वर्णन या स्तुतिपरक पदों में ही कुछ अधिक तत्सम शब्द दिखाई देते हैं।

क्या आप जानते हैं मीरा के पदों में तीन-चौथाई शब्द तद्भव हैं, शेष तत्सम, देशज और विदेशी शब्द हैं।

विदेशी शब्दों का प्रयोग भी मीरा की भाषा में कबीर, सूर आदि कवियों को अपेक्षा कम हुआ है। साथ ही मीरा ने विदेशी शब्दों को हिन्दी की ध्वनियाँ प्रदान करके ही अपनाया है, तत्सम रूप में नहीं–**'अरजी', 'कीमत', 'जौहरी'** आदि अरबी शब्द तथा **दरद, नेवाज, हौज** आदि फारसी शब्द ऐसे ही हैं। मीरा की भाषा में कुछ प्राचीन शब्द-प्रयोगों के सिवाय सर्वत्र सरलता, स्पष्टता पाई जाती है। माधुर्य और प्रसाद गुण उनकी भाषा-शैली की विशेषता है। सूर, नन्ददास आदि अन्य कृष्ण कवियों-जैसा माधुर्य उनकी भाषा में नहीं है। सच तो यह है कि मीरा की पदावली में अभिव्यक्ति की अपेक्षा अनुभूति का ही उत्कर्ष पाया जाता है। भाव-रसमयता के कारण उनके पदों में स्वतः ही माधुर्य छा गया है। काश! अनुभूति की इस प्रगाढ़ता के साथ मीरा के पास सूर, नन्ददास-जैसी कलात्मक अभिव्यक्ति भी होती तो सोने पर सुहागे की बात रहती और तब मीरा की पदावली सूर, नन्ददास आदि सभी कृष्ण कवियों से श्रेष्ठ मानी जाती। मीरा के पदों में आत्माभिव्यक्ति, भावप्रवणता, भावान्विंति और संक्षिप्तता का गुण तो विद्यापति, सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, हितहरिवंश आदि सभी कृष्ण कवियों से खूब बढ़ा-चढ़ा है, पर कोमल-कांत-पदावली, भाषा का माधुर्य, संगीतात्मकता, भाषा की कलात्मकता में वे प्रायः सबसे पिछड़ी प्रतीत होती हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएं–

1. मीरा ने साधना-परंपरा से प्राप्त प्रतीकों, उपमानों का ही प्रयोग किया है।
2. मीरा की काव्य-भाषा चमत्कारिक एवं रीतिकालीन परंपरा से प्रभावित है।
3. मीरा ने कई लक्षण ग्रंथों की रचना की।
4. मीरा की भाषा राजस्थानी-मिश्रित ब्रज भाषा है।

26.3 सारांश (Summary)

मीरा का काव्य तीव्र अनुभूति का काव्य है। भावानुभूति व्यक्त करना ही मीरा का उद्देश्य था। न भाषा को अलंकृत करने या सजाने-संवारने का उसे ध्यान था, न किसी प्रकार के चमत्कार-प्रदर्शन का ही उसे अवकाश था। फिर भी मीरा की भावमयी अभिव्यक्ति स्वतः ही सशक्त और प्रभावी बन गई है। कहीं-कहीं स्वाभाविक अलंकार-विधान भी

नोट

स्वतः प्रकट हुआ है। सादृश्यमूलक अलंकारों में रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा का ही कुछ प्रयोग दिखाई देता है। मीरा ने साधना-परम्परा से प्राप्त उपमानों और प्रतीकों को ही अपनाया है। विरोधों का चमत्कार भी मीरा ने नहीं दिखाया। कथ्य में स्वाभाविक विरोधाभास कहीं आ गया तो दूसरी बात है। श्लेष, यमक, वक्रोक्ति आदि शब्द-चमत्कार-प्रधान अलंकारों का भी मीरा ने प्रयोग नहीं किया। मीरा की अनलंकृत वाणी में निश्छल भावमयी अभिव्यक्ति की ही विशेषता है। मीरा की भाषा राजस्थानी-मिश्रित ब्रज भाषा है। उन्होंने साहित्यिक ब्रज भाषा के साथ अपनी मातृभाषा पश्चिमी राजस्थानी के शब्द-रूपों का मिश्रित प्रयोग किया है।

26.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **अहात्मक :** विचारात्मक, काल्पनिक
2. **देशज शब्दः** देश में उत्पन्न, बोल-चाल की भाषा से स्वतः उत्पन्न हुआ शब्द।

26.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मीरा की काव्य-भाषा पर प्रकाश डालिए।
2. मीरा की काव्य भाषा पर कई क्षेत्रीय भाषाओं का प्रभाव है। उदाहरण सहित समझाइए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य

26.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मीरा मुक्तावली–*मीराबाई कृत।*
2. मीरा पदावली–*प्रभात प्रकाशन।*
3. मीरा का काव्य–*त्रिपाठी विश्वनाथ, वाणी प्रकाशन (पटना) बिहार।*

नोट

इकाई 27

घनानंद की लेखन कुशलता

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
27.1 भावाभिव्यक्ति
27.2 कलापक्ष
27.3 सारांश (Summary)
27.4 शब्दकोश (Keywords)
27.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
27.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- घनानंद कवित्त की काव्यगत विशेषताएं समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

काव्य के लिये अनिवार्य तत्व क्या है, इस पर भारतीय काव्यशास्त्र में दो काल तक विवाद चलता रहा। विवाद में विशेषताओं के उद्घाटन की क्षमता एवं संभावना बहुत अधिक होती है। संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य के शाश्वत एवं सहज मान्य तत्वों के विषयों में जो विवाद चले उससे भी काव्य के स्वरूप का सुन्दर एवं सांगोपांग उद्घाटन हुआ। 'भामह' एवं 'दण्डी' तथा 'रुद्रट' इत्यादि आचार्यों ने अलकारों को काव्य का मूल सौन्दर्य माना। दूसरी ओर 'आनन्दवर्धन' ने दर्शन को तथा 'विश्वनाथ' इत्यादि ने रस को महत्त्व दिया। समन्वय दृष्टि से सम्पन्न आचार्यों में मम्मट एवं जगन्नाथ ने दोनों रसों के अनिवार्य महत्त्व को स्वीकार किया।

काव्य-व्यापार, रचना एवं मूल्यांकन-व्याख्यान, दोनों दृष्टियों से समन्वय सिद्ध व्यापार हैं। यह समन्वय स्थूल अर्थ में भाव एवं वाणी का है तथा सूक्ष्म अर्थ में भाव एवं अभिव्यक्ति का। अभिव्यंजना के स्तर पर कविता अनेक कलाओं का समन्वय है, प्रेषणीयता के स्तर पर वह कवि के हृदय एवं श्रोता अथवा पाठक-समुदाय के हृदय का समन्वय है। जिस प्रकार रस सारतत्व है, उसी प्रकार काव्य में भी भाव की अमूर्त्त संज्ञा का शब्द के मूर्त्तरूप से समन्वय-स्तर घटित होता है। जो कवि इसे जितनी सीमा तक साध सकता है, वह उतना ही महान् है, उसकी रचना उतनी ही स्थायी होती है। भाव की सूक्ष्मता एवं शब्द की स्थूलता को जो जितना अधिक आनुपातिक मिश्रण में संयुक्त कर पाता है, वह उतना ही बड़ा-साधक है।

भावपक्ष का स्वरूप

भाव, जो काव्य में रसरूप है, काव्य का प्राण है। भाव सदा अमूर्त है, निराकार है। क्रोचे इत्यादि दार्शनिकों ने भाव के स्फुरण को ही अभिव्यक्ति माना है। वस्तुतः वह दार्शनिक सैद्धान्तिकता का ही रूप है अन्यथा भाव के बिना शब्द की कोई संज्ञा नहीं। गीत ही सुन्दर है, क्योंकि वह उपभोग्य है, ग्राह्य है। अतः अपरिचय के अनस्तित्व में खो जाता है, उसकी कोई संज्ञा नहीं। भावलोक शब्द-रहित स्पन्दन सरिता के उन प्रवाहों के रूप में है जो सतह के नीचे

नोट

ही नीचे बहते रहते हैं, ऊर्मि का वेग लेकर ऊपर नहीं आ पाते। अमूर्त्त, नीरव, स्वरहीन भाव को मुखर कर देना, शब्द रूप दे देना, बाह्य आकार दे देना कवि-कर्म का मुख्य साध्य एवं देय है।

कलापक्ष का स्वरूप

शब्द, अभिव्यक्ति, अभिव्यंजना, बाह्य हैं स्थूल हैं। वे भाव का व्यक्तित्व हैं, उनसे ही भाव चलता-फिरता है हँसता-रोता है, मचलता-उछलता है। अभिव्यक्ति जीवन का पर्याय है, मृत्यु अनभिव्यक्ति है, जीवन, जन्म अभिव्यक्ति। शब्द, भाव की अभिव्यक्ति का साधन है, शब्द-काव्य का मुख है अथवा उसका आकृति मूल्य (Face value) है। शब्द में भाव मूर्त्त होता है, ढल कर रूप-ग्रहण करता है तथा अपनी काव्य-यात्रा पर निकल पड़ता है। शब्द ऐसी लाठी है जिसका प्रयोग समर्थ भाव अपनी क्षमता के रूप में और पंगु भाव अपने सहारे के रूप में करता है। शब्द काव्य का शरीर है।

शब्द और अर्थ अर्थात् भाव का समन्वय ही सुन्दर काव्य है। कालिदास ने 'वागार्थाविव' एवं तुलसी ने 'गिरा अरथ जलबीचि सम' कहकर शब्द अर्थ के अभेद को सूत्रबद्ध किया है। निरर्थक शब्द असंभव है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि अर्थ का निरपेक्ष अस्तित्व असंभव है। अर्थ शब्द-रूप ही हो सकता है और शब्द अनिवार्यतया अर्थ-संपृक्त। दोनों के समन्वय की व्यावहारिक चेष्टा ही काव्य है। यह समन्वय ही काव्य का साध्य है। यही इसके स्वरूप का निर्धारक है।

27.1 भावाभिव्यक्ति

'प्रेम सदा अति ऊंचो लहै,
सु कहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनिकै सबके मन लालच दौरे,
पै बौरे लखैं सब बुद्धि चकी।
जग की कविताई के धोखे रहै,
ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी।
समुझै कविता घन आनन्द की
हिय-आँखन नेह की पीर तकी'

घनानन्द की भावाभिव्यक्ति अनूठी थी। भाव एवं अभिव्यंजना का संयोग घनानन्द में अत्यन्त प्रखर एवं मुखर है–साथ ही अभिव्यक्ति में आन्तरिक भाव की टीस उभर आई है। कविता तथ्य का केवल कथन नहीं करती बल्कि सुन्दर कथन करती है–वह उक्ति का शृंगार करती है। घनानन्द में भाव की समृद्धि ही काव्य के कलापक्ष की विधायिका है, उनकी बात 'प्रेम' से छकी हुई है। 'जग की कविताई' से, रीतिकाल की काव्य पद्धति से वह मूलतया एवं प्रवृत्त्या भिन्न है। रीतिकाल में काव्य एक निश्चित कलात्मक व्यापार मात्र रह गया था, वह कला की स्थूलता तक उतर आया था। विधि-विधानों में काव्य की धारा अवरुद्ध हो गई थी, उसका सरल एवं ऋजु प्रवाह एक स्थल पर बद्ध हो गया था। कुछ निर्धारित उपकरणों को जुटा देने से ही काव्य का रूप पूरा हो जाता था। कवि रीतिकाल के जनजीवन में एक बौद्धिक विकार के प्रतिनिधि बन गये थे– काव्य बौद्धिक ह्रास की प्रतीक परम्परावादिता से ग्रसित हो गया था। ठाकुर ने रीतिकालीन कवियों की काव्य चेष्टा का सुन्दर परिचय इस पद में दिया है–

सीख लीन्हो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीख लीनो यज औ प्रताप को कहानो है।
सीख लीनो कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामणि
सीख लीन्हो मेरू और कुबेर गिरि आनो है।

नोट

ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहीं भूलि कहूं बाँधियत बानो है।
डेल सों बनाय मेलत सभा के बीच
लोगन कबित्त कीबौ खेल करि जानो है।

काव्य-व्यापार की इस कृतज्ञता की पृष्ठभूमि पर घनानन्द की रचना कविता का सच्चा, अनलंकृत, शुद्ध रूप है। उनकी भावाभिव्यक्ति में कल्पना के विधान के स्थान पर अनुभूति की समतलता है। उन्होंने भाव की कल्पना नहीं की, वरन् अनुभूति के पश्चात् उसकी पुनर्काव्यानुभूति की है। इस प्रकार जिसे अभिव्यक्ति की ईमानदारी कहा जाता है, वह घनानन्द की रचना में पूरी तरह विद्यमान है। संयोग-पक्ष की कविता रीतिकाल में बड़े उत्साह के साथ तथा बड़ी प्रचुरता से रची गई। रीतिकाल के कवि का सिद्धांत ही नहीं, व्यवहार भी विलासिता का था। अतः शृंगार के नाम पर उन्होंने केवल संयोग का चित्रण किया है, और संयोग के नाम पर अधिकतर रति क्रीड़ाओं का। इन रचनाओं में ऐन्द्रिय-उत्तेजना की प्रबलता है रस-संचार की क्षमता नहीं। किन्तु घनानन्द की रचना में शृंगार का विलास भी ऐन्द्रिय-उत्तेजना के शमन द्वारा मादक अनुभूति का रूप ग्रहण कर गई है। रतिश्रम का यह वर्णन द्रष्टव्य है, जिसमें अनुभावों का वर्णन भी है और नायिका की मनःस्थिति का भी–

"सुख-स्वेद-कनी मुखचंद बनी,
विथुरी अलकावलि भाँति भली।
मद-जोवन, रूप छकीं अंखियाँ,
अवलोकनि आरस-रंग-रली।
घन आनन्द ओपियत ऊँचे उरोजनि,
चोज मनोज के ओज दली।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली,
सुजान मनोरथ-बेलि फली।"

नायिका की मनोकामना की पूर्ति के लिए 'मनोरथ-बेलि-फली' शब्द कितने व्यंजक हैं। इति श्रांति के परम्परागत उपकरणों के साथ अन्तिम पंक्ति के पहले आये भाग की शब्द-संगति भाव को जैसे स्वर में साकार कर रही हैं।

वियोग घनानन्द का काव्य साधन है– उनकी कविता अपने प्राकृत रूप में वियोगमयी है। संयोग-पक्ष की अभिव्यक्ति सरस है, उसके लिए काव्य क्षमता के अतिरेक की आवश्यकता नहीं किन्तु वियोग, जैसा कि आचार्यों ने संकेत किया है, कवि-हृदय के मार्मिक पक्ष के उद्घाटन की अपेक्षा करता है। घनानंद के वियोग-वर्णन में जो अनूठापन है, संयोग वर्णन नहीं, इतना निश्चित है। 'हिय आँखिन नेह की पीर तकी' वाली विशेषता का वास्तविक स्वरूप वियोग-वर्णन में ही स्पष्ट होता है।

घनानन्द के वियोग-वर्णन का महत्त्व एक और दृष्टि से भी है। रीति काल की रीतिबद्ध कविता ने वियोग-वर्णन में 'आह' से काम लिया हैं। आह एवं अतिशयोक्ति कल्पना के गुण हैं किन्तु एक सीमा तक। कल्पना न तो अति सूक्ष्म हो सकती है और न अति स्थूल। पहली स्थिति में वह जीवन क्षेत्र एवं वास्तविकता के साथ अपने क्षीण सम्पर्क को बिल्कुल तोड़ देती है और दूसरी स्थिति में जगत की स्थूलता उस पर आवश्यकता से अधिक हावी हो जाती है जिससे रोमानी सौन्दर्य के तत्त्व को क्षति पहुंचती है। वियोग-वर्णन की बनावटी प्रवृत्ति कलात्मक संस्कार के अभाव में और अधिक खटकती है। 'छाती से छुवाय दिया बाती क्यों न बार लै' जैसे कथनों में भावाभिव्यक्ति अपनी विडम्बना में लजाती, छिपती फिरती है।

टास्क रीतिमुक्त काव्य–धारा के कुछ प्रमुख कवियों के नाम बताइए।

नोट

घनानन्द के वियोग-वर्णन का महत्त्व इस वातावरण-परिपार्श्व में दर्शनीय है। वस्तुतः अन्तर केवल वर्णन का नहीं, अन्तर काव्य के मूल में वर्तमान भाव की सच्चाई का है। उक्ति चुराई जा सकती है, अनुभूति नहीं। अतः घनानन्द की कविता प्रत्यक्षानुभूति का रूप है, कल्पना का आधार नहीं। अतः भावाभिव्यक्ति इतनी मार्मिक है कि वे अपने प्रिय को उसकी उपेक्षा के लिए उपालम्भ देते हैं–

"कितकौं ढरिगौ वह ढार अहो जिहि मोतन आँखिन ढोरत हे।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सों आनि निहोरत हे।
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनौं तब यों सब भाँतिनि भोरत हे।
मन माँहि जो तोरन ही की हुती विसवासी सनेह क्यों जोरत हे ॥"

तो हम किसी खंडिता नायिका की विशेषताओं एवं लक्षणों को आंकने में उलझे नहीं रहते वरन् हमारी दृष्टि सीधी घनानन्द के अन्तःकरण के भाव पर जा टिकती है। पाठक एवं कवि के बीच यहाँ कोई व्यवधान नहीं है। इसी प्रकार निम्नोद्धृत पद में वियोग के उपकरण परम्परागत हैं किन्तु 'सुजान' शब्द की मार्मिकता को प्रकाशित करके कवि ने भाव-मार्मिकता उत्पन्न कर दी है–

"घन आनन्द जीवन मूल सुजान की, कौधन हूँ न कहूँ दरसै।
सुन जानिये धौं कित छाय रहै, इत चातिक प्रान तपे बरसै।
दिन पावस तौ इन थ्यावस हो न सु क्यों करि ये अब सो परसै।
बदरा बरसै रितु में घिरि कै नित ही अखियाँ उघरी बरसै॥"

भाव को, उसके अभिव्यक्ति रूप में अलंकृत करने के अनेक साधन हैं, जिनमें मुख्यतया अलंकार, छन्द, वक्रकथन इत्यादि हुआ करते हैं। किन्तु भाव की अन्तर्निहित मार्मिकता उसे प्रभावशीलता से सर्वाधिक संयुक्त करती है, इसमें सन्देह नहीं। रीतिकाल के परम्परागत भाव की अभिव्यक्ति में घनानन्द ने कितना सच्चा सौन्दर्य भरा है, इसका उदाहरण यह पद है–

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारयै।
त्यों इन आँखिन बानि अनौखी, अघानि कहूँ नहीं आनि तिहारियै।
एक ही जीव हुतो सुतो वार्‌यौ, सुजान सुकोच औ सोच सहारिये।
रोकी रहै न दहै घन आनंद, बावरी रीझ के हाथिन हारियै॥

केवल इतना ही नहीं कि सौन्दर्य में नया, नित्य नया रूप धारण करने की क्षमता है, विपत्ति तो दूसरी ओर भी है– आँखों का व्यसन भी अनोखा है। सौन्दर्य में आकर्षण है तो आँखों में आकर्षित होने की अनुपम क्षमता है–इसी से तो सौन्दर्य का मूल्यांकन संभव है। रीति बावरी है, यह कहना भी कितना सार्थक है। बावरी रीझ सकती है तो केवल प्रिय के रूप पर ही, अन्य किसी स्थल पर नहीं। बावरी रीझ अपने लक्ष्य तक पहुंचने में भूल नहीं करती। घनानन्द की रचना के ऐसे अंश ही उनकी भावाभिव्यक्ति को विशिष्ट एवं वैयक्तिक सिद्ध करते हैं।

यह सत्य है कि घनानन्द की रचना का अभिव्यंजना-पक्ष अधिकतर विरोधाभासी चमत्कार से सज्जित है किन्तु ध्यान देना चाहिए कि वह विरोध भी सचेष्ट लाया हुआ विरोध नहीं, कथन एवं करने वाले की स्वाभाविक अन्तरावृत्ति के परिणामस्वरूप घटित विरोध है। उदाहरणतया भक्तिपरक के इस पद में शब्दों में आभासित होने वाला विरोध भाव ही आवश्यक अंग है, चमत्कार वृत्ति का फल नहीं–

'पहचानै हरि कौन, मो से अनपहचान कों
त्यौं पुकार मधि-मौन, कृपा-कान मधिनैन ज्यों।'

इसका भावार्थ श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में, 'जिस प्रकार आपके नेत्रों के बीच कृपारूपी कान छिपे पड़े हैं, आप देखकर ही सुन लेते हैं, कृपा करते हैं उसी प्रकार मेरे मौन से ही पुकार छिपी हुई है। मेरी मौन चेष्टा में व्यक्त होने वाली पुकार को आपकी कृपा के कान सुन लेते हैं, जो आपके नेत्रों में ही लगे हैं। आप मेरी दशा (मौन पुकार) नेत्रों से देखकर ही समझ लेते और कृपा करते हैं।"

नोट

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यदि बिहारी में भावाभिव्यक्ति को अत्यधिक अलंकृत करने में, मतिराम सहज, रमणीय रूप देने में और पद्माकर रंग-सज्जित करने में उसकी सफलता मानते हैं तो घनानन्द की भावाभिव्यक्ति अनुभूति की सच्चाई यथा काव्य रूप में कह देने में ही गर्व अनुभव करती है। बनावट और अलंकरण व चटकीले आवरण को हटाकर घनानन्द ने कविता कामिनी के स्वच्छंद परिधान का परिचय दिया है।

27.2 कलापक्ष

अलंकार विधान

आधुनिक युग से पूर्व अलंकार ही काव्य का प्रमुख सौन्दर्य माने जाते रहे हैं। संस्कृत काव्य-शास्त्र में अलंकार को काव्य का साध्य घोषित करने वाले आचार्यों की एक लम्बी परम्परा है। भामह, दंडी जैसे आलंकारिकों के हाथों कविता का लक्षण ही अलंकार हो गया था। जिन आचार्यों ने अलंकार से दूसरे किसी अन्य तत्त्व को काव्य का विषय माना, उन्होंने भी अलंकार को काव्य की एक महत्त्वपूर्ण विशेषण के रूप में अन्तर्भूत किया। रसवादी आचार्य विश्वनाथ एवं ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्द्धन की स्थिति यही है।

रीतिकाल की काव्य-दृष्टि में अलंकार के संबंध का परिचय यहाँ आवश्यक है। इस काल के सामन्य जीव में तड़क-भड़क, चटक-मटक, रंगीनी, जीवन-चित्र की रेखाओं के ऊपरी रंग अत्यन्त चटकीले, आकर्षक हैं। इस काल की कला में भी यही हास्यमयी प्रवृत्ति है। चित्रकला में शृंगार-विषयों की प्रमुखता, रेखाओं की अपेक्षा रंगों की गहराई, प्राकृतिक जीवन के स्थान पर नगर-जीवन के वैभव के दृश्य इत्यादि विशेषताएँ मूल्यों की क्षति का परिचय देती हैं। कला के संस्कार शताब्दियों में ही निर्मित होते हैं अतः रीकिाल की कला शताब्दियों से संचित शृंगार एवं विलासिता का उन्मुक्त प्रकाशन है। कविता में आडम्बर का रूप अतिशया सजग काव्य-चेतना, काव्य व्यापार की कृत्रिमता एवं काव्य के बाह्य साधनों की प्रबलता ने लिया। बाह्य साधनों में अलंकार ही प्रमुख हैं।

संस्कृत-काव्य-शास्त्र की रचना के आरम्भिक काल में अलंकारियों की प्रबलता थी, रीतिकाल में भी केशव आरम्भिक आचार्य अलंकारवाद का समर्थन करते प्रतीत होते हैं। रीतिकाल के अधिकांश कवियों का काव्यगत अलंकार के प्रति एक ऐसे मोह का परिचायक है जो इन कवियों के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है।

स्वच्छन्द कवियों की प्रवृत्ति भिन्न एवं स्वस्थ थी। घनानंद ने अपनी रचना-प्रक्रिया का परिचय देते हुए कहा था–

'लोग हैं लागि कवित्त बनावत
मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'

लगकर कविता बनाना ही काव्य को अलंकृत करने में अतिरिक्त रुचि रखता है और कविता के द्वारा बना दिया जाना ही 'स्वान्तः सुखाय' कविता है।

घनानन्द के काव्य में अलंकारों का सचेष्ट प्रयत्न किसी भी स्थल पर नहीं है, यह मानना सम्मत होगा। विरोध एवं विरोधाभास का आग्रह उपलब्ध होता है, वह मुख्यतया एवं मूलतया भाव का अभिन्न अंग है, इससे पृथक् कोई अन्य तत्व नहीं। अतः वह कला सजगता का बाह्य प्रयास न होकर अभिव्यक्ति की सहज चेष्टा है। घनानन्द ने सिद्धान्ततया काव्य के असंस्कृत, सरल-स्वरूप के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है–

'अलबेली सरूप की रासि,
सुजान विराजति सादे सुभाइनि।'

आभूषण शृंगार के सहायक न होकर विदूषण से हैं–

'छोरि छोरि घरे जे जे भूषन विदूषण से,
तहँ तहँ लगि लोमी मन गयो गसि है।'

सौन्दर्य घनानन्द के लिए भोक्ता की दृष्टि में ही है– पारखी दृष्टि सौंदर्य का संधान स्वमेव कर लेती है। 'ब्रजनाथ' ने 'सुन्दरतानि के भेद को जानै' वाली बात उचित ही कही है। अतः अलंकारों के प्रति किसी प्रकार के अस्वाभाविक मोह से युक्त न होने पर भी घनानन्द की रचना में सुन्दरता के विधायक प्रत्यक्ष अलंकार आ गये हैं। जो सौंदर्य व्यक्तित्व का सहज गुण है जिसका प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार अलंकरण एक निश्चित सीमा के भीतर काव्य का चिरन्तन गुण है, उपर्युक्त उद्धरण में 'सरूप की रासि' शब्द इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं।

नोट

(क) शब्दालंकार

शब्दालंकार चमत्कारमूलक अलंकार है, अतः इनका प्रयोग घनानन्द की रचना में, अनुप्रास के अतिरिक्त नाममात्र को हुआ है।

उदाहरणतः

क. यमक– **'टारे टरै नहीं तारे कहूं सु**
लगे मनमोहन मोह के तारे।
सांझ तें भोर लों तारनि ताकियो
तारनि सों अकतार न टारति।'

ख. श्लेष–

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला,
मन लेहूं पै देहु छटाँक नहीं।'

ग. अनुप्रास–अनुप्रास का प्रयोग सार्वसिद्ध हैं कुछ प्रयोग–

'एरी बोर मौन तेरो सब ओर गौन'
\+ + +
कंत रमैं अंतर मैं सु लहै नहिं क्यों सुख रासि निरन्तर
\+ + +
'सूझै नहिं सूरझि उरझ नेह गुरझनि'

(ख) अर्थालंकार

क. उपमा– उपमा का प्रयोग प्रायः सभी स्थलों पर है। जैसे–

'नेह भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड़यों रहै।'
'तब हार पहार से लागत हैं, अब आनि के बीच पहार परे।'

ख. रूपक–

निरंग

'मति दौरि थकी, न लहै ठिक ठौर,
अमोही के मोह-मिठास ठगी।'

× × ×

'बिरह-समीर की झकोरनि अधीर।

ख. साँग–सांग रूपक का प्रयोग घनानन्द के छंदों में प्रचुर मात्रा में हुआ है। यह उनका प्रिय अलंकार है। कुछ अत्यन्त भावसिद्ध उदाहरण इस प्रकार हैं–

'आसा-गुन बांधि कै भरोसो सिल धरि छाती
पूरे पन-सिंधु में न बूड़त सकाय हैं।'

घन आनन्द जीवन मूल सुजान की,
कौंध न हूं न कहूं दरसैं।
सुन जानिये धौं कित छाय रहे,
दृग-चातिक प्रान तपै तरसै।
बिन पावस तो इन थ्यावस हो न,

नोट

सु क्यों करि ये अब सौं परसैं!
बदरा बरसैं रितु में घिरि कै,
नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं।

साँग रूपक का निर्वाह काव्य-कौशल की पुष्टता की अपेक्षा करता है। घनानन्द ने प्रायः वर्षा, बादल, घटा, जल इत्यादि से सम्बन्धित रूपकों की योजना की है, क्योंकि इन उपकरणों का प्रयोग घनआनन्द शब्द की संभावनाओं को पूर्ण रूप से प्रकट करने में समर्थ हैं।

ग. अपह्नुति

जारत अंग अनंग की आँचनि,
जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई।

घ. व्यतिरेक

हीन भये जलमीन अधीन कहा कहु मो अकुलानि समाने।
नीर सनेही सों लय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यों समझै जड़ मीत के प्रान परे को प्रमाने।
या मन की जु दसा घन आनंद जीव की जीवनि जान ही जानै।

अधिक बधिक ते सुजान, रीति रावरी हैं,
कपट-चुगौं दे फिरि निपट करौ बुरी।
गुननि पकरि लै, निपांख करि छोरि देहु,
मरहि न जियै, महा-विषम दया-छुरी।
हौं न जानौं, कौन धौं, हो या मैं सिद्ध स्वारथ की,
लखी क्यों परति प्यारे अन्तर कथा बुरी।
कैसे आसा-द्रुम पै बसेरौ लहै प्रान-खग,
बनक-निकाई घन आनन्द नई जुरी।'

ङ. प्रतीप–प्रतीप अलंकार का प्रयोग रीतिकालीन कवियों को बहुत प्रिय रहा है। कारण कि इस अलंकार में चमत्कार एवं ऊहा के लिए पर्याप्त अवकाश है। घनानन्द ने प्रतीप का प्रयोग बहुत कम किया है–इसका कारण यह है कि प्रतीप की चमत्कार कविता का अन्तर्भाव विरोधाभास में ही हो गया है। प्रतीप के दो उदाहरण दृष्टव्य हैं–

'विकच नलिन लखै सकुचि मलिन होति,
ऐसी कछु आँखिन अनोखों उरझनि है।'

'तेरे आगे चन्द्रमा कलक सो लगत है।'

च. यथासंख्य

बिछुरे मिले मीन पंतग दसा कह्या ओ जिय की गति को परसै।

छ. परिवृत्ति

घन आनन्द प्यारे सुजान सुनो,
यहाँ एक तें दूसरो आंक नहीं,
तुम कौन धौं पाटी पढ़ें हो लला,
मनु लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

ज. असंगति

जान प्रवीन के हाथ को बीन है मोचित राग भर्‌यों नित राजै।

नोट

नैनन में लागै जाय, जागै सु करेजे बीच
या बस ह्वै जीव धीर होत लोटपोट है।
रोम रोम पूरि पीर, व्याकुल सरीर महा,
धूमै मति गति-आसै प्यास की न टोट है।
चलत सजोवन-सुजान-दृग-हाथन तैं।
प्यारी अनियारी रुचि रखवारी ओट है।
जब जब आवै तब तब अति मन भावै,
अहा कहा विषम कटाक्ष सर चोट है।

झ. अतिशयोक्ति

रोम रोम रसना ह्वै लहै जो गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी निबरै न मैन आरतै।

ञ. संदेह

सीमा सुमेरु की संधि तटी,
किधौं मान मवास गढ़ास की घाटी।
कै रसराज प्रवाह को मारग,
बेनी बिहार सों यों दृग दाटी।
काम कलाधर ओपि दई
मनौं प्रीतम प्यार पढ़ावन पाटी।
जान की पीठि लखैं घन आनंद
आनन आन तै होति उचाटी।

जानि परै नहिं जान, तुम्हें
लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यो है
सोचति ही पचियै घन आनन्द
हेत पग्यौ किधौं प्रेम लग्यो है।

ट. प्रतिवस्तुपमा

मही दूध सम गनै हंस बक भेद न जानै
कोकिल काक न ज्ञान कांचि मनि एक प्रमानै।
चंदन ढाक समान राँग रूपौ सम तोले,
बिन विवेक गुन दोष मूढ़ ब्यौरि न बोलै।
प्रेम नेम हित चतुराई जे न विदारत नेकु मन,
सपनेहु विलंबियैं जिन तिन ढिग आनंदघन।

ठ. विरोधाभास–घनानन्द की रचना में विरोधाभास अलंकार का प्रयोग सर्वाधिक मात्रा में हुआ है। घनानन्द का सर्वप्रिय अलंकार यही है।

घनानन्द का अलंकार प्रयोग रीतिबद्ध कवियों की विचारग्रस्त परम्परा के विरुद्ध स्पष्टतया ही व्यक्तिगत एवं निजी है। उसके विषय में कुछ तथ्य स्पष्ट होते हैं।

1. घनानन्द ने साग्रह अलंकारों का प्रयोग नहीं किया। उनका काव्य सिद्धान्त सरल एवं सहज अभिव्यक्ति के पक्ष में है।

नोट

2. घनानन्द ने जिन अलंकारों का प्रयोग किया है, वे प्रायः काव्य की सामान्य अभिव्यक्तिगत आवश्यकता हैं, चमत्कार-वृत्ति का परिक्रम नहीं। इसलिए माना जा सकता है कि घनानन्द का मुख्य प्रयोजन भाव की अभिव्यक्ति है, उसका अलंकरण नहीं।

3. रीतिकालीन काव्य-वातावरण के प्रभाव से कुछ अलंकार आ गये हैं जो अस्वाभाविक प्रतीत हो सकते हैं किन्तु सामान्य भावाभिव्यक्ति एवं अलंकरण का उनकी रचना में सुष्ठु समन्वय है।

4. चमत्कारी प्रवृत्ति का परिचय देने वाला एक ही अलंकार है– विरोधाभास। घनानन्द ने इस अलंकार का प्रयोग एक काव्य-शैली के रूप में किया है। 'मौन के घूँघट में दुरि बैठी' बात के लिए विरोधाभासाश्रित शैली सफल हो सकती थी, इसमें संदेह नहीं।

क्या आप जानते हैं

घनानंद के काव्य में अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह सचेष्ट अलंकार प्रयोजन नहीं है। छंदों में अलंकार अनायास प्रयुक्त हुए हैं, जो काव्य को न केवल बोझिल होने से मुक्त रखते हैं अपितु काव्य के सौंदर्य में योग देते हैं।

उक्ति की वक्रता एवं विरोधाभास

उक्ति की वक्रता कुछ अर्थों में काव्य का प्रमुख तत्त्व है, सामान्य कथन उक्ति है और काव्य वक्र-उक्ति है। कविता जो कहती है, एक अदा से कहती है, एक बानगी से कहती है। काव्य में वक्र-उक्ति के महत्त्व को स्वीकृति का प्रमाण एक ओर आचार्य कुन्तक का वक्रोक्तिवाद है, जिसके अनुसार काव्य के सभी प्रकार एवं भेद किसी न किसी प्रकार की वक्रता के अन्तर्गत समाविष्ट हैं तथा दूसरी ओर सभी प्रकार के काव्यशास्त्रियों के द्वारा वक्रता के तत्व का प्रतिपादन है।

(1) उक्तिवैचित्र्य

काव्य में वक्रता उक्ति का स्वरूप कई प्रकार का हो सकता है। उसके कई मार्ग एवं साधन हो सकते हैं। अलंकार-प्रयोग अपने आप में एक वक्रता हैं, इसी प्रकार शैली का पैनापन, भाव का अनोखापन, अभिव्यक्ति की कसावट, कल्पना का रम्य प्रयोग सभी वक्रता के अन्तर्गत आ सकते हैं। किन्तु प्रमुख है तथा वक्रता के दो ही स्वरूप है–वाग्वैदग्ध्य एवं उक्तिवैचित्र्य।

वाग्वैदग्ध्य वाणी का चमत्कार विलास है। जहां कथन में देशकाल, स्वभाव प्रकृति इत्यादि के अनुसार किसी विशेष प्रकार का सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है एवं उक्ति मार्मिक हो उठती है, वहाँ वाग्वैदग्ध्य ही समझना चाहिए। वाणी जब अपनी सहजता की परिधि से बाहर उछलकर कुलाँचें भरने लगती है तब विदग्धता का जन्म होता है। स्पष्ट है कि विदग्धता के लिये कथन की एक विशेष मनःस्थिति की अपेक्षा है तथा साथ ही तथ्य की प्रेषणीयता के हेतु एक चित्रित परिवेश की। विदग्ध उक्ति ऐसे बाण के समान है जो पाठक के हृदय पर चोट किये बिना मानती ही नहीं, बिहारी के दोहों के लिये 'नाविक के तीर' शब्दों का प्रयोग सर्वथा सार्थक है। स्वभावोक्ति को सुनकर श्रोता 'वाह वाह' करता है तो विदग्ध उक्ति को सुनकर 'हाय' कर उठ है– काव्य के प्रभाव विस्तार में दोनों स्थितियों को उद्‌बुद्ध करने की क्षमता है।

उक्ति-वैचित्र्य में वक्रता का स्वरूप थोड़े से अन्तर के साथ प्रायः समान ही रहता है, जहाँ एक नये परिवेश में, नई विचित्रता में सम्पन्न होकर आये वहाँ उक्ति-वैचित्र्य समझना चाहिए। वाग्वैदग्ध्य के लिए हृदय की मार्मिकता की आवश्यकता अधिक है किन्तु उक्तिवैचित्र्य के लिए कथन की चातुरी अधिक अपेक्षित है। एक किंचित् भाव सम्मत है, दूसरा कुछ अधिक कला सम्मत। इस प्रकार सूर की गोपियों की ये उक्तियाँ वाग्वैदग्ध्य के अन्तर्गत हैं–

'ऊधो मन नाहिन दस बीस
एक हुतो सो गयौ स्याम संग को आराधे ईश।'

नोट

'निर्गुन कौन देश को वासी।'

और बिहारी में ये दोहे उक्तिवैचित्र्य के अन्तर्गत माने जायेंगे–

(क) अंग अंग नग जगमगत दीपसिखा सी देह।
दिया बढ़ोयेहू रहैं बड़ी उजारौ गेह॥

(ख) झूठे जानि, न संग्रहे, मन मुंह निकसे बैन
या ही तें मानहु किये बातन कौ विधि नैन।

मोटे तौर पर यह भी जा सकता है कि भाव की मार्मिकता पर आश्रित उक्ति वाग्वैदग्ध है और कथन की मार्मिकता पर आश्रित अलंकार इत्यादि के द्वारा संयोजित उक्ति उक्तिवैचित्र्य है।

घनानन्द की रचना में दोनों का स्वरूप उपलब्ध होता है, यद्यपि वाक् वैदग्ध की प्रबलता है इसमें संदेह नहीं। घनानन्द में कलात्मक चमत्कार प्रायः सर्वत्र भाव-समन्वित ही है, अतः केवल वाक्चातुर्य पर आश्रित उक्ति-वैचित्र्य का स्वरूप बहुत कम उपलब्ध होगा। वाग्वैदग्ध्य का प्रयोग उन्होंने अधिकतर अपने प्रिय के व्यक्तित्व के वर्णन के लिए तथा उसके स्वभाव की विचित्रता एवं कठोरता के लिये उपालम्भ देने हेतु किया है। इसी के सहारे उन्होंने अपनी मनोदशाओं की अभिव्यक्ति भी की है। विरोधाभास का प्रचुर प्रयोग वाग्वैदग्ध्य के ही कारण है। भाव की नितान्त प्रभावशाली मार्मिकता से युक्त वाग्वैदग्ध्य का एक उदाहरण है–

जाहि जीव चाहै सो तहीं पै ताहि दाहै,
वाहि ढूंढत ही मेरी मति गति गई खोय है।
करौं कित दौर, और रहौं तौ लहौं न ठौर,
घर हों उजारि कै बसत बन जोय है।
बनी आनि ऐसी घन आनन्द अनैसी दसा,
जीवौ प्रान प्यारे बिधि जागै गयो सोय है।
जगत हंसत यों जिस मोहि तातैं नैन,
मेरो दुख देखि रोयै फिर कौन रोय है।

घनानन्द ने अधिकतर भाव पर आधृत करके ही विरोधाभास का सौन्दर्य उद्घाटित किया है अतः वाग्वैदग्ध्य का स्वरूप भी उन्हीं स्थलों पर निखरा है। यहां भाव अपनी समग्र रेखाओं में बंक हो उठा है, उसका अंग-अंग अर्थ के प्रकाश से दीप्त हो उठा है। निम्नलिखित पद में विरही के मन की व्याकुलता, अन्तःपीड़ा का कितनी वक्र शैली में वर्णन किया गया है–

आस ही आकास मधि अवधि-गुनै बढ़ाय
चोपनि चढ़ाय दीनो, कीनो खेल सों यहै।
निपट कठोर ये हो ऐचत न आप ओर,
लाड़िले सुजान सों दुहेली दसा को कहै।
अचिर जमई मोहि मोहि घनआनंद यौं,
हाथ साथ लाग्यौ पै समीप न कहूँ लहै।
बिरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह–
नी-भीज्यौ जीब, तऊ गुड़ी लौ उडयौ रहै।

उक्तिवैचित्र्य की कला में घनानन्द निपुण थे। उन्होंने शब्द पर आश्रित करके अनेक उक्तियां ऐसी कही हैं जो अपने प्रभाव में मार्मिक एवं टीस उपजाने वाली हैं। निम्नलिखित पद में पहली तीन पंक्तियों में जैसे कवि ने अपने

नोट

उपालंम्भ कथन की भूमिका का निर्माण किया है और अंकित पंक्ति में पूर्ण आवेग एवं वैचित्र्य से संजो करके कथन को कस दिया है–

अति सूधो सनेह को मारग है।
जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहां सांचे चलैं तजि आपुनपौ।
झिझकै कपटी जे निसांक नहीं।
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनो,
यहाँ एक तें दूसरो आंक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला,
मन लेहु पै देहु छटाकं नहीं।

इस पद में भाव की सहजता का तथा कथन की वक्रता का सुन्दर मेल है। लक्षण के आधार पर इस कथन की वक्रता भी दर्शनीय है–

'कित को ढरिगौ वह ढार अहै, जिहि मौ तन आँखिन ढोरत है।
अरसानि गही वह बानि कछु सरसनि सो आनि निहोरत है।'

कहीं-कहीं वैचित्र्य सामान्य चमत्कार पर भी आश्रित है यथा–

हौ घन आनन्द जीवन मूल,
दई! कित प्यासनि मारत मोही।

(2) विरोधाभास

दो विरोधी पदार्थों का संयोग एक साथ प्रदर्शित कर देना ही विरोधाभास अलंकार है। भूषण के अनुसार जहाँ जाति, नाम, गुण और क्रिया के द्वारा उनके संयोग से परस्पर विरोधी काम होता है, तब वहाँ 'विरोध' अलंकार होता है।' विरोध और विरोधाभास को कुछ आचार्यों ने (यहाँ भूषण ने) भिन्न माना है जबकि वस्तुस्थिति यह है कि वे एक ही हैं। उन्हें भिन्न मानने की सबसे बड़ी बाधा यही है कि 'विरोध' में वास्तविक विरोध का स्थान नहीं। यदि ऐसा हो तो आलंकारिक चमत्कार कैसा?

विरोधाभास अलंकार अतिशय चमत्काराश्रित है। साथ ही यह काव्य के लिए नितान्त उपयुक्त है। सत्य तो यह है कि विरोधाभास की जड़ें मानव-जीवन में बड़ी गहरी हैं। मानव-जीवन मनोविज्ञान के अनुसार एक सम्मिश्रण है– विरोधों का सम्मिश्रण। मानव का व्यक्तित्व विरोध के अनेक रूपों से भरा है– हममें से हर एक में कई व्यक्तित्व झलकते हैं, हमारे अन्तर एवं बाह्य व्यक्तित्व में स्पष्ट ही भिन्नता लक्षित होती है। हमारा भाव-भंडार विरोधों के अनेक मुधर रहस्यों को छिपाये हुए है। इस मानव-जीवन का आनन, पंत के अनुसार, चिर 'हास अश्रुमय' है। विरोधों की आभासित सत्ता आवरण से हटाकर भाव के एवं मानव-व्यक्तित्व के निश्छल रूप के दर्शन करना मानव की निरीक्षण शक्ति का मोक्ष है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि अलंकार का व्याख्याता विरोधाभास अलंकार के ऊपरी आभासित होने वाले जाति, नाम, गुण, क्रिया के विरोध को हटाकर विरोध का परिहार करता और काव्य के सच्चे अर्थ का उद्‌घाटन करता है। अतः विरोधाभास व्यापक अर्थ में केवल एक अलंकार ही नहीं है, वह उससे ऊपर एक काव्यशैली, उससे भी ऊपर एक काव्य-सत्य एवं जीवन-सत्य है। विरोधाभास की सूक्ष्म रचना के लिए कवि में पैनी निरीक्षण-शक्ति एवं भिन्न पदार्थों में आभासित विरोध को उभारकर रख देने की क्षमता होनी चाहिए। इस प्रकार विरोधाभास उन अलंकारों में से है जिनकी सत्ता कवि के लिए एक चुनौती है। जो औपम्य की सम रेखाओं की अपेक्षा वैषम्य की विरोधी रेखाओं में अधिक सजते हैं तथा जिनके प्रयोग के लिए केवल कलासिद्ध शैली की ही नहीं, काव्यसिद्ध भावों की भी आवश्यकता पड़ती है।

नोट

घनानंद की रचना में विरोधाभास एकमात्र प्रमुख अलंकार के रूप में आया है। यदि कहा जाये तो घनानन्द का प्रिय एवं प्रमुख अलंकार यही है। उनकी कविता का स्वाभाविक सीधा स्वरूप विरोध में ही मुखर हो पाया है। ब्रजनाथ ने घनानंद की प्रशस्ति में उनके लिए कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण हैं–

(क) भावना-भेद स्वरूप कौन ठानै।'

(ख) 'बिछुरे-मिले प्रीतम सांति न मानें',

घनानन्द के इसी विरोधी स्वभाव को उनके काव्यगत विरोधाभास का मूल माना जा सकता है। 'बिछुरे' मिले प्रीतम सांति न माने की संगति इन पंक्तियों में देखिये–

अनोखी हिलग दैया! बिछुरै तो मिल्यौ चाहै,
मिलैहूं मैं मारे जारै खरक बिछोह की।
कैसे धरौं धीर बीर अति ही असाधि पीर,
जतन ही रोज याहि नीके करिटोह की।
देखे अनदेखें तहीं अटक्यों अनन्दघन,
ऐसी गति कहौ कहा चुंबक औ लोह की।

भाव के क्षेत्र की यही 'दुहेली-दसा' कला के क्षेत्र में कहीं लक्षण, कहीं मुहावरे, कहीं शब्द चातुरी एवं कहीं अलंकार के सहारे विरोधाभास बन बैठी है। घनानंद ने उक्ति के लिये कहा है कि मौन घूँघट में छुपकर बैठी है–उनके सौंदर्य का उद्घाटन घनानन्द ने कई प्रकार से किया है। विरोध का समावेश कई स्थलों पर भाव की समृद्धि से भरा हुआ है–

अतन-जतन ते अनखि अरसानी बीर,
प्यारी पीर-भीर क्यों हूं धीर न धरति हैं,
देखियै असाध दसा अखियां निपेटनि की,
भसमी विथा पै नित लंघनि करति है।

कहीं उसके लिए कवि ने शब्दों के अतीव कलासिद्ध रूप का प्रयोग किया है–

औसर सम्हारौ न हौ अनआइबे के संग,
दूरि देस जाइबे कों प्यारी नियराति है।

कहीं साधारण शब्दों की स्थिति से ही चमत्कार उत्पन्न कर दिया है–

कृपा-कान मधि नैन ज्यौं,
त्यौं पुकार-मधि मौन।

और कहीं उपालम्भ के हेतु, शब्दों का प्रयोग एवं उनकी क्रिया में अपनी भाव-समृद्धि में चमक उठी है–

(क) उजरनि बसत है हमारी अंखियान देखौ,
सुबस सुदेस जहां भावते बसत है।
(ख) झूठ की सचाई छाक्यौं त्यौं हित की कचाई पाक्यौं।
ताके गन मन घन आनन्द कहा गनै।
(ग) चलिबे मधि बैठि रहे हो कहा,
डग द्वै मग धारि के रंग रलै।

इस प्रकार घनानन्द की रचना में विरोधाभास या समावेश के अनेक रूप हैं। वह विविध प्रकार के प्रयोग सौंदर्य एवं परिपक्वता से युक्त है। घनानन्द की रचना में भक्ति, शृंगार विरह की जो त्रिवेणी उपलब्ध होती है वह विरोध से सहारे आगे बढ़ती है, साथ ही उनकी भावना की समृद्धि को काव्य भाव का रूप देकर अभिव्यक्त करने में भी यह विरोध सफल हुआ है।

नोट

नोट्स रीतिकाल के ऐसे युग में जबकि चमत्कार ने कविता को सर्वांगीण ग्रस लिया था, एक चमत्कार-सिद्ध अलंकार को ग्रहण करके भी उसे अन्तर की सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से घनानंद ने उद्घाटित किया।

3. चित्रात्मकता एवं लक्षण-बहुलता

चित्रक्षमता प्रत्येक समर्थ कवि के लिए सामर्थ्यगत अनिवार्यताओं में से है। कविता, जैसा कि दिनकर जी ने कहा है, बल्कि कहती नहीं, वह चित्र देती है। कविता वर्णन करती है ऐसा वर्णन जो नेत्रों के सम्मुख एक दृश्य को साकार कर दे–

'तै बरने निज बैनन सो सखि,
मैं निज नैनन सौं मनु देखे।'

(मतिराम)

घनानन्द की रचना सामर्थ्य का एक परिचय उनके द्वारा भाव को मूर्त्त, चित्रात्मक रूप देने के प्रयास में रचित पद है, जिनमें कहीं सौंदर्य, कहीं मुद्रा और कहीं केवल मनगत भाव का मूर्तिकरण है। प्रकृति चित्रण की क्षमता का एक उदाहरण देखिए–

लहक लहक आवै ज्यों ज्यों पुरवाई पौन;
दहकि दहकि त्यों त्यों नन तांवरे तचै।
बहकि बहकि जात बदरा विलोके जिय,
गहकि गहकि गहवरनि हिये मचै।
चहकि चहकि डारै चपला चखन चाहै,
कैसे घनआनन्द सुजान बिन ज्यौं बचै।
महकि महकि मारै पावसा प्रसून बाग,
आसनि उसास दैया कौं लौरहियै अधै।

वीप्सा के द्वारा शब्दों की आवृत्ति न केवल नाद सौन्दर्य में सहायक है। वरन् 'पुरवाई पौन' की गति को जैसे ध्वनित कर रही है।

घनानन्द के द्वारा किये गये रूप वर्णनों में चित्रात्मकता अधिक है। रूप चित्रण रीतिकाल के हर कवि का काव्य-सुलभ कार्य था, घनानन्द ने भी रूप के पर्याप्त चित्र खींचे हैं। रूप की अपेक्षा इन चित्रों को मुद्राओं का चित्र ही माना जा सकता है। रतिश्रान्ता नायिका का यह चित्र ही स्पष्ट हो अपनी रेखाओं में पूर्ण है–

सुख स्वेद कनी मुखजंद बनी,
विथुरी अलकावलि भाँति भली।
मद जोवन रूप छवि अंखिया,
अवलोकति आरस रंग मली।
घन आनन्द ओपित ऊँचे उरोजनि,
चोज मनोज के ओज दली।
गहि ढीली लजीली रसीली लसीली,
सुजान मनोरथ बेलि फली।

नोट

इसी प्रकार आंखें मटका कर कृष्ण से बात करती हुई, नायिका का रूप इन पंक्तियों में हँसता है–

छैल नये नित रोकत गैल
सु फैलत कांपै अरैल भये हो।
लै लकुटि हँसि नैन नचावति।
बैन नचावत मैन तए हो।
लाज अंचे बिन काज खागै
तिन ही सों पगो जिन रंग रमे हो।
ऐड़ सबै निकसैगी उबै
घनआनन्द आनि कहा उनए हो।

कहीं-कहीं एकाध पंक्तियों में चित्र को पूरा कर देने की सामर्थ्य है–

(क) अंग अंग तरंग उठै दुति की,
परि है मनौ रूप अबै घर ज्वै।

(ख) आवति चली कुंज गह्वरते,
कुंवरि राधिका रूप मढ़ी।

घनानन्द के अन्तर में सुजान के रूप का जो चित्र था, उसे ही उन्होंने अनेक स्थलों पर शब्दों में उतारा है। उनके चित्रों में परम्परा का पालन नहीं, बल्कि अनुभूति का नयापन है। नेत्रों के विषय में उन्होंने अनेक नई कल्पनाएँ की है, जो भाव को येनकेन अभिव्यक्त कर देने का प्रयास कही जा सकती हैं। वे कल्पनाएँ इस तथ्य की ओर भी संकेत करती हैं कि घनानन्द ने रीतिकाल को सामान्य वर्णन-सामग्री को अपूर्ण एवं अक्षम अनुभव किया, अतः उन्हें नये उपमानों की, नई काव्य स्थितियों की योजना करनी पड़ी। घनानन्द ने चित्रात्मकता के समावेश के लिये अभिव्यंजक शब्दों को ग्रहण किया है जो श्लेष एवं अर्थ-सौन्दर्य के आधार पर 'हाव' को उभार कर उसमें रंग भर देते हैं। सुजान के मुड़कर देखने की मुद्रा इस पंक्ति में जैसे खड़ी हुई सुजान का रूप लेकर साकार है–

निस द्यौस खरी उर-माँझ अरी,
छवि रंग भरी मुरि चाहन की।

लक्षणा-बहुलता

शुक्लजी ने घनानन्द के लक्षणा-प्रयोग के विषय में लिखा है–

"लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने इसके भीतर बहुत कम पैर बढ़ाया। एक घनानन्द ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग-वैचित्र्य की जो छटा इनमें दिखाई पड़ी, खेद है कि वह पौने दो सौ वर्ष पीछे जाकर आधुनिक काल के उत्तरार्ध में अर्थात् वर्तमान काल की नूतन काव्यधारा में ही अभिव्यंजनावाद के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिए प्रकट हुई।"

शुक्ल जी का अभिप्राय छायावाद से है। घनानन्द की रचना में भावावेगों का मूर्तिकरण है। उन्होंने भाव के भिन्न रूपों–वियोग के विभिन्न अंगों, आशा, दुख, आवेग, विडम्बना इत्यादि को मूर्तिमान कर दिखाया है। उनका लक्षण-प्रयोग सबल और समर्थ है। उससे भाषा की शक्ति का बहुत गहरा समावेश है। आँखों में उर के लिए यह पद कितनी समर्थ व्यंजना करता है।

'भोर ते साँझ लौं कानन ओर।
निहारति बावरी नेकु न हारति।
सांझ ते भोर लौं तारनि ताकिबो।
तारनि सो इकतार न टारति।
जो कहुँ भावतो दीठि परै।

नोट

घनआनन्द आंसुनि औसर गारति।
मोहन-सोहन-जोहन की लगियै।
रहै आंखिन के उर आरति॥'

इसी प्रकार मति के लिए वे कहते हैं–

मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर,
अमोही ने मोह-मिठास ठगी।

चातक, घन और चकोर इत्यादि के द्वारा लाक्षणिक प्रयोग हिन्दी में बहुत हुए, किन्तु घनानन्द ने एक ओर इन तत्वों के प्रयोग में भी नयापन दिखाया है तथा दूसरी ओर नए तत्वों का समावेश किया है। रीझ को 'बावरी' विशेषण देना प्रेम के प्रमाद का कैसा समर्थ कथन है–

रोकि रहै न पहै घनआनन्द,
बावरी रीझ के हाथनि हारियै।

इसी प्रकार प्रिय के पीछे चलने वाली आंखों के लिए घनानन्द ने कहा है।

जहाँ ते पधारे मेरे नैनन ही पांव धारे,
वारे ये विचारे प्रान ऐंड-पैंड पै मनो।

इसी प्रकार दर्शन की प्यासी आँखों की दशा को, उनकी व्याकुलता को इद पद में जैसे साकार कर दिया है–

घेर घबरानी उबरानी ही रहति घन
आनन्द आरति-राति साधनि मरति हैं।
जीवन अधार जान रूप के अधार बिन
व्याकुल विकार-भरी खरि सु जरति हैं।
अतन जतन तें अनखि अरसानी वीर,
प्यारी पीर-भरी क्यों हूँ धरी न धरति हैं।
देखियै दसा असाध अंखिया निपेटनि की,
भसमी विथा पै नित लंघनि करति हैं।

लक्षणा के प्रयोग में कवि ने 'मानवीकरण' का भी विधान किया है। मानवीकरण का जो रूप घनानन्द में उपलब्ध होता है शुक्ल जी के अनुसार 'आधुनिक युग में ही पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप रचित हुआ है।' घनानन्द ने मानवीकरण के लिए रीतिकाल से बिलकुल भिन्न शैली का प्रयोग किया है–

चलत सजीवन-सुजान-दृग-हाथन ते
प्यारी अनियारी रुचि रखवारी ओट है।

लक्षणा के अन्तर्गत ही 'विशेषण-विपर्यय' को भी ग्रहण किया जाता है। घनानन्द ने अधिकतर नेत्रों के लिए विशेषण-विपर्यय अपनाया है। नेत्रों के विविध प्रकार के सौन्दर्य को उन्होंने साकार किया है। आँखें कहीं ओलतियों के समान टपकती हैं और कहीं उनमें प्रिय के रूप की दुहाई फिर गई है–

'दीठि को और नहीं कहुं ठौंर
फिरी दृग रावरे रूप की दोही।'

लोचन कहीं सोच से जले जाते हैं और कहीं आँखों के हृदय में कृष्ण के रूप की आरति लगी हुई है। नेत्र पाँव धरे प्रिय के पीछे चलते हैं। कानों में जिस प्रकार नेत्र समाए रहते हैं वैसे ही पुकारने वाले की वाणी मौन से अन्तभूर्त है–

पहचानें हरि कौन सोसे अत पहचान को
त्यों प्रकार मधु-मौन कृपा-कान मधि-नैन।

नोट

लक्षणा का एवं विशेषण-विपर्यय तथा मानवीकरण का यह स्वरूप रीति काल की साधारण कविता से कितना भिन्न और उस काल की बनावटी-काव्य शैली को देखते हुए कितना व्यक्तिगत, कितना प्रतिभा-सिद्ध है।

छन्द–

छन्द कविता का प्राणतत्व है। वह मानव की भावलय है, जो सम्बन्ध हमारे जीवन और भाव में है, हृदय की धड़कन और श्वास-संचार में है वही भावाभिव्यक्ति और छन्द में है। डा. नगेन्द्र का यह विचार है कि भावोच्छ्वास की अवस्था में रस की गति तीव्र हो जाती है और वह तीव्रता शब्द-रूप है। श्वास का आरोह-अवरोह क्रमिक लय के अनुसार चलता है ठीक वैसे-जैसे नृत्य में संगीत की थाप के साथ चरण थिरकते हैं। कविता का जन्म भावोच्छ्वास की अवस्था में हुआ है, अतः छन्द से उसका सम्बन्ध प्राणगत है। वे भाव की अभिव्यक्ति का एक ऐसा वातावरण तैयार करते हैं जिसमें अपनी गुंजार के द्वारा वे भाव को मुखर एवं वर्तित कर देते हैं। पल्लव की भूमिका में **पन्तजी** ने भी छंद की इसी विशेषता की ओर संकेत किया है। उनका कथन है–

"छन्दबद शब्द चुम्बक के पार्श्ववर्ती लौहचूर्ण की तरह अपने चारों ओर एक आकर्षण-क्षेत्र तैयार कर लेते हैं। उनमें एक प्रकार का सामंजस्य, एकरूप एकविन्यास आ जाता है। उनमें राग में विद्युतधारा बहने लगती है, उनके स्पर्श में एक प्रभाव तथा शक्ति पैदा हो जाती है।"

अतः छंद वाणी की विशेषता प्रभावमयी वाणी की अनिवार्य आवश्यकता है। उन्हें कविता का आन्तरिक संगीत कहा जा सकता है। छंद को ओढ़कर ही कविता एक विशेष प्रकार से थिरकती है, एक निर्विकार दिशा में एवं कला के साथ अंग-अंग नचाती है। छंद आवरण भी है और मूलतत्व प्राण भी।

भाव और छन्द

हिन्दी भाषा की प्रकृति विश्लेषणात्मक है, अतः इस भाषा के अनुरूप मात्रिक छंद अधिक सुन्दर लगते हैं। छंद और भाव अर्थात् रस अनिवार्यता पारस्परिक अनुकूलता में सम्बद्ध है। ललित कलाओं में छंद का समावेश विभिन्न रूपों में होता है। मूर्ति और चित्रकला में उसका रूप नितान्त स्थूल है किन्तु संगीत और काव्य में अत्यन्त सूक्ष्म। इसी से सिद्ध होता है कि छंद किन्हीं विशेष भावों की अभिव्यक्ति के लिए अधिक उपयुक्त है और कुछ के लिए कम।

वस्तुतः छंद ही कुछ अर्थों में भाव-निर्धारक है। कविता के साथ श्रोता का पहला परिचय पावस-प्रभाव अर्थात् छंद के द्वारा ही होता है। छंद भाषा एवं अभिव्यक्ति के अन्य आवरणों को हटाकर श्रोता तक पहुंचता प्रतीत होता है। छंदों की प्रकृति पर विचार करते हुए **पन्तजी** ने कई छन्दों के स्वभाव का व्याख्यान किया है। उदाहरणतः 'प्लवंगम' उनके अनुसार रसमय रस के लिए अधिक उपयुक्त है। 'चौपाई' में बच्चों की माँ से है बच्चों का कण्ठरव है, अतः यह बाल साहित्य के लिए विशेष उपयोगी है। निर्झरणी के समान कलकल छल-छल करने वाला छंद 'अरिल्ल' है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए–

1. घनानंद रीतिकालीन किस काव्यधारा के कवि थे?
   (अ) रीतिबद्ध (ब) रीतिसिद्ध (स) रीतिमुक्त
2. घनानंद की प्रेयसी का क्या नाम था?
   (अ) राधा (ब) सुजान (स) मीराबाई
3. घनानंद के काव्य में कौन-सा अलंकार प्रमुखता से प्रयुक्त हुआ है?
   (अ) उत्प्रेक्षा (ब) अतिशयोक्ति (स) विरोधाभास
4. 'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावता।' किस कवि ने कहा है?
   (अ) घनानंद (ब) बिहारी (स) केशवदास

नोट

घनानन्द की छन्द-योजना

हिन्दी काव्य के आदिकाल में छंदों का विपुल प्रयोग हुआ है। 'चन्द' को छंदो का राजा कहा जाता है। दोहा, छप्पय, सवैया और कवित्त का प्रयोग आदिकाल में प्रचुर मात्रा में न हुआ। भक्तिकाल में कवित्त तथा पद की प्रधानता हो गई। प्रबन्धों के लिए दोहा-चौपाई का प्रयोग हुआ। कवित्त और सवैया रीतिकाल में विशेषतया गृहीत हुए। इन दोनों छंदों की प्रकृति रीतिकाल में आकर हिन्दी में ढाल दी गई। अनेक प्रसिद्ध कवियों ने कवित्त और सवैया में रचना की, घनानन्द के काव्य में कवित्त का बड़ा व्यापक प्रयोग है। 'कवित्त' के मुख्यतया दो भेद हैं–

1. मनहर

2. घनाक्षरी–जिनमें क्रमशः 31 और 32 अक्षर होते हैं। आठ-आठ अक्षरों पर यति का विधान है।

कवित्त ऐसा छंद है जिसका प्रयोग विशेषतया मादक भावों के अधिक संगत बैठता है। कवित्त के विषय में **'निराला'** का यह मत था कि यह हिन्दी का अपना छंद है। इसे 'चौपाल' आदि बड़ी तालों में और ठुमरी की तीन तालों में सफलता के साथ गाया जा सकता है। कवित्त के लिए कवि की भाव-समृद्धि विशेषतया मादक होनी चाहिए तभी छंद अधिक सफल हो पाता है। घनानन्द के कवित्तों का संग्रह श्री **'विश्वनाथप्रसाद मिश्र'** ने 'घनानन्द कवित्त' के नाम से किया है। उसका प्रथम छंद 'मनहर कवित्त' ही है–

'लाजनि लपेटी चितवन भेद भाव भरी
लसति ललित लोल-चख तिरछानी मैं।
छवि को सदन गोरों बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मृदु मीठि मुसकानि मैं।
दमक दमक हिय फैलि हिये मोति-माल, होति,
पिय सों लड़कि प्रेम पगी वतरानी मैं।
आनन्द की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग रंग ढुरि मुरि जानि मैं॥'

इस शब्द में तीन के बाद 2-2 ध्वनियों वाले अक्षरों का प्रयोग हुआ है, जो संगीत-सृष्टि में सहायक है। शब्द प्रयोग में कवि प्रवाह 'अर्थात् गति पर दृष्टि लगाए हुए हैं। 'छवि को सदन' के साथ 'गोरे बदन' की लयानुरूपता सुन्दर है। 'अंगनि अनंग रग' में अक्षरों के साथ लय मुड़ती चलती है। अतः छंद में संगीत-सृष्टि क्रमशः होती चलती है। प्रायः आठवें अक्षर पर यति है, जो सफल है।

इसी प्रकार 'घनाक्षरी' कवित्त का सुन्दर उदाहरण है–

'जहाँ जौं संदेसों ताको बड़ोई अंदेसों आहि,
न्हालै मन वारें की कहैउब को सुनै सुकौन।
निधारख जो अलचेले निखारक और
दुखिया कहै या कहा तहां की उचित हौन।
पर दुख दल के दलन कौ प्रभंजन हौं,
ढरकौहें देखि कै विवस पकि परी मौन।
इतकी भसम दसा लै दिखय सकत जू,
लालन सुवास मों मिलाय हूँ सकल पौन॥'

इसमें 16-16 शब्द अक्षरों को पंक्ति में आठवें पर मध्य यति है, यद्यपि यह छंद उतना सफल नहीं जितना कि पहला है किन्तु फिर भी गति-यति का विधान नियमित है।

घनानन्द का दूसरा मुख्य छंद 'सवैया' है। सवैया कई प्रकार का हो सकता है। घनानन्द की रचना में उसके सभी मुख्य प्रकार आ गए हैं। उदाहरणतया,

नोट

(1) किरीट

'भोर ते सांझ लौ कानन-ओर
निहारति बावरी नेकु न हारति।
सांझ ते भोर लौं तारनि ताकिबो
तारनि सौं इकतार न टारति।
जो कहूं भावतो दीठि परै घन
आनन्द आंसुनि औसर गारति।
मोहन-सोहन-जोहन की लगियै रहै,
आंखिन के उर आरति॥'

(2) अरसात

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै।
त्यों इन आंखिन बानि अनोखी, अघानि कहूं नहिं वानि तिहारियै।
एक ही जीउ हुतौ सुतौ वार्‌यौ, सुजान सकोच औ सोच सहारियै।
रोकि रहै न, दहै, घनआनन्द, बावरि रीझ के हाथनि हारियै।

(3) मत्तगयंद

'हीन भए जलमीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि-सयानै,
नीर-सनेही कौ लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समुझैं जड़, मीत के पानि परे कौं, प्रमानै,
या मन की जु दशा घन आनन्द जीव की जीवनि जानि ही जानै।'

सवैये का प्रयोग सामान्यतया कवित्त की अपेक्षा अधिक सफल है। घनानन्द के सवैया–प्रयोग की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने इस छन्द का प्रयोग विरह के लिए अधिक किया है। सवैये की कोमलता उनकी रचना में पूर्णतया उद्‌घाटित है। शब्द-मैत्री अत्यन्त सफल है। **डा. मनोहर लाल गौड़** का यह कथन उचित ही है कि नरोत्तमदास तथा सीताराम की-सी सरलता और कोमलता घनानन्द के सवैयों में सहज प्राप्य है।

इन दोनों के अतिरिक्त घनानन्द ने 'सुमेरु', 'ताटंक', 'निसानी', 'अरल्ल', 'शोभन', और 'त्रिभंगी', छन्द का भी प्रयोग किया है। सुमेरु का प्रयोग 'वियोगबेलि' में है। ताटंक का 'इश्कलता' में शोभन का 'गोकुल विनोद' में। घनानन्द ने प्रबन्ध-रचनाओं में दोहे-चौपाई का प्रयोग किया है किन्तु चौपाई का ब्रज से स्वभावगत विरोध है। पदावली में गेय पद हैं, जो अत्यन्त सांगीतिक हैं।

घनानन्द का छन्द-प्रयोग सामान्यतया सफल है। उनकी रचना में छन्द की वह एकाग्रता नहीं, जो बिहारी में है और न ही वैसा विस्तार है जैसा तुलसी में, किन्तु वे छन्दों की प्रकृति को भली प्रकार समझते थे, यह निश्चित है। सवैया और कवित्त की सांगीतिक सम्भावनाएँ उनकी रचना में निखर उठी हैं। छन्द के आग्रह से उन्होंने भाषा को कहीं भी विकृत नहीं किया। कई स्थानों पर तो छन्द और भाषा का इतना सुन्दर मेल है कि हिन्दी में बहुत कम उपलब्ध होगा। जैसे–

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत है ज्यों ज्यों निहारियै।
त्यों इन आंखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहि आनि तिहारियै॥
एक ही जीव हुतौं सुतौं दार्‌यौ, सुजान, सकोच ओ सोच सहारियै।
रोक रहै न, दहै, घनआनन्द, बावरि रीझ के हाथनि हारियै॥

27.3 सारांश (Summary)

विभिन्न आचार्यों ने अलकारों को काव्य का मूल सौन्दर्य माना। दूसरी ओर **'आनन्दवर्धन'** ने दर्शन को तथा **'विश्वनाथ'** इत्यादि ने रस को महत्त्व दिया। समन्वय दृष्टि से सम्पन्न आचार्यों में मम्मट एवं जगन्नाथ ने दोनों रसों के अनिवार्य महत्त्व को स्वीकार किया।

नोट

काव्य-व्यापार, रचना एवं मूल्यांकन-व्याख्यान, दोनों दृष्टियों से समन्वय सिद्ध व्यापार हैं। यह समन्वय स्थूल अर्थ में भाव एवं वाणी का है तथा सूक्ष्म अर्थ में भाव एवं अभिव्यक्ति का, व्यष्टि एवं समष्टि का तथा पिंड एवं ब्रह्मांड का है। अभिव्यंजना के स्तर पर कविता अनेक कलाओं का समन्वय है, प्रेषणीयता के स्तर पर वह कवि के हृदय एवं श्रोता अथवा पाठक-समुदाय के हृदय का समन्वय है। जिस प्रकार रस सारतत्व है, उसी प्रकार काव्य में भी भाव की अमूर्त्त संज्ञा का शब्द के मूर्त्तरूप से समन्वय-स्तर घटित होता है।

घनानन्द की भावाभिव्यक्ति अनूठी थी। भाव एव अभिव्यंजना का संयोग घनानन्द में अत्यन्त प्रखर एवं मुखर है–साथ ही अभिव्यक्ति में आन्तरिक भाव की टीस उभर आई है। कविता तथ्य का केवल कथन नहीं करती बल्कि सुन्दर कथन करती है–वह उक्ति का शृंगार करती है।

वियोग घनानन्द का काव्य साधन है– उनकी कविता अपने प्राकृत रूप में वियोगमयी है। संयोग-पक्ष की अभिव्यक्ति सरस है, उसके लिए काव्य क्षमता के अतिरेक की आवश्यकता नहीं किन्तु वियोग, जैसा कि आचार्यों ने संकेत किया है, कवि-हृदय के मार्मिक पक्ष के उद्‌घाटन की अपेक्षा करता है। घनानंद के वियोग-वर्णन में जो अनूठापन है, संयोग वर्णन में नहीं।

घनानन्द के काव्य में अलंकारों का सचेष्ट प्रयत्न किसी भी स्थल पर नहीं है, यह मानना सम्मत होगा। विरोध एवं विरोधाभास का आग्रह उपलब्ध होता है वह मुख्यतया एवं मूलतया भाव का अभिन्न अंग है, इससे पृथक् कोई अन्य तत्व नहीं।

27.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **उक्तिवैचित्र्यः** अभिव्यक्ति का चमत्कार।
2. **प्रेषणीयताः** किसी भी कृति (रचना) का वह गुण जो उसके भावों को उसके पाठकों तक पहुँचाता है।

27.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. घनानंद की लेखन कुशलता पर विचार कीजिए।
2. घनानंद के काव्य के कलापक्ष पर विचार कीजिए।
3. घनानंद के काव्य में अलंकार एवं छंद विधान पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. (स) 2. (ब) 3. (स) 4. (अ)

27.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. महाकवि घनानन्द–*राज बुद्धिराजा, तक्षशिला प्रकाशन।*
2. रीतिमुक्त कवि घनानन्द–*सहगल शशि, अमरसत्य प्रकाशन।*
3. घनानन्द का काव्य शिव्य–*पाल लखनसिंह, हिन्दी बुक सेन्टर।*

नोट

इकाई 28

घनानंद कवित्त–व्याख्या भाग (प्रथम 50 पदों की व्याख्या)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
28.1 घनानंद कवित्तः व्याख्या भाग
28.2 सारांश (Summary)
28.3 शब्दकोश (Keywords)
28.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
28.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- घनानंद कवित्त की काव्यात्मक अनुभूतियों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

घनानंद रीतिकालीन कवियों में रीतिमुक्त काव्य परंपरा के अंतर्गत आते हैं। घनानंद के काव्य के दो रूप हैं। एक प्रेमी का दूसरा भक्त का। अपनी प्रेयसी सुजान के प्रति अगाध प्रेम जीवन की विषमता से विरक्ति के कारण ईश्वरोन्मुख प्रेम में परिणत हो गया। प्रेम की संयोगावस्था में कवि ने यौवना नायिका के रूप सौंदर्य का वर्णन किया है तथा वियोगावस्था ईश्वरोन्मुख की विरहानुभूति अलौकिक प्रेम के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है।

28.1 घनानंद कवित्तः व्याख्या भाग

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी,
लसति ललित लोल-चख-तिरछानि मैं।
छबि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन-दमक फैलि हियें मोती-माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं।
आनन्द की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अंनग-रंग दुरि-मुरि जानि मैं ॥ 1॥

शब्दार्थ–लाजनि=लज्जा में। लपेटी=लिपटी हुई। चितवनि=दृष्टि। भेद-भाव-भरी=गूढ़ भावों से भरी। लसति=शोभित होती। लोल=सुन्दर, चंचल। चख=चक्षु। तिरछानी=बंकिम। छबि=सौन्दर्य। सदन=घर। भल=मस्तक। निचुरत=निचुड़ना। दसन-दमक=दाँतों की चमक। लड़कि=उलझना। अंगानि=अंगों में। दुरि=दुलकना। मुरि जानि मैं=मुड़ जाने में।

प्रसंग–प्रस्तुत कवित्त में कवि ने कामिनी नायिका के बाह्य सौन्दर्य, ताप, भाव, मुद्राओं, चेष्टओं, अंग-प्रत्यंगों का रूप वर्णन किया है। इस प्रकार से यह नायिका-भेद है लेकिन अन्तर इतना है कि नायिका-भेद की परम्परा में रूप वर्णन का कार्य जहाँ सखी अथवा दूती करती है, यहाँ स्वच्छन्द धारा के कवि यह मधुर कार्य स्वयं अपनी ओर से

सम्पन्न करते हैं। फारसी कवि ऐसा ही करते हैं, अतः नायिका-भेद की दृष्टि से रीतिमुक्त कवि फारसी कवियों की परम्परा में ही आयेंगे। नोट

व्याख्या–लज्जा में लिपटी हुई, गूढ़ रहस्य से भरे नेत्रों वाली, चंचल नयनों की बांकी अदा से सुशोभित, सौन्दर्य का घर, गौर वर्ण-शरीर तथा सुन्दर आकर्षक मस्तक वाली, जिसकी मनोहर मुस्कान से मधुर रस-सा टपक पड़ता है; जिसके दाँतों की चमक फैलकर हृदय पर मोतियों के हार की तरह दीप्त हो उठी है; प्रेम-भरी बातों में प्रियतम से उलझ कर उस सौन्दर्य ने जगमगाती आनन्द की निधि सुन्दर बाला के प्रियतम से बातें कर मुड़कर जाने से शरीर से कामरस टपकता हुआ प्रतीत होता है।

विशेष–संयोग के समय की मुद्रा का मनोहारी चित्रण किया गया है। मुड़कर जाने की छवि के वर्णन में नायिका की नजाकत का सुन्दर वर्णन है। मुस्कान से रस टपकना तथा दांतों की कान्ति का हृदय का मोतियों के हार की तरह बिखर जाना सुन्दर प्रयोग हैं।

अलंकार–अनुप्रास और उत्प्रेक्षा

तुलना

'औरे औप धनीं निधनु, जनी धनी सरताज।
मनो धनी के नेह की बनी धनी कर लाज॥'

–बिहारी

छन्द–यह मनहरण कवित्त है। इसमें 16, 15 पर यति होकर 31 वर्ण होते हैं। अन्तिम वर्ण सदैव गुरु होता है। इसे घनाक्षरी छन्द भी कहते हैं।

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलन मैं छबि-फूलन की बरसा, उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग-अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अँबै धर च्वै ॥ 2॥

शब्दार्थ–झलकै=झिलमिलाना। छके=मस्त। कानन छ्वै=कानों को छूते हुए। लोल=सुन्दर। कलोल=क्रीड़ा। जलजावलि=मोतियों की माला। दुति=कांति। परिहै=पड़ना। धर=धरा।

प्रसंग–प्रस्तुत छन्द में नायिका का रूप-वर्णन तथा अंग-दीप्ति का उल्लेख है।

व्याख्या–उसका गौरवर्ण–मुख अत्यन्त सुन्दरता से झिलमिला रहा है। कानों को छूते हुए मद मस्त विशाल नयन सुशोभित हो रहे हैं। उसके हँसने में, बोलने में अनूठी छवि है–मानो देखने-सुनने वाले के हृदय पर फूलों की वर्षा हो रही हो। चंचल तथा सुन्दर लटें गाल पर क्रीड़ा कर रही हैं। सुन्दर कंठ में मोतियों की दो लड़ी की माला है। उसके एक-एक अंग से कान्ति की लहरें उठती हैं, मानो उसका सौन्दर्य अभी धरती पर टपक पड़ेगा।

विशेष–1. बाह्य रूपआकर्षण वर्णन।

2. मुहावरों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

3. 'जलजावलि' जैसे अप्रसिद्ध 'योगरूढ़ि' शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसे 'निहितार्थ' दोष कहते हैं।

अलंकार–अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक, पुनरुक्तिप्रकाश, छेकानुप्रास तथा पदमैत्री।

तुलना

'वरदंत की पंगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की।
घुंघरारि लटा लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावरि प्रान करै 'तुलसी' बलि जाउँ लला इन बोलन की॥'

–तुलसी

नोट

छन्द–सुमुखी सवैया है। प्रत्येक चरण में आठ सगण तथा 24 वर्ण होते हैं।

छबि को सदन, मोदमंडित वदन-चंद,
तृषित चखनि लाल, कब धौं दिखायहौ।
चटकीलो भेख करे, मटकीली भाँति सों ही,
मुरली अधर धरें लटकत आयहौ।
लोचन ढुराय, कछू मृदु मुसक्याय नेह,
भीनी वतियानि लड़काय बतरायहौ।
बिरह-जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि, आनन्द को घन बरसायहौ॥3॥

शब्दार्थ–मोदमंडित=प्रसन्नतापूर्ण। तृषित=प्यासी। चखनि=आंखों को। लाल=प्रियतम। भेख=वेश। मटकीली=चंचल, चटक, मटक। अधर=ओंठ। लटकत=मस्ती से झूमते हुए। लोचन=आँखें। ढुराय=मटकाते हुए। नेह-भीनी=प्रेम से सुगन्धित। लड़काय=ललक के साथ, बच्चों की तरह मधुरता, सरलता से।

प्रसंग–गोपी ने पहले कभी श्रीकृष्ण का दर्शन-लाभ किया है। कृष्ण का रूप उसके मानस में बस गया है। अतः प्रेमानुरक्त गोपी की प्रस्तुत छन्द में यह अभिलाषा लक्षित होती है कि श्रीकृष्ण के पुनः दर्शन हों।

व्याख्या–हे सौन्दर्य के सदन! प्रसन्नता से प्रफुल्लित चन्द्रमुख प्यासी आँखों को कब दर्शन कराओगे? कब अपने चंचल-चपल वेश में मचलते हुए होंठों पर मुरली धरे, मस्ती में झूमते हुए हमारे पास आओगे? आँखों को मटकाते हुए, मृदु मुस्कान के साथ प्रेमरस से सुगन्धित उमंग भरी बातें कब हमसे आकर करोंगे? हे कृपानिधि प्रियतम! हमारे जी को विरह से जलता हुआ जानकर कब आकर आनन्द के बादलों की वर्षा करोगे?

अलंकार–अनुप्रास, परम्परित रूपक, श्लेष

विशेष–इस छन्द में शब्दों की ध्वन्यात्मकता पर विशेष बल दिया गया है– ढुराय, मुसकाय, लड़काय आदि शब्द ऐसे ध्वनित होते हैं जैसे तबले पर ताल दी गई हो। संगीतात्मकता मुखर है।

तुलना

'सीस मुकुट कटि काछिनी, कर मुरली उर माल।
इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल॥'

–बिहारी

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन, औ बजावनि ललित बैन,
वहै हेसि दैन, हियरा तें न टरति है।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छवि,
वहै छैलताई न छिनक विसरति है।
आनन्दनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सौं बेसुधि करति है॥4॥

शब्दार्थ–बतरानि=बातें। लड़कीली=बच्चों जैसी सरल सुमधुर। बानि=आदत। अरति=खटकती है। गति लैन=चाल। बैन=वेणु, बांसुरी। टरति=टलना,हटना। चिताई=चेताई, चैतन्य की, जागृत की। छवि=सौन्दर्य, ललक। छैलताई=छबीलापन। बिसरति=भूलती।

प्रसंग–पूर्व छन्द के अनुरूप।

व्याख्या–वही मुस्कान, वे मीठी मीठी प्रेमभरी बातें, वही उमंगभरी सरल सीधी लड़कनपन की-सी बातें आकर मेरे हृदय में जम जाती हैं। उनकी वह मधुर चाल, उनका वेणु बजाना तथा बात-बात पर हँस देना, हृदय से निकालने पर भी नहीं निकलता। वह चतुराई से उमंग के जागृत करने वाला सौन्दर्य, उनका वह छबीलापन क्षण भर के लिए भी नहीं भूलता। आनन्द के धाम, प्राणों के प्रियतम 'सुजान' कृष्ण की याद सब प्रकार से हमें बेहोश कर देती है।

नोट

विशेष–प्रेम की अतीत स्मृतियों का सुन्दर भावमय मार्मिक चित्रण है। यह संस्मृति सुजान प्रेमिका की है जो विरह के तप से स्वभावतः ईश्वरोन्मुख हो गई है। घनानन्द जी के सभी पदों में यह विशेषता है।

अलंकार–अनुप्रास, स्मरण, श्लेष, विरोध, सभंग यमक, पदमैत्री।

तुलना

'सुधि ब्रजवासिनि दिवैया सुख रासिनिकी,
ऊधो नित हमको बुलावन की आवती।'

–रत्नाकर

\+ + +

जासौं प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह,
कैसें करि जिय की जरनि सो जताइयै।
महा निरदई, दइ कैसें जिवाऊँ जीव,
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइयै।
दुख को बखान करिबे कौं रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।
रैन-दिन चैन को न लेस कहैं पैये, भाग,
आपने ही ऐसे, दोष काहि धौं लगाइयै॥ 5॥

शब्दार्थ–निपट=बहुत। जरनि=जलना। जताइये=बताइये। निरदई=निर्दय। दई=हे देव। कैसे=किस प्रकार। बेदन=वेदना। बढ़वारि=बढ़ना, आधिक्य। दुराइयै=छुपाना।

प्रसंग–प्रेमी के अभाव में नायिका की आत्यन्तिक विरह पीड़ा के साथ साथ उसकी एकनिष्ठता तथा नायक की अपने प्रति घोर उदासीनता का स्वाभाविक उल्लेख किया गया है।

व्याख्या–जिससे हमने प्रीति की है उसे निर्दयता से गहन आसक्ति है। अब किस प्रकार अपने जी की जलन उन्हें बताई जाए। वह तो महा कठोर है। हे देव! मैं अब अपने जीव की रक्षा कैसे इस विरह की आग से करूँ? अपनी वेदना के दिन-प्रतिदिन अधिक बढ़ने को कहाँ तक छुपाऊँ? दुख का वर्णन करने के लिए जीभ होती तो एक बात भी थी अर्थात् दुख के आधिक्य से जिह्वा कुछ कहने में असमर्थ है। इतने पर भी कहीं उस कठोर प्रियतम के दर्शन नहीं होते। दिन-रात कहीं भी चैन लेशमात्र को भी नहीं मिलता, दोष अपना ही है, किसे दोष दें।

विशेष–विरोध प्रदर्शन की प्रवृत्ति घनानन्द की सबसे प्रबल विशेषता है।

अलंकार–यमक, अनुप्रास।

तुलना

'इश्क आदम में कुछ नहीं छोड़ता,
हौले हौले कोई खा जाता है जी।'

–मीर

भोर तें साँझ लौ कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ ते भोर लौं तारनि ताकिबों तारनि सों इकतार न टारति।
जो कहूँ भावतो डीठि परै घनआनन्द आँसुनि असर गारसि।
मोहन-सोहन-जोहन की लगियै रहै आंखिन के उर आरति॥ 6॥

शब्दार्थ–लौं=तक। कानन=जंगल। नेकु=तनिक भी। तारनि=तारों को। ताकिबों न टारति=देखना नहीं छोड़ती। भावतो=मनमोहन, प्रिय। आँसुनि औसर गारति=आँसुओं में अवसर खो देती हैं, रो रो कर अवसर को बिता देती हैं। सोहन=सामने। जोहन=देखना। उर=भीतर। आरति=लालसा।

नोट

प्रसंग–अनुरागवती नायिका की उक्ति है। वह एकनिष्ठ प्रेम पर विश्वास करती है।

व्याख्या–मेरी ये आँखें बावली होकर सुबह से शाम तक जंगल की ओर देखती रहती हैं, तनिक भी नहीं थकतीं। फिर साँझ होने पर सुबह तक एकटक निरन्तर तारों की ओर टकटकी लगाये रहती हैं, हटती नहीं। घनानन्द कहते हैं कि यदि प्रिय कभी दीख पड़ें तो आँखें आसुंओं में ही इस मिलन के अवसर को बिता देती हैं। इस प्रकार मोहन को अपने सम्मुख देखने की लालसा उन्हें सदा लगी रहती है।

विशेष–प्रस्तुत छन्द का आध्यात्मिक अर्थ भी लगाया जा सकता है। जीव जब समय के प्रति असावधान होता है तब उसका भी यही हाल होता है।

इस आध्यात्मिकता का आभास भी मात्र इसीलिए होता है कि इसमें प्रेम की चरमावस्था का सुन्दर निरूपण है।

अलंकार–यमक, उपमा, श्लेष, विरोधाभास और पद मैत्री।

तुलना

'वस्ल में रंग उड़ गया मेरा,
जुदाई को क्या मुंह दिखाऊँगा।'

–मीर

\+ + +

'इन दुःखिया अंखियान को, सुख सिरज्योई नाहिं।
देखत बने न देखते, बिन देखे अकुलाहिं ॥'

–बिहारी

छंद–अरसात सवैया। इसके प्रत्येक चरण में आठ भगण अर्थात् 24 वर्ण होते हैं।

भए अति निठुर मिटाय पहचानि डारी,
याही दुःख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल-सेलनि सो वयौं हूँ न भुलाय है।
मीठे-मीठे बोल बोलि, ठनीं पहिलें तौ तब,
अब जिय जारत कहा-धौं मौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं यह प्रगट कहावति जू,
काहू कलपाय है सु कैसें कल पाय है ॥7॥

शब्दार्थ–जक=रट। सूलनि=पीड़ा की कसक। क्यौं हूं=किसी प्रकार भी। धौं=तो। काहू=किसी को। कलपाय है=तड़पाता है। सु=वो। कल=चैन।

प्रसंग–यह प्रेमिका की भक्ति है। प्रस्तुत छन्द में पत्र अथवा सन्देश जैसे किसी माध्यम से प्रिय की उदासीनता की ओर संकेत किया गया है–

व्याख्या–तुम तो बड़े कठोर हो गए। तुमने सारी जान-पहचान मिटा दी। इसी दुःख के कारण हमें सदा हाय-हाय की रट लगी रहती है। तुम तो अत्यन्त निर्दयी हो, हमारी याद भी तुमने भुला दी। लेकिन हमें तो वेदना की कसक किसी तरह भी नहीं भूलती। पहले तो तुमने मीठी-मीठी बातें कर हमें ठग लिया, अब हमारे जी को जलाते हो, भला यह कहां का न्याय है? क्या तुमने इस प्रसिद्ध कहावत को नहीं सुना कि जो दूसरे को तड़पाता है वह खुद कैसे सुख पा सकता है?

अलंकार–यमक से पुष्ट लोकोक्ति अलंकार, वीप्सा, पुनरुक्तिप्रकाश, छेकानुप्रास एवं पदमैत्री।

नोट

तुलना

'कहि है सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात।'

–बिहारी

नोट्स रीतिकाल में प्रचलित तीन काव्य धाराएँ-रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त में से घनानंद अंतिम रीतिमुक्त काव्य परंपरा के कवि थे।

हीन भंए मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि-समानै।
नीर-सनेही कों लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यों समुझै जड़, मीत के पानि परे को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनन्द जीय की जीवनि जान की जानै॥ 8॥

शब्दार्थ–हीन=रहित, अलग। अधीन=विवश, दुखी। अकुलानि समानै=व्याकुलता की समानता कर सकता है। नीर=सनेही, प्रियजन। लाय=लगाकर। पानि=हाथि। प्रमानै=प्रमाणित करता है। जीव की जीवनि=प्राणों की प्राण। जान=सुजान, प्रिय।

प्रसंग–प्रेम के प्रसंग में मछली की उपमा भी जानी पहचानी है। प्रस्तुत छन्द में कवि ने प्रिय के प्रेम को मछली से भी श्रेष्ठतर ठहराया है।

व्याख्या–जल से बिछुड़ी हुई व्याकुल मछली क्या मेरे प्रेम की व्याकुलता की कुछ समानता कर सकती है? वह प्रेमी नीर को कलंक लगाकर, निराश होकर कायरता से अपने प्राण त्याग देती है। प्रेम की रीति को जड़ जल क्या समझ पायेगा जो वह उस प्रिय जल के हाथों अपने जीवन के आधारित होने को प्रमाणित कर उससे प्रेम की अभिलाषा करती है। घनानन्द कहते हैं कि मेरे मन की व्याकुलता को तो मेरे प्राणों के भी प्राण अत्यन्त प्रिय सुजान प्रियतम जानते हैं।

विशेष–यहाँ वक्रोक्ति के माध्यम से सुजानप्रिय को अत्यन्त कठोर भी प्रमाणित कर दिया है और उसके हृदय की कोमलता का भी नाजुक स्पर्श कर यह कह कर दिया है कि मेरा प्रियतम जल की तरह जड़ नहीं है।

सच्चे प्रेम में निराशा के लिए स्थान नहीं होता इस पद में यह दर्शाया गया है। इस सम्बन्ध में आचार्य **विश्वनाथप्रसाद** मिश्र की यह उक्ति द्रष्टव्य है–

''वास्तविक प्रेम जिसके प्रति हो जायगा उसके अनुकूल या प्रतिकूल होने पर भी बना रहेगा। प्रेम सम ही रहे या विषम हो जाय, प्रेमी की ओर से उसमें कमी नहीं होती। चेतन प्रिय से प्रेम का संबंध जोड़ने वाला प्रेमी प्रिय के निरथ हो जाने पर जिस कष्ट का अनुभव करता है वह सचमुच बड़ा मार्मिक होता है। 'रीतिबद्ध चिन्ता में भी संयोग और वियोग का चरम रहा। 'विधुरनि मीन की और मिलनी पंतग की', के द्वारा घोषित की जाती थी। प्रेम में मर मिटो यही इनका मूलमंत्र है। विरह सहने का साहस उनकी शरीरिक सुकुमारता नहीं बटोर सकती। मन का बल उनके पास नहीं होता पर रीतिमुक्त कवि प्रेम में मर जाने की चेतनता को नहीं, जड़ता को लक्ष्य मानते हैं, चेतन तो साहसपूर्वक जीता है।"

प्राणों को जिलाने वाला प्रिय मन की दशा को अनुभव करने वाला भी है; मीन का प्रिय उसके प्रेम का अनुभव करने वाला नहीं है। मछली तुरन्त प्राण त्याग देती है, पर प्रेमी साहसपूर्वक वेदना सहता है। इसीलिए इन दोनों में समता कैसी?

अलंकार–वक्रोक्ति, व्यतिरेक, अनुप्रास, श्लेष और यमक।

मीत सुजान अनीति करौ जिन, हा हा न हूजियै मोहि अमोही।
दीठि कौं और कहूँ नहिं ठौर, फिरी दृग रावरे रूप की दोही।

नोट

एक बिसास की टेक गहें लगि आस रहे बसि प्रान-बटोही।
हौ घनआनन्द जीवनमूल, दई! कित प्यासनि मारत मोही ॥ 9 ॥

शब्दार्थ–जिन=नहीं, मत। मोहि=मोहित कर। अमोही=नेह तोड़ने वाले, उदासीन। दीठि=दृष्टि। दोही=दुहाई। बिसास=विश्वास। टेक=सहारा। घनआनन्द=आनन्द के घन। जीवन-मूल=जीवनदायक।

प्रसंग–वियोगिनी नायिका का प्रिय के प्रति उपालम्भ है–

व्याख्या–हे प्रिय मित्र सुजान! तुम मेरे प्रति ऐसा अन्याय मत करो। मुझे मोहित कर अब नेह न तोड़िये। मेरी दृष्टि को कहीं स्थान नहीं है। आँखों में आपके ही रूप की दुहाई फिर रही है अर्थात् आँखें आपके रूपरंग में ही रंग गई हैं। एक विश्वास की आशा लगाये मेरे प्राण-पथिक अब तक बसे हुए हैं। तुम तो आनन्द के घन हो, जीवन दाता हो। हे प्रभो! फिर भी मुझे क्यों प्यास से तड़पाये जा रहे हो।

अलंकार–अनुप्रास, यमक और श्लेष।

विशेष–प्रस्तुत पद कवि के हृदय की गहन पीड़ा का परिचायक है, जिसमें किसी प्रकार के सामान्य प्रेम की बू नहीं है। यह प्रेम मीरा की कोटि का है; सूरदास की गोपियों के समकक्ष है।

तुलना

'मेरो मन अनंत कहाँ सुख पावै,
जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै।'

–सूरदास

\+ \+ \+

पहिले घनानन्द सींचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार-पगी।
अब लाय वियोग की लाय, बलाय बढ़ाय, बिसास-दगानि दगी।
अखियाँ दुखियानि कुबानि परी, न कहूँ लगै, कौन घरी सु लगी।
मति दौरि थकी, न लहै ठिक ठौर, अमोहि के मोह-मिठास ठगी ॥ 10 ॥

शब्दार्थ–प्यार-पगी=प्यार में भीगी। लाय=लगाकर। लाय=आग। वलाय=विपत्ति, बला। बिसास=विश्वासघात। दगानि=दावाग्नि। दगी=लगा दी, जला दी। कुबानि=बुरी आदत। न कहू लगैं=कहीं नहीं लगती, ठहरतीं। कौन घरी सु लगी=किस घड़ी में तुमसे लगीं थीं। मति=बुद्धि। लहै=प्राप्त करना। ठिक ठौर=ठीक स्थान। मोह-मिठास=प्रेम माधुर्य।

प्रसंग–प्रस्तुत सवैया में प्रिय की निर्दयता तथा अपनी विवशता पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या–हे आनन्द के घन, मीत सुजान! पहले तो तुमने प्रेम भरी बातें कह कह कर मेरे हृदय को प्रेम-रस से सींच दिया। अब उसमें वियोग की आग लगाकर विश्वासघात की दावाग्नि भड़काकर अत्यन्त कष्टपूर्ण स्थिति में छोड़ दिया। इन दुखिया आंखों को ऐसी-ऐसी बुरी आदत पड़ गई है कि तुम्हें छोड़कर ये कहीं भी नही टिकतीं, न जाने वह कौन-सी कठोर घड़ी थी जिसमें तुमसे आँखे लड़ी थीं। मेरी बुद्धि दौड़-दौड़ कर थक गई, कहीं भी मुझे ठिकाना नहीं मिलता। मैं तुम जैसे निर्दयी प्रेमी के प्रेम माधुर्य के द्वारा ठगी गई।

विशेष–1 प्रेमी की वियोगावस्था के साथ साथ प्रिय का प्रेमी के प्रति विश्वासघात का स्वाभाविक चित्रण है।

2. व्याकरण में 'मिठास' शब्द पुंल्लिग है लेकिन प्यास आदि के प्रसंग में इसका प्रयोग स्त्रीलिंग के रूप में किया जाता है। यहाँ भी इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे हुआ है।

3. मुहावरों का स्वाभाविक प्रयोग है।

अलंकार–यमक, अनुप्रास, श्लेष

तुलना

कितहूं गयै नेह लगाय।
प्रीति लगाई मेरो मन हर लीनो, रसभरी टेर सुनाई॥

नोट

हमसे बैर प्रीति कुब्जा से, हमैं न कहूं सुहाई
मेरे तो मन में ऐसी आवै, मरुँगी जहर विष खाई॥
हमकूं छाँड़ि गये विस्वामी, विरह की नाव चढ़ाई।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी रहे मधुपुरी छाई॥'

–मीरा

क्यौं हँसि हेरि हर्‌यौ हियरा, अरु क्यौं हित कै चित चाह बढ़ाई
काहे कौं बोलि सुधासने बैननि, चैननि मैन-जिसैन चढ़ाई।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनन्द सालति क्यौं हूं कढ़ै न कढ़ाई।
सीत सुजान अनीत की पाटी, इते पै न जानियै कौने पढ़ाई ॥ 11॥

शब्दार्थ–हेरि=देखकर। हर्‌यो हियरा=हृदय चुराया। हित कै=प्रेम करके। चाह=उत्कंठा। सुधासने=अमृत से भीगे। बैननि=बैन,वाणी। चैननि=आनन्दपूर्वक। मैन निसैन=कामदेव की सीढ़ी पर। सुधि=याद। सालति=चुभती। क्यों हूं=क्यों नहीं। पाटी=पाठ

प्रसंग–नायिका नायक के प्रति उपालम्भ कर रही है। पहले तो हंसकर उसने प्रेमिका के हृदय को चुरा लिया और पश्चात् कठोर होकर न जाने कहाँ छुप गया।

व्याख्या–पहले तुमने हँसकर मेरी ओर देखकर मेरा हृदय क्यों चुराया और प्रेम करके मेरे चित्त में क्यों उत्कंठा उत्पन्न की? किसलिए तुमने अमृतभरी मीठी वाणी बोलकर आनन्दपूर्वक कामदेव की सीढ़ियों पर मुझे चढ़ाया? तुम्हारी वे सभी यादे मेरे हृदय में चुभती है, निकालने पर भी नही निकलती। हे मित्र सुजान! न जाने यह अन्याय का, कठोरता का पाठ तुम्हें किसने पढ़ाया था।

विशेष–प्रिय अपने नायक को सच्चा मीत (मित्र) समझता है। मित्र कभी अपने मित्र का अहित नहीं करते लेकिन अतीत का पाठ पढ़ कर मीत सुजान ने पहले तो प्रेमी का संज्ञाहीन कर दिया, फिर नेत्रों के बाण मार कर इस पर चढ़ाई की एवं उसे लूटा और उस पर नाना-विध चोट की। वस्तुतः ये 'मीत' की आचार संहिता के विरुद्ध है किन्तु कवि ने इसका उल्लेख करके प्रेमी को पुष्ट कर दिया है।

मुहावरों का स्वाभाविक प्रयोग है।

अलंकार–विशेषोक्ति, छेकानुप्रास,

तुलना

'तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला।
मन लेउ पै देउ छटांक नहीं।'

–घनानन्द

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान, कहौ
कैसे रहें प्रान जो अनखि अरसायहौ।
तुम तौ उदार दीन हीन आनि पर्‌यौ द्वार
सुनियै पुकार याहि कौ लौ तरसाय हौं
चातिक है रावरो अनोखो मोह-आवरो,
सुजान-रूप बावरो, बदन दरसायहौ।
बिरह नसाय दया हिय मैं बसाय, आय,
हाय! कब आनन्द को घन बरसायहौ॥ 12॥

नोट

शब्दार्थ–हित=प्रेम। निधान=खर, आधार। अनखि=रूठकर। अरसाय ही= आलस्य करोगे, उदासीन होगे। कौ लौ=कब तक। चतिक=चातक। रावरो=आपका। मोह आवरो=प्रेम से विह्वल।

प्रसंग–प्रस्तुत कवित्त में प्रेमी तथा प्रिय सुजान के प्रेम में चातक तथा मेघ की प्रेमासक्ति की छाया है। चातक की भांति प्रेमी कृपा का आकांक्षी है।

व्याख्या–हे सुजान प्रियतम! मेरे प्रेमाधार, यदि तुम इस प्रकार रूठकर मुझसे विरक्त होगे तो तुम्हीं बताओ मेरे प्राण कैसे बच पायेंगे। तुम तो अत्यन्त उदार हो, मैं दीन-हीन तुम्हारे द्वार पर आ पड़ा हूं, मेरी पुकार सुनो। आखिर कब तक इस तरह तरसाते रहोगे। मैं प्रेम-विह्वल, आपका अनोखा चातक हूं जो तुम्हारे रूप पर पागल हो रहा है– मुझे कब आकर अपना सलोना मुखड़ा दिखलाओगे? मेरे विरह को मिटाकर अपने हृदय में दया लेकर कब आकर आनन्द के बादलों की झड़ी लगाओगे?

अलंकार–परम्परित रूपक और अनुप्रास।

तब तौ छबि पीवत जीवत है, अब सोचन लोकन जात जरे।
हित-पोष के तोष सु प्रान पले, बिललात महादुख दोष-भरे
घनआनन्द मीत सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।
तब हार पहार से लागत है अब आनि कै बीच पहार परे ॥ 13 ॥

शब्दार्थ–छवि पीवत=सौन्दर्य पीते हुए, रूप निहारते हुए। सोचन=शोक, चिन्ता। लोचन=आँखे। हित-पोष=प्रेम के पोषण से। तोष=संतुष्ट। बिललात=व्याकुल होना। दोष=क्लेश। सुख-साज-समाज=सुखों के साज-समूह। टरे=नष्ट हो गये। आनिकै=आकर।

प्रसंग–संयोग और वियोग में प्रेमी की मनःस्थिति किस प्रकार की होती है, इसका मनोवैज्ञानिक भावात्मक विवेचन प्रस्तुत छन्द में है।

व्याख्या–पहले (संयोगावस्था में) तो हम प्रियतम के सौन्दर्य को पीते हुए जीते थे अब वियोगवस्था में आंखे शोक से जली जा रही हैं। तब प्रेम के पोषण से परितुष्ट होकर प्राण पलते रहे अब वे महादुःख एवं क्लेशों से भरे तड़प रहे हैं। घनानन्द कहते हैं कि प्यारे सुजान के बिना सुख के सभी साधन नष्ट हो गये। तब रतिक्रीड़ा में हार पहाड़ की तरह लगते थे और अब दोनों के बीच में वियोग के पहाड़ आकर खड़े हो गये हैं।

अलंकार–यमक, विषम, छेकानुप्रास और पदमैत्री।

तुलना

'गजमुख सनमुख होत ही
विघन विमुख ह्वै जात।
ज्यों पग परत प्रयाग-मग
पाप-पहार बिलात।'

–केशव

पहिलें अपनाय सुजान सनेह सों, क्यों फिरि तेह कै तौरियै जू।
निरधार अधार दै धार-मझार, दई! गहि बाँह न बोरियै जू।
घनआनन्द आपने चातिक को, गुन-बांधि लै, मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय, बढ़ाय कै आस, बिसास मैं यौ बिस घोरियै जू ॥ 14॥

शब्दार्थ–नेह कै=रोष करके। निरधार=निराधार, निरलम्ब। धार-मझार=धार के बीच में। बोरियै=डुबाइये। गुन=गुण, रस्सी। ज्यादा=उमंग। बिसास=विश्वास।

नोट

व्याख्या–हे प्रियतम सुजान पहले प्रेमपूर्वक मुझे अपनाकर फिर रोष में आकर तुम मुझसे नेह क्यों तोड़ते हो। मुझे धारा के बीच में असहाय छोड़कर एक बार बाँह पकड़कर इस प्रकार न डुबाइये। घनानन्द कहते हैं कि अपने चातक को अपने गुणों की डोर में बाँधकर उससे प्रेम न तोड़िये। अमृत तुल्य प्रेम का मधुर रस पिलाकर उमंग एवं आशा बढ़ाकर भला विश्वास में यों कहीं विष घोला जाता है अर्थात् प्रेमियों के विश्वास पर इस प्रकार कठोर आघात करना उचित नहीं है।

अलंकार–श्लेष, यमक, विरोधाभास और अनुप्रास।

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहि आनि तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सु तो वार्‌यो, सुजान, सकोच औ' सोच सहारियै
रोकी रहै न, दहै, घनआनन्द बावरी रीझ के हाथनि हारियै॥ 15॥

शब्दार्थ–रावरे=आपके। अघानि=तृप्त होना। आनि निहारिये=आपको छोड़कर। हुतौ=था। वार्‌यौ=न्यौछावर कर दिया। सकोच=कष्ट, सन्देह, संकोच। सोच=चिन्ता। सहारिये=सम्मान लिये। दहै=जलाती है। रीझ=फिदा होना, उमंग।

प्रसंग–प्रिय के रूप की विलक्षणता पर प्रकाश डाला गया है।

अर्थ–आपके रूप की बड़ी अनोखी रीति है इसे ज्यों-ज्यों देखो नया-नया लगता है। इन आँखों को भी अनोखी आदत पड़ गई है तुम्हें छोड़कर इन्हें कहीं तृप्ति नहीं मिलती। मेरे पास एक ही प्राण था सो मैंने तुम्हारे ऊपर न्यौछावर कर दिया। हे प्यारे सुजान! अब मेरे शोक और चिन्ता को तुम ही सम्भालो, सहारा दो। क्या करें हम इस पगली रीझ के हाथों हार गये हैं। यह मेरे रोकने से भी नहीं रुकती तुम्हारी याद रह-रह कर मुझे जलाती रहती है।

अलंकार–पुनरुक्तिप्रकाश और विशेषोक्ति।

तुलना

'या अनुरागी चित्त की दसा बरनि नहिं जाय।
त्यों त्यों प्यासो ही रहत, ज्यों ज्यों पियत अघात॥'

–बिहारी

हविसे दीद मिटी है न मिटेगी 'हसरत'।
देखने के लिये चाहे उन्हें जितना देखो॥

–हसरत

सोई पिरीत अनुराग बखानिये,
तिल-तिल नूतन होई।

–विद्यापति

आस ही अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढ़ाय दीनौ कीनौ खेल सौ यहै।
निपट कठोर ये हो ऐंचत न आप-ओर,
लाड़िले सुजान सौं दुहेली बसा को कहै।
अचिरजमई मोहिं भई घनआनन्द यौं,
हाथ साथ लाग्यो, पै समीप न कहूँ लहै।
बिरह समीर की झकोरनि अधीर, नेह
नीर भीज्यौ जीव, तऊ गुड़ीली उड़यौ रहै॥ 16॥

नोट

शब्दार्थ–आस ही अकास-मधि=आशा रूपी आकाश में। अवधि=निर्धारित समय रूपी डोर। चोपनि=उमंग। ऐंचन=खींचना। आप-ओर=अपनी ओर। लाड़िले=प्रिय। दुहेली=दुःखपूर्ण। साथ-साथ-लाग्यौ=साथ में रहने पर भी। लहै=प्राप्त करना, पाना।

प्रसंग–पतंग के समान ही प्रेमी का हृदय भी उड़ा उड़ा रहता है दूर जाने पर जैसे पतंग ठुमका देने पर डगमगाती है वैसे ही प्रेमी का हृदय भी भावी आशंकाओं से थर थर कम्पित हो रहा है। इस प्रकार यहाँ पतंग से हृदय के उड़ने में व्यतिरेक दिखाया गया है।

व्याख्या–आशा रूपी आकाश में अवधि रूपी डोर को बढ़ाकर उमंग से ऊपर चढ़ाकर आपने तो यह खेल सा बना दिया है। आप इतने कठोर हैं कि अपनी ओर खींचते ही नहीं। अब आप जैसे लाड़ले–बिगड़े हुए सुजान से इस दुःख पूर्ण दशा को कौन कहे? आप पर कुछ भी असर नहीं होता है। मुझे तो बड़ा अचरज हो रहा है कि आपके हाथ में पड़ा रहने पर भी मैं आपसे दूर हूँ। विरह रूपी वायु के झोंकों से व्याकुल होकर आँसू से भीगे रहने पर भी यह जीव पतंग की भांति उड़ता रहता है।

विशेष–इस कवित्त में अनेक मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। जैसे– गुण बढ़ाना, चोप चढ़ाना, खेल करना, हाथ लगा होना, आदि।

पाठान्तर

'आसति अकास मधि अवधि गुनै बढ़ाय।'

–बिहारी

घनआनन्द जीवनमूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूं दरसैं।
सुन जानियै धौं कित छाय रहे दृग-चातिग-प्रान तपे तरसै।
बिन पावस तौ, इन ध्यावस हो न, सु क्यौं करि ये अब सो परसै।
बदरा बरसै रितु मैं घिरि कै नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं॥ 17॥

शब्दार्थ–जीवनमूल=जल धारण करने वाले। कौंधन=बिजली की चमक। दृग-चातक-प्रान=नेत्ररूपी चातक के प्रान। ततै=विरह से तपकर। थ्यावस=धैर्य, चैन। सो परसै=उसका स्पर्श करें। बदरा=बादल। उघरी=खुली हुई।

प्रसंग–प्रिय परदेश चला गया है। उसका कोई समाचार भी नहीं है इसी कारण वर्षा-ऋतु की भाँति प्रेमी का रोदन है।

व्याख्या–आनन्द के घन जीवनदायक सुजान की कहीं भी झलक नहीं दीख पड़ती। न जाने वे कहाँ जाकर घुमड़ रहे हैं हमारे नेत्र रूपी चातक के प्राण उनके विरह में तरस रहे हैं। बिना कृपादृष्टि के इन नयन चातकों को भला कैसे धैर्य मिल सकता है– न जाने ये किस प्रकार उन्हें प्राप्त कर सकेंगे। बादल तो वर्षाऋतु में ही घिर कर बरसते हैं किन्तु मेरी ये आंखे तो नित-प्रति एकटक प्रियतम के पन्थ में खुली हुई बरसती रहती है।

अलंकार–श्लिष्ट रूपक, व्यतिरेक और विरोधाभास।

टास्क 'रावरे रूप रीति अनूप, नयो-नयो लागत है ज्यों-ज्यों निहारिए। पंक्ति का भाव स्पष्ट कीजिए।

जेतो घट सोधौं पै न पाऊँ कहाँ आहि सो धौं
को धौं जीव जार अटपटी गति दाह की।
धूम कौं न धरै, गात सीरो परै ज्यौं ज्यौं जरै
ढरै नैन-नीर, बीर, हरै मति आह की।
जतन बुझे हैं सब जाकी झर भागें, अब
कबहूं न दबै भरी भभक उमाह की।

नोट

जब तैं निहारे घनआनन्द सुजान प्यारे
तब तैं अनोखी आगि लागि रही चाह की॥18॥

शब्दार्थ–जेतो=जितना ही। घट=शरीर। सौधों=खोजती हूं। अटपटी=विचित्र। दाह=जलन। धरैं=धारण करना। बीर=हे सखी। हरै मति आह की=आह भी नहीं कर सकती। जतन=यत्न। बुझे है=नष्ट हुए है। झर=ज्वाला। दबै=शान्त होती। भभक=लपट। उमाह=उमंग

प्रसंग–प्रेमी की पूर्वराग से सम्बन्धित उक्ति है। इसमें साधारण अग्नि से प्रेम की अग्नि को अधिक भयंकर तथा विलक्षण बताया गया है।

व्याख्या–हे सखि! जितना ही शरीर में खोजती हूं पता नहीं चलता कि मेरे जीव को कौन जला रहा है– यह आग कहां से जल रही है? इस जलन की गति भी बड़ी विचित्र है सामान्य आग में तो धुआँ होता है– पर इसमें धुआँ भी नहीं उठता। ज्यों-ज्यों आग लगती है, शरीर शीतल पड़ता जाता है। आँखों से पानी टपकता है जो आह भरने की मति को भी नष्ट कर देता है। इस ज्वाला में सभी इसे बुझाने के यत्न बुझ गये हैं कोई उपाय काम नहीं देता। अब तो यह दबती ही नहीं। उमंग की भड़क इसमें भर गई है। जब से उस प्राण-प्यारे आनन्द के घन सुजान-प्रियतम को देखा है तब से प्रेम की अनोखी आग मेरे हृदय में लग रही है।

विशेष–यहां प्रेम की आग को सामान्य आग से विलक्षण बताया गया है।

अलंकार–यमक, पुनरुक्तिप्रकाश, व्यतिरेक, विरोधाभास, विषम, श्लेष, अनुप्रास, छेकानुप्रास और पदमैत्री।

तुलना

'शायद इसी का नाम मुहब्बत है शेफ़्ता,
एक आग सी है दिल में हमारे लगी हुई।'

–गालिब

आँखे जौ न देखैं, तौ कहा हैं, कछु देखति ये
ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखियै।
प्रानन के प्यारे जान रूप-उजियारे, बिना।
मिलन तिहारे इन्हें कौन लेखे लेखियै।
नीर-न्यारे मीन औ चकोर छंदहीन हूं ते
अति ही अधीन दीन गति मति पेखियै।
हौ जू घनआनन्द ढरारे रसभरे भारे
चातिक बिचारे सों न चूकनि परखियै ॥ 19 ॥

शब्दार्थ–दुःखहाइनि=दुखिया। जान=सुजान। रूप-उजियारे=उज्ज्वल रूप वाले। लेखियै=लिखिए। पेखियै=समझिये। ढरारे=पसीजने वाले, द्रवीभूत होने वाले। चूकनि=भूल कर। परखियै=परीक्षा लेना।

प्रसंग–प्रस्तुत कवित्त में नायिका की विरह-जनित दशा का अत्यन्त दयनीय चित्र है। नायिका चातक के समान निरन्तर जोहने वाली अपनी आंखों का दुख-दर्द सुनाकर प्रियतम को आकर्षित करना चाहती है। अपनी आंखों की तुलना वह मीन से भी देती है जिससे यदि उसने कभी चकोर तथा मीन की दैन्य स्थिति को देखा होगा तो वह तुरन्त कम से कम मेरी आँखों की दयनीय स्थिति देखने अवश्य आएगा।

व्याख्या–यदि आँखें आपको नहीं देखतीं तो और कहीं फिर क्या देखती हैं? अर्थात् आपको छोड़ कर और देखने योग्य है ही क्या? मुझ दुखिया की अवस्था आप तनिक आकर देखिये तो सही। हे प्राणों के प्यारे सुन्दर सुजान तुमसे मिले बिना इन आंखों को आंखें कहेगा कौन? आंखों की सार्थकता प्रिय तथा सुन्दर पदार्थ को देखने में ही है, जल के बिना तड़पती हुई मछली और चन्द्रमा के विरह में छटपटाते हुए चकोर से भी अधिक मेरी व्याकुलता बढ़ रही है। मेरी हालत अपनी आँखों से आकर देखिये, विचार लीजिये। हे आनन्द के घन! प्राण-प्यारे प्रियतम तुम तो शीघ्र ही द्रवित होने वाले रसिक हो, इस बेचारे चातक की (मेरी) भूलकर भी परीक्षा मत लीजिये अर्थात् शीघ्र आइये। मैं आपके बिना नहीं रह सकूँगी।

नोट

तुलना

'बावरी वे अखियाँ जरि जायें,
जो साँवरों छाँड़ि निहारति गोरो।'

\+ + + –ठाकुर

'दिल को क्या जिसको नहीं तेरी तमन्नाए विसाल,
चश्म को क्या जिसको तेरी दीद की हसरत ही नहीं।

–ज़ौक

जहाँ तें पधारे रे नैननि ही पावं धारे
वारे ये बिचारे प्रान पैंड़ पड पै मनौ
आतुर न होहु हा हा नेकु फैंट छोरि बैठो
मोंहि वा बिसासी को है ब्यौरो बूझिवों घनौ।
हाय निरदई कों हमारी सुधि कैसे आई
कौन बिधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित कचाई पाक्यौ
ताके गुनगन घनआनन्द कहा गनौ॥20॥

शब्दार्थ–पैंड़-पड=पग-पग पर। नेकु=तनिक। फेंट छोरि=फेंटा खोल कर। बिसासी=विश्वासघाती। ब्यौरो=समाचार। घनौ=अत्यधिक भनौ=कहो। छाक्यों=छका हुआ। हित कचाई=प्रेम के कच्चेपन में पाक्यौ=पका हुआ। गुनगन=गुण के समूह। गनौ=गिनूँ।

व्याख्या–प्रिय के यहां से कोई दूत पत्र लेकर आया है, उसी से प्रेमिका कह रही है–वह प्रियतम जहां से भी गया मेरी आँखों पर पांव रखकर गया अर्थात् मेरे देखते-देखते हर बार मुझे छोड़ कर गया। मेरे ये भोले प्राण पग-पग पर उस पर न्यौछावर होते रहे। हे दूत! तुम शीघ्रता मत करो, तनिक फेंटा खोल कर आराम से बैठो, मुझे उस विश्वासघाती के सम्बन्ध में बहुत कुछ पूछना है। उस निष्ठुर को हमारी याद कैसे आ गई? बताओ तो हमारे ऊपर दया कर उसने यह पाती कैसे भेज दी? वह तो झूठ की सच्चाई में छका हुआ है तथा प्रेम के कच्चेपन में पका हुआ है। मैं उसके गुणों के (लक्षणा से अवगुणों का) कहां तक बखान करूँ? यदि उसमें किसी बात की सच्चाई है तो झूठ की। इसी प्रकार यदि वह किसी बात में पक्का है तो केवल प्रेम के कच्चेपन में।

अलंकार–अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, विरोधाभास, काकुवक्रोक्ति और उत्प्रेक्षा।

घनआनन्द रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित।
मरत पपीहा-नैन, दरसौं पै बरसो नहीं ॥ 21॥

शब्दार्थ–रस-ऐन=रस का सागर। कौन हित=यह कैसा प्रेम है। पपीहा नैन=नेत्र रूपी चातक।

व्याख्या–हे आनन्द के घन, रस के सागर, कृपानिधि, प्रियतम कहो तो यह कैसा प्रेम है? मेरे नैन रूपी चातक प्यास से तड़प रहे हैं। तुम देख रहे हो और फिर भी नहीं बरसते।

इसका दूसरा अर्थ भी हो सकता है– 'हे अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले, प्रेम के घर, कृपा के सागर! यहाँ कैसा प्रेम है कि पपीहे रूपी नेत्र तो (प्रेम की पिपासा) मरे जा रहे हैं किन्तु तुम दिखाई देते हुए भी द्रवीभूत नहीं होते।

अलंकार–रूपक, अनुसार और श्लेष

पहचानै हरि कौन, मो से अनपहचान को।
त्यौं पुकार मधि-मौन, कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं ॥ 22॥

शब्दार्थ–अनपहचान=अपरिचित।

नोट

प्रसंग–भक्त का दैन्य-भाव प्रकट हो रहा है।

व्याख्या–हे हरि! मुझ जैसे अपरिचित की आपको कैसे पहचान हो सकती है–क्योंकि मेरी पुकार उसी प्रकार मौन में छुपी है जिस प्रकार आप देखकर ही सब कुछ बिना सुने ही समझ जाते हैं। उसी प्रकार मैं भी मौन रह कर अपनी सारी व्यथा तुमसे कह देता हूं– लेकिन अचरज है, इस विशेषता के होते हुए भी आप मेरी मौन पुकार पर ध्यान नहीं देते।

अलंकार–विरोधाभास।

छन्द–यह अर्धसम मात्रिक छन्द है। इसका पहला-तीसरा तथा दूसरा-चौथा चरण समान होता है। सभी चरण समान होने पर सम; दो-दो चरण समान होने पर अर्धरूप छन्द कहलाते हैं। पहले-तीसरे चरण विषम तथा दूसरे-चौथे चरण सम कहलाते हैं। विषम में 11 तथा सम में 13 मात्राएँ। सौराष्ट्र में अधिक प्रचलित होने के कारण इसका नाम सोरठा पड़ा है।

तुलना

'आँखिन तैं एक वो सुभाव सुनिवै कौ लियो,
कानन तैं एक देखिबे की टेक धारी है।'

–रत्नाकर

आसा-गुन बाँधि कै भरोसो-सिल धरि छाती।
पूरे पन-सिंधु मैं न बूड़त सकायहौं।
दुख-दव हिय जारि, अतर उदेग-आंच
रोम रोम त्रासनि निरंतर तचायहौं।
लाख लाख भांतिन की दुसह दसानि जानि
साहस सहारि सिर आरे लौं चलायहौं।
ऐसैं घनआनन्द गही है टेक मन मांहि
एरे निरदई तोहि दया उपजायहौं॥ 23॥

शब्दार्थ–आसा-गुन=आशा रूपी डोर। भरोसे-सिल=विश्वासरूपी शिला। पूरे=पूर्ण। पन-सिंधु=प्रेम की प्रतिज्ञा के सागर में। बूड़त=डूबते हुए। न सकायहौं=शंकित न होऊँगी। दुख-दब=दुःखरूपी दावानल। उदेग आँच=उद्वंगरूपी अग्नि। त्रासि=पीड़ाओं से। तचायहौं=तपाऊंगी। सहारि=बटोरकर। अरे=लकड़ी चीरने का एक औजार, आरा।

प्रसंग–यह मनोवैज्ञानिक उपचार है कि जब ऐसा कोई व्यक्ति जिसे हम अपना आत्मीय समझते हैं और वह हमारी इच्छानुकूल कार्य नहीं करता तो वह अपने आत्मीय के नेत्रों के सामने अनन्त यातनाएँ सहन करने का नाटक (वास्तविक) करता है, परिणामतः उसका हृदय द्रवित हो जाता है। प्रस्तुत छन्द में प्रेमिका का प्रिय भी अत्यन्त कठोर है, इसीलिए प्रेमिका विचार करती है कि यदि निष्ठुर प्रेमी के सामने यातनाएँ सहूं तो हो सकता है यह मुझ पर दया कर दे!

व्याख्या–आशारूपी रस्सी बांध कर, छाती पर विश्वास का पत्थर रख कर अपनी प्रतिज्ञा के गहन सागर में डूबते हुए मैं तनिक भी शंकित न होऊँगी। दुख के दावानल से हृदय को जलाकर अन्तर में उद्वेग की आग लगाकर शरीर के एक-एक रोम को पीड़ाओं से निरन्तर तपाऊँगी। लाखों पुकार से अपनी असह्य अवस्था को जानबूझकर भी साहस बटोरकर सिर पर आरे की भांति उन विपत्तियों को चलाऊँगी अर्थात् उन सभी कष्टों को साहसपूर्वक झेलूंगी। हे प्रियतम! मैंने मन में ऐसा प्रण कर लिया है कि तुम्हारे निर्दय हृदय में दया उत्पन्न करके ही मानूंगी।

विशेष–प्रेमी बतलाना चाहता है कि प्रेम के मार्ग में शारीरिक कष्ट बाधा नहीं बन सकते। प्रेम पर सभी सांसारिक सुखों को बलिदान कर देने से प्रेम में निखार आता है।

मान तोड़ने के लिये अपने शरीर को अनेक यातनाएँ देना तथा प्रिय को जहर खाने तथा मरने की धमकी देना काव्य-शास्त्र में 'रसान्तर' कहलाता है।

नोट

यह पाँच प्रकार का होता है–

(1) साम–प्रिय वचन

(2) दाम–लोभ दिखाना

(3) दण्ड–उपेक्षा

(4) भेद–सखियों का सहयोग

(5) नीति–नतमस्तक होना

अलंकार–सांग रूपक, अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश और यमक।

तुलना

'चिंता ज्वाल सरीर बन, दाहा लगि लगि जाइ।
प्रगट धुंआं नहिं देखियै, उरअंतर धुधुआई
उरअंतर धुधुआइ, जरै जस काँच की भट्टी।
हाड़-मांस जरि जाइ, रहै बस केवल ठट्टी।
कहै गिरधर कबिराय, सुनौ रे मेरे मिंता।
वे नर कैसे जियैं, जासु उर व्यापी चिंता।

–गिरिधर राय

अंतर-आंच उसास तचै अति, अंग उसीज उदेग की आवस।
ज्यौं कहलाय मसोसनि ऊमस क्यों हूं कहूं सु धरै नहिं थ्यावस
नैन उधारि दियें बरसैं घनआनन्द छाई अनोखियै पावस।
जीवनिमूरति जान को आनन है बिन हेरें सदाई अमावस ॥ 24 ॥

शब्दार्थ–अंतर-आंच=भीतर की आग से। उदास=उच्छ्वास, साँस। तचै=तपना। उसीजै=उबलता है। उदेग=उद्वेग, व्याकुलता। आवस=भाप। ज्यौं=जीव। कहलाय=शिथिल पड़ जाता है, तिलमिलाता है। मसोसनि ऊमस=मसीसनै की उमस से। क्यौ हूं=किसी प्रकार भी। थ्यावस=धैर्य। धारि-दियै=मूसलाधार। हरै=देखे।

प्रसंग–पावस-ऋतु-वर्णन के माध्यम से प्रेमी के वियोग का आत्यन्तिक चित्रण है।

व्याख्या–हृदय के भीतर की आग से उच्छ्वासें अत्यन्त तपी हुई निकलती हैं। व्याकुलता की भाप से शरीर पसीजा जा रहा है। कचोटने की उमस से जी घबरा रहा है। तभी तो उसे धैर्य नहीं मिलता, चैन नहीं पड़ता। नयनों से मूसलाधार आंसू बरस रहे हैं। घनानन्द कहते हैं कि अनोखी वर्षाऋतु छा गई है। जीवन की परम मूर्ति सुजान प्रिय का मुख देखे बिना सदैव मेरे हृदय पर दुखों की अमावस्या ही छाई रहती है।

अलंकार–अनुप्रास

तुलना

निसिदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस रितु हमपै, जबतें स्याम सिधारे।

–सूर

जान के रूप लुभाय कै नैननि बेंचि करी अधबीच हो लौडी।
फैलि गई घर बाहर बात सु नीकैं भई इन काज कनौंडी।,

नोट

क्यौं करि थाह लहै घनआनन्द चाह नदी तट ही श्रति श्रौंडी।
हाय दई! न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौंडी ॥25॥

शब्दार्थ–बेचि=बेचकर। अधबीच=मंझधार में। लौंडी=बालिका कनौंड़ी= बदनाम। थाह=गहराई। चाह-नदी=प्रेम रूपी नदी। औंडी=गहरी। बाजति=बजती है। डौंडी=डुगडुगी, घोषणा।

प्रसंग–जिस प्रकार लेनदार और देनदार के बीच में ठीक सौदा पटाने के लिए दलाल का महत्त्व अक्षुण्ण है, उसी प्रकार दो प्राणियों में प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए नेत्र दलाल का कार्य करते हैं। इस सम्बन्ध में उनका महत्त्व असंदिग्ध है।

व्याख्या–उस सुजान प्रियतम के सुन्दर रूप पर रीझ कर इन नयनों ने मंझधार में ही मुझ बालिका को लाकर दूसरे के हाथ बेच दिया है। घर तथा बाहर हर जगह बात फैल गई है। इनके कारण मेरी अच्छी बदनामी हुई। घनानन्द कहते हैं कि भला इस प्रेमी-सरिता की थाह कोई कैसे पाये? यह तो किनारे पर ही अत्यन्त गहरी है अर्थात् प्रेम के आरम्भ में ही अनेक कठिनाइयाँ है। मेरे प्रेम की डुगडुगी संसार में बज रही है अर्थात् मैं हर जगह बदनाम हो गई हूं, लेकिन फिर भी वह विश्वासघाती कुछ सुनता नहीं है।

अलंकार–श्लेष, रूपक, विशेषोक्ति तथा छेकानुप्रास।

जानराय, जानत सबैं, अंतरगत की बात।
क्यों अजान लौं करत फिरि, मो घायल पर घात ॥26॥

शब्दार्थ–जानराय=सुजानराय, सज्जनों में श्रेष्ठ। अंतरगत=हृदय। अजान लौं=अपरिचित की तरह। घात=आघात।

व्याख्या–सज्जनों में श्रेष्ठ सुजान प्रियतम, मेरे अन्तर की पीर को तुम भली भाँति जानते हो फिर क्यों अपरिचितों का-सा व्यवहार कर मुझ घायल पर अघात कियो जा रहे हो।

लै ही रहे हौ सदा मन और को देबो न जानत जान दुलारे।
देख्यौ न हे सपने कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे।
कैसो संजोग वियोग धौं आहि! फिरौ घनआनन्द ह्वै मतवारे।
मो गति बूझि परै तब ही जब होहु घरीक हू आप तें न्यारे ॥27॥

शब्दार्थ–लैं ही रहे हौ=लेते ही रहे हो। और को=दूसरे का। देबौ=देना। जान=सुजान। दुलारें=प्यारे। बूझि परै=जान पड़ता। घरीक=घड़ी भर के लिये।

प्रसंग–प्रस्तुत छन्द में प्रिय के सुख और अपने दुःख की वैषम्यपूर्ण स्थिति का चित्र खींचते हुए प्रिय का अपने दुःख की ओर ध्यान आकर्षित करने का लक्षणा के माध्यम से आग्रह किया है।

व्याख्या–तुम सदा दूसरे का ही मन लेते रहे हो, प्यारे सुजान अपना मन दूसरे को देना नहीं जानते। तुमने सपने में भी कभी दुःख को नहीं देखा है। संकोच और शोक से रहित तुम सदा सुख में रहे हो। तुम नहीं जानते कि संयोग और वियोग में कैसी दिल पर बीतती है, तुम तो सदा मतवाले हुए घूमते रहते हो। मेरी दशा तुम तब ही समझ सकते हो जब पल भर के लिये अपने से अलग हो जाओ अर्थात् अपने को भूल जाओ।

अलंकार–श्लेष तथा छेकानुप्रास।

तुलना

'दिखाई दिये यूं कि बेखुद किया।
हमें आपसे भी जुदा कर चले॥'

× × × **–मीर**

'उसे ढूँढते मीर खोये गये।
कोई देखे उस जुस्तजू की तरफ।'

–मीर

नोट

खोय दई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हंसै उनमाद जग्यौ है।
मौन गहै, चकि चांकि रहै, चलि बात कहै तै न दाह दग्यै है।
जानि परै नहि जान, तुम्है लखि ताहि कहा कधु आहि खग्यौ है।
सोचनि हो पचियै घनआनन्द हेत पग्यौ किधौं प्रेत लग्यौ है॥28॥

शब्दार्थ–बुधि=बुद्धि। सुधि=होश। चकि चाकि रहै=चकित हो कर चौंक पड़ती है। न दाह दग्यौ है=आग नहीं लगती। आहि खग्यौ है=क्या हो गया है। सोचनि=सोच-सोच कर। पचियै=थक गई। हेत पग्यौ=प्रेम में पली है।

प्रसंग–किसी व्यक्ति पर भूत चढ़ना और प्रेम करना समान है। दोनों अवस्थाओं में मनःस्थिति में कोई अन्तर नहीं होता।

व्याख्या–यहाँ प्रेमी की उन्मादावस्था का एकीकरण प्रेत लगने की दशा के साथ किया गया है। सुजान प्रियतम से एक सखी उसकी प्रिया का हाल कहती है। उसने तो अपनी समस्त बुद्धि खो दी है अर्थात् वह चेतनाशून्य हो गई है। उसके होश जैसे सुषुप्त हो गये हैं। कभी रोती है, कभी हँसती है। न जाने कैसा उन्माद उसके हृदय में जागृत हो गया है? कभी बिल्कुल चुपचाप पड़ी रहती है, कभी चौंक-चौंक उठती है। बात चलने पर केवल एक ही वाक्य बोलती है– "क्या तूने ये आग नहीं लगाई है?" अथवा तुम्हारी बात चलते ही कहती है कि अब शरीर नहीं जल रहा। हे सुजान समझ नहीं आता कि तुम्हें देखने के पश्चात् न जाने उसे क्या हो गया है। हम तो सोच-सोच कर मर गईं, पता नहीं चलता कि वो प्रेम में पगी है कि कोई भूत-प्रेत उसके साथ लगा है।

अलंकार–अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

तुलना

प्रेम दिवाने जे भये, कहैं बहकते बैन,
'सहजो' मुख हांसी छुटै कबहूं टपकै नैन।

–सहजोबाई

'भूली सी, भ्रमी सी, चौंकी, जकी सी, थकी सी गोपी,
दुखी सी रहति, कछु नाहीं सुध देह की।
मोही सी, लुभाई, कछु मोदक सी खायें सदा,
बिसरी सी रहै, नैकु खबर न गेह की।
रिस भरी रहै, कबौं फूलि न समाती अंग,
हंसि रहै बात करै अधिक उमेह की।
पूंछे ते खिसानी होय, उतर न आवै ताहि,
जानी हम जानी है निसानी या स्नेह की।

–भारतेन्दु

थोर घबरानी उबरानी ही रहति घन
आनन्द आरति-रातौ साधनि मरति हैं।
जीवन अधार जान-रूप के अधार बिन
व्याकुल बिकार-भरी खरी सु जरति हैं।
अतन जतन तें अनखि अरसानी बीर,
प्यारी पीर-भीर क्यों हूँ धीर न धरति हैं।
देखियै दसा असाध अखियाँ निपेटनि की
भसमी विथा पै नित लंघन करति हैं॥29॥

नोट

शब्दार्थ–घेर=रोग। उबरानी=ऊबी। आरति-राती=दुख में रंगी हुई। साध=साधना, इच्छा। खरी=अत्यन्त। अतन=कामदेव। अतन जतन तें=कामजन्य उपचारों से। अनखि=अनखाकर, चिढ़कर। अरसानी=उदास हो गई है। बीर=हे सखि। पीर-भीर=अत्यधिक पीड़ा। असाध=असाध्य। निपेटनि=अधिक खाने वाले। भस्मी बिथा=भस्म कर देने वाली व्याकुलता, भस्मक रोग जिसके होने से आदमी को भोजन शीघ्र ही पचता है तथा हर समय भूख लगी रहती है। लंघन=भोजन करना।

प्रसंग–दूती अथवा सखी के माध्यम से प्रिय के प्रति अपनी आँखों की वेदना का वियोगिनी का निवेदन है।

व्याख्या–रोग से घिरी हुई घबराकर ये सदा ऊबी रहती है। घनआनन्द कहते हैं कि ये विरह में पड़ी साधना में पचती रहती है। जीवन के आधार सुजान प्रियतम के रूप में देखे बिना अनेक विकारों से भरी हुई आँखें व्याकुल होकर सदा जलती रहती हैं। हे सखी! नेत्रोपचार से चिढ़कर उसने उदास हो मुँह फेर लिया है। वेदना के आधिक्य से वह प्रिय सखी किसी प्रकार भी धीरज नहीं धर पाती है। इन पेटू आंखों की असाध्य दशा तो देखिये– एक तो ये स्वभाव से ही अधिक खाने वाली हैं अर्थात् रूप को बार बार देखकर भी तृप्त नहीं होतीं और अब इन्हें भस्मी रोग लगा है जिससे भूख और भी भड़क उठती है तिस पर ये आजकल लंघन कर रही है अर्थात् प्रियतम के दर्शन इन्हें नहीं हो रहे हैं।

विशेष–प्रस्तुत छन्द से कवि का आयुर्वेदिक ज्ञान परिलक्षित होता है। आयुर्वेदिक के अनुसार भस्मक रोग में भोजन तुरन्त पच जाता है। अधिक और सूखा भोजन करने से कफ क्षीण हो जाता है, जठराग्नि तीव्र हो जाती है किन्तु जो कुछ व्यक्ति खाता है वह तुरन्त भस्म हो जाता है, परिणामतः शौच नहीं आता और व्यक्ति शीघ्र ही ससांर से विदा हो जाता है।

अलंकार–विरोधाभास, अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा छेकानुप्रास।

क्या आप जानते हैं घनानंद की कविता उनकी प्रेयसी 'सुजान' को समर्पित है।

बिकच नलिन लखें सकुचि मलिन होति,
ऐसी कछू आंखिन अनोखी उरझनि है।
सौरभ समीर आएँ बहकि दहकि जाय,
राग-भरे हिय मैं बिराग-मुरझनि है।
जहाँ जान प्यारी रूप-गुन को न दीप लहै,
तहा मेरे ज्यौ परै विषाद-गुरझनि है।
हाय अटपटी दसा निपट चटपटौ सो,
क्यौ हूँ घनआनन्द न सूझै सुरझनि है ॥ 30 ॥

शब्दार्थ–बिकच=विकसित। नलिन=कमल। लखें=देखकर। उरझनि=उलझन। सौरभ=सुगन्धित। समीर=वायु। दहकि=जलना। राग भरे=प्रेम-भरे। मुरझनि=मुरझाना। ज्यौ=जीव। विषाद=गुरझनि=दुख की उलझनें, गाँठे। अटपटी=अनोखी। निपट=अत्यधिक। चटपटी=शीघ्रता। सूझै=दिखाई देना। सुरझनि=सुलझाव।

प्रसंग–'संयोगावस्था में जो उद्दीपन सुखदायी होते हैं वियोगावस्था में वे ही दुखदायी होते हैं।'

व्याख्या–खिले हुए कमल को देखकर संकुचित होकर कान्तिहीन हो जाती है। आँखों के साथ कुछ ऐसी अजीब उलझन आ लगी कि सुगन्धित वायु के लगने से जलन उत्पन्न होती है तथा प्रेम से भरे हृदय में विराग की मुरझाहट छा जाती है। जहां सुजान प्रियतम के रूप तथा गुणों का दीपक नहीं जलता वहाँ मेरे जी में विषाद की गांठे पड़ जाती हैं। हाय मेरी दशा तो दिन-ब-दिन शीघ्रता से अटपटी होती जा रही है। कोई समाधान भी तो नहीं सूझता।

विशेष–'संयोगावस्था में जो उद्दीपन सुखदायी होते हैं वियोगावस्था में वे ही दुखदायी होते हैं।' इसी मूल सत्य का उद्‌घाटन इस कवित्त का वर्ण्य विषय है। कारण, प्रियतम के संग होने पर जो चाँदनी मन में शीतलता उत्पन्न करती

नोट

थी; पुष्पित कमल आदि हृदय में उद्वेग पैदा करते थे वहीं उनके अभाव में केवल स्मृतियां मात्र रह जाते हैं। प्रेम की ऐसी स्मृतियां निश्चय ही दुखदायी होती हैं, अतः ऐसे उद्दीपनों का दुखदायी होना स्वाभाविक ही होता है।

तब ह्वै सहाय हाय कैसे धौं सुहाई ऐसी,
सब सुख संग लै विछोह-दुख दै चले।
सींचे रस-रंग अंग-अंगनि अनंग सौंपि,
अन्तर मैं विषम विषाद-बेलि बै चले।
क्यौं धौं ये निगोड़े प्रान जान घनआनन्द के
गौहन न लागे जब वे करि बिजै चले।
मति ही अधीर भई पीर-भीर घेरि लई,
हेली मनभावन अकेली मोहिं कै चले॥ 31॥

शब्दार्थ–ह्वै=होकर। सहाय=सहायक। विछोह-दुख=वियोग का दुख। विषाद-बेलि=दुख की बेला। बै=बोकर। निगोड़े=निष्ठुर। मोहन=साथ। विजै=विजय। पीर-भीर=दुख के आधिक्य ने। हेली=हे सखि।

प्रसंग–प्रियतम के अभाव से पीड़ित होकर सखी को प्रेमिका निवेदन कर रही है।

व्याख्या–पहले मेरे सहायक (साथी) कहलाकर न जाने उन्हें कैसे यह बात अच्छी लगी कि मेरे समस्त सुखों को लेकर मुझे वियोग का दुख देकर वे बिछुड़कर चले गये। प्रेम रस के माधुर्य से मेरे हृदय को खींचकर मेरे अंग-प्रत्यगों को कामदेव को सौंपकर दुख की बेल बोकर न जाने कहाँ चले गये। न जाने मेरे यह निष्ठुर प्राण तब उनके साथ ही क्यों न चल दिए जब वे इन्हें जीत कर जाने लगे थे अर्थात् मेरे प्राण उनके बिछुड़ते ही छूट क्यों न गये। मैं अत्यन्त बेचैन हो रही हूं। दुख के आधिक्य ने मुझे घेर लिया है। हे सखि मेरे प्रियतम मुझे अकेली छोड़कर चले गये।

अलंकार–रूपक, अनुप्रास, यमक, श्लेष, पदमैत्री।

तुलना

1. "माई म्हारी हरि न बूझी बात।
   पिंड मां सूँ प्राण पायों, निकसि क्यूँ णा जात।"

–मीरा

2. "नहिं जानि परै कछु या तन को,
   केहि मोहते पापी न प्रान तजै।"

–हरिश्चन्द्र

रोम रोम रसना ह्वै लहै जो गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी, निबरैं न मैन-आरत।
ऐसे दिनदीन पै दया न आई दई तोहि।
विष-भोया विषम वियोग-सर मारतै।
दरस-सुरस-प्यास भांवरे भरत रहौं,
फेरियै निरास मोहिं क्यौं धौ यौंऽब द्वार तैं।
जीवन-अधार घनआनन्द उदार महा,
कैसें अनसुनी करी चातिक-पुकार तै ॥ 32॥

शब्दार्थ–रोग=रोंगटे। रसना=जीभ। गिरा=वाणी। तऊ=तो भी। निबरै न =खत्म न हो। मैन-आरत=कामजन्य पीड़ा। दिनदीन=सदैव दीन। विष भोयो=जहर में बुझा हुआ। विषम=तीक्ष्ण, कटु। दरस-सुरस-प्यास=दर्शन रूपी मधु रस की प्यास। भंवर=चक्कर।

व्याख्या–यदि प्रत्येक रोम जीभ का गुण धारण कर बोलने लगे तो भी मेरे हृदय की कामजन्य पीड़ा समाप्त न हो। अर्थात् पीड़ा इतनी अधिक है कि प्रत्येक रोम वाणी धारण कर बखान करे तो भी उसका अन्त न हो। हे निर्दयी

नोट

प्रियतम! ऐसे निरन्तर दुखी अपने प्यारे पर तुम्हें तनिक भी दया नहीं आई जो इस प्रकार जहर में बुझा वियोग का तीर हृदय में मार कर चले गये। मैं तुम्हारे दर्शन रूपी मधुर रस की प्यास में सदैव चक्कर काटता रहता हूं। तुम मुझे अपने द्वार से निराश कर क्यों लौटा रहे हो। हे मेरे जीवन के आधार! आनन्द के महान् उदार घन! चातक की करुण पुकार को तुम यों अनसुनी मत करो।

अलंकार–अनुप्रास, श्लेष, रूपक, पुनरुक्ति तथा अतिशयोक्ति।

तुलना

1. प्रीति जो लागि घुल गई बैठि गई मन मांहि।
रोम रोम पिउ पिउ करै, मुख की सरणा नाहिं॥

–कबीर

2. हाड़ भये सब किगरी नसें भईं सब तांत।
रोम-रोम सौं धुनि उठै, कहौ बिथा केहि भाँति॥

–जायसी

चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही कौं,
सूर पन-पूरे जिन्हैं विष सम अमी है।
प्रफुलित होत भान के उदोत कंज-पुंज,
ता बिन बिचारनि ही जोति-जाल तमी है।
चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनन्दघन,
प्रीति-रीति विषम सु रोम रोम रमी है।
मोंहि तुम एक, तुम्हें मो सम अनेक आहिं,
कहा कछू चन्दहिं चकोरन की कमी है ॥ 33 ॥

शब्दार्थ–चुहल=हंसी-ठिठोली, दिल्लगी। सूरे=शूरवीर। पन-पूरे=प्रण को पूरा करने वाले। अमी=अमृत। प्रफुलित=खिलना। भान=भानु, सूर्य। उदोत=उदित होने पर। कंजापुंज=कमलों के समूह। ता बिन=उसके बिना। विचारनि=विचारना। तमी=रात्रि। अनचाहौ=न चाहौं। आहि=हैं।

प्रसंग–प्रेमी की एकनिष्ठता द्रष्टव्य है।

व्याख्या–प्रेमी चातक सदैव स्वाति नक्षत्र के जल की ही कामना करता है। जो शूरवीर हैं, अपने प्रण को पूरा करना जानते हैं, उन्हे अपना प्रण पूरा किए बिना अमृत भी विष के समान है। अर्थात् अमृत-पान करने से उनकी मर्यादा भंग होती है तथा वे उसे भी जहर समझते हैं। सूर्य के उदित होने पर ही कमल-कुंज खिलते हैं। सूर्य के बिना प्रकाश का विचार करना भी उनके लिए तमिस्र ही है। अर्थात् सूर्य के प्रकाश को छोड़ अन्य सभी कृत्रिम प्रकाश उनके लिए तम ही हैं। हे प्राणों के प्यारे सुजान-प्रियतम! तुम हमें चाहो अथवा न चाहो लेकिन हमारे तो रोम-रोम में आपकी प्रीति रम चुकी है। मुझे तो तुम्हारा ही सहारा है। भले ही तुम्हें मुझ जैसे अनेक मिल जायें। चन्द्रमा को चकोरी की क्या कमी? लेकिन बेचारे चकोर का तो एक ही चन्द्रमा है।

विशेष–प्रस्तुत कवित्त में प्रेम की अनन्यता का सुन्दर चित्रण है। चातक, कमल और चकोर के उदाहरण द्वारा कवि प्रेम के आदर्श रूप को व्यक्त करना चाहता है।

अलंकार–अनुप्रास

तुलना

1. 'साईं तुम जनि बीसरो लाख लोग मिल जाहिं।
हमसे तुमको बहुत हैं तुमसे हमको नाहिं॥"

–कबीर

नोट

2. "तुम्ह से तुम्हहिं नाथ मोकौं,
मोसे जन तुम्हकौं बहुतेरे।"

–तुलसी

जीवन हौ जिय की सब जानत जान कहा कहि बात जतैयै।
जो कछु है सुख संपति सौंज सु नैसिक ही हँसि दैन मैं पैयै।
आनन्द के घन, लागै अचम्भौ पपीहा-पुकार तें क्यो अरसैयै।
प्रीतिपगी अँखियानि दिखाय कै हाय अनीत सु दीठि छिपैयै ॥ 34 ॥

शब्दार्थ–जीवन=प्राण। जिय=हृदय। कहा कहि=क्या कहकर। जतैये=बताऊँ। सौंज=सामग्री। नैसिक=तनिक सी। पैयैं=प्राप्त करना। अरसैयै=आलस्य करना। प्रीति-पगी=प्यार में डूबी। दीठि=दृष्टि।

व्याख्या–हे प्रियतम सुजान प्यारे। तुम मेरे प्राणों के प्राण हो, मेरे हृदय की सब बातें जानते हो। मैं तुम्हें फिर क्या कहकर अपनी दशा बताऊँ। जो भी कुछ सुख-सौरभ की सामग्री है वह मैं तुम्हारी एक मुस्कान में ही पा लेता हूं। हे आनन्द के घन मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि पपीहे की भाँति मेरी करुण पुकार सुनकर भी आप मिलने में क्यों इतने अलसा रहे हैं। प्यार में डूबी आंखें दिखा, मुझे मोहित कर अब आंखें बचाकर जा रहे हो–ऐसा अन्याय क्यों करते हो?

अलंकार–अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा 'जानत-जान' में संभग पद।

तुलना

"कागज पर लिखत न बनत कहत संदेस लजात।
कहि है सब तेरो मेरे हिय की बात॥"

–बिहारी

चोप चाह चावनि चकोर भयौ चाहत ही,
सुषमा-प्रकास मुख सुधाधर पूरे को।
कहा कहौं कौन कौन विधि की बँधनि बँध्यौ,
सु कस्यौ न उकस्यौ बनाव लखि जूरे को।
जाही जासी अंग पर्‌यौ ताही गरि गरि सर्‌यौ,
हर्‌यौ बल बापुरे अनंग-दल-चूरे को।
अब बिन देखैं जान प्यारे यौं अनन्दघन,
मेरो मन भँवै भटू, पात ह्वै बधूरे को ॥ 35 ॥

शब्दार्थ–चोप=उमंग, लालसा। चाह=प्रेम। चावनि=चाव में। सुषमा-प्रकास=सौन्दर्य रूपी प्रकाश। मुख सुधाधर=मुख रूपी चन्द्रमा। पूरे=पूर्ण। बंधनि=बंधन में। सु कस्यो= भली प्रकार कहा गया। उकस्यों=निकलना, छूटना। अनंग-दल-चूरे=काम की सेना से चूर-चूर हुआ। भवें=भ्रमण करता है। भटू=सखि। पात ह्वै=पत्ता होकर। वधूरे=बवंडर।

प्रसंग–यह कवित्त पूर्णानुराग से सम्बन्धित है।

अर्थ–हे सखे! प्रेम की उमंग के चाव में भर कर मेरा मन प्रियतम के मुख रूपी पूर्ण चन्द्रमा के सौन्दर्य रूपी शीतल प्रकाश को पीने वाला चकोर हुआ चाहता है। क्या बताऊँ यह (मन) न जाने किस तरह के बन्धन में बंध गया है। उसके जूड़े के बनाव को देखकर उसमें भली प्रकार कस गया है, निकल नहीं पाता। प्रियतम के जिस-जिस अंग पर भी यह गया लौटकर नहीं आया, वहीं गिर कर गल-गलकर नष्ट हो गया। अर्थात् वहीं पड़ा तड़पता रहा। कामदेव की सेना द्वारा चूर-चूर किया गया यह अपनी सारी शक्ति गंवा बैठा। अब तो प्राणों के प्यारे आनन्द के घन सुजान को देखे बिना यह मन बवण्डर में फंसे पत्ते की तरह भटकता फिर रहा है।

अलंकार–अनुप्रास, श्लेष, उपमा, रूपक तथा पुनरुक्ति।

नोट

तुलना

कच समेटि कर भुज उलटि खरी सीस पट डारि।
काको मन बाँधे न यह, जूरो बांधनि हारि॥

–बिहारी

मोहि मोह जनाय कै, अहे अमोही, जोहि।
सो ही मोही सों कठिन, क्यों करि सोही तोहि ॥36॥

शब्दार्थ–मोही=मोहित किया। मोह=प्रेम। जनाय कें=प्रकट करके। अमोही=निर्मोही। जोहि=देखकर। सो=वह। ही=हृदय। सोही=शोभा देना।

प्रसंग–प्रिय की निष्ठुरता के प्रति उलाहना है।

व्याख्या–हे निर्मोही! मेरी ओर देखकर प्रेम दिखाकर तुमने मेरे हृदय को मोहित कर लिया। वह तुम्हारा हृदय अब मेरे हृदय के प्रति इतना कठोर हो गया। वह तुम्हें कैसे शोभा देता है? कैसे ठीक लगता है?

अलंकार–यमक।

तुलना

सोई सेंकर तेह सुवा सुवत सदा बसंत।
तुलसी महिमा मोह की सुनत सराहत संत॥

–तुलसी

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. घनानंद रीतिकाल की ..... श्रेणी के कवि माने जाते हैं।
2. घनानंद की प्रेयसी का नाम ..... था।
3. आचार्य शुक्ल ने घनानंद को ..... संप्रदाय का माना है
4. घनानंद की रचना 'इश्कलता' पर ..... प्रभाव देखने को मिलता है।

विष लै बिसार्‌यों तन, कै बिसासी आपचार्‌यौ
जान्यौ हुती मन, तै सनेह कछु खेल सो।
अब ताकी ज्वाल मैं पजरिवौ रे भली भाँति,
नीक आहि, असह उदेग-दुख सेल सो।
गए उड़ि तुरत पखोरू लौ सकल सुख,
पर्‌यो आय औचक वियोग बैरी डेल सो।
रूचि की के राजा जान प्यारे यौं आनन्दघन,
होत कहा हेरें रक, मानि लीनौ मेल सो ॥37॥

शब्दार्थ–विष=वियोग का जहर। बिसार्‌यौ=छोड़ दिया, भूल गया। आपचार्‌यौ=उपचार किया, अपचार, अन्यथा आचरण। पजरिबौ=जलना। असह=असह्य। उदेग-सुख=प्रेमोद्वेग का दुख। सेल=बरछे-सा। औचक=अचानक। डेल=डला, ढ़ेला। रुचि के ही राजा=सौन्दर्य तथा रस के सम्राट। हैरें रंक=तनिक देखने से। मेल=प्रेम।

नोट

व्याख्या–वियोग का विष घोलकर तुमने मुझे भुला दिया। हे विश्वासघाती तुमने मेरे विरह-विमर्दित शरीर का क्या उपचार किया? तुमने तो प्रेम को अपने मन में केवल मात्र एक खेल समझ लिया है। अब मुझे वियोग की आग में निरन्तर जलना पड़ रहा है। तुमने खूब मेरे हृदय के करीब आकर असह्य उद्वेग-जनित दुख के बरछों से घायल किया। ढेले की तरह अचानक न जाने यह वियोग कहाँ से आ गिरा। जिसने पक्षी की भाँति मेरे समस्त सुखों को उड़ा दिया। हे अपनी इच्छा से व्यवहार करने वाले प्राणप्रिय आनन्द के घन सुजान प्रियतम! एक बार तनिक देख लेने भर से क्या होता है। तुम इसी को प्रेम समझ बैठे? अर्थात् प्रेम में तो क्षण भर के लिए भी प्रेमियों का एक-दूसरे की नजरों से दूर होना असह्य है।

अलंकार–उपमा

तुलना

"हृदय कियारी माँझ सींचौ प्रेम जीवन सौं,
खेल मति जानौ, यह बेल बिरहा की है॥"

–बलबीर

सूझै नहीं सुरझ उरझि नेह गुरझनि,
मुरझि मुरझि निसदिन डाँवाँडोल है।
आह की न थाह दैया कठिन भयौ निबाह
चाह के प्रबाह घेर्‌यो दारुन कलोल है।
वे तौ जान प्यारे निधरक हैं अनन्दघन,
तिनकी धों गूढ़ मति मूढ़मति को लहै।
आगे न बिचार्‌यो अब पाछें पछिताएँ कहा,
मान मेरे जियरा, बनी को कैसो मोल है ॥ 38॥

शब्दार्थ–सुरझ=सुलझना। उरझि=उलझना। गुरझनि=उलझने से पड़ी गांठे। मुरझि=बेहोश होकर, मुरझाकर। डाँवाँडोल=चंचल। थाह=पहुँच। दैया=हे भगवान। चाह=प्रेम। दारुन=भयंकर, प्रचंड। कलोल=लहरें। निधरक=निर्भय। लहै=प्राप्त करना। बनी को कैसी मोल है=जिसकी बात बन गई उसके लिये भला दूसरे का क्या मूल्य है।

व्याख्या–मेरा मन प्रेमी प्रेम में उलझ गया है। इसे सुलझाने का कोई उपाय नहीं सूझता। यह दिन प्रतिदिन मुरझा-मुरझा कर अस्थिर होता जा रहा है। प्रभो इसकी आह की भी गहराई का पता नहीं चलता। अब तो इस प्रेम-पीड़ा को निबाहना बड़ा कठिन हो गया है। प्रेम के प्रवाह में पड़कर यह वियोग की उत्ताल तरंगों के प्रचण्ड आघातों में घिर गया है और वे आनन्द के घन सुजान प्रियतम तो निशंक हुए चैन से घूमते हैं। उनके रहस्य भरे आचरण को भला हम मन्दबुद्धि क्या समझ सकते हैं। हे मेरे पागल मन! तूने पहले ही विचार कर कदम क्यों न रखा? अब पछताने से क्या होता है? अब तू धीरज धारण कर जिनकी बात बन गई उन (सुजान) की दृष्टि में अब तेरा कोई मोल नहीं रह गया है। अर्थात् जब तक तू उस पर मुग्ध नहीं हुआ था तभी तक वह तेरी परवाह करती थी, अब नहीं।

अलंकार–अनुप्रास, पुनरुक्ति, व्यतिरेक।

तुलना

2. अद्‌भूत डोरी प्रेम की जामें बाँधे दोय।
ज्यों-ज्यों दूर सिधारिये त्यों-त्यों लांबी होय॥

–देवीप्रसाद पूर्ण

अन्तर उदेग-दाह, आँखिन प्रबाह, आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोइबो व जागिबो हो, हंसिबो न रोइबो हो,

नोट

खोय-खोय आप ही मैं चेटक-लहनि है।
जान प्यारे प्राननि बसति पै आनन्दघन,
विरह-विषम-दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौं आय,
हाय कौन विधि रची नेही की रहनि है ॥ 39 ॥

शब्दार्थ–अन्तर=हृदय। उदेग-दाह=उत्तेजना, उद्विग्नता-जन्य जलन, पीड़ा। अटपटी=अनौखी। चाह-प्रेम। भाजनि=भागना। दाहनि=जलना चेटक-लहनि=चौंक-चौंक पड़ना, चकित होना, भ्रमित होना, इन्द्रजाल में पड़ना। प्राननि=प्राणों में। मीच=मृत्यु। रहनि=जीवन। नेही=प्रेमी।

व्याख्या–हृदय में विरह-जन्य उद्विग्नता की दाहक पीड़ा है। आँखों से आँसू प्रवाहित हो रहे हैं। यह प्रेम कितना अद्‌भुत है इसमें एक साथ ही आंसुओं से भीगने और वियोगाग्नि से जलने की क्रिया चलती है। न तो सोया जाता है न ही जागते बनता है। मैं अपने आप में ही खोया हुआ चौंक-चौंक पड़ता हूं। अथवा इन्द्रजाल के सम्मोहन की तरह भ्रमित होकर भटकता हूं। प्राणों से प्यारे आनन्द के घन सुजान प्रियतम मेरे प्राणों में बसते हैं किन्तु फिर भी किसी गूँगे व्यक्ति की स्वप्नावस्था की तरह विरह की असह्य पीड़ा से छटपटाता हूं। इसमें जीवन के बिना जीना और मृत्यु के बिना मरना आ बना है। अर्थात् चेतना-शक्ति कभी लुप्त हो जाती है। कभी लौट आती है। न जाने विधाता ने प्रेमी के जीवन का निर्माण किस घड़ी में या किस प्रकार किया था।

विशेष–प्रस्तुत पद में विरहजन्य प्रेमोन्माद का मूर्त्त चित्रण उपस्थित किया गया है।

अलंकार–यथासंख्य, विरोधाभास, उपमा, पुनरुक्तिप्रकाश, विभावना तथा अनुप्रास।

तुलना

1. प्रेम मगन जे साधु जन, तिन गति कही न जात।
   रोय-रोय गावत हँसत, दया अटपटी बात॥

–दयाबाई

2. जेहि कै हीय पै मरना जाया।
   कहँ तेहि भूख नींद बिसराया॥

–जायसी

नेहनिधान सुजान समीप तौ सींचति ही हियरा सियराई।
सोई किधौं अब और भई, दई हेरत ही मति जाति हिराई।
है विपरीत महा घनआनन्द अबर तें धर कौ घर आई।
जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई ॥ 40 ॥

शब्दार्थ–नेहनिधान=प्रेमाधार। हियरा=हृदय को। सियराई=शीतल करती थी। मति जाति हिराइ=बुद्धि चकित हो जाती है; सुध-बुध भूल जाती है। धर=धारण करने वाला। कौं=की ओर। झर=जल, लपट। अनंग=कामदेव। आँचनि=आग में। जोन्ह=चाँदनी। अगिलाई=आग लग जाना।

प्रसंग=संयोग और वियोग में प्रकृति का आनन्द भिन्न-भिन्न होता है। संयोग में जो प्रकृति सुखदायिनी लगती है वही वियोग में अग्निदाहक हो जाती है।

व्याख्या–जब प्रेम के पारावार प्रियतम सुजान मेरे पास थे तो यह चाँदनी हृदय को अमृत से सींचकर शीतलता प्रदान करती थी। अब वही चाँदनी वियोगावस्था में कुछ बदल गई है और देखते ही मेरी सुध-बुध को नष्ट कर देती है। घनानन्द कहते हैं कि बड़ी विचित्र, उल्टी बात है कि इसकी (चांदनी की) लपट आकाश से पृथ्वी की ओर अर्थात् ऊपर से नीचे की ओर संचरण करती है जब कि अग्नि-ज्वाला का स्वभाव नीचे से ऊपर को जाना है। अब तो नवीन चाँदनी अद्‌भुत आग लगाकर मेरे अंगों को काम की आग में जलाती है।

विशेष–वियोगावस्था में प्रकृति के उद्दीपन रूप का परम्परागत चित्रण है।

नोट

अलंकार–विरोधाभास, अनुप्रास तथा छेकानुप्रास।

नैनन मैं लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,
या बस ह्वै जीव धीर होत लोटपोट है।
रोम रोम पूरि पीर, व्याकुल सरीर महा,
चलत सजीवन-सुजान-दृग हाथन तें,
प्यारी अनियारी खचि रखवारी ओट है।
जब जब आवै तब अति मन भावै,
महा कहा विषम कटाक्ष-सर-चोट है ॥ 41 ॥

शब्दार्थ–लागै जाय=जाकर लगते हैं। जागै=कसक उत्पन्न करते। करेजे=कलेजे। गति आसै=गति की आशायें। ठोट=कामी, टोटा। दृग-हाथन=नेत्र रूपी हाथ। अनियारी=चुभने वाली। ओट=आड़, कवच। कटाछ-सर=कटाक्ष रूपी बान।

व्याख्या–ये कटाक्ष रूपी तीर तो आँखों में जाकर लगते हैं और कसक कलेजे में होती है। इनके प्रहार के वशीभूत हुए धैर्यवान व्यक्ति भी घायल होकर तड़पते हैं। रोम-रोम में पीड़ा भर जाती है; शरीर अत्यन्त दुखित हो उठता है। बुद्धि मार्ग खोजने की आशा में भटकती है। लेकिन बचकर नहीं जाया जा सकता। प्यास अत्यधिक रहती है। जीवन दान देने वाले सुजान के दृटग रूपी हाथों से छोड़े जाते है। इसकी प्यार भरी हृदय में चुभने वाली उमंग ही इसकी रक्षा की आड़ है। अर्थात् ज्यों-ज्यों ये तीर लगते हैं, चुभते हैं– उमंग बढ़ती जाती है। जब-जब ये कटाक्ष के तीर लगते हैं तब-तब बड़े मन को भाते हैं। इनकी चोट सामान्य तीरों की चोट से वस्तुतः बड़ी विलक्षण है।

विशेष–प्रस्तुत पद में कटाक्ष-पात की बाण-निपात से विलक्षणता दिखाई गई है।

अलंकार–असंगति, पुनरुक्ति, रूपक, व्यतिरेक, छेकानुप्रास।

तुलना

'लगा लगी लोचन करै मन नाहक बँध जाय,
त्यों त्यों प्यासेई रहत ज्यों ज्यों पियत अघाय।'

–बिहारी

पाती-मधि छाती-छत लिखि न लिखाए जाहिं,
घाती लै बिरह घाती कीने जैसे हाल हैं।
आँगुरी बहकि तहीं पाँगरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल-माल हैं।
जान प्यारे जौडब कहूँ दीजियै संदेसो तौडब,
आवा सम कीजियै जु कान तिहि काल है।
नेह-भीजी बातैं रसना पै उर-आंच लागै,
जागै घनआनन्द ज्यौं पुंजनि-मसाल हैं ॥ 42 ॥

शब्दार्थ–पाती मधि=पत्र में। छाती छत=छाती में लगे हुए घाव। घाती=कटारी। विरह घाती=विश्वासघाती विरह। अंगुरि=अंगुली। बहकि=काँपना। पाँगुरी=लंगड़ी, पंगु। ताती=तप्त। राती=लाल, अनुरंजित। दसनि=दशा। जौडब=जो अब। तौडब=तो अब। आवा=जिसमें कुम्हार मटके पकाता है, आग की भट्टी। नेह-भीजो=स्नेह-सिक्त। रसना=जिह्वा। उर-आँच=हृदय रूपी अग्नि। पुंजनि-मसाल=मशालों की लपटें।

व्याख्या–इस विश्वासघाती अन्यायी विरह ने कटारी लेकर छाती में घाव कर ऐसा हाल कर दिया है जिसे पत्र में न तो खुद ही लिखा जा सकता है और न ही किसी से लिखाया ही जा सकता है। (भला हृदय के घावों को कागज पर कैसे लिखा या लिखवाया जा सकता है) जब मैं पत्र लिखने बैठती हूँ तो अँगुलियाँ बहक कर छटपटाकर पंगु हो

नोट

जाती हैं कुछ लिख सकने में असमर्थ हो जाती हैं। प्रेममयी विरह-विदग्ध परितप्त दशाओं का समूह दहकते ज्वाला पुंज के समान हो गया है। हे प्राण प्यारे प्रियतम सुजान! यदि अब मैं किसी को अपना संदेश लेकर भेजूँ तो सन्देशा सुनने के लिए अपने कानों को जलते हुए आवा के समान करना पड़ेगा। घनानन्द कवि कहते हैं कि स्नेह से भीगी बातें जिह्वा पर हृदय के भीतर की विरहाग्नि लगने से मशालों के समूह की भाँति जल उठती हैं।

विशेष–यहां विरह के ताप का ऊहात्मक वर्णन है। किन्तु उसमें परम्परागत पिष्टपेषण नहीं है। सन्देशा भेज सकने में भी असमर्थता प्रकट करना मौलिक भाव है।

अलंकार–अतिशयोक्ति, श्लेष, उपमा, उदाहरण, विरोधाभास तथा छेकानुप्रास।

तुलना

1. पतियां मैं कैसे लिखूँ, लिख्यों री न जाय।
कलम धरत मेरो कर कँपत है नैन रहे झड़लाय।
बात कहूँ तो कहत न आवै जीव रह्यो डरराय॥

–मीरा

2. छाती कै छुवाय दीया बाती क्यों न बार लै॥

–आलम

कंत रमे उर-अन्तर मैं सु लहै नहीं क्यौं सुख-रासि निरन्तर।
दंत रहैं गहे आंगुरी, ते जु वियोग के तेह तचे परतंतर।
जो दुख देखति हौं घनआनन्द रैनि-दिना बिन जान सुतंतर।
जानै वेई दिन-राति, बखाने तें जाय परै दिन-राति को अन्तर ॥ 43 ॥

शब्दार्थ–कन्त=प्रिय। रमैं=रमण करना, बसना। गहें=पकड़े दबाने। तेह=आग। तचे=तपे। परतन्तर=परतन्त्र, अधीन। सुतन्तर=स्वतन्त्र। नेई=वे ही।

व्याख्या–मेरे प्रियतम मेरे हृदय में निवास करते हैं लेकिन फिर भी न जाने मैं क्यों निरन्तर सुखों का अनुभव नहीं कर पाती। मेरे वियोग की आग को देखकर वे विरही भी दांतों तले अंगुली दबाते हैं जो प्रेम के वशीभूत हो वियोग की आग में सदा जलते रहे हैं। घनानन्द कवि कहते हैं कि प्राण प्यारे स्वेच्छा-चारी सुजान के बिना दिन-रात जो दुख देखने पड़ते हैं–उन दुखों को वे दिन-रात ही जान सकते हैं। यदि उनका बखान करूँ तो उनकी असलियत में दिन रात का अन्तर पड़ जायेगा अर्थात् वियोग का दुख अनुभव की वस्तु है– वर्णन की नहीं।

अलंकार–यमक, अनुप्रास और लाक्षणिक वक्रता।

चंद चकोर की चाह करै, घनआनन्द स्वाति पपीहा कौं धावै।
त्यौं असरैनि के ऐन बसै रबि, मीन पै दीन ह्वै सागर आवै।
मोसों तुम्हैं सुनौ जान कृपानिधि, नेह निबाहिबो यौं छवि पावै।
ज्यौं अपनी रुचि राचि कुबेर सु रंकहि लै निज अंक बसावै ॥ 44 ॥

शब्दार्थ–चाह=प्रेम, इच्छा। कौं धावै=की तरफ आये, दौड़े। असरनि-असरेणु=छेद में से होकर आती धूप में चमकने वाला एक कण। ऐन=घर। मीन पै=मछली के पास। निबाहिबो=निबाहना, प्रेम में दिए वचन पूरा करना। यौं छबि पाव=ऐसी शोभा पा सकता है। सु=वह, कुबेर। रंक=दरिद्र। अंक बसाव=गोद में बिठा ले।

व्याख्या–जिस प्रकार चन्द्रमा चकोर को चाहने की इच्छा करे, स्वाति नक्षत्र की बूँद स्वयं पपीहे के पास आने को आतुर हो, जिस पर सूर्य स्वयं असरेणु के घर चलकर निवास करे, सागर विनम्रता धारण कर मछली के पास जाये; जिस प्रकार कुबेर अपनी इच्छा से अनुरक्त होकर किसी दरिद्र को प्रेम पूर्वक अपनी गोद में बिठाले–हे कृपानिधि सुजान प्रियतम! तुम्हारा मुझ से उसी प्रकार प्रेम निबाहना शोभा देता है।

विशेष–सामान्यतः चकोर, मीन, असरेणु, पपीहा, रंक, चाँद, सागर, सूर्य, स्वाति तथा कुबेर की ओर अनुरक्त होते हैं। किन्तु प्रेम की महानता तो इसमें है कि बड़ा पदार्थ छोटे पदार्थ के पास चल कर आए।

नोट

अलंकार–अनुप्रास, उदाहरण तथा दृष्टान्त।

ज्यौं बुधि सों सुघराई रचै कोऊ, सारदा कों कविताई सिखावै।
मूरतिवंत महालछमी-छर पोत-हरा रचि लै पहिरावै।
रागबधू-चित चोरन के हित सोधि सुधारि कै तानहिं गावै।
त्यों ही सुजान तियै घनआनन्द मो-जिय-बौरई-रीति रिझावै ॥ 45 ॥

शब्दार्थ–बुधि=बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी। सुघराई=चतुरता। रच=आचरण करना। सारदा=शारदा, सरस्वती। मूरतिवन्त=मूर्तिमती। उर=गले में। पोत-हरा=काँच के मोतियों की माला। रागबधू=रागिनी, संगीत की देवी। सोधि=स्वर साध कर। तिय=प्रेमिका। बौरई=पागल होकर। रिझाव=प्रसन्न करे।

व्याख्या–मेरा मन अपने पागलपन में आकर उसी प्रकार से सुजान-प्रियतम को रिझाने का प्रयत्न कर रहा है, जिस प्रकार बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी को कोई अपना चातुर्य दिखाकर प्रभावित करना चाहे। स्वयं सरस्वती को कविता करना सिखलावे, साक्षात् लक्ष्मी के गले में गुंजा फूलों की माला पहनाकर उसे प्रसन्न करना चाहे तथा रागिनी के चित्त को वश में करने के लिए स्वर साधकर कोई सुधरी हुई तान छेड़े।

अलंकार–विरोधाभास, दृष्टांत तथा छेकानुप्रास।

हिये मैं जु आरति सु आरति उजारति है,
मारति मरोरैं जिय डारति कहा करौं।
रसना पुकारि कै विचारि पचि हारि रहैं,
कहैं कैसे अकह, उदेग रुँधि कै मरौं।
हाय कौन बेदनि विरंचि मेरे बाट कीनी,
निघटि हरौं न क्यों हूं, ऐसी विधि हाँ गराँ।
आनन्द के घन हौ सुजीवन सुजान देखौ,
सीरी परि सोचनि, अचम्भे सों जरौं भरौं ॥ 46 ॥

शब्दार्थ–आरति=लालसा। जारति=जलाती है। उजारति=उजाड़ती है। पचि=परेशान होकर। अकह=अकथ, जो कही न जा सके। उदेग=उद्वेग, बेचैनी। रुँधिकै=घिरकर, घुटकर। वेदनि=वेदना। विरंचि=ब्रह्मा। बांट=बाँटे, हिस्से में। हौं गरौं=मैं गलूँ। सारी=शीतल। जरौं=जल रही हूँ। भरौं=कष्ट भोग रही हूं।

व्याख्या–हे आनन्द के घन प्रियतम सुजान, देखिये तो मेरी कैसी विषम अवस्था है। मरने की सभी स्थितियाँ उपस्थित होने पर भी मैं मर नहीं रही हूं। घोर कष्ट सहन कर रही हूं। हृदय में जो आपके दर्शन की लालसा है (कष्ट, पीड़ा है) वह मुझे जलाकर हृदय को उजाड़ देना चाहती है। जी को मरोड़ कर मारे डाल रही है क्या करूँ। जीभ बेचारी पुकार-पुकार कर परेशान होकर थक जाती है, यह वेदना अकथनीय है, इसे किस प्रकार कहूं? उद्वेग मुझे घेरकर, घोटकर मारे डाल रहा है। न जाने विधाता ने मेरे हिस्से में यह कैसी वेदना लिख दी है। इस प्रकार गल-गलकर क्षीण हुई जा रही हूं–मर क्यों नहीं जाती। मेरी सोचने की शक्ति शिथिल पड़ गई है–मैं आश्चर्य में जली जा रही हूं। दिन काट रही हूं।

अलंकार–विरोधाभास और अनुप्रास।

पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौं आन घरी मैं बरंचि बनाई।
रूप की लोभनि रिझि भिजायकै हाय इते पै संजान मिलाई।
क्यौ घनआनन्द धीर बिन पाँख निगोड़ी मरै अकुलाई।
प्यास-भरी बरसैं तरसै मुख देखन कौं अँखियाँ दुखहाई ॥ 47 ॥

शब्दार्थ–पुंज=समूह। सकेलि=एकत्र करके। धौं=न जाने। आन=दूसरी, अजीब। घरी=घड़ी। लोभनि=लोभ करने वाली। रीझि=उमंग। भिजाय=भिगोकर। इते पै=इतने पर। निगोड़ी=अभागी, बेचारी। अकुलाई=दुख पाकर।

व्याख्या–न जाने विधाता ने पापों का पुंज एकत्रित करके कैसी विचित्र घड़ी में इन आंखों का निर्माण किया था, जो कि इन्हें रूप की लोभिन बनाकर प्रेम की उमंग में भिगोकर, निष्ठुर सुजान-प्रियतम से लाकर मिला दिया। घन

नोट

आनन्द कवि कहते हैं कि ये धैर्य भी धारण नहीं कर सकती और पंख न होने के कारण प्रियतम तक उड़कर भी नहीं जा सकती। अतः ये बेचारी व्याकुलता से मरी जा रही हैं। ये सुजान प्रियतम के रूप की प्यासी दुखियारी आँखें उनका मुख देखने को तरसती हैं, निरन्तर बहती हैं अर्थात् रोती रहती हैं।

अलंकार–विरोधाभास तथा छेकानुप्रास।

साधनि ही मरियै भरियै, अपराधनि बाधनि के गुन छावत।
देखैं कहा? सपनौं हूं न देखत, नैन यौं रैनि-दिना झर लावत।
जौ कहूँ जान लखैं घनआनन्द तौ तन नेकु न औसर पावत।
कौन वियोग-भरे अँसुवा, जो संजोग मैं आ गई देखन धावत ॥48॥

शब्दार्थ–साधनि=साध में, इच्छा में। भरियै=दिन काटती हूं। बाधनि=बाधाओं के। गुन=जाल। छावत=फैलाना, छा जाना। देखै कहा=प्रत्यक्ष देखने की कौन कहे? झर=झड़ी। लागत=लगते हैं। जान लखैं=सुजान को देखें। नेकु=तनिक। औसर=अवसर।

व्याख्या–इन आँसुओं के कारण मैं तो उनको देखने की साध में ही मरी जा रही हूं। अपने अपराधों का दण्ड भोग रही हूं (मैंने सुजान से प्रेम करने का अपराध किया है) नित्यप्रति बाधाओं का जाल फैला रहता है। प्रियतम सुजान को प्रत्यक्ष की तो कौन कहे मैं तो उन्हें सपने में भी नहीं देख पाती क्योंकि दिन-रात ये आँसू झड़ी लगाए रहते हैं। अगर कहीं आनन्द के घन प्रियतम सुजान दिखाई भी पड़े तो बेचारे शरीर को तो भेंटने का अवसर ही नहीं मिलता। न जाने ये आंसू किस विचित्र वियोग से भरे हैं जो संयोग में भी आंखों से भी पहले दौड़ पड़ते हैं– अतः संयोग में भी वियोग बना रहता है।

अलंकार–अनुप्रास।

उठि न सकत, ससकत नैन-बान-बिंधे,
इते हू पै विषम-विषाद-जुर लू बरे।
सूरे पन-पूरे हेत-खेत तें हटैं न कहूँ,
प्रीति-बोझ बापुरें भए हें दवि कूबरे।
संकट-समूह मैं बिचारें घिरे घुटै सदा,
जानी न परत जान, कैसें प्रान ऊबरे।
नेही दुखियानि की यहै गति अनंदघन,
चिंता-मुरझानि सहैं न्याय रहें दूबरे ॥49॥

शब्दार्थ–ससकत=सिसकते हैं। नैन-बान-बिंधे=नैन रूपी बाणों से बिंधे। इतेहू=इतने पर भी। विषम-विषाद-जुर=वियोग वेदना का भयंकर ज्वर। बलै=जलता है। सूरे-पन=प्रतिज्ञा करने में शूरवीर। हेत-खेत=प्रेम रूपी क्षेत्र। पटे न=टलते नहीं। कहूं=कभी। बापुरे=बेचारे। कूबरे=कुबड़े। ऊबरे=बच जाते है, उबरना। चिन्ता-मुरझानि=चिन्ता से मुरझाये। न्याय=उचित है।

व्याख्या–वियोग की असह्य वेदना के कारण क्षीण हुए प्रेमियों से उठा तक नहीं जाता, वे प्रेमिका के नयनरूपी बाणों में बिंधकर सदा सिसकते रहते हैं। इतने पर भी ऊपर से भयानक पीड़ा का ज्वर तप्त लू की भांति जलाता रहता है परन्तु प्रतिज्ञा के पूरे शूरवीर प्रेमीजन प्रेम के क्षेत्र में भी हटते नहीं। बेचारे प्रेम के भार से दबकर कुबड़े हो जाते हैं– कमर झुक जाती है। संकटों के समूहों में घिरे हुए बेचारे सदा घुटते रहते हैं। हे सुजान प्रियतम! जाना नहीं जाता कि प्राणों की रक्षा किस प्रकार हो। घनानन्द कहते हैं कि दुखी प्रेमियों की ऐसी ही दशा रहती है। चिन्ता की मुरझाहट को सहकर वे अत्यन्त दुर्बल हो जाते हैं– लेकिन उनके लिये यही उचित है।

अलंकार–रूपक, यमक, अनुप्रास और छेकानुप्रास।

तुलना

1. कठिन वियोग जोग दुख ठाहू।
   जरम जरत होई और निबाहू॥

–जायसी

नोट

सुखांन समाज साज सजै तित सेवै सदा,
जित नित नए हित-फंगनि गसत हौ।
दुःख-तम-पुंजनि पठाय ह्वै चकोरनि पै,
सुधाधर जान प्यारे, भलें ही लसत हौ।
जीव सोच सूखै गति सुमिरें अनन्दघन,
कित हूँ उघरि कहूं घुरि कै रसत हौ।
उजरनि बसी हमारी अँखियानि देखौं,
सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौं ॥ 50 ॥

शब्दार्थ–सुखनि-समाज=सुखों के समूह। तित=वहाँ। हित-फंदन=प्रेम के फंदों में। गसत हौ=फँसाते हो। दुख-तुम-पुंजित=दुखरूपी अंधकार का समूह। पठाय=भेजना। सुधाधर=चन्द्रमा। लसत=शोभित होना। सोच=चिन्ता। सुमरें=याद करें। कितहूं=कहीं। उघरि=हटकर, उदासीन। घुरि=घुलमिल कर। रसत=रस बरसाना। उजरति=उजाड़, सूनापन। सुवस=भलीभांति बसा हुआ। सुदेस=सुन्दर देश, भाग्यशाली। भावते=आप, प्रिय।

व्याख्या–हे सुजान प्रियतम! जहाँ आप जा बसे हैं और नित नये फंदों में प्रेमियों को फँसाते रहते हैं वहाँ तो सुखों के समूह सदा आपकी सेवा में रहते हैं। आप तो खूब उस चाँद की तरह शोभित हो रहे हैं जिसने दुखरूपी अंधकार के जाल को अपने प्रेमी चकोरों के पास भेज दिया है– अर्थात् हमें दुख देकर आप स्वयं सुखों में रमण कर रहे हैं– यह आपको शोभा नहीं देता। हे आनन्द घन प्यारे प्रियतम! तुम्हारी इस प्रकार की गतिविधियों का स्मरण कर जी दुखों के मारे सूखा जा रहा है, कहीं तो तुम दूर होकर रहते हो और कहीं खूब घुल मिलकर स्नेह बरसाते रहते हो। देखो हमारी आंखों में सूनापन बसा हुआ है और जहाँ आप निवास करते हैं वह प्रदेश सुन्दरता से बस रहा है।

अलंकार–रूपक, श्लेष, विरोधाभास, अनुप्रास तथा छेकानुप्रास।

28.2 सारांश (Summary)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास में घनानंद के विषय में लिखा है कि–''प्रेम की पीर' लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक जबाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रज, भाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।'' प्रिय से बिछुड़ने का दुःख हृदय की दारूण अवस्था घनानंद के काव्य में जिस रूप में दृष्टव्य है उससे मीरा और सूर की गोपियों की तुलना की जा सकती है। कवि सुजान के सुंदर के दर्शन की अभिलाषा लिए तड़पता रहता है। वह वियोग में संयोगावस्था को स्मरण करता है ताकि उसका दुःख कुछ कम हो सके लेकिन प्रिय के कठोर व्यवहार के कारण उसकी वेदना और अधिक बढ़ जाती है।

28.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **सुजानः** जनश्रुति के अनुसार घनानंद की प्रेयसी का नाम।
2. **भसमी बिथाः** भस्म कर देने वाली व्याकुलता।
3. **आवाः** जिसमें कुम्हार मिट्टी के बर्तन पकाता है, आग की भट्टी।

28.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. घनानंद के काव्य में विरहजन्य अनुभूति चरमोत्कर्ष को पहुँच गई है। घनानंद के कवित्त के आधार पर सिद्ध कीजिए।

2. घनानंद कवित्त में वर्णित प्रेम की अभिव्यंजना पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment) नोट

1. रीतिमुक्त 2. सुजान 3. निंबार्क 4. सूफ़ी

28.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. महाकवि घनानन्द–*राज बुद्धिराजा, तक्षशिला प्रकाशन।*
2. रीतिमुक्त कवि घनानन्द–*सहगल शशि, अमरसत्य प्रकाशन।*
3. घनानन्द का काव्य शिव्य–*पाल लखनसिंह, हिन्दी बुक सेन्टर।*

नोट

इकाई 29

घनानंद की भक्ति-भावना

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
29.1 घनानंद की भक्ति-भावना
29.2 सारांश (Summary)
29.3 शब्दकोश (Keywords)
29.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
29.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- घनानंद की भक्ति-भावना को समझने में

प्रस्तावना (Introduction)

घनानन्द के जीवन में भक्ति का प्रवेश यौवन की उत्तरावस्था में हुआ। एक आन्तरिक क्षेत्र ने उन्हें संसार से विरक्त कर भक्त बना दिया। उनके विषय में जनश्रुति यही संकेत देती है कि वे जीवन की विषमता से विरक्त होकर ईश्वर आराधना की ओर उन्मुख हुए। 'रघुरावसिंह देव' ने इन्हें बहुत बड़ा भक्त स्वीकार किया है और 'कृष्ण-स्नेही' कहा है।

घनानंद का सम्बन्ध किस भक्ति-सम्प्रदाय से था, यह विवादग्रस्त है। विभिन्न विचारकों ने इस विषय में अपने मत दिये हैं।

(1) **भगवान दीन 'दीन'** घनानंद सखी सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे।

(2) **आचार्य शुक्ल–** घनानन्द का संबंध निम्बार्क सम्प्रदाय से था। उन्होंने अपने मत की पुष्टि में यह पद उद्धृत किया है:

'गुरनि बतायौ, राधा-मोहन हू गायो सदा,
सुखद सुहायों वृन्दावन गाढें गहि रे।
अद्भुत अभूत मही-मंडल परे तें परे,
जीवन को लाहु हा हा क्यों न ताहि लहि रे॥
आनंद को घन छायौ रहत निरन्तर ही,
सरस सुदेस सो, पपीहापन बहि रे।
जमुना के तीर केलि-कोलाहल-भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे॥

(3) **वियोगी हरि**–शुक्ल जी के अनुसार आपने घनानंद को वैष्णव तो माना है किन्तु उनका सम्बन्ध किस सम्प्रदाय से था, यह नहीं बताया।

(4) **श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना**–घनानंद का काव्य रसखान, सूर, तुलसी-वैष्णव-धारा के कवियों से उतना मेल नहीं खाता जितना प्रेम रहस्योन्मुखी संतों की विरह-वाणियों से। उन्होंने घनानन्द को सगुण रसवादी वैष्णवों की परम्परा में भी स्वीकार किया है।

(5) **श्रीमती ज्ञानवती त्रिवेदी**–घनानन्द का झुकाव वल्लभ-सम्प्रदाय की ओर था। अपने मत की पुष्टि में वे यह पद देती हैं– नोट

श्री वल्लभ-गुण-गान
भोर हौं वल्लभ-वल्लभ कहिये।
'आनन्द परमानन्द श्रीकृष्ण मुख सुमरे अष्ट सिद्ध पाइये।
और सुमिरो की विटठ्ल विटठ्ल की गिरधर गोविन्द द्विजब्रर भूप।
श्री बाल-कृष्ण गोकुल पति रघुपनि, यदुपति नवधन श्याम स्वरूप।
पढ़ो सुसार श्रीवल्लभ वचनामृत, जपो अष्टाक्षर मंत्र करि नेम।
अन्य कवन कीर्तन तजि निश दिन सुनो सुबोधिनि धरि जिय प्रेम।
और सेवो सदा नंद यशोमति-सुत प्रेम भक्ति सहित जिय जान।
अन्याश्रय असमर्पित लेनो असद् अलाप असद् संग हानि।
नयननि निरखो श्री कालिन्दी और निरखो सुखद व्रजधाम।
यह सम्पति श्री वल्लभ से पैये हरिजन नहिं काहू सों काम।

इस पद में उनके अनुसार महाप्रभु वल्लभाचार्य का गुणगान है।

(6) **श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र**–घनानन्द प्रेम-मार्ग के भक्त कवि थे। कृष्ण-भक्ति को घनानन्द ने प्रेम-पंथ से प्रभावित होकर ही स्वीकार किया है। अन्त में उन्होंने भक्त-सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली किन्तु प्रेम-मार्ग नहीं छूटा, वर्तमान रहा।

(7) **डा. मनोहर लाल गौड़**–घनानन्द के काव्य ने वैष्णव-तत्व को स्वीकृति प्रदान की है और उनके अनुसार घनानन्द 'सखी-सम्प्रदाय' के थे।

क्या आप जानते हैं आचार्य शुक्ल ने घनानंद का संबंध निम्बार्क संप्रदाय से माना है।

इन सभी मतों में व्यक्त विचारधाराओं के वैभिन्य का आवरण हटाकर देखा जाय तो प्रतीत होगा कि घनानन्द के भक्तिकाव्य में अनेक भावों का मिश्रण है। सगुण वैष्णव-भावना, निर्गुण-भावना, मधुर-भक्ति और कुछ अर्थों में सूफी सम्प्रदाय के दर्शन का प्रभाव भी घनानन्द में घुल-मिल गया है।

29.1 घनानंद की भक्ति-भावना

वैष्णव भक्ति

घनानन्द के काव्य में वैष्णवभाव की भक्ति की दस विशेषताओं का समावेश है। वैष्णव-भावना भक्ति को दास्य, सख्य, वात्सल्य और शान्त रूप मानती है। घनानन्द के काव्य में सख्य को छोड़कर सभी का रूप मिलता है, उदाहरणतः–

(1) शान्त

'अन्तर में बैठे कहा दुख दैन,
निकसि क्यौं न आवत अंखियान आगे।
ये दुखदाई मुख देखन को,
जागि जागि अनुरागे।
इनकी दशा बनें रात नित,
देखाई गहैं पल जल त्यागे।'

नोट

(2) दास्य

'लै राखौं अपसे पायनि तर,
यह मन भटकि आयो जग,
कृस्न कमल लोचन करुनाकर।'

(3) वात्सल्य

'जसोमति आरती उतारै उमगि आपनौ ज्यौं वारे,
चित चढ़ी रही ललन की वन ते गोचन लै घर आवनि।
अति आरति सौं बदन निहारे।
लै बलाय आँचर मुख पोंछति प्रेम पुचकारति बरसति प्यारे।'

जहां तक 'भक्ति की दशाओं' का सम्बन्ध है घनानन्द की रचना में प्रायः सबका समावेश है। राधाकृष्ण को सम्प्रदायिक अवतार मानकर उन्होंने इनके प्रति अपनी भावना को व्यक्त किया है। 'बन्धन' का उदाहरण द्रष्टव्य है–

'ए री रूप अगाधे राधे, राधे राधे राधे राधे।
तेरे मिलिबे को ब्रज मोहन, बहुत जतन हैं साधे॥
उनके निसिदिन लगी रहै जक तू न धरति पल आधे।
आनन्द घन पिय चातक चौंपनि हा राधे हा राधे॥

इसी प्रकार वृन्दावन की शोभा का वर्णन इस पद में है–

'जमुना देखे ही दुख भाजै।
इन्द्रनील मनि इन्दीवर दलहू की उपमा लाजै॥
सब सुख रासि रसामृत-सींवा वृन्दावन में राजै।
आनंदघन ब्रजमोन पीव के अंग रंग सब साजै।'

सूरदास के समान ही उन्होंने कृष्ण-राधा की रास-लीला आदि का तथा उनके प्रेम के क्रमिक विकास का और यौवन की विलास-चेष्टाओं का विस्तार से वर्णन किया है। वास्तव में उनकी रचना पर वैष्णव प्रभाव को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

नोट्स घनानंद का लौकिक प्रेम ही कृष्ण-भक्ति में परिणत हो गया है।

घनानंद के काव्य में निर्गुण भावना

श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना ने घनानन्द को कबीर और नानक की परम्परा में अथवा विद्यापति, चैतन्य और चण्डीदास की परम्परा में स्थान देना चाहा है। घनानन्द के कुछेक पदों मे निर्गुण तत्व उभर कर आया है, उदाहरणतः

'आयु जो वायु तौ घूरि सबै सुख,
जीवन मूरि सम्हारत क्यों नहीं।
ताहि महागति तोहि कहा गति।
बैठें बनेगा विचारत क्यों नहीं।
नेमिनी संग फिरै भटक्यों पल।
मूंदि सरूप निहारित क्यों नहीं।
स्याम-सुजान-कृपा-घनआनंद,
प्रान-पपीहनि पारति क्यों नहीं॥

नोट

कहीं-कहीं घनानन्द की रचना में चिन्तन-पद्धति प्रधान हो उठी है। किन्तु समग्रतः घनानन्द को निर्गुण सन्त नहीं माना जा सकता। उनकी रचना में कृष्ण और राधा का वर्णन केवल नाम-ग्रहण के लिए नहीं है। वह निश्चत वैष्णव-भक्ति के साथ उनके वास्तविक सम्बन्ध का परिचय देता है।

टास्क घनानंद एवं सूर की गोपियों की भक्ति में अंतर बताइए।

घनानन्द के काव्य में राधा और कृष्ण का काम-शृंगार प्रचुरता से वर्णित है। परमेश्वर के आलम्बन से जब लौकिक स्त्री-पुरुष वाली प्रीति विकसित होकर शृंगार को उपलब्ध होती है तभी मधुरा भक्ति मानी जानी चाहिए। घनानन्द की रचना में मधुरा भक्ति एवं मधुर रस के प्रभूत तत्व हैं। उदाहरणतः यह कथन मधुरा भक्ति के अन्तर्गत लिया जाएगा–

'मन-पारद कूप लौं रूप चहैं,
उमहैं सु रहै नहिं जैतौ गहौं।
गुन-गाडनि जाय परै अकुलाय,
मनोज के ओजनि सूल सहौं।
घन आनन्द चेटक धूम में प्रान,
छुटें न छुटे गति कासौं कहौं।
उर आवत यौ छवि छाँह ज्यौं हौं,
ब्रज छैल की गैल सदाई रहौं॥

घनानन्द ने मधुर-रस के प्रायः सभी अंगों का वर्णन किया है तथा राधा कृष्ण की विलास-चेष्टाओं का भी अच्छा चित्रण हैं। विलास-कीड़ा का यह वर्णन द्रष्टव्य है–

हंसि हंसि करे बातें रंगीले दोऊ मदमाते

× × ×

अति सरस परस ललचाते।
नई तरुनई को ओप भई मुख सुख समोह पुलकाते।
रीझि चौप आनंदघन बरसत मिलत हारि करि हाते।'

इसी प्रकार सुरतांत इत्यादि के अच्छे चित्रण सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। 'सखी-सम्प्रदाय' के अन्तर्गत अन्य विधि-विधानों का रूप भी घनानंद में मिल जाता है। वस्तुतः वैष्णव-भाव के बाद घनानन्द की रचना में सर्वप्रमुख स्थान सखी-भाव की भक्ति का है और उन्होंने काव्य के उपयुक्त मधुर रस का रूप देखकर वर्णित किया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएं–

1. घनानंद भक्तिकालीन कवियित्री मीराबाई के समकालीन थे।
2. घनानंद ने अपने काव्य में इष्टदेव के रूप में भगवान राम का वर्णन किया है।
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने घनानंद को निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित माना है।
4. कुछ साहित्यकार घनानंद को 'सखी संप्रदाय में दीक्षित मानते हैं।

घनानन्द पर सूफी-प्रभाव

सूफियों की प्रेम की पीर भी घनानन्द में कहीं-कहीं उपलब्ध हो जाती है। घनानन्द की 'इश्कलता' जैसी रचनाओं में सूफी-प्रभाव काफी गहरा है। सूफियों ने साधक को प्रेमिका और ईश्वर को प्रिय का रूप दिया था।

नोट

घनानन्द ने यह दार्शनिक विपर्यय तो स्वीकार नहीं किया। हाँ, शैली के क्षेत्र में सूफी प्रेम पद्धति की तड़प, अन्तर की टीस व चोट शब्दों में ढल कर दीप्त हो उठी है।

निष्कर्ष

घनानन्द का काव्य-विकास भक्ति के लिए एक अच्छा क्षेत्र उपस्थित कर पाया है। अतः घनानन्द की रचना में इनके जीवन के भक्तिमय उत्तरपक्ष का भी समावेश हो गया। आचार्यों ने प्रेमतत्व को भक्ति के लिए अनिवार्य माना है और उधर जिस सूफी-दर्शन से घनानन्द का अध्ययनगत परिचय था, उसमें भी प्रेम की महानता सर्वोपरि थी। इधर घनानन्द के जीवन की परिस्थितियाँ प्रेम के उदात्तीकरण के नितान्त अनुकूल थीं। इन सब कारणों से वे एक निश्चित जीवन-सीमा पर जाकर उत्कट-प्रेमी और व्याकुल विरही से शुद्ध भक्त हो उठे। उन्होंने प्रण करके किसी भक्ति-मार्ग का अवलम्ब नहीं लिया और साथ ही अपने काल के वृन्दावन के वातावरण को पूर्णतया आत्मसात कर लिया। सुजान उन्हें पहले ही प्रिय थी। सुजान के प्रति अपनी जीवन-संचित प्रेमाराधना को उन्होंने कृष्ण के प्रति समर्पित कर दिया और 'सुजान' विशेषण कृपानिधान कृष्ण के लिये भी प्रयुक्त होने लगा–

सदा कृपानिधान हौ रहा कहौं सुजान हो
अमानियान मान हौ समान काहि दीजिए।

कृष्ण की आराधना के साथ राधा की आराधना अनिवार्य थी। घनानन्द ने इस प्रकार अपनी काव्य-रुचि के अनुकूल कृष्ण और राधा के अलौकिक प्रेम को कविता का विषय बनाया किन्तु रीतिकालीन काव्य का वातावरण शृंगार से अत्यधिक प्रभावित था और साथ ही रीतिकाल से पूर्व कृष्ण-काव्य के महान् कवि सूरदास राधा-कृष्ण की शृंगारमयी भक्ति की परम्परा डाल चुके थे। इसलिए घनानन्द ने भी राधा-कृष्ण के शृंगार का विलासमय चित्रण किया।

इस प्रकार घनानन्द की रचना में भक्ति-भावना की पूर्व-परम्परा और अपने काल के वातावरण का समावेश हो गया। भक्ति के पद एवं अन्य रचना किसी एक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुसार विरचित नहीं। ऐसा लगता है कि कवि ने अपनी रुचि के अनुकूल स्वच्छन्द अभिव्यक्ति की है। सम्भव है कि बाद में उनका सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय से हो गया हो। यदि ऐसा है तो उस सम्प्रदाय विशेष की प्रभाव-छाया में रचित उनके काव्य का स्वर उनकी अन्य भक्तिपरक रचनाओं से भिन्न होना चाहिए। इस विषय में पर्याप्त छान-बीन की आवश्यकता है। वैसे भी भक्त कवि के रूप में घनानन्द का मूल्यांकन बहुत आलोचना-श्रम की तथा अनुसन्धान की अपेक्षा रखता है।

29.2 सारांश (Summary)

रीतिकालीन अधिकांश साहित्य राजाश्रय में लिखा गया साहित्य है और राजाश्रय में पोषित-पल्लवित साहित्य पर तत्कालीन परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। इस काल में विरचित लक्षण ग्रंथों में नायिका भेद एवं शृंगारिक वर्णन ही महत्त्वपूर्ण रहे। रीतिमुक्त कवि घनानंद ने भी प्रिया का सौंदर्य वर्णन किया परन्तु घनानंद का यह सौंदर्य वर्णन भक्ति की ओर उन्मुख है। राधा-कृष्ण उनके इष्ट हैं, भक्ति का आलंबन है।

29.3 शब्दकोश (Keywords)

1. निर्गुण भक्तिः इस प्रकार की भक्ति में भगवान का कोई रूप नहीं होता। ज्ञान-साधना भगवान प्राप्ति का साधन माने जाते हैं।

2. सगुण भक्तिः इसमें भक्ति का आधार भगवान के रूप को माना जाता है। मनुष्य के रूप में भगवान का अवतार लेना भी सगुण भक्ति के अंतर्गत आता है।

29.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. घनानंद की भक्ति का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2. 'घनानंद का लौकिक प्रेम ही अंततः भक्ति में परिणत हुआ है।' स्पष्ट कीजिए।

नोट

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. असत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य

29.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. महाकवि घनानन्द–*राज बुद्धिराजा, तक्षशिला प्रकाशन।*

2. रीतिमुक्त कवि घनानन्द–*सहगल शशि, अमरसत्य प्रकाशन।*

3. घनानन्द का काव्य शिव्य–*पाल लखनसिंह, हिन्दी बुक सेन्टर।*

नोट

इकाई 30

घनानंद कवित्त की भाषा-शैली

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
30.1 घनानंद कवित्त की भाषा-शैली
30.2 सारांश (Summary)
30.3 शब्दकोश (Keywords)
30.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
30.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- घनानंद कवित्त की भाषा-शैली के स्वरूप को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भाषा भाव की अभिव्यक्ति का सबसे सीधा साधन है। भाषा के रूप में ही भाव ढलता है। भाषा अमूर्त्त भाव का मूर्त्त स्वरूप है। यह सूक्ष्म का स्थूल आवरण है। भाषा का परिधान भाव के लिए अनिवार्य है, अपरिहार्य है कवि भाषा में ही चिन्तन करता है। भाव का अन्तःस्फुरण भी भाषा में ही हुआ करता है।

काव्य और भाषा परस्पर अनेक प्रकार के अर्थ-सम्बन्धों से सम्बद्ध होती है। कविता वाणी का ही विलास है और वाणी शब्दरूप है। शब्द भाषा की स्वर-निर्मित इकाई है। इस प्रकार भाषा काव्य-व्यंजना का, काव्य की अभिव्यक्ति का सहज साधन है। कविता जो कुछ कहना चाहती है सुन्दर भाषा में कहती है। उसे भाषा की साधना करनी पड़ती है। इसलिए कविता की भाषा सामान्य जन-भाषा से भिन्न होती है।

कविता की भाषा में कवि को प्रयोग-हेतु शब्दों का चयन करना पड़ता है, अभिव्यंजक शब्द सँजोने पड़ते हैं और उन शब्दों में यदि अर्थ-व्यंजना का अभाव है तो अर्थ-व्यंजना करनी पड़ती है। शब्द-समृद्धि कई प्रकार की विशेषताओं का समाहार है। अर्थ उनमें से एक है। शब्द की ध्वनि दूसरी ओर शब्द का दूसरे शब्द से सामंजस्य तीसरी। काव्यशास्त्र के अन्तर्गत, गुण, शब्द शक्तियाँ और कई अलंकार भाषा की समृद्धि के लिए ही विधायित है। सफल कवि भाषा की समृद्धि के लिए हर प्रकार की कला का, शब्द के हर प्रकार के सौन्दर्य का प्रयोग करता है।

रीतिमुक्त कवियों की स्थिति रीतिबद्ध से भिन्न रही। उनके भाषा प्रयोग में साहित्यिक सामर्थ्य कृत्रिमता से बची रही, यद्यपि उनकी भाषा साहित्यिक अर्थशीलता की दृष्टि से क्षतिग्रस्त नहीं हुई। घनानन्द ने ब्रज भाषा का प्रयोग किया है और उन्हें ब्रज भाषा के संचित सौन्दर्य का वास्तविक प्रतिनिधि माना जा सकता है। स्वच्छंदता भाषा के क्षेत्र में अत्यन्त तीव्र एवं प्रयास भरी है। घनानन्द और अन्य रीतिमुक्त कवियों ने भाषा के स्वरूप को बहुत सहज किन्तु बहुत व्यंजक बनाया है। '**ब्रजनाथ**' ने अपनी प्रशस्ति में घनानन्द को **'ब्रजभाषा प्रवीन'** और **'भाषा प्रवीन सुछन्द सदा रहे'** कहा है।

30.1 घनानंद कवित्त की भाषा-शैली

नोट

घनानन्द के भाषा प्रयोग को देखते हुए **'प्रवीन'** विशेषण सर्वथा उपयुक्त है। इनके भाषा प्रयोग की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) शब्द-समूह

घनानन्द की रचना में शब्दों का सर्वाधिक परिणाम तद्भव है। तत्सम शब्दों का ग्रहण भक्तिकाल में पर्याप्त हो चुका था। रीतिकाल में भी काव्य शास्त्रीय आचार्यों ने तत्सम शब्दों का बहुलता से प्रयोग किया है। किन्तु तत्सम शब्द हिन्दी की बोली-विशेष ब्रजभाषा के अधिक उपयुक्त नहीं है, यह निश्चित ही कहा जा सकता है, क्योंकि ब्रजभाषा ने अपने ध्वनित-नियमों के अनुरूप तत्सम शब्दों को तद्भव-रूपों में ढाल लिया है। फिर उसका 'देशज' शब्द-भण्डार भी काफी समृद्ध है। तत्सम शब्दों के नाम पर घनानन्द ने योग मीन, कंज, खंजन, विधा इत्यादि शब्दों का अथवा समीप, मिलन, प्राण, रस, कृपा जैसे भिन्न कोटि के शब्दों का प्रयोग किया है। ये शब्द हजारों वर्षों से इसी प्रकार प्रयुक्त होते आए हैं। इनका रूप तद्भव नहीं हो पाता। तत्सम शब्दों के कुछ अत्यन्त सुन्दर तद्भव रूप इस प्रकार हैं–अथिर=अस्थिर, नितकाम=निष्काम, सुतंत्र=स्वंतत्र, अकह=अकथ, वेदनि=वेदना, विथा=व्यथा आदि। तीसरा समूह 'ग्रामीण' अथवा 'जनपदीय' शब्दावली का है। जनपदीय शब्दों में से काव्य अभिव्यंजना का सामर्थ्य निकाल लेना किसी समर्थ कवि का ही काम है। घनानन्द से अनेक अर्थ-द्योतक जनपदीय शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे– बरहे (जंगल), संजोखे (संध्या का अंतिम भाग), लथेर (लपेटकर कर), पैछर (पैर की आवाज) और बेड़ी (बन्धन) इत्यादि।

क्या आप जानते हैं तत्सम शब्द हिंदी की बोली-विशेष ब्रज भाषा के अधिक उपयुक्त नहीं है।

(2) शब्द-निर्माण

समर्थ कवि भाव के अनुसार शब्दों का निर्माण कर लेते हैं। भाषा की क्षमता फिर भी सीमित है और कवि को भाव की अभिव्यक्ति के लिए कई प्रकार के साधनों से काम लेना पड़ता है। भाषा को भाव की अभिव्यक्ति में सर्वथा सक्षम करने के लिए कवि शब्द-निर्माण का दायित्व अपने ऊपर लेता है, इसीलिए वह वैय्याकरणों का कोप-भाजन है। किन्तु निर्माण-प्रतिभा कभी नियम-अवरुद्ध नहीं होती। घनानंद ने शब्द-निर्माण एक ओर भाव समृद्धि के लिए किया है, दूसरी ओर भाषा को एक सर्वथा नया व्यक्तिगत स्पर्श देने के लिए। ऐसे स्थलों पर जहाँ ध्वन्यर्थ-व्यंजना का प्रयोग है, कवि ने कई शब्द अपनी ओर से दिये हैं। 'रसमसे', 'हहरि', 'गुरझनि', इत्यादि शब्द ऐसे ही हैं। 'भकमूर', 'भूतागति', 'दिनदानि', 'अलिवोकिबे', सर्वथा नए शब्द हैं। 'उजरिन' 'अनआईबे' इत्यादि शब्द कवि की क्षमता के व्यंजक हैं। कहीं-कहीं उसको शब्दों के व्याकरणिक रूप में भी परिवर्तन करना पड़ा है। अपनी ओर से आरम्भ में अथवा अन्त में उपसर्ग-प्रत्यय जोड़ने पड़े हैं। शब्द रूप-परिवर्तन के कुछ उदाहरण हैं– अधिक से अधिकाति, सामुहे से समुहाति, लज्जा से लजाति इत्यादि। क्रियाओं में कहीं-कहीं नई संज्ञाओं का अनूठा निर्माण है, जैसे– देखता से दिखास और चितैना से चिताए।

व्याकरणिक दृष्टि से भी कवि ने कई स्थलों पर अपनी ओर से 'निपातों' का प्रयोग किया है जैसे–

ढरिबो से ढरिबोई

अरिबो से अरिबोई

बहिबो से बहिबोई आदि

कहीं शब्द के साथ अपनी ओर से प्रत्यक्ष का बहुत सुन्दर प्रयोग है, जैसे–

आरति से आरतिवन्त

नोट

नोट्स कवि द्वारा शब्द-परिवर्तनों के कारण भाषा विकृत नहीं हुई बल्कि उसकी अर्थ-क्षमता और बढ़ गई है। परिवर्तन सदा नयेपन की सूचना देता है। भाषा जैसे परम्परागत व्यापार में नयापन बहुत शुभ है।

(3) लाक्षणिकता

लक्षणा भाषा की वह शक्ति है जो उसे विशेष अर्थ से, सांकेतिक सौंदर्य से भरती है। शब्द की अभिधा-शक्ति जहाँ हार जाती है वहाँ लक्षण की सांकेतिकता काम आती है। हमारी साधारण भाषा में भी लक्षणा का व्यापक प्रयोग मिलता है और कविता तो निर्विवाद ही लक्षणा पर आधृत रहती है। काव्यशास्त्रियों ने लक्षणा के अनेक भेद किये हैं। संक्षेप शब्द के अर्थ-सम्मत प्रयोग विशेषकर लक्षणा के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इस प्रकार सामान्य उक्ति का चमत्कार भी लक्षणा ही है और विशिष्ट अर्थ-भरे सांकेतिक शब्दों का प्रयोग भी लाक्षणिक सौंदर्य है। घनानन्द में लक्षण सम्पूर्ण पंक्ति के अर्थ से भी व्यंजित है और शब्दों की खण्ड स्थिति से भी। उदाहरणतया–

(क) भोगति बूझि परै तब ही जब,
होहू घरीक हू आप ते न्यारे।

(ख) 'जानि देइ दिन राति बखानें तैं,
जाय परै दिन-रात कौ अन्तर।'

(ग) 'औसर संभारों न तो अन आइबे के संग,
दूरि देख जाइबे को प्यारी नियराति हैं।'

इन पंक्तियों में अर्थ का चमत्कार लक्षण-सिद्ध है। दूसरी ओर कुछ विशिष्ट शब्द-प्रयोग हैं जिनके साथ क्रियाओं का सम्बन्ध लाक्षणिकता को जन्म देता है। जैसे–

'झूठ की सचाई छाक्यों त्यौं,
हित की कचाई पाक्यो।'
+ +
अलबेली सुजान के कौतुक पै,
इत रीझि इकौसी है लाज थकै।
+ +
डीठि हि तू तिन तोरति है।
+ +
अंग अंग श्याम रस रंग की तरंग उठै।
+ +
अरसानि गही वह बानि कछु।
+ +
वेदन की बढ़वारि कहां लों दुराइए।

इन प्रयोगों में अन्तर्दशाएँ नितान्त लाक्षणिक, सतर्कता से व्यंजित हैं। 'लाजनि लपेटी' अथवा 'नयननि बोरति' जैसे प्रयोग भी भाव को एक निश्चित अर्थ-व्यंजकता प्रदान करते हैं।

टास्क कुछ शब्दों के उदाहरण दीजिए जिन्हें घनानंद ने तत्सम के स्थान पर उनके तद्भव रूपों का प्रयोग किया है।

नोट

(4) शब्द-मैत्री

घनानन्द की भाषा की एक अन्य विशेषता शब्दों का यथास्थान संगत प्रयोग है। रीतिकाल के कवि शब्द के संगत प्रयोग के विषय में बड़े सतर्क थे। अनुप्रास शब्द-संगत-यथामैत्री का सर्वप्रमुख साधन है, किन्तु अनुप्रास के साथ ही अनुकूल ध्वनि भी शब्दों के स्थान का निर्धारण करती है। घनानन्द ने अधिकतर तोल में, सम एवं ध्वनि में अनुरूप शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरणतया–

'अंगराति जम्हाति लजाति लखै
अंग-अंग अनंग दिपै झाल कै।'

इस पंक्ति में पहले तीनों शब्द जैसे एक साथ उड़ा बढ़ा रहे हैं और 'अंग-अंग अनंग' एक वचन के हैं। अनुप्रास-सम्मत एक अन्य प्रयोग द्रष्टव्य है–

सोए है अगनि अंग समोए सुभोए,
अनंग के अंग निस्यौं करि।
केलि कला रस आरस आसव,
पान छकै घनआनन्द यौं करि।
पै मन्सा सधि रागत पागत,
लागत अंकनि जागत ज्यौं करि।
ऐसे सुजान विलास विधान हौ,
सोएँ जगै कहि त्यौरियै क्यों करि।'

इसी प्रकार स्वर के बार-बार प्रयोग के द्वारा स्वर-संगीत की सृष्टि इस पंक्ति में द्रष्टव्य है–

'अन्तर आंच उसास तचै अति,
अंग उसीजै उदेग की आवस।'

शब्द-मैत्री के कारण घनानन्द की भाषा में भाव की अभिव्यक्ति बहुत मार्मिक हो उठी है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. भाषा अमूर्त्त भाव का ..... है।
2. तत्सम शब्द हिंदी की बोली-विशेष ..... के अधिक उपयुक्त नहीं है।
3. ब्रजनाथ ने अपनी प्रशस्ति में घनानंद को ..... कहा है।
4. ब्रजभाषा ने अपने ध्वनित नियमों के अनुरूप ..... को तद्भव रूपों में ढाल लिया है।

(5) मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ

मुहावरे भाषा की लक्षण-शक्ति का रूढ़-रूप हैं। मुहावरों के चिरप्रयोग के कारण अभिधार्थ निःशेष हो जाता है और केवल लक्षणा बच जाती है।

किसी भी जीवित भाषा के लिए मुहावरे अनिवार्य हैं। वे भाषा को चटपटा बनाते हैं। वे उसमें चमत्कार भरते हैं। समर्थ कवि मुहावरों का प्रयोग अपनी भावाभिव्यंजना के साधन रूप में करते हैं। रीतिकाल की सामान्य कविता में मुहावरों का प्रयोग कम हुआ क्योंकि अधिकतर कवि साहित्यिक भाषा का ही व्यवहार करते रहे। किन्तु रीतिमुक्त कवियों का सम्पर्क जनभाषा से था तथा साथ ही वे भाषा की अर्थ-क्षमता को पहचानने में समर्थ थे। रीतिमुक्त कवियों में ठाकुर के मुहावरे और लोकोक्तियां सर्वाधिक सफल हैं। घनानन्द ने भी मुहावरों का सुन्दर प्रयोग किया है। आलोचकों का कहना है कि रीतिमुक्त कवियों में सामान्यतया और घनानन्द में विशेषतया मुहावरों का प्रयोग उर्दू तथा फारसी के प्रभावस्वरूप है। घनानन्द द्वारा प्रयुक्त कुछ मुहावरों का रूप देखिये–

(क) हाथ रहना–

'सु कहा लगि धीरज हाथ रहै।'

नोट

(ख) हाथ पड़ना–

'प्राण लै साथ पड़ी पर हाथ'।

(ग) मुंह लगाना–

'ओछी बड़ी इतरानी लगौ मुँह
नैको अघाती न आहि निपेटी।'

(घ) भाग जगना–

'भाग जागें जो कहूँ दिलौ कै घन आनन्द तौ।'

कहीं-कहीं लोकोक्तियों का प्रयोग भी है, जैसे–

'रस प्याय कै प्यास बढ़ाय कै आस,
बिसास मैं यों विष घोरियौ जू।'

संक्षेप में घनानन्द ने मुहावरों का यथा सुन्दर प्रयोग किया है।

निष्कर्ष

संपूर्ण विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि घनानन्द बड़े सजग कलाकार थे किन्तु उनकी सजगता रीतिबद्ध कवियों की कलाप्रियता से भिन्न है। कलापक्ष के प्रति अतिशय मोह का प्रदर्शन घनानन्द में नहीं मिलता। विरोधाभास जैसे चमत्कारसिद्ध अलंकार को भी उन्होंने सहज भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। कलापक्ष घनानन्द की रचना में साधन ही है, साध्य नहीं। घनानंद का प्रमुख लक्ष्य भाव भी अभिव्यक्ति है। उन्होंने अभिव्यक्ति के सारे साधनों का प्रयोग किया है, किन्तु उसके प्रति अनावश्यक लगाव नहीं दिखाया। भाव और कला का अनुपातिक मिश्रण घनानन्द की रचना में विद्यमान है। रीतिकवि की अपेक्षा यह उनके काव्य-दृष्टिकोण की भिन्नता का परिचायक है। घनानन्द काव्य को अन्तःप्रकाशन का साधन मानते थे, कविता ने बरबस उन्हें अपने में ढाल लिया है। उनकी कविता भावाभिव्यक्ति का सहज, स्वाभाविक रूप है, इसीलिए वह कलापक्ष की अतिरिक्त कृत्रिमताओं से मुक्त है यद्यपि उसमें कला पक्ष के सौन्दर्य का कहीं भी अभाव नहीं। 'घनानन्द कवित्त' की अभिव्यक्ति घनानन्द के भाव-भण्डार को सहेज लेने में पूर्णतया समर्थ है और उनकी भाव निधि शब्दों में, छन्दों में छलछला पड़ी है।

30.2 सारांश (Summary)

भाषा भाव की अभिव्यक्ति का सबसे सीधा साधन है। भाषा के रूप में ही भाव ढलता है। भाषा अमूर्त्त भाव का मूर्त्त स्वरूप है। काव्य और भाषा परस्पर अनेक प्रकार के अर्थ-सम्बन्धों से सम्बद्ध होती है। कविता वाणी का ही विलास है और वाणी शब्दरूप है। शब्द भाषा की स्वर-निर्मित इकाई है। इस प्रकार भाषा काव्य-व्यंजना का, काव्य की अभिव्यक्ति का सहज साधन है। घनानंद ने ब्रज भाषा का प्रयोग किया है और उन्हें ब्रज भाषा के संचित सौन्दर्य का वास्तविक प्रतिनिधि माना जा सकता है। स्वच्छंदता भाषा के क्षेत्र में अत्यन्त तीव्र एवं प्रयास भरी है। घनानंद और अन्य रीतिमुक्त कवियों ने भाषा के स्वरूप को बहुत सहज किन्तु व्यंजक बनाया है। भाषा की क्षमता फिर भी सीमित है और कवि को भाव की अभिव्यक्ति के लिए कई प्रकार के साधनों से काम लेना पड़ता है। भाषा को भाव की अभिव्यक्ति में सर्वथा सक्षम करने के लिए कवि शब्द-निर्माण का दायित्व अपने ऊपर लेता है, इसीलिए वह व्याकरणों का कोप-भाजन है। किन्तु निर्माण-प्रतिभा कभी नियम-अवरुद्ध नहीं होती। घनानंद ने शब्द-निर्माण एक ओर भाव समृद्धि के लिए किया है, दूसरी ओर भाषा को एक सर्वथा नया व्यक्तिगत स्पर्श देने के लिए।

30.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **लोकोक्तियाँः** समाज में प्रचलित कहावतें।
2. **अपहनुतिः** छिपाव, अलंकार जिसमें उपमेय का निषेध करके उपमान की स्थापना की जाए।

नोट

30.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. घनानंद की काव्य-भाषा पर प्रकाश डालिए।

2. घनानंद के काव्य में भाषा के नूतन प्रयोगों पर विचार कीजिए।

उत्तर–स्वमूल्यांकन (Answer–Self Assessment)

1. मूर्तरूप 2. ब्रजभाषा 3. 'ब्रजभाषा प्रवीन' 4. तत्सम शब्द।

30.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. महाकवि घनानन्द–*राज बुद्धिराजा, तक्षशिला प्रकाशन।*

2. रीतिमुक्त कवि घनानन्द–*सहगल शशि, अमरसत्य प्रकाशन।*

3. घनानन्द का काव्य शिव्य–*पाल लखनसिंह, हिन्दी बुक सेन्टर।*

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in